भूमिका ।



श्रीशंकरः शंकरोतु ।

उस सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर परमात्माको अनेक धन्यवाद देता हूं जिसकी परम कृपासे मैं उन सौभाग्यवती स्त्रियोंके, जो अज्ञानताके वश हीनदशाको प्राप्त हो रही हैं, धर्म्मभ्रष्ट कुआचरणों पर विचार कर यह लघु पुस्तक व्यास, मनु, वशिष्ठ आदि महर्षि विरचित कई एक स्मृतियोंसे संग्रह करनेमें कृतकार्य्य हुआ । अब आशा करता हूं कि भारतकी महिलाएं इस पुस्तकके नियमोंका अवलोकन और पालन करती हुई अपने अज्ञानतासे उत्पन्न कुआचरणोंका परित्याग कर सीता, सावित्री आदि सतियोंकी अनन्त यशकी पताका इस संसारमें फहरावेंगी ।

टिहरी
१५ मई १९१०



गिरधारीलाल शर्म्मा बहुगुण
श्रीनगर पोखरी निवासी
टिहरी, गढ़वाल ।

एकमन, एकव्रत और एकवृत्ति होकर रहना चाहिये। स्त्रियोंका धर्म, अर्थ और काम प्राप्त करनेका पतिसे पृथक कोई साधन नहीं है॥ ३।४॥

भावतोह्यतिदेशाद्वा इति शास्त्र विधिःपरः।
पत्युः पूर्वं समुत्थाय देहशुद्धिं विधायच॥५॥
उत्थाय शयनाद्यानि क्वत्वावेश्मविशोधनम्।
मार्जनैर्लेपनैः प्राप्य साग्निशालांस्वमङ्गणम्॥६॥

पतिके अभिप्रायसे अथवा उसकी आज्ञासे स्त्री धर्म्मादिको जाने तथा करे, यह शास्त्रकी उत्तम विधि है। स्त्री पतिसे पहले उठ कर, देहकी शुद्धि कर, शय्या आदिको उठाकर और झाड़ू आदिसे घरका शोधन कर, मार्जन, बुहारन और लीपनसे अग्निकी शाला और अपने आङ्गनको शुद्ध करे॥ ५।६॥

शोधयेदग्निकार्य्याणि स्निग्धान्युष्णेन वारिणा।
प्रोक्षणैरितितान्येव यथास्थानं प्रकल्पयेत्॥७॥

जिनसे होमादि होते हैं ऐसे चिकने यज्ञ पात्रादि "प्रोक्षणै" यह मंत्र कह कर गर्म जलसे शुद्ध करे। फिर उनको ठीक स्थानमें ले जाकर रख दे॥ ७॥

महानसस्य पात्राणि वहिः प्रक्षाल्य सर्वथा।
मृद्भिश्च शोधयेच्चुल्लीं तत्राग्निं विन्यसेत्ततः॥८॥

चौकेसे बाहर रसोईके सब पात्र धोकर पोता मिट्टीसे चूल्हेको पोते और उसमें अग्नि स्थापित कर देवे॥ ८॥

स्मृत्वानि योगपात्राणि रसांश्चद्रविणानिच।
कृत पूर्वाह्न कार्य्याच स्वगुरूनभिवादयेत्॥९॥

बर्तनेके पात्रोंको और रसों तथा द्रव्योंको याद करके कि किन किन धातुओ आदिके पात्रोंमें कौन कौन रसादि रखना है उन उन पात्रोंमें वे वे रसादि रख देवे। दोपहरसे पहलेके काम करके अपने पतिका अभिवादन करे॥ ९॥

ताभ्यां भर्त्तृपितृभ्यां वा भ्रातृमातुलबांधवैः ।
वस्त्रालङ्काररत्नानि प्रदत्तान्येव धारयेत् ॥१०॥

अपने माता पिता वा अपने सास ससुरके अथवा भाई माना बांधवोंके ही दिये हुए वस्त्र और आभूषण रत्नादि धारण करे ॥१०॥

मनो वाक्कर्मभिः शुद्धा पतिदेशानुवर्तिनी ।
छायेवानुगता स्वच्छा सखीवद्धित कर्मसु ॥११॥

मन, वाणी और कर्म्मसे शुद्ध होकर पतिकी आज्ञा माननेवाली, छायाके समान उसकी अनुगामिनी और स्वच्छ चित्त सखीके समान उसका हित करनेवाली बने ॥ ११ ॥

दासी वादिष्ट कार्य्येषु भार्य्याभर्तुः सदा भवेत् ।
ततोऽन्न साधनं कृत्वा पतयेविनिवेद्यतत् ॥१२॥

पतिके कहे हुए कार्य्योंमें पत्नी सदैव दासीके समान उद्यत रहे अन्नका उत्तम स्वादिष्ट पाक बनाकर पतिको निवेदन करे ॥ १२ ॥

वैश्वदेव कृतैरन्नै र्भोजनीयांश्च भोजयेत् ।
पतिंचैवाभ्यनुज्ञाता शिष्टमन्नादिनात्मना ॥१३॥

जिस अन्नसे वैश्वदेव अर्थात् देवयज्ञ, भूतयज्ञ और पितृयज्ञ हो उससे जिमानेके योग्य अतिथि आदिको और पतिको जिमावे और पतिकी आज्ञा लेकर शेष बचे हुए अन्नको आप खावे ॥ १३ ॥

भुक्त्वानयेदहः शेषमायव्यय विचिन्तया ।
पुनः सायं पुनः प्रातर्गृहशुद्धिं विधायच ॥१४॥

भोजन करनेके पश्चात् शेष दिन आय और व्ययकी चिन्तामें बितावे, नित्य सायं और प्रातःकालको इसी प्रकार घरको शुद्ध करे ॥१४॥

कृतान्न साधनासाध्वी सुभृशं भोजयेत् पतिम् ।
नातितृप्ता स्वयं भुक्त्वा गृहनीतिं विधायच ॥१५॥
आस्तीर्य साधुशयनं ततपरि चरेत्पतिम् ।
सुप्ते पत्यौ तदभ्याशेस्वपेतद्गतमानसा ॥१६॥

साध्वी स्त्री नित्य प्रीति पूर्वक एक उत्तम स्वादिष्ट पाक बनाकर बड़े चावसे अपने पतिको जिमावे और स्वयं जिसमें अत्यन्त तृप्ति न

हो इतना भोजन करे। फिर घरका उत्तम प्रबन्ध करे और अच्छी सेज बिछाकर पतिकी सेवा करे। जब पति सो जाय तब पतिमें मन लगाये हुई स्त्री उनके समीप सो जावे॥ १५।१६॥

अनग्नाच प्रमत्ताच निष्कामाच जितेन्द्रिया।
नोच्चैर्वदेन्नपरुषं न बहून्पत्युरप्रियम्॥१७॥

नङ्गी न रहे, बेहोश न रहे, निष्काम और जितेन्द्रिय हो, ऊंचे स्वरसे चिल्लाकर न बोले, कठोर न बोले और बहुत व्यर्थ न बोले; मितभाषिणी हो, ऐसे वचन कदापि न बोले जो पतिको प्यारे न हों॥ १७॥

न केन चिद्विवादेच्च अप्रलापविलापिनी।
न चातिव्ययशीलास्यान्नधर्मार्थविरोधिनी॥१८॥

किसीसे विवाद लड़ाई न करे, अनर्थक वृथा न बोले, किसी गुजरे दुःखका विलाप न करे, बहुत खर्च करनेका स्वभाव न रखे, धर्म और अर्थका विरोध न करे॥ १८॥

प्रमादोन्मादरोषेर्ष्या वञ्चनं चाति मानिताम्।
पैशुन्यहिंसाविद्वेष महाहङ्कार धूर्तता॥१९॥
नास्तिक्यं साहसं स्तेयं दम्भान्साध्वीविवर्जयेत्।
एवं परिचरन्तीसा पतिं परम दैवतम्॥२०॥

असावधानी, उन्माद, क्रोध, ईर्षा, ठगपनी, छल, फरेब, अत्यन्त मान, चुगलपन, हिंसा, वैर, बड़ा अहङ्कार, धूर्तता, नास्तिकता, साहस, चोरी, दम्भ, इन सबको साध्वी स्त्री छोड़ देवे। ऐसे परम देवता रूप पतिकी सेवा करती हुई वह स्त्री॥१९-२०॥

यशः शमिहवाप्नोति परत्र च सलोकताम्।
योषितां नित्यकर्मोक्तं नैमित्तिकमथोच्यते॥२१॥

इस लोकमें यश और सुख और परलोकमें पतिके लोकको प्राप्त करती है। यह स्त्रीका नित्य कर्त्तव्य धर्म कहा; अब इसके आगे इसके नैमित्तिक कर्म कहते हैं॥२१॥

रजोदर्शनता दोषात् सर्वमेव परित्यजेत्।
सर्वैरलक्षिता शीघ्रं लज्जितान्तर गृहे वसेत् ॥२२॥

रजोदर्शन होने पर दोष लगनेके भयसे सब कामोंका परित्याग देवे। जहां कोई दिखाई न दे ऐसे घरके भीतर शीघ्र ही जाकर लज्जित भावसे बसे ॥२२॥

एकाम्बरावृतादीना स्नानालङ्कार वर्जिता।
मौनित्यधोमुखीचक्षुः पाणिपद्भिरचञ्चला ॥२३॥

एक धोती धारण किये, दीनदशा रखती हुई, स्नान और आभूषणोंसे वर्जित होकर तथा मौन बनकर नीचेको मुख किये हाथ और पैरोंका चलाना बन्द करे ॥२३॥

अश्नीयात्केवलं भक्तं नक्तं मृन्मयभाजने।
स्वपेद्भूमावप्रमत्ता क्षपेदेव महस्त्रयम् ॥२४॥

रात्रिके समय मिट्टीके पात्रमें एक वार खाली भात खावे। प्रमाद छोड़ कर सावधान होकर और पृथिवी पर चटाई बिछाकर सोवे। ऐसे तीन दिन बितावे ॥२४॥

स्नायीत च त्रिरात्रान्ते सचैल मुदितेरवौ।
विलोक्य भर्तुर्वदनं शुद्धा भवति धर्मतः ॥२५॥

तीन दिन पूरे होने पर चौथे दिन प्रातःकाल सूर्यके उदय होने पर पहिने हुए वस्त्र सहित स्नान करे। फिर शुद्ध वस्त्र पहिन कर अपने पतिके मुखको देखने पर धर्मानुसार शुद्ध होती है ॥२५॥

विवर्णा दीनवदना देहसंस्कारवर्जिता।
पतिव्रता निराहारा शोष्यते प्रोषिते पतौ ॥२६॥
मृतंभर्तारमादाय ब्राह्मणी वह्निमाविशेत्।
जीवन्ति चेत् त्यक्तकेशा तपसा शोधयेद्वपुः ॥२७॥

पतिके परदेश जाने पर स्त्री मलिनवर्ण और दीनमुख होकर देहके संस्कार—उबटना लगाना, तैल मर्दन आदि न करती हुई पतिके ध्यानमें मग्न रहे। अन्य पुरुषका भ्रमसे भी ध्यान न करे। अति

सूक्ष्म आहार करे। देहको निर्बल कर दे। ऐसी ब्राह्मणी आदि पतिव्रता कहाती हैं। वह मरे हुए पतिको लेकर अग्नि प्रवेश पूर्वक सती हो जाय और यदि जीवित रहे तो केशोंको मुड़ा डाले और तपसे शरीरको शुद्ध करे ॥ २६-२७ ॥

सर्वावस्था सुनारीणां न युक्तं स्यादरक्षणम्।
तदेवान् क्रमात्कार्यं पितृभर्तृसुतादिभिः ॥२८॥

स्त्रियोंकी सब अवस्थाओंमें रक्षा करनी चाहिये। बाल्यावस्थामें पिता, युवावस्थामें पति और वृद्धावस्थामें पुत्रादि अपनी पुत्री, पत्नी और मातादिकी क्रमसे रक्षा करें ॥२८॥

दक्षस्मृति।

पत्नी मूलं गृहं पुंसां यदिच्छन्दानुवर्तिनी।
गृहाश्रमात्परं नास्ति यदि भार्यावशानुगा।
तया धर्मार्थकामानां त्रिवर्गफलमश्नुते ॥१॥

यदि पतिकी आज्ञाकारिणी हो तो घरका मूल पत्नी ही है, यदि स्त्री वशमें हो तो गृहस्थाश्रमसे परे और कोई श्रेष्ठ आश्रम नहीं है। उस स्त्रीके साथ ही पति धर्म, अर्थ और कामके त्रिवर्ग फलको भोगता है ॥ १ ॥

अनुकूल कलत्रोयः स्वर्गस्तस्य न संशयः।
प्रतिकूल कलत्रस्य नरको नात्र संशयः ॥२॥

जिसकी स्त्री सर्वथा अनुकूल हो उसके घरमें ही स्वर्ग है, इसमें संशय नहीं। जिसकी स्त्री प्रतिकूल अर्थात् पतिसे विरुद्ध है उसका घर ही नरक है, इसमें भी सन्देह नहीं।

स्वर्गेऽपि दुर्लभं ह्येतदनुरागः परस्परम्।
रक्तमेकं विरक्तंच ततः कष्टतरं नु किम् ॥३॥

स्त्री और पुरुषकी परस्पर प्रीतिका होना स्वर्गसे भी दुर्लभ है।

एक अनुरागी हो और अन्य विरक्त, तो उससे अधिक और क्या कष्ट हो सकता है ॥३॥

गृहवासः सुखार्थोऽहि पत्नी मूलं च तत्सुखम् ।
सा पत्नी या विनीतास्याच्चित्तज्ञा वशवर्तिनी ॥४॥

घरमें वसना सुखके लिये है और सुखका मूल धर्मपत्नी है । जो स्त्री नम्र और कोमल हो, चित्तकी बात जाननेवाली हो तथा सर्वथा पतिके अधीन रहे वही वास्तवमें पत्नी है ।

दुःखान्विता सदा खिन्ना छिद्रं पीड़ा परस्परम् ।
प्रतिकूल कलत्रस्यद्विरादस्य विशेषतः ॥५॥

जो स्त्री दुःखसे युक्त, तथा सदा खेद करनेवाली हो, और एक दूसरेको पीड़ित करे वा छिद्र देखे, ऐसी प्रतिकूल स्त्री वाले तथा विशेष कर दो स्त्री वाले पुरुषको घरमें सदा दुःख ही है ॥ ५ ॥

अनुकूला त्ववाग्दुष्टा दक्षा साध्वी पतिव्रता ।
एभिरेव गुणैर्युक्ता श्रीरिवस्त्री न संशयः ॥६॥

जो स्त्री अनुकूल हो, जिसकी वाणी प्रिय हो, जो चतुर और बुद्धिमती हो, साधु और सरल स्वभावकी हो और पतिव्रता हो इन सब गुणोंसेयुक्त स्त्री लक्ष्मीहीके तुल्य है, इसमें संशय नहीं ।

प्रहृष्ट मानसा नित्यं स्थानमानविचक्षणा ।
भर्तुः प्रीति करीयातु भार्यासा चेतराजरा ॥७॥

जो स्त्री मनसे सदा प्रसन्न रहे, पतिको बैठाने और प्रतिष्ठा करनेमें प्रवीण हो और जो पतिमें प्रीति रखनेवाली हो, वही भार्या सच्ची पत्नी है, इससे भिन्न दुःखदायी है ॥७॥

दरिद्रं व्याधितं चैव भर्तारं यावमन्यते ।
शुनी गृध्री च मकरी जायते सा पुनः पुनः ॥८॥

जो स्त्री रोगी हो और पतिका तिरस्कार करती हो वह कुतिया, गीध, पक्षिणी और मगर योनियोंमें बारम्बार जन्म लेती है ॥८॥

मृते भर्त्तरि या नारी समारोहेद्धुताशनं।
सा भवेत् शुभाचारा स्वर्गे लोके महीयते ॥९॥
व्यालग्राही यथाव्यालं बलादुद्धरते विलात्।
तथा सा पतिमुद्धृत्य तेनैव सह मोदते ॥१०॥

पतिके मर जाने पर जो स्त्री अग्निमें भस्म होकर सती होती है वह शुभ आचरणवाली होती है और स्वर्गमें पूजा प्राप्त होती है। जैसे सांपोंका पकड़नेवाला बिलमेंसे सांपको निकाल लेता है वैसे ही वह स्त्री भी अधोगतिको प्राप्त हुए पतिका उद्धार करके उसी पतिके संगमें आनन्द भोगती है ॥९-१०॥

शंखस्मृति।

न व्रतैर्नोपवासैश्च धर्मेण विविधेन च।
नारी स्वर्गमवाप्नोति प्राप्नोति पति पूजनात् ॥१॥

व्रत, उपवास और अनेक प्रकारके धर्मसेवनसे स्त्री स्वर्ग प्राप्त नहीं करती। किन्तु श्रद्धा भक्तिके साथ तन मन धनसे पतिकी सेवा करनेसे स्त्रीको निश्चित स्वर्गलाभ होता है ॥ १ ॥

नानुज्ञाता गृहाभिर्गच्छेत् नानुत्तरीया न त्वरितं
व्रजेत, न पर पुरुषं भाषेतान्यत्र वणिक् प्रव्रजित
वृद्धेभ्यः न नाभिं दर्शयेत्, आगुल्फाद्वासः परि
दध्यात्, न स्तनौ विवृतौ कुर्यात्, न हसेद प्रावृता
भर्त्तारं तद्बन्धून्वा न द्विष्यात्, न गणिका धूर्ताभि-
सारिणि प्रव्रजिता प्रेक्षणिका माया मूलकुहक-
कारिका दुःशीलादिभिः सहैकात्रतिष्ठेत्, संसर्गेण
हि चारित्रं दुष्यतीति ॥२॥

बिना कहे घरसे बाहर न जाय, बिना दुपट्टा ओढ़े न जाय, शीघ्र न चले, परपुरुषके सङ्ग न बोले। व्यापारी, वैद्य, सन्यासी, वृद्ध इनसे बोलनेमें दोष नहीं है। अपनी नाभि किसीको न दिखावे।

एड़ीतक वस्त्र पहिने, स्तनोंको न खोले, और न हंसे, न नग्न हो, पति और पतिके बन्धुओंसे वैर न करे। गणिका, धूर्त, कुटनी, सन्यासिनी, प्रेक्षणिका (यद्वातद्वा फिरनेवाली), मायासे कपट करनेवाली और दुष्टस्वभाव स्त्री, इनके पास न बैठे क्योंकि संसर्गसेभी चरित्र दुष्ट हो जाता है ॥२॥

वसिष्ठस्मृति ।

अस्वतन्त्रता स्त्री पुरुषप्रधाना ॥१॥

स्त्री पतिके अधीन रहनेवाली है; उसकी स्वतन्त्रता नहीं है ॥ १ ॥

अनग्निरनुदक्या वा अनृतमिति विज्ञायते ॥२॥

अथाप्युदाहरन्ति ॥३॥

स्त्री अग्नि स्थापन, अग्निहोत्र तथा जल देनेमें अनधिकारिणी अथवा मिथ्या है, ऐसा श्रुतिसे जाना जाता है और भी श्लोकोंका प्रमाण देते हैं ॥ २।३ ॥

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
पुत्राश्च स्थविरेभावे न स्त्रीस्वातन्त्र्यमर्हति ॥४॥

बाल्यावस्थामें पिता, युवावस्थामें पति और वृद्धावस्थामें पुत्र रक्षा करते हैं। किसी अवस्थामें स्त्री स्वतन्त्र रहने योग्य नहीं है ॥ ४ ॥

तस्या भर्तुरभिचार उक्तः प्रायश्चित्त रहस्ये षु ॥५॥

स्त्रीके लिये पतिसे वियोग प्रायश्चित्त और रहस्य अर्थात् एकान्त वास व्रतके समान है ॥ ५ ॥

मासि मासि रजोह्यासां दुष्कृतान्यपकर्षति ॥६॥

प्रत्येक मासमें निकलनेवाला आर्त्तव-रक्त स्त्रियोंके पापोंको नष्ट करता रहता है ॥ ६ ॥

त्रिरात्रं रजस्वला शुचिर्भवति, सा नाञ्जयेन्नाभ्यञ्ज्यान्नाप्सु स्नायात्, अधः शयीत, दिवा न स्वप्यात्, नाग्निं स्पृशेत्, न रज्जुं सृजेन्न दन्तान्धावयेन्न मांसमश्नीयान्न ग्रहान्निरीक्षेत, न हसेन्न किंचिदाचरेत्, न खर्वेण पात्रेण पिबेन्नाञ्जलिना वा पिबेत् लोहितायसेन वा ॥७॥

रजस्वला स्त्री तीन रात तक अशुद्ध रहती हैं, । उस समय वह आंखोंमें अञ्जन, न लगावे, तैलमर्दन न करे और जलमें स्नान न करें । पृथिवी पर सोवे दिनको न सोवे, अग्निका स्पर्श न करे, रस्सी न काटे, दांतोको न मांजे; मांस न खावे, ग्रह और नक्षत्रोंको न देखे, न हंसे और न कुछ काम करे, छोटे पात्रसे या अञ्जलिसे जलादि न पीवे और लाल पात्रसे वा लोहेके पात्रसे भी जलादि न पीवे ॥ ७ ॥

गौतम ।

अस्वतन्त्रा धर्म्मे स्त्री नातिचरेद् भर्तारं वाक् चक्षुः कर्म्म संयता ॥१॥

धर्म विषयमें स्त्री स्वतन्त्र नहीं है, वाणी, चक्षु और हाथ पांवकी चेष्टाको वशीभूत रखती हुई वह पतिकी आज्ञाका उल्लंघन न करे ॥ १ ॥

मनसा भर्तुरतिचारे त्रिरात्रं यावकं क्षीरौदनं वा भुञ्जानाऽधःशयीतोऽर्ध्वं त्रिरात्रादप्सु निमग्नायाः सावित्र्या अष्टशतेन शिरोभिर्जुहुयात् पूता भवतीति विज्ञायते ॥८॥

यदि स्त्री मनसे दूसरे पुरुषको चाहना द्वारा पतिका उल्लंघन या तिरस्कार करे तो तीन दिन तक दूधभात और कुलत्थ खाती हुई भूमिपर सोवे और तीन दिनके उपरान्त नदीके जलमें सावित्रीके शिरोमन्त्रके एक सौ आठ मन्त्रोंसे घीकी आहुति दे तो पवित्र हो सकती है । श्रुति यही कहती है ॥ ८ ॥

वाक् सरस्त्र एतदेव मासं चरित्वोर्ध्वं मासा-
दप्सु निम्नगायाः सावित्र्याश्चतुर्भिष्ट घृतैःशिरो-
भिर्जुहुयात् ॥८॥

यदि वाणीद्वारा अन्य पुरुषसे संभोगकी बात करे वा पतिका अनादर वा आज्ञाका उल्लंघन करे वा गाली आदि कठोर वाक्य बोले तो पूर्वोक्त व्रत एक मास तक करके नदीके जलमें सावित्रीके शिरोमन्त्रसे घीकी ४३२ आहुति छोड़े ॥८॥

कात्यायन।

स्त्रीणां सौभाग्यतो ज्यैष्ठं विद्ययैव द्विजन्मनाम्।
नहि ख्याता न तपसा भर्ता तुष्यति योषिताम् ॥१॥

स्त्रियोंका बड़प्पन सौभाग्यवती होनेसे और ब्राह्मणोंकी बड़ाई विद्यासे है, क्योंकि प्रसिद्धि और तपसे स्त्रियोंपर पति प्रसन्न नहीं होता ॥ १ ॥

भर्तुरादेशवर्त्तिन्यां यथोमा दद्रुभिर्वतैः।
अग्निश्च तोषितोऽमुत्र सा स्त्री सौभाग्यमाप्नुयात् ॥२॥

किन्तु पति, अपनी आज्ञा माननेवाली स्त्री पर प्रसन्न होता है। जैसे पार्वतीजीने आज्ञाकारिणी होकर शिवजीको प्रसन्न किया, पत्नीको वैसाही करना चाहिये। जिसने अग्निको सन्तुष्ट किया है वही स्त्री परलोकमें सौभाग्य प्राप्त करती है ॥ २ ॥

विनयावनतापि स्त्री भर्तुर्या दुर्भगा भवेत्।
अमुत्रोमाग्निभर्तॄणामवज्ञाति क्षतातया ॥३॥

पतिके आगे प्रेमसे सिर नवाती रहनेपर भी जो स्त्री दुर्भागिनी हो अर्थात् जिसके पुत्र दि न हो उसने पूर्वजन्ममें पार्वती, अग्नि और पतिका तिरस्कार किया जानो ॥ ३ ॥

पतिमुल्लङ्घ्य मोहात् स्त्री किं किं न नरकं व्रजेत्।
कृच्छ्रान्मनुष्यतां प्राप्य किं किं दुःखं न विन्दति ॥४॥

अज्ञानसे पतिका उल्लंघन करके स्त्री किस किस नरकमें नहीं जाती? फिर बड़े कष्टसे मनुष्य योनि प्राप्त होकर किस किस दुःखको प्राप्त नहीं होती है? ॥ ४ ॥

पतिशुश्रूषयैव स्त्री कान्सर्वाल्लोकान्समश्नुते।
दिवः पुनरिहायाता सुखानामम्बुधिर्भवेत् ॥५॥

और पतिकी सेवासे स्त्री किस किस लोकसे सुख नहीं भोगती अर्थात् सभी लोकोंके सुख पाती है और स्वर्गसे फिर भूलोकमें आकर सुखोंका समुद्र बनती है ॥ ५ ॥

पराशर।

ऋतुस्नानातु या नारी भर्त्तारं नोपसर्पति।
सा मृता नरकं याति विधवा च पुनः पुनः ॥ १ ॥

जो स्त्री ऋतुकालमें चौथे दिन स्नान करके छटे आदि दिन पतिके नजदीक नहीं जाती, वह मरकर नरकमें जाती है और बार बार विधवा होती है ॥ १ ॥

दरिद्रं व्याधितं मूर्खं भर्तारं यावमन्यते।
सा मृता जायते व्याली वैधव्यञ्च पुनः पुनः ॥ २ ॥

पति दरिद्र और रोगी भी हो तो उसका जो स्त्री अपमान करती हो वह मरकर सांपिन होती है और बार बार विधवा होती है ॥ २ ॥

पत्यौ जीवति या नारी उपोष्य व्रतमाचरेत्।
आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥ ३ ॥

पतिके जीते रहते जो स्त्री उपवास तथा व्रत करती है वे अपने पतिकी अवस्था घटाती है और आप नरकमें जाती है ॥ ३

अत्रिः ।

जपस्तपस्तीर्थयात्रा प्रव्रज्यामन्त्रसाधनम् ।
देवताराधनं चैव स्त्रीशूद्रपतनानिषट् ॥ १ ॥

जप, तप, तीर्थोंकी यात्रा, संन्यास, मन्त्र सिद्ध करनेका उद्यम और देवताओंकी आराधना ये छः कर्म स्त्री और शूद्रोंके पतनके हेतु हैं ॥ १ ॥

जीवद्भर्त्तरि या नारी उपोष्यव्रतचारिणी ।
आयुष्यं हरते भर्त्तु सा नारी नरकं व्रजेत् ॥ २ ॥

जो स्त्री पतिके जीते हुए उपवास व्रत करती है वह अपने पतिका आयु न्यून करती है और स्वयं नरकको जाती है ॥ २ ॥

तीर्थस्नानार्थिनी नारी पतिपादोदकं पिबेत् ॥ ३ ॥

यदि स्त्रीको तीर्थ स्नानकी इच्छा हो तो वह अपने पतिके चरणको धोके पीवे ॥ ३ ॥

शंकरस्यापि विष्णोर्वा प्रयाति परमं पदम् ।
जीवद्भर्त्तरि वामाङ्गी मृतेवापि सुदक्षिणे ॥ ४ ॥

तथा शिव और विष्णुके चरणोदकको श्रद्धासे पीवे भी तो वह परमपद नामक मोक्षको प्राप्त हो जाती है, पतिके जीते समय इसके बायें अङ्गमें स्थित होती है और उसकी मृत्युके पीछे इसके दाहिनेमें ॥ ४ ॥

याज्ञवल्क्यः ।

मृते जीवतीवापत्यौयानान्यमुपगच्छति ।
सेहकीर्त्तिमवाप्नोति मोदते[illegible]

पतिके जीते हुए और मरने पर [illegible]
[illegible]

करती वह इस लोकमें कीर्त्ति प्राप्त होती है और पुण्यके प्रतापसे पार्वतीके संग क्रीड़ा करती है अर्थात् आनन्द भोगती है ॥ १ ॥

स्त्रीभिर्भर्तृवचः कार्य्यमेषधर्म्मः परःस्त्रियाः।
आशुद्धेः संप्रतीक्ष्योहि महापातकदूषितः ॥ २ ॥

स्त्रियोंको अपने पतिका वचन मानना कर्त्तव्य है ; क्योंकि यही स्त्रियोंका परम धर्म्म है। यदि पति महापातक आदिसे दूषित हो जाय तो तब तक उसकी प्रतीक्षा करे जब तक वह शुद्ध न हो ले ॥ २ ॥

संयतोपस्करादक्षा हृष्टाव्ययपराङ्मुखी।
कुर्याच्छ्वशुरयोः पादवन्दनं भर्तृतत्परा ॥ ३ ॥

सावधानीसे गृहकी सामग्री रखे, कार्य्यदक्ष हो, प्रसन्न मुख रहे और कम खर्च करे, पतिके वशमें रहकर सास और श्वशुरके चरणोंमें नमस्कार करे ॥ ३ ॥

क्रीड़ाशरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम्।
हास्यं परगृहेयानं त्यजेत्प्रोषितभर्तृका ॥ ४ ॥

जिस स्त्रीका पति परदेशमें हो वह गेंद आदिसे क्रीड़ा, उबटन आदिसे शरीरका संस्कार, जनोंके समूह और विवाह आदि उत्सवोंका दर्शन, हंसी और पराये घरमें गमन, इन सबको त्याग दे ॥ ४ ॥

रक्षेत्कन्यां पिताविन्नां पतिःपुत्रस्तुवार्द्धके।
अभावेज्ञातयेस्तेषां न स्वातन्त्र्यं क्वचित् स्त्रियाः ॥ ५ ॥

कन्याको निन्दित कर्म्मोंसे विवाहके पहले पिता, विवाहके अनन्तर पति और पतिके अभावमें पुत्र रक्षा करे। यदि वृद्धावस्थामें ये न हों तो ज्ञातिके मनुष्य और यदि ज्ञातिके मनुष्य भी न हों तो राजा रक्षा करे। इससे स्त्रियोंको कभी स्वतंत्रता नहीं है ॥ ५ ॥

पितृमातृसुतभ्रातृश्वश्रूश्वशुरमातुलैः।
हीनस्याद्विनाभर्त्तागर्हणीयान्यथाभवेत्॥ ६॥

स्त्री, पतिके मरने पर पिता माता पुत्र भाई सास श्वशुर मामा इनके बिना न रहे। जो रहती है वह निन्दा प्राप्त होती है॥ ६॥

पतिप्रियहितेयुक्तास्वाचारविजितेन्द्रिया।
सेहकीर्त्तिमवाप्नोति प्रेत्यचानुत्तमां गतिम्॥ ७॥

पतिके प्रिय और हितमें लगी रहे, शुद्ध आचरण करे, इंद्रियोंको जीते, ऐसी स्त्री इस लोकमें कीर्ति और परलोकमें उत्तम गति प्राप्त होती है॥ ७॥

मनु।

द्विधाकृत्वात्मनोदेहमर्द्धेन पुरुषोभवत्।
अर्द्धेननारीतस्यांस विराजमसृजत्प्रभुः॥ १॥

ब्रह्माने अपनी देहको दो खण्ड करके आधीसे पुरुष और आधीसे स्त्री तथा उनके मैथुन धर्म्मसे विराट् नामक पुरुष उत्पन्न किया॥ १॥

बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापियोषिता।
न स्वातन्त्र्येणकर्त्तव्यं किञ्चित्कार्य्यं गृहेष्वपि॥ २॥

बालकपनमें, तरुण अवस्थामें अथवा वृद्धावस्थामें स्थित स्त्रीको घरमें स्वाधीन होकर कोई काम न करना चाहिये॥ २॥

बाल्ये पितुर्वशेतिष्टेत्पाणिग्राहस्य यौवने।
पुत्राणां भर्त्तरिप्रेते न भजेत् स्त्री स्वतन्त्रताम्॥३॥

बालकपनमें पिताके वशमे रहे और तरुण अवस्थामें पतिके

अधीन तथा पतिके मरने पर पुत्रोंके, और जो पुत्र न हो तो उनके सपिंडोंके और सपिण्ड भी न हों तो पिताके पक्षके और यदि दोनों पक्ष न हों तो जाति तथा राजा आदिके अधीन रहै, कभी स्वतन्त्र न रहे ॥ ३ ॥

पित्राभर्त्रासुतैर्वापिनेच्छे द्विरहमात्मन।
एषांहि विरहेण स्त्री गर्ह्यं कुर्यादुभेकुले ॥ ४ ॥

पिता, पति तथा पुत्रोंसे स्त्री कभी पृथक न हो, क्योंकि इनसे अलग रहनेसे कुलटापन प्राप्त होकर पिता तथा पति दोनोंके कुलोंको निंदित करती हैं ॥ ४ ॥

सदाप्रहृष्टयाभाव्यं गृहकार्येषु दक्षया।
सुसंस्कृतोपस्करया व्ययेचामुक्तहस्तया ॥ ५ ॥

स्त्रीको सदा प्रसन्न मुख, घरके कामोमें चतुर और कम खर्च करनेवाली होना चाहिये ॥ ५ ॥

यस्मैदद्यात्पितात्वेनां भ्राताचानुमतेपितुः।
तं शुश्रूषेतजीवन्तं संस्थितञ्च न लङ्घयेत् ॥ ६ ॥

पिता अथवा पिताकी आज्ञासे उसका भाई जिसको दान करे जीवित कालतक उस पतिकी सेवा करे और मरे हुए पतिका उल्लंघन न करे अर्थात् अन्य पतिकी इच्छा न करे ॥ ६ ॥

मङ्गलार्थं स्वस्त्ययनं यज्ञश्चासां प्रजापतेः।
प्रयुज्यते विवाहेषु प्रदानं स्वाम्यकारणम् ॥ ७ ॥

विवाहमें शान्तिके मन्त्रोंका पढ़ना और ब्रह्माके उद्देशसे किये जाते हुए यज्ञ स्त्रियोंके मंगलके लिये होते हैं अर्थात् उनको इष्ट प्राप्तिके कर्म्म हैं और जो वाग्दान रूप कर्म्म है वह पतिके स्वामी होनेका कारण है ॥ ७ ॥

अनृतावृतुकाले च मन्त्रसंस्कारकृत्पतिः ।
सुखस्यनित्यं दातेह परलोकेच योषितः ॥ ८ ॥
विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वापरिवर्जितः ।
उपचर्य्यः स्त्रियासाध्व्या सततं देववत्पतिः ॥ ९ ॥

ऋतु कालमें अथवा ऋतु भिन्न कालमें मंत्र संस्कार करनेवाला पति इस लोक तथा परलोकमें सुख देनेवाला है । पति चाहे शील रहित हो अथवा दूसरी स्त्रीसे प्रीति करनेवाला अथवा विद्या आदि गुणोंसे हीन पर पतिव्रता स्त्रीको योग्य है कि उसे देवताके समान माने ॥ ८ ॥ ९ ॥

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो नव्रतं नाप्युपोषितम् ।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गेमहीयते ॥ १० ॥

स्त्रियोंको पृथक यज्ञ नहीं करना चाहिये । पतिकी आज्ञा विना व्रत तथा उपवास भी नहीं है । पतिको सेवाहीसे स्त्री स्वर्ग लोकमें पूजित होती है ॥ १० ॥

पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतोवामृतस्य वा ।
पतिलोकमभिप्सन्ती नाचरेत्किञ्चिदप्रियम् ॥ ११ ॥

पतिको सेवासे प्राप्त हुए स्वर्ग आदि लोकोंकी इच्छा करने वाली पतिव्रता स्त्री जीते हुए अथवा मरे हुए पतिका कुछ भी अप्रिय न करे । मरे हुएका अप्रिय व्यभिचारसे तथा श्राद्ध न करनेसे होता है ॥ ११ ॥

कामन्तु क्षपयेद्देहं पुष्पमूल फलैः शुभैः ।
न तु नामापि गृह्णीयात्पत्यौ प्रेते परस्य तु ॥ १२ ॥

पतिके मरने पर व्यभिचारकी बुद्धिसे दूसरे पुरुषका नाम भी न ले, परन्तु पवित्र फूल मूल और फलोंका अल्प आहार करके देहको क्षीण करे ॥ १२ ॥

आसीतामरणात्क्षान्ता नियता ब्रह्मचारिणी।
यो धर्म्म एक पत्नीनां काङ्क्षन्ती तमनुत्तमम्॥ १३॥

क्षमायुक्त, नियम माननेवाली और पतिव्रताओंके उत्तम धर्म्मको चाहनेवाली तथा मधु, मांस और मैथुनके त्याग रूप ब्रह्मचर्य्यसे शोभित होकर स्त्री मरण पर्य्यन्त रहे और यदि पुत्र रहित भी हो तो पुत्रके लिये परपुरुषकी सेवा न करे॥ १३॥

मृते भर्त्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्य्ये व्यवस्थिता।
स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः॥ १४॥

अच्छे आचार पालन करनेवाली स्त्री पतिके मरनेपर परपुरुषसे मैथुन न करे तो पुत्र रहित होनेपर भी स्वर्गको जाती है॥ १४॥

अपत्यलोभाद्या तु स्त्री भर्तारमतिवर्त्तते।
सेह निन्दामवाप्नोति पतिलोकाच्च हीयते॥ १५॥

मेरे पुत्र उत्पन्न होनेसे मैं स्वर्गको जाऊंगी इस लोभसे जो स्त्री पतिका उल्लंघन करती है वह इस लोकमें व्यभिचार करती है और निन्दा प्राप्त होती है और उस पुत्रको पाकर स्वर्गको प्राप्त नहीं होती॥ १५॥

नान्योत्पन्ना प्रजास्तीह न चाप्यन्यपरिग्रहे।
न द्वितीयश्च साध्वीनां क्वचिद्भर्तोपदिश्यते॥ १६॥

पतिसे भिन्न पुरुषसे उत्पन्न संतान शास्त्रीय नहीं होती है और अच्छे आचारवाली स्त्रियोंका शास्त्रोंमें कहीं दूसरा पति नहीं कहा है॥ १६॥

पतिं हित्वापकृष्टं स्वमुत्कृष्टं या निषेवते।
निन्द्यैव सा भवेल्लोके परपूर्वेति चोच्यते॥ १७॥

अपने शूद्र आदि पतिको छोड़कर जो स्त्री ब्राह्मण आदिका

आश्रय लेती है वह लोकमें निन्दित होती है और ऐसा कहा जाता है कि उसका दूसरा भर्त्ता है ॥१७॥

व्यभिचारात्तु भर्त्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम्।
शृगालयोनिं प्राप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते ॥ १८ ॥

पराये पुरुषके साथ भोग करनेसे स्त्री लोकमें निन्दाको प्राप्त होती है और मरनेके पीछे शृगाली होती है और कुष्ठ आदि पाप रोगोंसे पीड़ित होती है ॥ १८ ॥

पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता।
साभर्त्तृलोकमाप्नोति सद्भिःसाध्वीतिचोच्यते ॥ १९ ॥

जो स्त्री मन वाणी और देहसे संयत हो पतिका उल्लंघन नहीं करती है वह भर्त्ताके लोकको जाती है और पतिव्रता भी कहलाती है ॥ १९ ॥

अनेन नारी वृत्तेनमनोवाग्देहसंयता।
इहाग्र्यां कीर्त्तिमाप्नोति पतिलोकं परत्र च ॥ २० ॥

इस प्रकार स्त्री धर्म्मके आचार अनुसार मन, वाणी और कायासे सावधान रहनेवाली स्त्री इस लोकमें उत्तम कीर्ति प्राप्त होती है और परलोकमें पतिके साथ प्राप्त किया हुआ लोक प्राप्त होती है ॥ २० ॥

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्रीस्वातन्त्र्यमर्हति ॥ २१ ॥

विवाहसे पहले पिता रक्षा करे, यौवनावस्थामें पति रक्षा करे, और वृद्धावस्थामें पुत्र रक्षा करे। इस लिये स्त्री किसी अवस्थामें भी स्वतन्त्र नहीं है (और जिसके पति पुत्र न हों उसकी पिता आदि रक्षा करते हैं) ॥ २१ ॥

पानं दुर्जनसंसर्गं पत्याच विरहोऽटनम् ।
स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीसंदूषणानिषट् ॥ २२ ॥

मद्य पीना, असत्पुरुषोंका संसर्ग, पतिसे वियोग, भ्रमण करना, कुसमयमें सोना, पराये घरमें रहना ये छः स्त्रीमें व्यभिचार उत्पन्न करनेवाले हैं ॥ २२ ॥

श्रीरस्तु ।

धर्मतत्त्व।

राय वङ्किमचन्द्र चटरजी बहादुर लिखित,

और

बाबू महावीरप्रसाद द्वारा

अनुवादित।

कलकत्ता,

नं० ८७ मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट।

"भारतमित्र" प्रेसमें बाबू नवलकिशोर गुप्त

द्वारा

मुद्रित और प्रकाशित।

सं० १९६८

—:0:—

धर्म्मतत्त्व।

राय बङ्किमचन्द्र चटरजी बहादुर लिखित,

और

बाबू महावीरप्रसाद द्वारा

अनुवादित।

कलकत्ता,

नं० ८७ मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट।

"भारतमित्र" प्रेसमें बाबू नवलकिशोर गुप्त

द्वारा

मुद्रित और प्रकाशित।

सं० १८६८

—:o:—

ग्रंथकारकी भूमिका।

ग्रंथकी भूमिकामें जो बातें कहनेकी होती हैं, वे मैंने ग्रंथमेंही लिख दी हैं। जो लोग पुस्तककी केवल भूमिका देखकर ही उसका पढ़ना वा न पढ़ना निश्चय करते हैं, उनके इस ग्रंथके पढ़नेकी बहुत कम सम्भावना है। इसलिये भूमिकामें मेरे कुछ विशेष कहनेका प्रयोजन नहीं है।

सिवा, ग्रंथके पहले दस अध्याय एक प्रकारसे भूमिका ही हैं। मेरे कहे हुए अनुशीलनतत्त्वकी प्रधान बातें ११ वें अध्यायमें हैं। दूसरी भूमिकाका कोई प्रयोजन नहीं है।

ये १० अध्याय नीरस और बीच बीचमें दुरूह हैं इस दोषको स्वीकार करना ही, मेरी भूमिकाका उद्देश्य है। ७ वां अध्याय बहुत ही नीरस और दुरूह है। श्रेणीविशेषके पाठक ७ वां अध्याय छोड़कर भी पढ़ सकते हैं।

प्रधानतः शिक्षाप्राप्त पाठकोंके लिये यह ग्रंथ लिखा गया है। इसलिये सर्वत्र सब बातें विशदरूपसे नहीं समझायी गयीं। और उसी निमित्त जगह जगह अंग्रेजी और संस्कृतका अनुवाद नहीं लिखा गया। इस ग्रंथका कुछ अंश नवजीवनमें प्रकाशित हुआ था, वह भी कुछ कुछ बदला गया है।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

धर्म्मतत्त्व ।

अनुशीलन ।

पहला अध्याय—दुःख क्या है ?

गुरु । वाचस्पतिजीका क्या हाल है ? वे अच्छे हो गये ?

शिष्य । वे तो काशी चले गये ।

गुरु । कब तक आवेंगे ?

शिष्य । अब नहीं आवेंगे ; गृहत्यागी हो गये ।

गुरु । क्यों ?

शिष्य । किस सुखके लिये घर आवेंगे ?

गुरु । दुःख क्या है ?

शिष्य । दुःख ही दुःख ही तो है, और दुःख क्या होगा आपको कहते सुना है कि धर्म्ममें ही सुख है और यह बात सब लोग मानते हैं कि वाचस्पतिजी बड़े भारी धार्म्मिक हैं । किन्तु यह भी सब लोग देखते हैं कि उनके ऐसा दुखी और कोई नहीं है ।

गुरु । या तो उनको कोई दुःख नहीं है या वे धार्म्मिक नहीं हैं ।

शिष्य । उनको कोई दुःख नहीं है ? आप क्या कहते हैं ? वे जन्मसे दरिद्र हैं ; खानेको अन्न नहीं मिलता ; तिस पर उन्हें विषम रोगका कष्ट है ; ऊपरसे घर जल गया । दुःख और किसे कहते हैं ?

गुरु । वे धार्म्मिक नहीं हैं ।

शिष्य। ऐं? क्या आप कहते हैं कि ये दरिद्रता, बीमारी और गृहदाह सब अधर्मके फल हैं?

गुरु। हां।

शिष्य। पूर्व जन्मके?

गुरु। पूर्व जन्मसे क्या मतलब है, इस जन्मके ही अधर्मके फल हैं।

शिष्य। क्या आप यह भी मानते हैं कि इसी जन्मके अधर्म्मसे बीमारी होती है?

गुरु। मैं भी मानता हूं, तुम भी मानते हो। तुम क्या यह बात नहीं मानते कि ठंढ लगने देनेसे सर्दी होती है, कड़ी चीज खानेसे बदहजमी होती है?

शिष्य। ठंढ लगने देना क्या अधर्म्म है?

गुरु। दूसरे धर्म्मोंकी तरह एक शारीरिक धर्म्म है। ठंढ लगना उसका विरोधी है। इससे ठंढ लगाना अधर्म्म है।

शिष्य। यहां धर्म्मके माने hygiene है?

गुरु। जो शारीरिक नियम विरुद्ध है वह शारीरिक अधर्म्म है।

शिष्य। धर्म्म अधर्म्म क्या स्वाभाविक नियमोंका मानना और तोड़ना है?

गुरु। धर्म्म अधर्म्म इतने थोड़ेमें समझनेकी बात नहीं है; ऐसा होता तो धर्म्मतत्त्व वैज्ञानिकोंके हाथमें रखनेसे ही काम चल जाता। अलबत्ते ठंढ लगनेके बारेमें इतना ही कह सकते हैं।

शिष्य। अच्छा यही सही। वाचस्पतिजीकी दरिद्रता किस पापका फल है?

गुरु। पहले दरिद्रताका दुःख अच्छी तरहसे समझना चाहिये। उनको क्या दुःख है?

शिष्य। खानेको नहीं मिलता।

गुरु। यह दुःख उनको नहीं है। क्योंकि वे अगर खानेको न पाते तो कभीके मर गये होते।

शिष्य। मान लीजिये कि परिवार भर मोटे चावलका भात और साग खाकर रहता है।

गुरु। वह शरीरपोषण और रक्षाके लिये यथेष्ट न हो तो अलबत्ते दुःख है। किन्तु यदि शारीरिक और मानसिक पुष्टिके लिये वह यथेष्ट हो तो उससे अधिक न मिलनेसे दुःख मानना धार्म्मिकका लक्षण नहीं है, पेटूका लक्षण है। पेटू आदमी अधार्म्मिक है।

शिष्य। वे फटे पुराने कपड़े पहनते हैं।

गुरु। वस्त्रसे लज्जानिवारण होना ही धार्म्मिकके लिये यथेष्ट है। जाड़ेमें जाड़ा भी न लगने देना चाहिये। सो मोटे कम्बलसे भी होता है। यह क्या वाचस्पतिजीको नहीं मिलता?

शिष्य। मिल सकता है। किन्तु उनकी घरवाली आप जल भर लाती है, बर्तन मांजती है और झाड़ू बहारू करती है।

गुरु। शारीरिक परिश्रम ईश्वरका नियम है। जो उसे नहीं पसन्द करता वह अधार्म्मिक है। मैं यह नहीं कहता कि धनका कुछ काम नहीं है, अथवा जो धन कमाता है वह अधार्म्मिक है। बल्कि जो आदमी समाजमें रहकर धन कमानेके लिये यथा नियम यत्न नहीं करता उसे अधार्म्मिक कहता हूं। मेरे कहनेका मतलब यह है कि साधारणतः जो लोग अपनेको दरिद्रतासे दुखी समझते हैं उनकी कुशिक्षा और कुवासना अर्थात् अधर्म्मका संस्कार ही उनके कष्टका कारण है। अनुचित भोगलालसा बहुतोंके दुःखका कारण है।

शिष्य। पृथिवी पर क्या कोई ऐसा नहीं है जिसके लिये दरिद्रता सचमुच दुःख हो?

गुरु। बहुत हैं, करोड़ों हैं। जो लोग शरीररक्षाके लिये अन्न वस्त्र नहीं पाते, आश्रय नहीं पाते वे ही सच्चे दरिद्र हैं। उनकी दरिद्रता अलबत्ते दुःख है।

शिष्य। वह दरिद्रता भी क्या उनके इसी जन्मके किये हुए अधर्म्मका भोग है?

गुरु। निस्सन्देह।*

* आदमीको जो जो दुःख हैं उनका कारण अपने कर्म्मके सिवा और भी कुछ है। यह बात अन्यत्र कही गयी है।

शिष्य। दरिद्रता किस अधर्म्मका फल है?

गुरु। धन कमाने या अन्न वस्त्र घर आदि दरकारी चीजें संग्रह करने योग्य इसमें कुछ शारीरिक और मानसिक शक्तियां हैं। जिन्होंने उनका भलीभांति अनुशीलन नहीं किया है या जो भलीभांति उनसे काम नहीं लेते वे ही दरिद्र हैं।

शिष्य। तब जान पड़ता है कि आपकी रायमें अपनी अपनी शारीरिक और मानसिकशक्तियोंका अनुशीलन और काममें लाना ही धर्म्म है और उसके विपरीत ही अधर्म्म है।

गुरु। धर्म्मतत्त्व सबसे बड़ा तत्त्व है, वह इतने थोड़ेमें पूरा नहीं हो जाता। किन्तु अगर मान लो कि यही कहा जाय तब?

शिष्य। यह तो विलायती Doctrine of Culture है।

गुरु। Culture विलायती वस्तु नहीं है। यह हिन्दू धर्म्मका सारांश है।

शिष्य। ऐं? Culture शब्दका एक भी प्रतिशब्द तो हमारी किसी देशी भाषामें नहीं है।

गुरु। हम लोग केवल बात ढूंढ़ते हैं, असली चीज नहीं ढूंढ़ते, इसीसे हम लोगोंकी यह दशा है। द्विजातिके चतुराश्रमको क्या समझते हो?

शिष्य। System of Culture?

गुरु। हां; वह भी ऐसा कि जिसे तुम्हारे Matthew Arnold आदि विलायती अनुशीलनवादियोंको समझनेकी शक्ति है या नहीं इसमें सन्देह है। सधवाके पतिदेवताकी उपासनामें, विधवाके ब्रह्मचर्य्यमें, सब व्रतोंके नियमोंमें, तांत्रिक अनुष्ठानोंमें और योगमें अनुशीलन भरा हुआ है। अगर कभी यह तत्त्व तुमको समझा सका तो तुम देखोगे कि श्रीमद्भगवद्गीतामें जो परम प्रसिद्ध अमृतमय धर्म्म कहा है वह इसी अनुशीलनतत्त्वके ऊपर है।

शिष्य। आपकी बात सुनकर मानो कुछ अनुशीलनतत्त्व सीखनेकी इच्छा होती है; किन्तु जहां तक मैंने समझा है पाश्चात्य

अनुशीलनतत्त्व तो नास्तिकोंका मत है। यहां तक कि निरीश्वर कोमतधर्म्म अनुशीलनकी अनुष्ठानपद्धति मात्र ही जान पड़ता है।

गुरु। यह बात बहुत ठीक है। विलायती अनुशीलन तत्त्व निरीश्वर होनेसे अधूरा और कच्चा है अथवा अधूरा या अपरिचित होनेसे ही निरीश्वर है यह बात ठीक ठीक नहीं जान पड़ती। किन्तु हिन्दू परम भक्त हैं, उनका अनुशीलन तत्त्व जगदीश्वरके चरण कमलमें ही समर्पित है।

शिष्य। क्योंकि उसका उद्देश्य मुक्ति है। विलायती अनुशीलन-तत्त्वका उद्देश्य सुख है। यह बात ठीक है कि नहीं ?

गुरु। पहले यह देखो कि सुख और मुक्तिको अलग अलग समझना चाहिये कि नहीं। मुक्ति क्या सुख नहीं है ?

शिष्य। पहले तो मुक्ति सुख नहीं, सुख दुःख मात्रका अभाव है। दूसरे यदि मुक्तिको एक विशेष सुख कहें भी तो सुख मात्र मुक्ति नहीं है। मैं दो मिठाई खानेसे सुखी होता हूं, उससे क्या मुझे मुक्ति मिल जाती है ?

गुरु। तुमने बड़ी उलझनकी बात उठायी है। पहले सुख और मुक्तिको समझना होगा, नहीं तो अनुशीलनतत्त्व समझमें नहीं आवेगा। आज अब समय नहीं है, सन्ध्या हो गयी ; चलो पौधोंको सींचें, कल वह प्रसङ्ग छेड़ा जायगा।

दूसरा अध्याय—सुख क्या है ?

—०*०—

शिष्य। कल आपकी बातोंसे यह समझा कि हमारी शारीरिक और मानसिक शक्तियोंका भलीभांति अनुशीलन न होना ही हमारे दुःखका कारण है। यही न ?

गुरु। हां, तब ?

शिष्य। मैंने कहा था कि वाचस्पतिजीके देहत्यागका एक कारण उनका घर जल जाना है। आग किसके दोषसे कैसे लगी यह कोई नहीं कह सकता; किन्तु यह एक तरहसे निश्चय है कि वाचस्पतिजीके दोषसे नहीं लगी। उनके किस अनुशीलनके बिना घर जल गया?

गुरु। अनुशीलनतत्त्व बिना समझेही यह बात कैसे समझोगे? सुख दुःख मानसिक अवस्था मात्र हैं; सुख दुःखका कोई बाहरी अस्तित्व नहीं है। यह बात तुम मानते हो कि मानसिक अवस्था मात्र ही पूर्ण रूपसे अनुशीलनके अधीन हैं।* और यह भी समझ सकते हो कि सब मानसिक शक्तियोंका, यथा नियम अनुशीलन होनेसे घरका जलना दुःख नहीं मालूम होगा।

शिष्य। अर्थात् वैराग्य आनेसे दुःख नहीं मालूम होगा। क्या गजब है!

गुरु। सचराचर जिसको वैराग्य कहते हैं वह गजब हो सकता है; किन्तु उसकी बात कहां हो रही है?

शिष्य। क्यों नहीं हो रही है? हिन्दूधर्म्मका रिवाज उधर ही है। सांख्यकार कहते हैं कि तीन प्रकारके दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्ति परम पुरुषार्थ है। आगे एक जगह कहते हैं, सुख इतना थोड़ा है कि उसे भी दुःखमें ही शामिल कर लो। अर्थात् सुख दुःख सब छोड़कर जड़पिण्ड बन जाओ। आपका गीतावाला धर्म्म भी यही कहता है, सर्दी गर्मीके सुख दुःखादि झगड़ोंको एक समान समझो। यदि सुखसे सुखी न हुए तो जीनेसे क्या काम है? यदि धर्म्मका उद्देश्य सुख त्यागना हो तो मैं वैसा धर्म्म नहीं चाहता। और अनुशीलनतत्त्वका उद्देश्य यदि वैसा ही धर्म्म हो तो मैं अनुशीलनतत्त्व सुनना नहीं चाहता।

---

* सुख दुःखका बाहरी अस्तित्व न होने पर भी यह मानना पड़ेगा कि दोनों ही बाहरी अस्तित्वयुक्त कारणके अधीन हैं। तौभी यह बात अप्रमाणित नहीं होती कि सुख दुःख रूपी मानसिक अवस्था अनुशीलनके अधीन है।

गुरु। इतना क्रोध करनेकी कोई बात नहीं है। हमारे इस अनुशीलनतत्त्वमें तुम्हें मिठाई खानेका निषेध नहीं होगा बल्कि विधि ही रहेगी। सांख्य दर्शनको धर्म मानकर ग्रहण करनेका तुम्हें उपदेश नहीं देता हूं। वहीं गर्मीके सुख दुःखादि झगड़े सम्बन्धी उपदेशका भी यह अर्थ नहीं है कि मनुष्यको सुख नहीं भोगना चाहिये। उसका क्या अर्थ है सो अभी जाननेकी जरूरत नहीं है। तुमने कल कहा था कि विलायती अनुशीलनका उद्देश्य सुख और भारतवर्षीय अनुशीलनका उद्देश्य मुक्ति है। मैं इसके उत्तरमें कहता हूं कि मुक्ति सुखकी एक विशेष अवस्था है; सुखकी पूरी मात्रा और चरमोत्कर्ष है। अगर यह बात ठीक है तो भारतवर्षीय अनुशीलनका उद्देश्य भी सुख है।

शिष्य। अर्थात् इस लोकमें दुःख और परलोकमें सुख ?

गुरु। नहीं जी इसलोकमें भी सुख और परलोकमें भी सुख।

शिष्य। किन्तु मेरी शङ्काका उत्तर नहीं हुआ। मैंने कहा था कि जीव मुक्त होनेपर सुख दुःखसे परे हो जाता है। सुख रहित अवस्थाको सुख कैसे कहूं ?

गुरु। इस शङ्काके खण्डनके लिये यह जानना दरकार है कि सुख क्या है और मुक्ति क्या है। अभी मुक्तिकी बात रहे; पहले यह देखा जाय कि सुख क्या है।

शिष्य। कहिये।

गुरु। तुमने कल कहा था कि दो मिठाई खानेसे तुम सुखी होते हो। क्यों सुखी होते हो सो समझते हो ?

शिष्य। मेरी भूख बुझ जाती है।

गुरु। मुट्ठीभर सूखा चना चबानेसे भी तो भूख बुझती है। मिठाई खानेमें तुमको जितना सुख मालूम होता है क्या उतना ही सुख सूखा चना चबानेमें भी मालूम होता है ?

शिष्य। नहीं। मिठाई खानेमें अधिक सुख मालूम होता है।

गुरु। क्यों ?

शिष्य। मिठाईके उपादानसे मनुष्यकी जीभका ऐसा कोई नित्य सम्बन्ध है जिससे मिठाई मीठी लगती है।

गुरु। मीठी उसी कारणसे लगती है किन्तु यह तो पूछा नहीं। मिठाई खानेमें तुम्हें सुख क्यों होता है? मिठाससे सबको सुख नहीं मिलता। तुम किसी असली विलायती साहबको मथुराका पेड़ा या खुर्चन आसानी से नहीं खिला सकोगे। और तुम विस्कुट खाकर सुखी नहीं होगे ।"राबिन्सन क्रूसो" ग्रन्थके फ्राइडे नामक जंगली आदमीकी बात याद है? उस खूंखार जंगलीको नमक मिलाकर पकाया हुआ मांस अच्छा नहीं लगता था। यह सब विचित्रता देखकर समझ जाओगे कि तुम्हें मिठाई खानेमें जो सुख मिलता है वह जीभके साथ घी चीनीके नित्य सम्बन्धके कारण नहीं है। तब कैसे?

शिष्य। अभ्याससे।

गुरु। अभ्यास न कहकर अनुशीलन कहो।

शिष्य। अभ्यास और अनुशीलन क्या एक नहीं हैं?

गुरु। एक न होनेसे ही तो कहता हूं कि अभ्यास न कहकर अनुशीलन कहो।

शिष्य। दोनोंमें क्या भेद है?

गुरु। अभी भेद बतानेका समय नहीं है। अनुशीलन-तत्त्वको भलीभांति बिना समझे भेद समझ नहीं सकोगे। तोभी कुछ सुन रखो। जो रोज कुनैन खाता है उसे उसका स्वाद कैसा लगता है? क्या कभी अच्छा लगता है?

शिष्य। शायद कभी अच्छा नहीं लगता; किन्तु धीरे धीरे कड़ुआपन सह लेने योग्य हो जाता है।

गुरु। यही अभ्यासका फल है। अनुशीलन शक्तिके अनुकूल और अभ्यास शक्तिके प्रतिकूल है। अनुशीलनका फल शक्तिका विकास है और अभ्यासका फल शक्तिका विकार। अनुशीलनका परिणाम सुख और अभ्यासका परिणाम सहिष्णुता है। अब मिठाई खानेकी बात याद करो। यहां तुम्हारी चेष्टा स्वाभाविक ही रस ग्रहनेवाली शक्तिके अनुकूल है, इससे तुम्हारी यह शक्ति अनुशीलित हुई है—मिठाई खानेसे तुम सुखी होते हो। यों ही अनुशी-

सनके बदले तुम बिस्कुट कटलेट खाकर भी सुखी हो सकते हो। दूसरी खाने पीनेकी चीजोंके सम्बन्धमें भी ऐसा ही है।

यह हुई एक इंद्रियसुखकी बात। हम लोगोंकी और भी इंद्रियां हैं, उन सबके अनुशीलनसे भी यों ही सुख होता है।

शरीरकी कुछ विशेष शक्तियोंका नाम इन्द्रिय रखा गया है। और भी बहुतसी शारीरिक शक्तियां हैं। जैसे, जिस शक्तिके अनुशीलनसे गाने बजानेके तालका बोध होता है वह भी शारीरिक शक्ति है। अङ्गरेजोंने उसका नाम Muscular Sense रखा है। ऐसी ही और भी शारीरिक शक्तियां हैं। इन सबके अनुशीलनमें भी ऐसा ही सुख है।

इसके सिवा हमारी कुछ मानसिक शक्तियां भी हैं। उनके अनुशीलनका जो फल है वह भी सुख है। यही सुख है, इसके अतिरिक्त और कुछ सुख नहीं है। इसका अभाव दुःख है। समझा ?

शिष्य। नहीं। पहले तो शक्ति शब्दमें ही गड़बड़ है। मान लीजिये कि दया हमारे मनकी एक अवस्था है। उसके अनुशीलनमें सुख है। किन्तु क्या मैं कहूंगा कि दयाशक्तिका अनुशीलन करना होगा ?

गुरु। बेशक शक्ति शब्द गड़बड़ मचानेवाला है। उसके बदले और कोई शब्द आदेश करनेमें मुझे कुछ उज्र नहीं है। पहले बात समझो, पीछे जो नाम रखोगे उसीसे वह समझमें आ जायगी। शरीर एक है और मनभी एक है तौभी इनकी विशेष विशेष क्रियाएं हैं; और इसीसे उन विशेष विशेष क्रियाओंको करनेवाली विशेष विशेष शक्तियोंकी कल्पना करना अवैज्ञानिक नहीं होता। क्योंकि अभी तक उन सब शक्तियोंका मूल एक होने पर भी काममें उनका भेद दिखाई देता है। जो अन्धा है वह देख नहीं सकता किन्तु शब्द सुनता है; जो बहरा है वह शब्द नहीं सुन सकता किन्तु आंखोंसे देखता है। एक आदमी कुछ याद नहीं रख सकता परन्तु वह अच्छी कल्पना करनेवाला कवि निकल आता है। एक कल्पना नहीं कर सकता किन्तु वह बड़ा मेधावी निकल आता

है। किसीमें ईश्वरभक्ति नहीं है परन्तु वह लोगों पर दया करता है; उधर निर्दय आदमीमें भी कुछ कुछ ईश्वरभक्ति देखी जाती है। इसलिये देह और मनकी भिन्न भिन्न शक्ति मानी जा सकती हैं। अलवत्ते स्नेह दया इत्यादिको शक्ति कहना अच्छा नहीं मालूम देता। किन्तु क्या और कोई शब्द है?

शिष्य। बङ्गाली लेखकोंने अङ्गरेजी शब्द facultyका अनुवाद वृत्ति किया है।

गुरु। पातञ्जल आदि दर्शन शास्त्रोंमें वृत्ति शब्दका और ही अर्थ है।

शिष्य। किन्तु वह अर्थ बंगलामें अप्रचलित है। वृत्ति शब्द इसी अर्थमें चल गया है। *

गुरु। तो वृत्तिको ही चलाओ। समझमें आजाना चाहिये। जब तुम लोगोंने morals के मानेमें "नीति" शब्द चलाया है, Science के मानेमें "विज्ञान" चलाया है, तब faculty के मानेमें वृत्ति शब्द चलानेसे कोई दोष नहीं मानेगा।

शिष्य। अब मेरी दूसरी शङ्का सुनिये। आपने कहा है कि वृत्तिका अनुशीलन सुख है किन्तु पानी बिना तृष्णाके अनुशीलनमें दुःख है।

गुरु। ठहरो। वृत्तिके अनुशीलनका फल क्रमशः फुर्ती, उसमें पूर्णावस्था और उसके बाद इच्छित वस्तुके मिलनेसे परितृप्ति है। यह फुर्ती और परितृप्ति दोनों ही सुखके लिये आवश्यक हैं।

शिष्य। यह अगर सुख हो तो मैं समझता हूं कि ऐसा सुख मनुष्यके लिये होना उचित नहीं है।

गुरु। क्यों?

शिष्य। इन्द्रियपरायण व्यक्तिको इन्द्रियवृत्तिके अनुशीलन और परितृप्तिमें सुख है। क्या उसका ऐसा ही उद्देश्य होना चाहिये?

गुरु। नहीं। ऐसा नहीं होना चाहिये। नहीं तो इन्द्रियोंकी

प्रबलतासे मानसिकवृत्तियोंके लय होने और क्रमशः मिट जानेकी सम्भावना है। इस विषयका स्थूल नियम समञ्जस है। इन्द्रियोंका सम्पूर्ण विलोप भी धर्म्मके अनुकूल नहीं है। उनका समञ्जस ही धर्म्मानुकूल है। विलोप और संयममें बड़ा भेद है। यह बात पीछे समझाऊंगा। अभी मोटी बात समझ लो कि वृत्तियोंके अनुशीलनका स्थूल नियम परस्परका समंजस है। समंजस क्या है सो और किसी दिन भलीभांति समझाऊंगा। यहां यह समझाता हूं कि सुखके उपादान क्या हैं।

पहला। शारीरिक और मानसिक वृत्तियोंका अनुशीलन; उससे उत्पन्न हुई फुर्ती, अवस्थाके उपयोगी प्रयोजनसिद्धि और पूर्णता।

दूसरा। उन सबका परस्पर अवस्थायोग्य समंजस।

तीसरा। वैसी अवस्थामें कार्य्य पूरा करके उन सबकी परितृप्ति।

इसके सिवा और किसी प्रकारका सुख नहीं है। मैं और कभी तुम्हें समझा सकता हूं कि योगियोंको योगसे जो सुख मिलता है वह भी इसीमें शामिल है। इसका अभाव ही दुःख है। और कभी तुम्हें यह भी समझा सकता हूं कि वाचस्पतिजीको घर जल जानेका जो दुःख है अथवा उनसे भी अभागे आदमीको पुत्रशोकका जो दुःख होता है वह भी यही दुःख है। मेरी और बातें सुनने पर तुम आप भी समझ सकोगे, समझाना नहीं पड़ेगा।

शिष्य। मान लीजिये कि मैं उसे समझ गया; तौभी मुख्य बात अभी तक नहीं समझी। बात यह होती थी कि मैंने कहा था, वाचस्पतिजी धार्म्मिक व्यक्ति हैं तौभी दुखी हैं। आपने कहा कि वे जब दुखी हैं तब कभी धार्म्मिक नहीं हैं।* आपने अपनी

---

* पूर्वजोंके किये हुए कर्म्मका फलाफल छोड़कर ऐसा कहना पड़ता है, देशकालपात्रभेद छोड़कर भी ऐसा कहा जा सकता है। उन सब बातोंकी मीमांसामें पड़कर धर्म्मतत्त्व जटिल करनेकी यहां दरकार नहीं है।

वातके प्रमाणमें समझाया कि सुख क्या है और सुखको जानकर मैं समझ गया कि दुःख क्या है। अच्छा, मान लिया कि वाचस्पतिजी सच्चे दुखी नहीं हैं, अथवा अगर उन्हें दुखी कहें तो वे अपने दोषसे दुखी हैं ; अर्थात् अपनी शारीरिक या मानसिक वृत्तियोंके अनुशीलनमें त्रुटि करनेसे ही वे दुःख पाते हैं। किन्तु इससे यह नहीं समझमें आया कि वे अधार्म्मिक हैं। यह तो कुछ समझमें ही नहीं आया कि अनुशीलन तत्त्वके साथ धर्म्माधर्म्मका सम्बन्ध क्या है। अगर कुछ समझ सका हूं तो यही कि अनुशीलन ही धर्म्म है।

गुरु। इस समय यही समझ लो। इसके सिवा और एक कठिन बात है उसको समझाये बिना समझ नहीं सकोगे कि अनुशीलनके साथ धर्म्मका क्या सम्बन्ध है। किन्तु वह सबके अन्तमें कहनी पड़ेगी ; क्योंकि अनुशीलनको भलीभांति समझे बिना तुम वह तत्त्व ग्रहण नहीं कर सकोगे।

शिष्य। अनुशीलन धर्म्म है ? यह तो नयी बात सुनी !

गुरु। नयी नहीं है। पुरानोंका संस्कार मात्र है।

तीसरा अध्याय—धर्म्म क्या है ?

शिष्य। अनुशीलनको धर्म्म कह सकते हैं यह बात समझमें नहीं आती। अनुशीलनका फल सुख है ; क्या धर्म्मका फल भी सुख है ?

गुरु। नहीं तो क्या धर्म्मका फल दुःख है ? यदि ऐसा होता तो मैं संसारके सब लोगोंको धर्म्म छोड़ देनेकी सलाह देता।

शिष्य। धर्म्मका फल परलोकमें सुख हो सकता है किन्तु, क्या इस लोकमें भी सुख है ?

गुरु। तब तुम्हें समझाया क्या ? धर्म्मका फल इस लोकमें सुख है और परलोक अगर है तो परलोकमें भी सुख है। धर्म्म

सुखका एक मात्र उपाय है। इहकाल या परकालमें दूसरा कोई उपाय नहीं है।

शिष्य। तौभी गड़बड़ नहीं मिटती। हम लोग कहते हैं, कृस्तानी धर्म्म, बौद्ध धर्म्म, वैष्णव धर्म्म। इसके बदले क्या कृस्तानी अनुशीलन, बौद्ध अनुशीलन, वैष्णव अनुशीलन कहेंगे ?

गुरु। धर्म्म शब्दका अर्थ उलटकर तुमने गड़बड़ मचादी। धर्म्म शब्दका अनेक अर्थोंमें व्यवहार किया जाता है। दूसरे अर्थोंसे हमें मतलब नहीं है।* तुमने जिस अर्थमें इस समय धर्म्म शब्दका व्यवहार किया है वह अङ्गरेजी Religion शब्दका ताजा तरजमा मात्र है, देशी चीज नहीं है।

शिष्य। अच्छा यही समझाइये कि Religion क्या है ?

गुरु। क्यों ? Religion पाश्चात्य शब्द है; पाश्चात्य पण्डितोंने इसको तरह तरहसे समझाया है; किसीसे किसीकी राय नहीं मिलती।†

शिष्य। फिर क्या रिलीजनमें ऐसा कोई नित्य पदार्थ नहीं है जो सब रिलीजनोंमें पाया जाता हो ?

गुरु। है। किन्तु उस नित्य पदार्थको रिलीजन कहनेकी दरकार नहीं है। उसको धर्म्म कहनेसे कोई गड़बड़ नहीं रहेगी।

शिष्य। सो कैसे ?

गुरु। सब मनुष्य जातिके लिये—कृस्तान हो चाहे बौद्ध, हिन्दू हो चाहे मुसलमान—सबके लिये जो धर्म्म है।

शिष्य। कैसे उसका पता मिले ?

गुरु। मनुष्यका धर्म्म क्या है, इसकी खोज करनेसे ही पता मिल सकता है।

शिष्य। यही तो पूछना है।

---

* क चिन्हित क्रोड़पत्र देखो।

† ख चिन्हित क्रोड़पत्र देखो।

गुरु। जिसके होनेसे मनुष्य मनुष्य है, जिसके न होनेसे मनुष्य मनुष्य नहीं है वही मनुष्यका धर्म्म है।

शिष्य। उसका क्या नाम है?

गुरु। मनुष्यत्व।

चौथा अध्याय—मनुष्यत्व क्या है?

शिष्य। कल आपने आज्ञा की थी कि जिसके होनेसे मनुष्य मनुष्य है और न होनेसे मनुष्य मनुष्य नहीं है वही मनुष्यका धर्म्म है। यह कहना केवल बातका पेंच जान पड़ता है। क्योंकि मनुष्य पैदा होनेसे ही मनुष्य है और मरनेके बाद ही मनुष्य नहीं है, केवल राख या धूल है। इसलिये मैं कहूंगा कि जीवन होनेसे ही मनुष्य मनुष्य है, नहीं तो मनुष्य मनुष्य नहीं है। शायद यह आपका मतलब नहीं है।

गुरु। दूध पीते बच्चेके भी जीवन है; वह क्या मनुष्य है?

शिष्य। क्यों नहीं? केवल उमर थोड़ी है। वह छोटा मनुष्य है।

गुरु। मनुष्य जो कुछ कर सकता है क्या वह सब वह भी कर सकता है?

शिष्य। कौनसा काम है जो मनुष्य मात्रसे ही हो सकता हो? वह जो कहारके कंधे पर जलकी बहङ्गी है वह मनुष्य ढोता है। इस्लिङ्गन् या शिडवलकी रणजय मनुष्यने की थी। शिवर या कुमारसम्भव मनुष्यने बनाया है, आप मनुष्य हैं। क्या आप यह सब कर सकते हैं? अथवा और किसी मनुष्यका नाम बता सकते हैं जो वह सब काम कर सकता हो?

गुरु। मैं नहीं कर सकता। मैं ऐसे किसी मनुष्यका नाम भी नहीं बता सकता जो यह सब कर सकता हो। परन्तु मैं यह माननेको तय्यार नहीं हूं कि कभी ऐसा कोई मनुष्य नहीं जन्मेगा जो केवल यह सब काम नहीं कर सकेगा अथवा ऐसा कोई मनुष्य

कभी नहीं हुआ जो मनुष्यसे होनेवाले सब काम अकेला नहीं कर सकता था।

शिष्य। अगर कर सकता था तो किया क्यों नहीं?

गुरु। किया नहीं अपनी क्षमताके अनुशीलन बिना।

शिष्य। इससे भी कुछ नहीं समझ सका कि क्या होनेसे आदमी आदमी होता है। अपनी शक्तिके अनुशीलनसे? जंगली आदमीको, जिसकी किसी शक्तिका अनुशीलन नहीं हुआ, क्या आप मनुष्य नहीं कहेंगे?

गुरु। ऐसा कोई जंगली नहीं पाओगे जिसकी कोई शक्ति अनुशीलित न हुई हो। पत्थर युगके मनुष्यकी भी कुछ शक्तियां अनुशीलित हुई थीं; नहीं तो वे पत्थरके हथियार नहीं बना सकते। परन्तु बात यह है कि उनको मनुष्य कहेंगे कि नहीं? इसका उत्तर देनेसे पहले समझना है कि वृक्ष क्या है। मनुष्यत्वको समझनेसे पहले समझो कि वृक्षत्व क्या है। यह एक घास देखते हो, और वह बड़का वृक्ष है, क्या दोनों एक जातीय हैं?

शिष्य। हां एक तरहसे एक जातीय हैं। दोनों ही उद्भिद् हैं।

गुरु। दोनोंको वृक्ष कहोगे?

शिष्य। नहीं बड़को वृक्ष कहूंगा, घास तृण है।

गुरु। यह भेद क्यों है?

शिष्य। काण्ड, शाखा, पल्लव, फूल और फल युक्त होनेसे वृक्ष कहलाता है। वटमें ये सब हैं, घासमें नहीं हैं।

गुरु। घासमें भी सब हैं, अलबत्ते वे छोटे हैं, अधूरे हैं। घासको वृक्ष नहीं कहोगे?

शिष्य। घास भी कहीं वृक्ष कहलाती है?

गुरु। अगर घासको वृक्ष नहीं कहते तो जिस मनुष्यकी सब वृत्तियां अनुशीलित होकर पूर्णताको प्राप्त नहीं हुई हैं उसको भी मनुष्य नहीं कह सकते। घासमें जिस तरह उद्भिदत्व है उसी तरह एक हटेण्टाट या चिपेवामें भी मनुष्यत्व है। किन्तु जिस उद्भि-

त्वको वृक्षत्व कहते हैं वह जैसे घासमें नहीं है, वैसे ही जो मनुष्यत्व मनुष्य धर्म्म है हटेन्टाट या चिपेवामें वह मनुष्यत्व नहीं है।

शिष्य। वंश या बीज क्या उसका एक प्रधान कारण नहीं है?

गुरु। यह बात अभी रहने दो। जो अमिश्र (बेमिलावटी) है उसे ही समझो। पीछे जो विमिश्र (मिलावटी) है उसे समझना। वृक्षत्वका उदाहरण मत छोड़ो, इसीसे समझोगे। यह जो बांस देखते हो, उसे वृक्ष कहोगे?

शिष्य। शायद नहीं कहूंगा। उसमें काण्ड, शाखा और पत्ते हैं, परन्तु उसमें फूल फल नहीं लगते, वह सर्वाङ्ग पूर्ण नहीं है, उसको वृक्ष नहीं कहूंगा।

गुरु। तुम नादान हो। पचास साठ वर्षों पर एक एक बार उसमें फूल होते हैं। फूलसे चावलके समान फल मिलते हैं। चावलकी तरह उसका भात भी बनता है।

शिष्य। तो बांसको वृक्ष कहूंगा।

गुरु। मगर बांस तृण मात्र है। एक घास उखाड़कर बांससे मिलाओ, दोनोंमें मेल खायगा। उद्भिज्जतत्त्ववित् पण्डित भी बांसकी गणना तृणकी श्रेणीमें कर गये हैं। इसलिये देखो कि स्फूर्तिके कारण तृण तृणमें कितना भेद है। जिस अवस्थामें मनुष्यकी सर्वाङ्गीन पूर्णता हो जाती है उसी अवस्थाको मनुष्यत्व कहता हूं।

शिष्य। ऐसी पूर्णता क्या धर्म्मके हाथमें है?

गुरु। उद्भिदके यों उत्कर्षकी पूर्णता प्राप्ति कुछ चेष्टाओंका फल है, आम बातचीतमें उसे कर्षण या खेती कहते हैं। यह कर्षण कहीं मनुष्य द्वारा होता है और कहीं प्रकृति द्वारा। एक मामूली उदाहरणसे समझो। तुमसे अगर कोई देवता आकर कहें कि वृक्ष और घास दोनोंको एकत्र पृथिवीपर नहीं रहने देंगे; या तो सब वृक्षोंको नष्ट कर डालेंगे या सब तृणोंको। इस दशामें तुम क्या चाहोगे? वृक्षको रखना चाहोगे या घासको?

शिष्य। निस्सन्देह वृक्षको रखूंगा। घास न मिलनेसे गाय

बैलोंको कुछ कष्ट होगा, किन्तु तृण न होनेसे आम, कटहल आदि बढ़िया बढ़िया फल नहीं मिलेंगे।

गुरु। मूर्ख! तृण जातिका संहार होनेसे अन्न बिना मर जाओगे। नहीं जानते हो कि धान और गेहूं भी तृण जातीय हैं। यह जो दिखाई देता है उसे अच्छी तरह देख आओ। धानकी खेती होनेसे पहले धान भी ऐसा ही था। केवल कर्षणसे जीवन-दायिनी लक्ष्मीके समान हुआ है। गेहूंका भी यही हाल है। जिस गोभीकी तरकारीसे ढेरका ढेर अन्न उदरस्थ कर जाते हो यह भी पहली दशामें समुद्र तीरका कड़वा उद्भिद थी, कर्षणसे यह इस अवस्थाको प्राप्त हुई है। उद्भिदके लिये जैसे कर्षण है वैसा ही मनुष्यके लिये अपनी वृत्तियोंका अनुशीलन है; इसीसे अङ्गरेजीमें दोनोंका नाम Culture है। इसी लिये कहा है कि The Substance of Religion is Culture—"मानववृत्तिका उत्कर्षण ही धर्म्म है।"

शिष्य। जो हो; मोटी बात भी कुछ समझमें नहीं आयी। मनुष्यकी सर्वाङ्गीण पूर्णता किसे कहते हैं?

गुरु। अङ्कुरका परिणाम महावृक्ष है—अङ्कुरसे महावृक्षतक बनता है। मट्टी खोदो एक न एक बहुत छोटा, प्रायः न दिखाई देने योग्य अङ्कुर देखोगे। परिणाममें वही अङ्कुर इस विशाल वृक्षके समान वृक्ष होगा। किन्तु इसके लिये उसका कर्षण (जिसको खेती कहते हैं) चाहिये। सरस मट्टी चाहिये, जल न मिलनेसे नहीं होगा। धूप चाहिये, इससे वृक्षकी छायामें रहनेसे नहीं होगा। जो सामग्री वृक्षशरीरके पोषणके लिये दरकार है उसका मट्टीमें होना जरूरी है। विशेष विशेष वृक्षके लिये मट्टीमें खाद देनी चाहिये। घेर चाहिये। इत्यादि। तभी अङ्कुर सुवृक्ष होगा। मनुष्यके लिये भी वैसाही है। विहित कर्षण अर्थात् अनुशीलनसे यह असली मनुष्यत्व प्राप्त होगा। परिणाममें सर्वगुणयुक्त, सर्वसुख-सम्पन्न मनुष्य हो सकेगा। यही मनुष्यकी पूर्णता या परिणति है।

शिष्य। कुछ नहीं समझा। क्या सब आदमी सर्वसुखयुक्त, सर्वगुणयुक्त हो सकते हैं?

गुरु । कभी हो सकेंगे कि नहीं यह बात इस समय उठानेकी दरकार नहीं है। उसमें बड़े बड़े विचार हैं। अलबत्ते यह बात मान लूंगा कि अबतक कोई हुआ है यह बात हम नहीं जानते, और अचानक किसीके होनेकी भी सम्भावना नहीं है। परन्तु मैं जिस धर्म्मकी व्याख्या करता हूं उसपर नियमानुसार चलनेसे यही होगा कि लोग सब गुण पानेका यत्न करनेसे बहुत कुछ गुण पा सकेंगे; सब सुख पानेकी चेष्टा करनेसे बहुत कुछ सुख पा सकेंगे।

शिष्य । मुझे क्षमा कीजिये, मनुष्यकी सर्वाङ्गीण पूर्णता किसे कहते हैं सो अभीतक अच्छी तरह नहीं समझ सका।

गुरु । समझनेकी चेष्टा करो। मनुष्यके दो अङ्ग हैं, एक शरीर, दूसरा मन। शरीरके फिर कई प्रत्यङ्ग हैं; यथा,—हाथ, पैर आदि कर्म्मेन्द्रिय; आंख, कान आदि ज्ञानेन्द्रिय; मगज, कलेजा, वायुकोष, अंतड़ी आदि जीवनसञ्चालक प्रत्यङ्ग; हड्डी, मज्जा, मेद, मांस, रक्त आदि शारीरिक उपादान और भूख, प्यास आदि शारीरिक वृत्तियां हैं। इन सबकी उचित पूर्णता चाहिये। और मनके भी कई प्रत्यङ्ग—

शिष्य । मनकी बात पीछे सुनूंगा; अभी शारीरिक पूर्णताको भलीभांति समझाइये। शारीरिक प्रत्यङ्गोंकी क्योंकर पूर्णता वा परिणति होगी! बच्चेका वह छोटासा दुर्बल हाथ अवस्थाके साथ साथ आप ही बढ़ेगा और बलवान होगा। इसके सिवा और क्या चाहिये?

सके। तो भी वह हाथ अवश और निकम्मा हो जायगा। और कुछ न हो तो इतना अवश्य होगा कि हाथ चलानेमें जो तेजी जिन्दगीमें दरकार है वह उसको कभी नहीं आवेगी। ऊर्द्धबाहु सन्यासियोंका हाथ देखा है कि नहीं?

शिष्य। समझा कि अनुशीलन गुणसे बच्चेका कोमल छोटा हाथ पूरी उमरके मनुष्यका विस्तार, बल और तेजी पाता है। किन्तु यह तो सबका आपसे आप होता है। और चाहिये क्या?

गुरु। तुम अपने हाथसे इस बागके मालीका हाथ मिलान करके देखो। तुम अपने हाथकी उंगलियोंमें अनुशीलनसे वह पूर्णता लाये हो कि अभी पांच मिनटमें तुम दो पन्ने कागज लिख डालोगे, किन्तु वह माली दस दिन चेष्टा करने पर भी तुम्हारी तरह एक "क" नहीं लिख सकेगा। तुम विना सोचे विचारे बेधड़क जहां जिस आकारका जो अक्षर दरकार है वह लिखते जाते हो, यह उसके लिये बड़ा ही आश्चर्यजनक है; उसकी अकलमें यह बात नहीं आ सकती। बहुतेरे लिखना जानते हैं, इसीसे सभ्य समाजमें लिपिविद्या लोगोंको आश्चर्यदायक अनुशीलन नहीं मालूम होती। किन्तु सच पूछो तो यह लिपिविद्या जादूसे भी बढ़कर अनुशीलन-फल है। देखो, एक शब्द लिखनेके लिये—मान लो कि यही अनु-शीलन शब्द लिखनेके लिये—पहले उसका विश्लेषण करके उसके उपादानवाले अक्षरोंको स्थिर करना होगा, विश्लेषणसे समझना होगा अ, न, उ, श, ई, ल, न। इनको पहले केवल कानमें लाना होगा, फिर हरएकको आंखोंसे देखने योग्य अवयव समझकर मनमें लाना होगा। एक एक अङ्क याद आवेगा, फिर एक एकको कागज पर लिखना होगा। पर तुम इतनी जल्दी लिख लेते हो कि मालूम होता है मानो तुम मनमें कुछ सोचते नहीं हो। अनुशीलन गुणसे कितने ही ऐसे असाधारण कौशलमें कुशल हैं। अनुशीलनसे उत्पन्न और भी भेद इस मालीकी तुलनामें ही देखो। तुम जिस तरह पांच मिनटमें दो पन्ने कागज लिख जाओगे वैसे ही माली पांच मिनटमें एक लट्ठा जमीन खोद डालेगा। तुम दो घण्टोंमें क्या, दो पहरोंमें भी उतनी जमीन नहीं खोद सकोगे।

इस विषयमें तुम्हारा हाथ भली भांति चालित अर्थात् अनुशीलित नहीं हुआ है, समुचित पूर्णता प्राप्त नहीं हुआ है। इसलिये तुम्हारा और मालीका दोनोंके हाथ कुछ कुछ अपूर्ण हैं; उन्हे सर्वाङ्गीण पूर्णता प्राप्त नहीं हुई है। अब किसी शिक्षित गवैयेके साथ तुम अपनी तुलना करके देखो। शायद बचपनमें तुम्हारे और गवैयेके गलेमें विशेष भेद नहीं रहा होगा; अनेक गवैयोंका गला स्वभावतः अच्छा नहीं होता। किन्तु अनुशीलन गुणसे गवैया सुकण्ठ हुआ है, उसके गलेकी सर्वाङ्गीण पूर्णता हुई है। और देखो, बताओ तुम कै कोस पैदल चल सकते हो?

शिष्य। मैं बहुत नहीं चल सकता, बहुत हो तो एक कोस चल सकता हूं।

गुरु। तुम्हारे पैरोंमें सर्वाङ्गीण पूर्णता नहीं हुई है। देखो, तुम्हारे हाथ, पैर और गला तीनोंकी आपसे आप पुष्टि और परिणति हुई है, किन्तु एककी भी सर्वाङ्गीण पूर्णता नहीं है। इसी तरह और सब शारीरिक प्रत्यङ्गोंके विषयमें भी जान लो; शारीरिक प्रत्यङ्ग मात्रमें सर्वाङ्गीण पूर्णता आये विना नहीं कहा जा सकता कि शारीरिक सर्वाङ्गीण पूर्णता हुई है; क्योंकि अधूरे अंगोंकी पूर्णता ही सोलहो आने पूर्णता है। एक आनेसे आधा पैसा कम होनेसे समूचे रुपयेमें कमी आ जाती है। जैसा शरीरके विषयमें समझाया वैसा ही मनके विषयमें भी जानना। मनके भी बहुतसे प्रत्यङ्ग हैं। इन्हींको वृत्ति कहा है। कुछका काम ज्ञानोपार्जन और विचार है। कुछका काम काममें जी लगाना है; यथा भक्ति, प्रीति, दया आदि। और कुछका काम आनन्दका उपभोग, हृदयमें सौन्दर्य ग्रहण, रस ग्रहण, चित्त विनोदन है। इन तीन तरहकी मानसिक वृत्तियोंकी पुष्टि और संपूर्ण विकासही मानसिक सर्वांगीण पूर्णता है।

शिष्य। अर्थात् ज्ञानमें पाण्डित्य, विचारमें दक्षता, कार्य्यमें तत्परता, चित्तमें धर्म्मात्मता और सुरसमें रसिकता होने पर मानसिक सर्वाङ्गीण पूर्णता होगी। उसके बाद शारीरिक सर्वाङ्गीण पूर्णता है अर्थात् शरीर बलिष्ठ, पुष्ट और सब प्रकार शारीरिक क्रियाओंमें

मनुर होना चाहिये। कृष्ण, अर्जुन और राम इनलकी सिवा और कोई ऐसा हुआ था कि नहीं सो मालूम नहीं।

गुरु। यह बात मानी नहीं जा सकती कि जो लोग मनुष्य जातिमें सर्वोत्तम हैं, वे चेष्टा करने पर सम्पूर्ण रूपसे मनुष्यत्व प्राप्त नहीं कर सकेंगे। मुझे अब भी भरोसा है कि युगान्तरमें जब मनुष्य जाति असली उन्नति करेगी तब अनेक मनुष्य इस आदर्शके होंगे। संस्कृत ग्रन्थोंमें प्राचीन भारतवर्षके क्षत्रिय राजाओंका जो वर्णन है उससे पाया जाता है कि उन राजाओंने पूर्ण रूपसे मनुष्यत्व प्राप्त किया था। इसमें सन्देह नहीं कि उक्त वर्णनमें बहुत कुछ इतिहास पुराणादिके रचयिताओंकी कपोल-कल्पना है, किन्तु ऐसा राजगुण वर्णन जहां सर्वत्र हो, वहां यही अनुमान होता है कि ऐसा एक आदर्श उस समयके ब्राह्मण और क्षत्रियोंके सामने था। मैं भी वैसा आदर्श तुम्हारे सामने रखता हूं। जो जैसा होना चाहता है उसके सामने उसका सर्वाङ्गसम्पन्न आदर्श चाहिये। वह ठीक आदर्शके समान चाहे न हो, किन्तु उसके आसपास पहुंचेगा। सोलह आने क्या हैं, यह जाने विना आठ आने पानेकी कोई इच्छा नहीं करता। जो बालक यह नहीं जानता कि रुपयेमें सोलह आने होते हैं वह उस रुपयेके बदले चार पैसे पाकर ही सन्तुष्ट हो सकता है।

शिष्य। वैसा आदर्श कहां पायें? वैसा मनुष्य तो दिखाई नहीं देता।

गुरु। मनुष्य न हो, ईश्वर हैं। ईश्वर ही सब गुणोंकी सर्वाङ्गीण स्फूर्त्ति और चरम पूर्णताके एकमात्र उदाहरण हैं। इसीसे वेदान्तके निर्गुण ईश्वरमें धर्म्म सम्यक् धर्म्मत्व प्राप्त नहीं होता, क्योंकि जो निर्गुण हैं वे हमारे आदर्श नहीं हो सकते। अद्वैतवादियोंके "एकमेवाद्वितीयम्" चैतन्य अथवा जिसको हर्बर्ट स्पेंसरने "Inscrutable Power in Nature" कह कर ईश्वरके स्थानमें स्थापित किया है अर्थात् जो केवल दार्शनिक या वैज्ञानिक ईश्वर हैं उनकी उपासनासे धर्म्म सम्पूर्ण नहीं होता। हमारे इतिहास और पुराणोंमें कहे हुए या क्रिस्तानी धर्म्म पुस्तकोंमें बताये

हुए सगुण ईश्वरकी उपासना ही धर्म्मका मूल है। क्योंकि वे ही हमारे आदर्श हो सकते हैं। जिनको "Impersonal God" कहते हैं उनकी उपासना निष्फल है; जिनको "Personal God" कहते हैं उनकी उपासना सफल है।

शिष्य। माना कि सगुण ईश्वरको आदर्श स्वरूप मानना होगा, किन्तु उपासनाकी दरकार क्या है?

गुरु। ईश्वरको हम नहीं देखते। उनको देख देख कर चलनेकी सम्भावना नहीं है। केवल उनको हम मनमें सोच सकते हैं। वह सोचना ही उपासना है। अवश्य ही बेगार टालनेकी तरह सोचनेसे कुछ फल नहीं होता। सन्ध्योपासन करनेमें केवल बुदबुदानेसे कुछ लाभ नहीं है। उनके सब गुणोंसे युक्त विशुद्ध स्वभावके ऊपर चित्तको स्थिर करना होगा। भक्तिभावसे उनका हृदयमें ध्यान करना होगा। प्रीति सहित हृदयको उनके सामने करना होगा। मनमें यह प्रतिज्ञा करनी होगी कि उनके स्वभावके आदर्शपर हमारा स्वभाव बने। तभी उस पवित्र चरित्रकी विमल ज्योति हमारे चरित्र पर पड़ेगी। उनकी निर्म्मलताके समान निर्म्मलता, उनकी शक्तिके अनुकारी सर्वत्र मङ्गलमय शक्तिकी कामना करनी होगी। उनको सदा अपने पास देखना होगा, उनके स्वभावसे अपना स्वभाव मिलानेकी चेष्टा करनी होगी। अर्थात् उनके सामीप्य, सालोक्य, सारूप्य और सायुज्यकी कामना करनी होगी। तभी हम क्रमसे ईश्वरके निकट होंगे। आर्य्य ऋषि विश्वास करते थे कि तभी हम क्रमसे सारूप्य और सायुज्य पायेंगे। ईश्वरके साथ एक हो जायंगे। ईश्वरमें ही लीन हो जायंगे। इसीको मोक्ष कहते हैं। मोक्ष और कुछ नहीं है, वह ऐश्वरिक आदर्शके स्वभावका पा जाना है। उसके पानेसे ही सब दुःखोंसे मुक्ति हो जाती है और हम सब सुखोंके अधिकारी हो जाते हैं।

और सुधार उपासना पद्धति एक ओर आत्मकष्ट और दूसरी ओर मजाककी वस्तु बन गयी है।

शिष्य। अब आप मुझे एक और बात समझाइये। मनु-ष्योंमें असली मनुष्यत्वका अर्थात् सर्वाङ्गपूर्ण स्वभावका आदर्श नहीं है। इसलिये ईश्वरका ध्यान करना होगा। किन्तु ईश्वर अनन्त स्वभाव है। हम क्षुद्र स्वभाव हैं। उनके गुण संख्यामें अनन्त हैं, विस्तारमें भी अनन्त हैं। जो क्षुद्र है उसका आदर्श अनन्त कैसे होगा? क्या समुद्रके आदर्श पर नाला खोदा जा सकता है? या आकाशके आदर्श पर चंदवा लटकाया जा सकता है?

गुरु। इसीलिये धर्मका इतिहास दरकार है। धर्मेतिहा-समें (Religious History) सच्चे धार्म्मिकोंका चरित्र लिखा रहता है। यह सत्य है कि अनन्त-स्वभाव ईश्वर उपासककी पहली दशामें आदर्श नहीं हो सकते, किन्तु ईश्वरका अनुकारी मनुष्य अर्थात् जो गुणकी अधिकतासे ईश्वर समझे जायं, अथवा जो मानव रूपमें ईश्वर समझे जायं वे ही वह वाञ्छनीय आदर्श हो सकते हैं। इसीसे एक समयमें हजरत ईसा ईसाइयोंका आदर्श थे, शाक्यसिंह बौद्धोंका आदर्श थे। किन्तु ऐसे धर्म परिवर्द्धक आदर्श जितने हिन्दू-शास्त्रोंमें हैं उतने पृथिवीके और किसी धर्म्मग्रन्थोंमें नहीं हैं, संसारकी किसी भी जातिमें प्रसिद्ध नहीं हैं। जनकादि राजर्षि, नारदादि दे-वर्षि, वशिष्ठादि ब्रह्मर्षि, सभी अनुशीलनके चरम आदर्श हैं। इनके अतिरिक्त श्रीरामचन्द्र, युधिष्ठिर, अर्जुन, लक्ष्मण, देवव्रत भीष्म आदि क्षत्रिय गण और भी सम्पूर्णतामास आदर्श थे। ईसा और शाक्य सिंह केवल उदासीन कौपीनधारी ममताशून्य धर्म्मवेत्ता हैं। किन्तु ये लोग वैसे नहीं हैं। ये सब गुणोंसे युक्त हैं। इन लो-गोंमें ही सब वृत्तियां सब प्रकारसे चमक उठी हैं। ये लोग सिंहा-सन पर बैठकर भी उदासीन हैं; धनुष धारण करके भी धर्म्मवेत्ता हैं; राजा होकर भी पण्डित हैं; शक्तिमान होकर सब लोगों पर प्रेम रखते हैं। किन्तु इन सब आदर्शोंके ऊपर हिन्दुओंका और एक आदर्श है, जिनके सामने और सब आदर्श छोटे हो जाते हैं—

युधिष्ठिरने जिनसे धर्म्म सीखा, स्वयं अर्जुन जिनके शिष्य हुए, राम और लक्ष्मण जिनके अंश मात्र हैं, जिनके समान महामहिमामय चरित्र कभी मनुष्य भाषामें गाया नहीं गया उन्हीं कृष्णकी उपासनामें आओ, आज हम तुम्हें दीक्षित करें।

शिष्य। क्या? कृष्ण!

गुरु। तुम लोग केवल जयदेवके कृष्णको या रासलीलाके कृष्णको जानते हो, इसीसे चौंकते हो। उसका भी पूरा अर्थ नहीं समझते। उसके पीछे ईश्वरके सब गुणोंसे युक्त जो कृष्ण चरित्र कहा है उसे कुछ भी नहीं समझते। उनकी सब शारीरिक वृत्तियां सब प्रकारसे उत्कर्ष पाकर अनुभव न करने योग्य सुन्दरता और अपरिमीन बलका आधार बन गयी थी। उनकी सब मानसिक वृत्तियां भी वैसी ही उत्कर्ष पाकर अलौकिक विद्या, शिक्षा, तेजस्विता और ज्ञानके रूपमें आ गयी थीं और प्रीतिवृत्ति भी उसीके अनुसार पुष्ट बन जानेसे वे सब लोगोंके सब तरहके हितमें रत हुए। इसीसे उन्होंने कहा है—

परित्राणाय साधूनां विनाशायच दुष्कृताम्।
धर्म्म संरक्षणार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

जिन्होंने बाहुबलसे दुष्टोंका दमन किया है, बुद्धिबलसे भारतवर्षको एक बनाया है, ज्ञान बलसे अपूर्व निष्काम धर्म्मका प्रचार किया है, उनको मैं नमस्कार करता हूं। जिन्होंने केवल प्रेममय होनेके कारण निष्काम होकर ये सब मनुष्योंके दुष्कर कार्य्य किये हैं, जो बाहुबलसे सर्वजित हुए और दूसरेका साम्राज्य स्थापन करनेवाले होकर भी स्वयं सिंहासन पर नहीं बैठे, जिन्होंने शिशुपालको भी अपराध क्षमा करके क्षमा गुणका प्रचार करनेके बाद दण्ड देना उचित समझ कर ही उसे दण्ड दिया था, जिन्होंने इस वेदप्रधान देशमें वेदप्रधान कालमें कहा था—"वेदमें धर्म्म नहीं है—धर्म्म लोकहितमें है" वे ईश्वर हों चाहे न हों मैं उनको नमस्कार करता हूं। जो एक आधार में शाक्यसिंह, ईसा, मुहम्मद और रामचन्द्र थे, जो सब बलोंके आधार, सब गुणोंके आधार, सब धर्म्मोंके जाननेवाले, सर्वत्र

प्रेममय थे, वे ईश्वर हों चाहे न हों मैं उनको नमस्कार करता हूं—

नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः।
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते॥

पांचवां अध्याय—अनुशीलन।

शिष्य। आज शेष बातें सुननेकी इच्छा है।

गुरु। सब बातें ही शेषमें शामिल हैं। अब तक हमें केवल दो बातें मिली हैं। (१) मनुष्यका सुख मनुष्यत्वमें है और (२) यह मनुष्यत्व सब वृत्तियोंकी उचित तेजस्विता, पूर्णता और सामञ्जस्यसे लाभ होता है। अब जरा यह विचारना चाहिये कि ये वृत्तियां कैसी हैं।

वृत्तियोंको साधारणतः दो भागोंमें बांट सकते हैं—(१) शारीरिक और (२) मानसिक। मानसिक वृत्तियोंमेंसे कुछ ज्ञान उपार्जन कराती हैं, कुछ काम कराती हैं या काममें रुचि पैदा कराती हैं और कुछ ज्ञान उपार्जन नहीं करातीं, किसी विशेष कामको भी नहीं करातीं, केवल आनन्द लूटवाती हैं। जिनका उद्देश्य ज्ञान है उन्हें ज्ञानार्ज्जनी कहूंगा। जिनके झुकानेसे हम काममें जी लगाते हैं या लगा सकते हैं उनको कार्य्यकारिणी वृत्ति कहूंगा। और जो केवल आनन्दका अनुभव कराती हैं उनको आह्लादिनी या चित्तरञ्जिनी वृत्ति कहो। तीन प्रकारकी वृत्तियोंके फल तीन प्रकारके ज्ञान, कर्म्म और आनन्द हैं। सच्चिदानन्द इन्हीं त्रिविध वृत्तियोंसे मिलते हैं।

शिष्य। यह विभाग क्या ठीक है? सब वृत्तियोंकी परितृप्तिमें ही तो आनन्द है।

गुरु। सो ठीक है। किन्तु कुछ वृत्तियां ऐसी हैं जिनकी परितृप्तिका फल केवल आनन्द है—आनन्दके सिवा और कोई फल नहीं है। ज्ञानार्ज्जनी वृत्तियोंका मुख्य फल ज्ञान पाना है और गौण फल आनन्द है। कार्य्यकारिणी वृत्तियोंका मुख्य फल कार्य्यमें प्रवृत्ति और गौण फल आनन्द है। किन्तु इनका मुख्य फल ही आनन्द है और कोई फल ही नहीं है। पाश्चात्य लोग इनको Esthetic Faculties कहते हैं।

शिष्य। पाश्चात्य लोग Esthetic को Intellectual या Emotional में शामिल करते हैं, किन्तु आपने चित्तरञ्जिनी वृत्तिको अलग कर दिया।

गुरु। मैं ठीक ठीक पाश्चात्योंका अनुसरण नहीं करता और अनुसरण करनेको बाध्य भी नहीं हूं। सत्यका अनुसरण करनेसे ही हमारा उद्देश्य सफल हो जायगा। अब मनुष्यकी सब शक्तियां चार भागोंमें बांटी जाती हैं—(१) शारीरिकी (२) ज्ञानार्जनी (३) कार्य्यकारिणी और (४) चित्तरञ्जिनी। इन चार प्रकारकी वृत्तियोंकी उपयुक्त स्फूर्ति, पूर्णता और सामञ्जस्य ही मनुष्यत्व है।

शिष्य। क्रोधादि कार्य्यकारिणी और कामादि शारीरिक वृत्तियां हैं। इनकी पूरी स्फूर्ति और पूर्णता भी क्या मनुष्यत्वका उपादान है?

शिल्पका अनुशीलन करना है। आपने मुझे नयी बात क्या सिखायी?

गुरु। इस संसारमें नयी बातें बहुत थोड़ी ही हैं। विशेषतः मैं स्वर्गसे कोई नयी खबर लेकर नहीं आया हूं; यह बात एक तरहसे पक्की समझ लो। मेरी सभी बातें पुरानी हैं। नया के-वल हमारा अपने ऊपर अविश्वास है। विशेषकर मैं धर्मकी व्याख्या करने चला हूं। धर्म्म पुराना है, नया नहीं। मैं नया धर्म्म कहांसे पाऊंगा?

शिष्य। किन्तु आपका शिक्षाको धर्म्मका अंश बनाना ही नया जान पड़ता है।

गुरु। वह भी नया नहीं है। हिन्दूधर्म्ममें सदासे यह बात है कि शिक्षा धर्म्मका अंश है। इसीसे सब हिन्दूधर्म्मशास्त्रोंमें शिक्षाप्रणाली विशेष रूपसे बतायी गयी है। हिन्दुओंके ब्रह्मचर्य्या-श्रमकी विधि केवल पढ़नेके समयकी शिक्षाविधि ही है, कितने वर्ष अध्ययन करना होगा, किस रीतिसे अध्ययन करना होगा, क्या अध्ययन करना होगा, उसका विस्तारित विधान हिन्दूधर्म्मशास्त्रोंमें है। ब्रह्मचर्य्यके बाद गृहस्थाश्रम भी शिक्षास्थल मात्र है। ब्रह्मच-र्य्यमें ज्ञानार्ज्जनी वृत्तियोंका अनुशीलन होता है और गृहस्थाश्रममें कार्य्यकारिणी वृत्तियोंका। इन दो प्रकारकी शिक्षाओंकी विधि स्थापन करनेमें हिन्दूशास्त्रकार लगे हुए थे। मैं भी उन्हीं आर्य्य ऋषियोंका पदारविन्द स्मरणकर उनके दिखाये हुए पथ पर ही जाता हूं। तीन चार हजार वर्ष पहले भारतवर्षके लिये जो विधि संस्थापित हुई थी आज ठीक वेही विधियां अक्षर अक्षर मिलाकर नहीं चलायी जा सकतीं। वे ऋषि यदि आज भारतवर्षमें विद्य-मान होते तो वेही कहते—"नहीं, वे नहीं चलेंगी। हमारी वि-धियोंको रत्ती रत्ती मानकर आजकल अगर चलोगे तो हमारे प्र-चार किये हुए धर्म्मके मर्म्मके विपरीत कार्य्य होगा।" हिन्दू ध-र्म्मका वह मर्म्मभाग अमर है; चिरकाल चलेगा और मनुष्यका हितसाधन करेगा, क्योंकि मानवप्रकृति पर ही उसकी नींव है। परन्तु विशेष विधियां सब धर्म्मोंमें समयानुकूल होती हैं। वे

काल-भेदसे छोड़ने या बदलने योग्य हैं। हिन्दूधर्म्मके नये संस्कारकी मोटी बात यही है।

शिष्य। किन्तु मुझे सन्देह होता है कि आप इसके भीतर बहुतसी विलायती बातें घुसेड़ रहे हैं। यह कोम्तका मत है कि शिक्षा धर्म्मका अंग है।

गुरु। हो सकता है। इस समय हिन्दूधर्म्मके किसी अंगके साथ अगर कोम्तकी कुछ समानता हो जाय तो क्या यवनस्पर्श-दोष कहकर हिन्दूधर्म्मके उस अंगको फेंक देना होगा? ईसाई धर्म्ममें ईश्वरकी उपासना है, इसलिये क्या हिन्दुओंको ईश्वरोपासना छोड़ देनी होगी? उस दिन नाइंटिन्थ सेंचुरीमें हर्बर्ट स्पेंसरने कोम्त मतका प्रतिवाद करते हुए ईश्वरके सम्बन्धमें जो राय दी थी वह मूलतः वेदान्तका अद्वैतवाद और मायावाद है। स्पिनो-जोका मत भी वेदान्त मतसे मिलता है। वेदान्तसे हर्बर्ट स्पेंसर या स्पिनोजोका मत मिलता है, इसलिये क्या वेदान्तको हिन्दूधर्म्मसे निकाल बाहर करना होगा? मैं स्पेंसरी या स्पिनोजाई कहकर वेदान्तको नहीं छोड़ूंगा, बल्कि स्पिनोजो या स्पेंसरको युरोपियन हिन्दू समझकर हिन्दुओंमें गिनूंगा। हिन्दूधर्म्मका जो स्थूल भाग है, युरोपवाले टोह लगा लगाकर उसका जरा जरा अंश लेते जाते हैं, यह हिन्दूधर्म्मको श्रेष्ठताका साधारण प्रमाण नहीं है।

शिष्य। जो हो, हिसाब और कसरतकी शिक्षा अगर धर्म्ममें आ गया तो धर्म्मसे अलग क्या है?

छठा अध्याय—सामञ्जस्य।

—:o:—

शिष्य। वृत्तियोंका अनुशीलन क्या है, यह समझ गया। अब यह सुननेकी इच्छा है कि उन सबका सामञ्जस्य क्या है। क्या शारीरिक आदि सब वृत्तियोंका एक समान अनुशीलन करना होगा? काम, क्रोध या लोभका जितना अनुशीलन होगा क्या उतना ही अनुशीलन भक्ति, प्रीति और दयाका भी करना होगा? पहलेके धर्म्मवेत्ताओंका कथन है कि काम क्रोधादिका दमन करना और भक्ति प्रीति दयादिका अपार अनुशीलन करना। यह अगर सच हो तो सामञ्जस्य कहां रहा?

गुरु। धर्म्मवेत्ता लोग जो कह गये हैं वह बहुत ठीक है और उसका विशेष कारण है। भक्ति प्रीति प्रभृति श्रेष्ठ वृत्तियोंके फैलनेकी शक्ति सबसे अधिक है और इन वृत्तियोंके अधिक फैलावसे ही दूसरी वृत्तियोंका सामञ्जस्य होता है। जिसको उचित उत्कर्ष और सामञ्जस्य कहा है उसका तात्पर्य्य यह नहीं है कि सब वृत्तियां एक समान पनपेंगी और बढ़ेंगी। सब प्रकारके वृक्षोंकी समुचित वृद्धि और सामञ्जस्यसे सुहावना बाग होता है; किन्तु यहां समुचित वृद्धिका अर्थ यह नहीं है कि ताड़ और नारियलके पेड़ जितने बड़े होंगे उतने ही बड़े गुलाब या चमेलीके पेड़ भी हों। जिस वृक्षमें जितनी बढ़नेकी शक्ति है वह उतना बढ़ेगा। अगर एक पेड़के बहुत बढ़नेसे दूसरे पेड़ ठीक ठीक न बढ़ सकें, अगर इमलीके पेड़की बाढ़से गुलाबके पौदे सूख जायं तो सामञ्जस्यमें हानि हुई। मनुष्यका चरित्र भी ऐसा ही है। कुछ वृत्तियोंकी—जैसे भक्ति, प्रीति, दया आदिकी फैलनेकी शक्ति दूसरी वृत्तियोंसे अधिक है; और इसका अधिक फैलाव ही समुचित उत्कर्ष और सब वृत्तियोंके सामञ्जस्यका मूल है। उधर और भी कई वृत्तियां हैं जिनकी—मुख्यकर कुछ शारीरिक वृत्तियोंकी बढ़नेकी शक्ति भी अधिक है। किन्तु उनके अधिक बढ़नेसे दूसरी वृत्तियोंके समुचित उत्कर्षमें बाधा

है। इसलिये वे जितनी चमक सकती हैं उतना उन्हें चमकने देना अनुचित है। वे इमलीके पेड़ हैं, उनको चाहने गुलाबके पौदे मर जा सकते हैं। मैं यह नहीं कहता कि उनको बागसे उखाड़कर फेंक दो। यह अनुचित है; क्योंकि खटाई दरकार है—बुरी वृत्तियां भी दरकार हैं, ये सब बातें आगे चलकर विस्तार पूर्व्वक कहूंगा। इमलीके पेड़को जड़से काट मत डालो, किन्तु उसका स्थान एक कोना है। वह बहुत बढ़ने न पावे, उसको बढ़तेही तराश दो। दो एक इमलीके फलनेसे ही काम चल जायगा। उससे अधिक न बढ़ने पावे। बुरी वृत्तियां उतनी ही दूर तक बढ़ें जितनेसे सांसारिक मतलब सिद्ध हो जाय, उससे अधिक न बढ़ने पावें। इसीको समुचित वृद्धि और सामञ्जस्य कहा है।

शिष्य। तो समझा कि ऐसी कुछ वृत्तियां हैं, यथा कामादि, जिनका दमन ही उचित उत्कर्ष है।

वृत्तियोंके विषयमें तो यह बातें नहीं घटतीं।

गुरु। सब बुरी वृत्तियोंके विषयमें ये बातें घटेंगी। किनके विषयमें नहीं घटतीं?

शिष्य। मान लीजिये क्रोध। क्रोधको निर्मूल कर देनेमें तो मैं कोई बुराई नहीं देखता।

गुरु। क्रोध आत्मरक्षा और समाज-रक्षाका मूल है। दण्ड-नीति विधिबद्ध करना सामाजिक क्रोध है; क्रोधको निर्मूल करनेसे दण्डनीति निर्मूल होगी। दण्डनीतिके निर्मूल होनेसे समाजका मटियामेट हो जायगा।

शिष्य। मैं दण्डनीतिको क्रोधमूलक नहीं मानता; बल्कि दयामूलक कहना उससे अच्छा समझता हूं। क्योंकि दण्डशास्त्रके प्रणेताओंने सबके कल्याणकी इच्छासे ही दण्डविधि निकाली है और सबकी कल्याण-कामनासे ही राजा दण्ड प्रचार करते हैं।

गुरु। आत्मरक्षाकी बात विचारकर देखो। हानि पहुंचाने वालोंको रोकनेकी इच्छा करना ही क्रोध है। उस क्रोधके वशीभूत होकर ही हम हानिकारियोंके विरोधी होते हैं। यह विरोध ही आत्मरक्षाकी चेष्टा है। सम्भव है, हम केवल बुद्धिबलसे ही स्थिर कर सकते हैं कि अनिष्टकारियोंको रोकना उचित है। किन्तु केवल बुद्धि द्वारा काममें लगनेसे क्रोधकी तेजी और और हठको हम कभी नहीं पावेंगे। फिर जब मनुष्य दूसरेको अपने समान समझनेकी चेष्टा करता है तब वह आत्मरक्षा और पररक्षा एक समान क्रोधका फल हो जाती हैं। पररक्षाकी चेष्टामें जो क्रोध होता है वही विधिबद्ध होनेसे दण्डनीति बन गया है।

शिष्य। लोभमें तो मैं कुछ धर्म्म नहीं देखता।

गुरु। जिस वृत्तिकी अनुचित वृद्धिको लोभ कहते हैं उसकी उचित या सामञ्जस्ययोग्य स्फूर्त्ति धर्म्मतः उपार्जनकी लालसा है। अपनी जीवनयात्रा निवाहनेके लिये जो जो दरकार है और हमारे ऊपर जिनकी रक्षाका भार है उनकी जिन्दगी निवाहनेके लिये जो जो दरकार है उसको संग्रह करना अवश्य कर्त्तव्य है। ऐसे परिमित उपार्जनमें,—केवल धन कमानेकी बात नहीं कहता, भोग्य वस्तु

मात्रके उपार्जनकी बात कहता हूं—कुछ दोष नहीं है। उस परिमित मात्राको लांघ जानेसे ही यह अच्छी वृत्ति लोभ बन जाती है। अनुचित वृद्धि पानेसे ही वह महापापकी गिन्तीमें आ जाती है। दो बातें समझो। जिनको हम बुरी वृत्तियां कहते हैं वे सभी उचित मात्रामें धर्म्म हैं और अनुचित मात्रामें अधर्म्म। और ये वृत्तियां ऐसी तेज हैं कि ध्यान न रखनेसे वे अकसर उचित मात्राको पार कर जाती हैं; इसलिये दमन ही इनके लिये असली अनुशीलन है। ये दो बातें समझनेसे ही तुम अनुशीलन तत्त्वका यह अंग समझ जाओगे। दमनही असली अनुशीलन है; मटियामेट करना नहीं। महादेवने मन्मथकी अनुचित स्फूर्ति देखकर उसको जला डाला था, किन्तु संसारके हितके लिये फिर उसको जिलाना पड़ा।* श्रीमद्भगवद्गीतामें कृष्णका जो उपदेश है उसमें भी इन्द्रियोंको निर्मूल करनेके लिये नहीं कहा है, दमन ही बताया है। संयत होनेसे ये शान्तिमें विघ्न नहीं डाल सकतीं, यथा—

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥२।६४ ।

शिष्य। जो हो, इस तत्त्वको लेकर अधिक समय बितानेकी दरकार नहीं है। भक्ति, प्रीति दया आदि श्रेष्ठ वृत्तियोंके अनुशीलन सम्बन्धमें उपदेश कीजिये।

गुरु। इस विषयमें इतनी बातें कहनेकी इच्छा मेरी भी नहीं थी। दो कारणोंसे कहनेको लाचार हुआ। पहले तो तुम्हारी

शङ्काका खण्डन करना पड़ा। दूसरे आजकल योग-धर्म्मका शोर मचा है उससे जो कुछ भिन्ना उठा है। उस धर्म्मके फलाफलके विषयमें मुझे कुछ कहना नहीं है। उसमें बड़ा फल है, इसमें सन्देह ही क्या है? किन्तु जो लोग यह शोर मचाते फिरते हैं, उनकी राय यही दिखाई देती है कि कुछ वृत्तियोंको जड़से उखाड़ देना, कुछकी परवा न करना और कुछको बेतरह बढ़ाना ही योगका उद्देश्य है। अब अगर सब वृत्तियोंकी उचित स्फूर्त्ति और सामञ्जस्य धर्म्म है तो उनका यह धर्म्म अधर्म्म है। वृत्ति बुरी हो या अच्छी, उसकी जड़ उखाड़ना ही अधर्म्म है। लम्पट या पेटू आदमी अधार्म्मिक हैं; क्योंकि वे और सब वृत्तियों पर ध्यान न देकर दो एकके बेतरह अनुशीलनमें लगे रहते हैं। योगी भी अधार्म्मिक हैं; क्योंकि वे भी और सब वृत्तियों पर ध्यान न देकर दो एकका बेतरह अनुशीलन करते हैं। तुम चाहो तो बुरी और अच्छी वृत्तिके विचारसे लम्पट या पेटूको नीच श्रेणीके अधार्म्मिक और योगियोंको ऊंची श्रेणीके अधार्म्मिक कह सकते हो। किन्तु दोनोंको ही अधार्म्मिक कहना होगा। और मैं किसी वृत्तिको बुरी या हानिकारक कहनेको राजी नहीं हूं। हमारे अपने दोषसे बुराई होती है, इससे वृत्तियोंको बुरी क्यों कहूंगा? जगदीश्वरने हम लोगोंको कोई वस्तु बुरी नहीं दी है। उनके सामने अच्छे बुरेका भेद नहीं है। उन्होंने जो कुछ किया है उन्हें अपने अपने कामके योग्यही किया है। कामके उपयोगी कर लेनेसेही वे बढ़िया हो जाती हैं। यह सच है कि संसारमें अमङ्गल है। किन्तु वह अमङ्गल मंगलसे ऐसा मिला हुआ है कि उसको मङ्गलका अंश मानना ही कर्त्तव्य है। हमारी सब वृत्तियांही मङ्गलमय हैं। उनसे जब अमङ्गल होता है तब हमारे ही दोषसे होता है। जगत्तत्त्वकी जितनी ही आलोचना की जायगी उतना ही समझमें आवेगा कि हमारे मङ्गलके साथ ही जगत्‌का सम्बन्ध है। निखिल विश्वका सब अंश ही मनुष्यकी सब वृत्तियोंके अनुकूल है। प्रकृति हमारी सब वृत्तियोंका सहाय है। इसीसे युगपरम्परासे मनुष्यजातिकी औसतके हिसाबसे उन्नति ही हुई है, अवनति नहीं हुई है। धर्म्म ही इस उन्नतिका कारण

है। जो वैज्ञानिक नास्तिक धर्म्मकी दिल्लगी उड़ाकर विज्ञानको ही इस उन्नतिका कारण बताते हैं, वे नहीं जानते कि उनका विज्ञान भी इस धर्म्मका एक अंग है; वे भी एक धर्म्मके आचार्य्य हैं। वे जब Law की महिमा बखानते हैं और मैं जब रामनाम लेता हूं तब हम दोनों एक ही बात कहते हैं। दोनों एक ही विश्वेश्वरकी महिमा गाते हैं। मनुष्योंमें धर्म्मके नाम पर इतना वाद विवाद न होनेसे भी काम चलता है।

सातवां अध्याय—सामञ्जस्य और सुख।

कि वे स्वतःही स्फूर्त हैं—स्वयं ही चमकती हैं, अनुशीलनकी परवा नहीं करतीं। हम लोगोंको अनुशीलन करके भूख नहीं लगानी पड़ती, अनुशीलन करके सोनेकी शक्ति नहीं पैदा करनी पड़ती। देखना स्वतःस्फूर्त और स्वाभाविकमें गड़बड़ मत मचाना। जो हमारे साथ पैदा हुई हैं वे स्वाभाविक हैं; सब वृत्तियां स्वाभाविक हैं। किन्तु सब वृत्तियां स्वतःस्फूर्त नहीं हैं—सब स्वयं नहीं चमकतीं। जो स्वतःस्फूर्त हैं, स्वयं चमकनेवाली हैं वे दूसरी वृत्तियोंके अनुशीलनसे नहीं मिट सकतीं।

शिष्य। कुछ भी नहीं समझा। जो स्वतःस्फूर्त नहीं हैं वे ही क्यों दूसरी वृत्तियोंके अनुशीलनसे मिट जायंगी।

गुरु। अनुशीलनके लिये तीन सामग्रियां दरकार हैं (१) समय, (२) शक्ति (Energy), (३) जिससे वृत्तियोंका अनुशीलन करेंगे यानी अनुशीलनका उपादान। हमारा समय और शक्ति दोनों ही सङ्कीर्ण हैं। मनुष्य जीवन कई वर्षोंकी सीमामें आबद्ध है। जीविका चलानेके कामके बाद अनुशीलनके लिये जो समय बचता है उसमेंसे कुछ भी बरबाद होनेसे सब वृत्तियोंके समुचित अनुशीलनके योग्य समय नहीं मिलेगा। बरबाद न होने देनेके लिये यह नियम करना पड़ता है कि जिन जिन वृत्तियोंके लिये अनुशीलन दरकार नहीं है अर्थात् जो स्वतःस्फूर्त हैं उनके अनुशीलनमें समय नहीं लगावेंगे; जिनके लिये अनुशीलन दरकार है उनके अनुशीलनमें ही सब समय नहीं लगावेंगे। यदि ऐसा न करके स्वतःस्फूर्त वृत्तियोंके व्यर्थ अनुशीलनमें समय वितावें तो समयके अभावसे दूसरी वृत्तियोंका उपयुक्त अनुशीलन नहीं होगा। बस वे सब घट या मिट जायंगी। दूसरे, शक्तिके सम्बन्धमें भी यही बात चलती है। हममें जितनी काम करनेकी शक्ति है वह भी सीमाबद्ध है। जीविका निबाहनेके बाद जो बच जाती है, वह स्वतःस्फूर्त वृत्तियोंके अनुशीलनके लिये बहुत नहीं होती। विशेष कर पाशव वृत्तियोंका अधिक अनुशीलन शक्ति क्षय करनेवाला है। तीसरे स्वतःस्फूर्त पाशव वृत्तियोंके अनुशीलनके उपादान और मानसिक वृत्तियोंके अनुशीलनके उपादानमें परस्पर बड़ा विरोध है। जहां

वे रहती हैं वहां वे नहीं रह सकतीं। विलासिनियोंकी मण्डलीमें रहनेवालेके हृदयमें ईश्वरका विकाश असम्भव है और क्रोधी शस्त्रधारीके पास भिखमंगेका जाना असम्भव है। और सबसे बढ़कर यह बात है कि पाशव वृत्तियां, शरीर और जातिकी रक्षाके लिये आवश्यक होनेके कारण, चाहे पुरुषपरम्परासे आयी हुई स्फूर्तिके कारण हो अथवा चाहे जीवरक्षाभिलाषी ईश्वरकी इच्छासे हो, ऐसी जबरदस्त हैं कि अनुशीलनसे ये समूचे हृदयको घेर लेती हैं, और किसी वृत्तिके लिये स्थान नहीं रहता। यही विशेषता है।

उक्त जो वृत्तियां स्वतःस्फूर्त नहीं हैं उनके अनुशीलनमें अपना मन लगाकर और जीविका निबाहनेसे बची हुई शक्तिको लगानेसे स्वतःस्फूर्त वृत्तियोंकी आवश्यकीय वृत्तिमें कोई बाधा नहीं पड़ती। क्योंकि वे स्वतःस्फूर्त हैं। शायद उपादानमें विरोध होनेके कारण उनका दमन हो सकता है। और यह देखा गया है कि इन वृत्तियोंका दमन ही यथार्थ अनुशीलन है।

शिष्य। किन्तु योगी लोग दूसरी वृत्तियोंको बढ़ाकर या किसी और उपायसे पाशव वृत्तियोंको नष्ट कर देते हैं; क्या यह सच नहीं है?

गुरु। बेशक।

शिष्य। अगर ऐसा है तो क्या लक्षण देखकर निश्चय करेंगे कि अमुक वृत्तिको बढ़ने दे सकते हैं और अमुकको नहीं? किस कसौटीपर घिसकर स्थिर करेंगे कि यह सोना है और यह पीतल?

गुरु। मैंने कहा है कि सुखका उपाय धर्म्म है और मनुष्यत्वमें ही धर्म्म है। इसलिये सुखही कसौटी है।

शिष्य। बड़ी आफतकी बात है? मैं अगर कहूं कि इन्द्रियोंकी परितृप्तिमें ही सुख है?

गुरु। ऐसा नहीं कह सकते। क्योंकि समझा चुका हूं कि सुख क्या है। हमारी सब वृत्तियोंकी फुर्त्ती, सामञ्जस्य और उपयुक्त परितृप्ति ही सुख है।

शिष्य। यह बात मैं अभीतक अच्छी तरह नहीं समझ सका हूं। सब वृत्तियोंकी स्फूर्त्ति और परितृप्तिका समावेश सुख है या हरएक अलग अलग वृत्तिकी स्फूर्त्ति और परितृप्ति ही सुख है?

गुरु। समावेश ही सुख है। अलग अलग वृत्तियोंकी स्फूर्त्ति और परितृप्ति सुखका केवल अंश है।

शिष्य। तब कसौटी कौन है? समावेश या अंश?

गुरु। समावेश ही कसौटी है।

शिष्य। यह तो समझमें नहीं आता है। मान लीजिये कि मैं चित्र खींच सकता हूं। कुछ विशेष वृत्तियोंकी रगड़से यह शक्ति आती है। अब पूछना यह है कि हमें उन वृत्तियोंको अधिक बढ़ाना चाहिये या नहीं? आप कहेंगे—"सब वृत्तियोंकी उचित स्फूर्त्ति और चरितार्थताके समावेशमें जो सुख है उसमें कोई विघ्न पड़ेगा कि नहीं, यह बात समझकर तब चित्र विद्याका अनुशीलन करो।" अर्थात् तूली उठानेसे पहले मुझे गिनकर देखना होगा कि इससे मेरे पुट्ठेके बल नस रगका स्वास्थ्य, नेत्रकी दृष्टि, कानसे सुननेकी शक्ति, ईश्वर भक्ति, मनुष्य प्रीति, दीनों पर दया, सत्यपर अनुराग, सन्तान स्नेह, शत्रु पर क्रोध, वैज्ञानिक बुद्धि, दार्शनिक धृति, काव्यकी कल्पना, साहित्यकी समालोचना आदिमें कुछ विघ्न पड़ता है कि नहीं? यह क्या सहज है?

गुरु। तब मैं कहूंगा कि तुम धोबीके घाटमें रास्ता भूलकर चले आये हो। जो हो, मैं तुम्हारी बातका उत्तर दूंगा। इन्द्रिय परितृप्तिमें सुख है? अच्छा, यही सही। मैं तुम्हें बेखटके इन्द्रिय परितृप्त करनेकी अनुमति देता हूं। मैं कबूलियत लिख देता हूं कि इन इन्द्रिय परितृप्तिमें कोई कभी कुछ भी बाधा नहीं देगा, कोई निन्दा नहीं करेगा—अगर कोई करे तो मेरा जिम्मा रहा। किन्तु तुमको भी एक कबूलियत लिख देनी होगी। तुम्हें लिखना होगा कि "मैं यह कहकर इन्द्रिय परितृप्ति नहीं छोड़ूंगा कि अब इसमें सुख नहीं है।" थकावट, नफरत, रोग, पश्चात्ताप, धनाभाव, पशुत्वमें अधःपतन आदि कुछ भी उज्र न करके कभी उसे नहीं छोड़ना होगा। क्यों? राजी हो?

शिष्य। दुहाई महाराजकी! मैं राजी नहीं हूं। किन्तु क्या ऐसे आदमी बहुधा नहीं देखे जाते जो सारा जीवन इन्द्रिय परितृप्तिमें ही बिताते हैं? बहुत लोग तो ऐसे ही हैं।

गुरु। हम लोग समझते हैं कि ऐसे ही बहुत लोग हैं परन्तु भीतरका भेद नहीं जानते। भीतरका भेद यह है कि जिनको जीवन भर इन्द्रियपरायण देखते हैं उनमें इन्द्रिय परितृप्तिकी चेष्टा प्रबल होने पर भी उतनी परितृप्ति नहीं हुई है। जिस तृप्तिके होनेसे इन्द्रियपरायणताका दुःख समझमें आता है वह तृप्ति नहीं हुई है। तृप्ति न होनेसे ही चेष्टा इतनी प्रबल होती है। अनुशीलनके दोषसे हृदयमें आग लगी है, जलन बुझानेके लिये वे जल ढूंढ़ते फिरते हैं, किन्तु जानते नहीं कि अग्निदाहकी दवा जल नहीं है।

शिष्य। किन्तु ऐसा भी देखता हूं कि बहुत लोग बेखटके रातदिन इन्द्रिय विशेषको चरितार्थ करते हैं, (विराग नहीं होता) रुकते नहीं। शराबी इसके बढ़िया उदाहरण हैं। कितने ही ऐसे शराबी हैं जो सबेरेसे शाम तक शराब पीते हैं और केवल नींदमें ही मस्त रहते हैं। वे तो शराब नहीं छोड़ते, छोड़ना भी नहीं चाहते।

शिष्य। अब शायद मैंने समझा है कि आप सुख किसे कहते हैं। क्षणिक सुख सुख नहीं है।

गुरु। क्यों नहीं है? मैं अगर जीवनमें एक बार भी एक गुलाबका फूल देखूं, या एक गीत सुनूं और उसके बाद ही सब भूल जाऊं तो वह सुख बड़ा थोड़ा सुख है। किन्तु वह सुख क्या सुख नहीं है? वह सचमुच सुख है।

शिष्य। जो सुख क्षणिक है और जिसका परिणाम स्थायी दुःख है वह सुख नहीं है; वह केवल दुःखकी पहली अवस्था है। अब मैंने समझा है कि नहीं?

गुरु। अब रास्ते पर आये हो। किन्तु यह व्याख्या तो (व्यतिरेकी) है। केवल ऐसी व्याख्यामें ही सब कुछ नहीं मिलेगा। सुख दो भागोंमें बांटा जा सकता है—(१) स्थायी और (२) क्षणिक। इनमें—

शिष्य। स्थायी किसको कहते हैं? मान लीजिये कि कोई इन्द्रियासक्त पुरुष पांच वर्षोंसे इन्द्रिय सुख भोग रहा है। यह बात एकदम असम्भव नहीं है। उसका सुख क्या क्षणिक है?

गुरु। पहले तो सारे जीवनके आगे पांच वर्ष एक घड़ीके बराबर है, परकालको तुम मानो चाहे न मानो, मैं मानता हूं। अनन्त कालके सामने पांच वर्ष किस गिनतीमें है? किन्तु मैं केवल परकालका भय दिखाकर किसीको धार्म्मिक बनाना नहीं चाहता, क्योंकि बहुत आदमी परकाल नहीं मानते—मुंहसे कहते हों तो भी दिलसे नहीं मानते; समझते हैं कि सिर्फ बच्चोंको हव्वा डरानेकी तरह मनुष्यको शान्त रखनेकी एक पुरानी कहावत है। इसीसे आजकल बहुतेरे परकालके भयसे नहीं डरते। इसीसे साधारण लोगोंके जीमें अक्सर यह विश्वास नहीं जमता कि परकालके दुःखके भयके ऊपर ही धर्म्मकी नींव है। "आजकल" इसलिये कहता हूं कि एक समय इस देशमें यह धर्म्म बड़ा ही बलवान था, एक समय युरोपमें भी बड़ा बलवान था किन्तु आजकल विज्ञानमयी शताब्दी है। वह खून मांसकी सड़ी बदबू छोड़नेवाली, तोप बन्दूक गोली बारूद क्रूजर टारपीडो आदिसे सजी हुई राक्षसी—

एक हाथसे गिरजेकी कल चलाती है और दूसरे हाथमें झाड़ू लेकर प्राचीन पवित्र और सहस्रों वर्षोंके यत्नसे रखे हुए धनरत्नको बुहार बुहार कर फेंक रही है। वह चुड़ैल इस देशमें आकर भी अपना काला मुंह दिखा रही है। उसके जालमें फंसकर तुम्हारे जैसे हजारों शिक्षित, अशिक्षित और अर्द्धशिक्षित हिन्दुस्तानी अब परकाल नहीं मानते। इसीसे मैं इस धर्म्म व्याख्यामें जहां तक बनता है परकालको छोड़ देता हूं। इसका कारण यह है कि जो तुम्हारे हृदयक्षेत्रमें नहीं है उसके ऊपर दीवार उठाकर मैं धर्म्मका मन्दिर नहीं बना सकूंगा। और मेरी समझमें परकालको छोड़ देनेसे धर्म्म बेनींवका नहीं हो जाता। क्योंकि इहलोकका सुख भी

इस बातके उत्तरके लिये दो तरहसे विचार करना आवश्यक है ; जो पुनर्जन्म मानता है उसके लिये एक तरहसे और जो पुनर्जन्म नहीं मानता उसके लिये एक तरहसे। तुम क्या पुनर्जन्म मानते हो ?

शिष्य। नहीं।

गुरु। अच्छी बात है। जब तुमने परकाल माना और पुनर्जन्म नहीं माना तब दो बातें मानीं,—एक यह कि यह शरीर नहीं रहेगा, इसलिये शारीरिक वृत्तियोंसे उत्पन्न जो सुख है वह परकालमें नहीं रहेगा। दूसरी, शरीरको छोड़कर और जो कुछ है वह रहेगा अर्थात् तीन तरहकी मानसिक वृत्तियां रहेंगी ; इसलिये मानसिक वृत्तियोंसे उत्पन्न सुख दुःख परकालमें भी रहेगा। परकालमें ऐसे सुखकी अधिकताको स्वर्ग कह सकते हैं और ऐसे दुःखकी अधिकताको नरक कह सकते हैं।

शिष्य। किन्तु अगर परकाल हो तो उसका धर्म्मव्याख्याका मुख्य उपादान होना ही उचित है। इसीसे दूसरी धर्म्म व्याख्याओंमें इसीने प्रधानता पायी है। आप परकाल मानकर भी उसे धर्म्म-व्याख्यासे अलग रखते हैं इससे मुझे आपकी व्याख्या अधूरी और गलत जान पड़ती है।

गुरु। अधूरी हो सकती है। अलबत्ते इस बातमें भी शक है। अधूरी हो या न हो, मगर गलत नहीं है। क्योंकि अगर सुखका उपाय धर्म्म हो और इहकालका सुख ही परकालका भी सुख हो तो इहकालका जो धर्म्म है वही परकालका भी धर्म्म है। परकालको न मानो न सही, केवल इहकालको सब कुछ मानकर भी पूर्ण रूपसे धार्म्मिक हो सकते हैं। धर्म्म नित्य है। धर्म्म इहकालमें भी सुखदायी है और परकालमें भी सुखदायी है। तुम परकाल मानो या न मानो, धर्म्माचरण करना, उससे इहकालमें भी सुखी होगे और परकालमें भी।

शिष्य। आप स्वयं परकाल क्यों मानते हैं ? उसका कुछ प्रमाण है या केवल मानना अच्छा लगता है इसीसे मानते हैं ?

गुरु। जिसका प्रमाण नहीं है उसको मैं नहीं मानता। परकालका प्रमाण है, इसीसे मैं उसको मानता हूं।

शिष्य। अगर परकालका प्रमाण है, अगर आपका परकाल पर विश्वास है तो मुझे उसके माननेका उपदेश आप क्यों नहीं देते? मुझे प्रमाणोंको क्यों नहीं समझाते?

गुरु। मुझे यह बात माननी होगी कि वे प्रमाण विवाद स्थल हैं। उन प्रमाणोंमें ऐसा कोई दोष नहीं है कि जिससे उन विवादोंकी अच्छी मीमांसा नहीं हो सकती या नहीं हुई है। परन्तु आजकलके वैज्ञानिकोंके कुसंस्कारसे विवाद मिटने नहीं पाते। विवादके मैदानमें उतरनेकी मेरी इच्छा नहीं है और दरकार भी नहीं है। दरकार इसलिये नहीं समझता कि मैं तुम्हें उपदेश देता हूं कि तुम पवित्र बनो, शुद्धचित्त बनो, धर्मात्मा बनो। यही यथेष्ट है। हम इस धर्मव्याख्याके भीतर जितना ही जायँगे उतना ही देखेंगे कि इस प्रकार जिसको सम्पूर्ण चित्त वृत्तियोंकी पूरी स्फूर्ति और पूर्णता कहते हैं उसका अन्तिम फल पवित्रता, चित्तशुद्धि और धार्मिकता है।* तुम अगर परकाल न भी मानो तोभी शुद्ध चित्त और पवित्रात्मा होनेसे निश्चय ही तुम परकालमें सुखी होगे। जब चित्त शुद्ध हो गया तब इस लोकमें ही स्वर्ग हुआ फिर

लिये यह तत्त्व किस कारणसे ग्राह्य है। जो पुनर्जन्म मानता है उसके लिये क्या है?

गुरु। मैं पहले ही कह चुका हूं कि अनुशीलनकी पूर्णतामें मोक्ष है। अनुशीलनकी पूर्ण मात्रा हो जाने पर पुनर्जन्म नहीं होगा। जब भक्तितत्त्व समझाऊंगा तब यह बात और अच्छी तरह समझोगे।

शिष्य। किन्तु अनुशीलनकी पूरी मात्रा बहुधा तो नसीब होना सम्भव नहीं है। जिन्हें अनुशीलनकी पूर्णता नहीं प्राप्त हुई उनका पुनर्जन्म होगा। इस जन्मके अनुशीलनके फलसे क्या वे दूसरे जन्ममें कोई सुख पावेंगे?

गुरु। जन्मान्तर वादका खुलासा यही है कि इस जन्मका कर्मफल दूसरे जन्ममें मिलता है। सब कार्मोंका समूह (समवाय) अनुशीलन है। इसलिये इस जन्मके अनुशीलनका जो शुभ फल है वह अनुशीलनवादीकी रायमें अवश्य दूसरे जन्ममें मिलेगा। श्रीकृष्णने स्वयं अर्जुनसे कहा है।

"तत्र तं बुद्धि संयोगं लभते पौर्व देहिकम्।" इत्यादि गीता, ६।४३

शिष्य। इस समय हम असली बातसे बहुत दूर निकल आये हैं। बात यह हो रही थी कि स्थायी सुख क्या है? उसके पहले उत्तरमें आपने कहा है कि इस काल और परकालमें चिरस्थायी जो सुख है वही स्थायी सुख है। आपने कहा है कि इसका दूसरा उत्तर भी है। दूसरा उत्तर क्या है?

गुरु। दूसरा उत्तर, जो लोग परकाल नहीं मानते उनके लिये है। यह जीवन ही अगर सब कुछ हो, मृत्यु ही अगर जीवनका अन्त हो तो जो सुख उस अन्तकाल तक रहेगा वही स्थायी सुख है। अगर परकाल स्थायी न हो तो इस जीवनमें जो सदा रहे वही स्थायी सुख है। तुम कहते थे कि दस पांच वर्षों तक कोई कोई इन्द्रिय सुखमें डूबे रहते हैं। किन्तु पांच या दस वर्ष चिरजीवन नहीं है। जो दस पांच वर्षोंसे इन्द्रिय तृप्तिमें लगा हुआ है उसका भी मृत्युकाल तक वह सुख नहीं रहेगा। तीन कारणोंमेंसे किसी न किसीसे अवश्य उसका वह सुखस्वप्न टूट जायगा।

(१) अतिभोगसे पैदा हुई ग्लानि या घृणा—अतितृप्ति; या (२) इन्द्रियासक्तिसे अवश्य पैदा होनेवाले रोग या असामर्थ्य; अथवा (३) उसकी अधिकता। इसलिये इन सब सुखोंको स्थायी नहीं कह सकते।

शिष्य। और जो वृत्तियाँ अच्छी कही जाती हैं उनके अनुशीलनमें जो सुख है वह क्या इस जीवनमें चिरस्थायी है?

गुरु। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। एक मामूली उदाहरणसे

रहेगी। मैं इसको जैसी अवस्थामें ले जाऊंगा परलोककी प्रथमावस्थामें इसका उसी अवस्थामें रहना सम्भव है; क्योंकि एक-एक अवस्था बदलनेका कोई उपयुक्त कारण नहीं देखा जाता। मैं अगर इसे उत्तम प्रकारसे अनुशीलित और सुसम्पन्न अवस्थामें ले जाऊं तो वह परलोकमें भी मेरे लिये सुखदायक होगी। वहां इसे अनुशीलित पाकर और चरितार्थताके कारण इस लोककी अपेक्षा अधिकतर सुखी हूंगा।

शिष्य। यह सब सुख केवल स्वप्न है कुछ भी प्रमाणके योग्य नहीं है। दयाका अनुशीलन और चरितार्थता कर्मोंके अधीन है। परोपकार केवल कर्म्म है। मैं अपनी कर्म्मेन्द्रियोंको शरीरके साथ यहां छोड़ गया, वहां किससे कर्म्म करूंगा?

गुरु। कुछ मूर्खोंकीसी बात कही। हम लोग यही जानते हैं कि जो चैतन्य शरीरमें है उसी चैतन्यका कर्म्म कर्म्मेन्द्रियोंसे होता है; किन्तु जो चैतन्य शरीरमें नहीं है उसका कर्म्म भी कर्म्मेन्द्रियसे होता है ऐसा समझनेका कोई कारण नहीं है। यह युक्तिकी बात नहीं है।

शिष्य। यही युक्ति पूर्ण है। अन्यथ सिद्धि शून्यस्य नियत पूर्ववर्त्तिता कारणत्वम्। नहीं तो कर्म्म सिद्धिशून्य है। कर्म्मेन्द्रिय शून्य आदमीको कर्म्म करते हमने कहीं नहीं देखा।

गुरु। ईश्वरको देखते हो। अगर कहो कि ईश्वरको नहीं मानते तो तुम्हारे साथ मेरा विचार समाप्त हो गया। मैं परकालसे धर्म्मको अलगकर विचार करनेको राजी हूं। किन्तु ईश्वरसे धर्म्मको अलग करके विचार करनेको राजी नहीं हूं। और अगर कहो कि ईश्वर साकार है, उन्होंने कारीगरकी तरह हाथसे जगत्‌को गढ़ा है तौभी तुम्हारे साथ विचार नहीं होगा। परन्तु मुझे भरोसा है कि तुम ईश्वरको मानते हो और उनका निराकार होना भी स्वीकार करते हो। अगर ऐसा मानते हो तो कर्म्मेन्द्रियशून्य निराकारका कर्म्म करना मानते हो। क्योंकि ईश्वर सर्वकर्त्ता, सर्वस्रष्टा हैं।

परलोकमें जीवनकी अवस्था स्वतन्त्र है। इसलिये दरकार भी स्वतन्त्र है। इन्द्रियोंकी दरकार न होना ही सम्भव है।

शिष्य। हो सकता है। किन्तु ये सब अन्दाजी बातें हैं। अन्दाजी बातोंकी दरकार नहीं है।

गुरु। मैं मानता हूं कि अन्दाजी बातें हैं। यह भी मानता हूं कि विश्वास करना न करना तुम्हारे अधिकारमें है। मैं देख

यह सम्भव है। * जो अच्छी वृत्तियोंको अनुशीलनके अभावमें कच्ची अवस्थामें परलोक ले जायगा उसे परलोकमें कुछ सुख मिलनेकी सम्भावना नहीं है। और जो केवल बुरी वृत्तियोंको बढ़ाकर परलोक जायगा उसे अपार दुःख मिलेगा। अगर जन्मान्तर न माना जाय तो इसीसे ही स्वर्ग नरक माना जा सकता है। कीड़े पील्लू आदिसे भरे हुए झीलरूपी नरक या अप्सराओंके मधुर गान और उर्वसी, मेनका रम्भादिके नाचनेसे गुलजार नन्दन काननकी सुगन्धिसे पूरित स्वर्गको मैं नहीं मानता। हिन्दूधर्म्मको मानता हूं, किन्तु हिन्दूधर्म्मके बोहदेपनको नहीं मानता। मैं अपने शिष्योंको उसके माननेसे मना करता हूं।

शिष्य। मेरे जैसे शिष्यके उसके माननेकी कोई सम्भावना नहीं है। अब परकालकी बात जाने दीजिये। इहकालके सुखकी जो व्याख्या कर रहे थे उसीको फिर उठाइये।

गुरु। शायद अब समझ गये होगे कि परकालकी बात छोड़कर भी बतायी जा सकती है कि कौन कौन सुख स्थायी है और कौन कौन सुख स्थायित्वके अभावसे क्षणिक है।

शिष्य। शायद यह बात अभीतक नहीं समझी। मैं कहीं आल्हा सुन आया या कोई नाटक देख आया; उसमें भी कुछ आनन्द पाया। वह स्थायी सुख है या क्षणिक?

गुरु। जिस आनन्दकी बात तुम सोचते हो, समझता हूं कि वह क्षणिक है, किन्तु चित्तरञ्जिनी वृत्तिके समुचित अनुशीलनका जो फल है वह स्थायी सुख है। उस स्थायी सुखका अंश या सामग्री समझकर इस आनन्दको स्थायी सुखमें शामिल कर लेना होगा। याद रहे कि सुख वृत्तिके अनुशीलनका फल है। कह चुका हूं कि कुछ वृत्तियोंके अनुशीलनसे उत्पन्न हुआ सुख अस्थायी है। यह सुख भी

* बुढ़ापेमें जो किसी किसीकी अनुशीलित वृत्तियोंकी भी दुर्बलता देखी जाती है वह प्रायः उनकी शारीरिक दुरवस्थाके कारण होती है। समझना चाहिये, कि उनकी शारीरिक वृत्तियोंका उचित अनुशीलन नहीं हुआ। नहीं तो सबकी वह दशा क्यों नहीं होती?

दो प्रकारका है ;—(१) जिसके परिणाममें दुःख है, (२) जो क्षणिक होने पर भी परिणाममें दुःखशून्य है। इन्द्रियादिकी बुरी वृत्तियोंके सम्बन्धमें पहले जो कहा गया है उससे यह बात अच्छी समझ गये होगे कि उन वृत्तियोंका परिमित अनुशीलन दुःख रहित सुख है और उनके अनुचित अनुशीलनमें जो सुख है उसीका परिणाम दुःख है, इसलिये सुख तीन तरहका है।

उसके परिणाममें दुःख नहीं है। बस उससे आगे नहीं। अनुशीलनका उद्देश्य सुख है; जिस अनुशीलनसे सुख मिलता है, दुःख नहीं होता वही विहित है, इसलिये सुख ही वह कसौटी है।

आठवां अध्याय—शारीरिकी वृत्तियां।

——:0:——

शिष्य। जहां तक बातें हुई हैं, उनसे समझा है कि अनुशीलन क्या है। और यह भी समझा है कि सुख क्या है; यही समझा है कि अनुशीलनका उद्देश्य सुख है और सामञ्जस्य उसकी सीमा है। किन्तु वृत्तियोंके अनुशीलनके विषयमें कुछ विशेष उपदेश अभीतक नहीं पाया। क्या ऐसा कुछ उपदेश देनेकी दरकार नहीं है कि किस वृत्तिका कैसे अनुशीलन करना होगा?

गुरु। यह शिक्षातत्त्व है। शिक्षातत्त्व धर्म्मतत्त्वके अन्तर्गत है। हमारी इस बातचीतका प्रधान उद्देश्य वह नहीं है। हमारा प्रधान उद्देश्य यही समझनेका है कि धर्म्म क्या है। उसके लिये जितना आवश्यक है उतना ही मैं कहूंगा।

वृत्तियोंके चार प्रकार बताये हैं; (१)शारीरिकी (२) ज्ञानार्ज्जनी (३) कार्य्यकारिणी और (४) चित्तरञ्जिनी। पहले शारीरिकी वृत्तियोंकी चर्चा करूंगा, क्योंकि वेही सबसे पहले जागती हैं। यह किसीको समझाना नहीं पड़ेगा कि उनकी स्फूर्त्ति और परितृप्तिमें सुख है। किन्तु यह कोई विश्वास नहीं करता कि धर्म्मके साथ उनका कुछ सम्बन्ध है।

शिष्य। उसका कारण यह है कि वृत्तियोंके अनुशीलनको कोई धर्म्म नहीं कहता।

गुरु। कोई कोई युरोपियन अनुशीलनवादी वृत्तियोंके अनुशीलनको धर्म्म या धर्म्म-स्थानीय कोई एक वस्तु समझते हैं, किन्तु

विघ्न है ;योगीके योगका विघ्न है ; भक्तके भक्तिसाधनका विघ्न है। रोग धर्म्मका परम विघ्न है।

अब तुम्हें समझना नहीं पड़ेगा कि शारीरिकी वृत्तियोंके उचित अनुशीलनका अभाव ही मुख्य करके रोगका कारण है।

शिष्य। ठण्ड लगनेकी जो बात आरम्भमें उठी थी क्या वह भी अनुशीलनका ही अभाव है।

गुरु। वह त्वचा नामक इन्द्रियके स्वास्थ्यकर अनुशीलनकी गड़बड़का फल है। शरीर तत्व विद्यामें तुम्हारी कुछ भी जानकारीहोती तो इस बातको समझ सकते।

शिष्य। देखता हूं कि ज्ञानार्जनी वृत्तिका समुचित अनुशीलन हुए बिना शारीरिकी वृत्तिका अनुशीलन नहीं होता।

गुरु। हां। सब वृत्तियोंका ठीक ठीक अनुशीलन एक दूसरेके अनुशीलन पर है। केवल शारीरिकी वृत्तियोंका अनुशीलन ही ज्ञानार्जनी वृत्तियों पर मुनहसर नहीं है, कार्य्यकारिणी वृत्तियां भी उन पर मुनहसर हैं। यह बात ज्ञानसे जाननी होगी कि कौन काम किस उपायसे करना उचित है, किस वृत्तिका अनुशीलन कैसे होगा, कैसे अनुशीलनमें रुकावट होगी। ज्ञानके बिना तुम ईश्वरको भी नहीं जान सकोगे। किन्तु यह बात अभी रहे।

शिष्य। रहने देनेसे नहीं बनेगा। अगर वृत्तियोंका अनुशीलन एक दूसरे पर मुनहसर है तो किसका अनुशीलन पहले करूंगा ?

गुरु। सबका यथासाध्य अनुशीलन एक समय ही आरम्भ करना होगा ; अर्थात् बचपनमें।

शिष्य। ऐं ! बचपनमें मैं जानता नहीं कि किस प्रकारसे किस वृत्तिका अनुशीलन करना होगा। सब क्योंकर सब वृत्तियोंका अनुशीलन करूंगा ?

गुरु। इसीलिये शिक्षककी सहायता दरकार है। शिक्षक और शिक्षा बिना कभी मनुष्य मनुष्य नहीं होता ; सबको शिक्षकका आश्रय लेना कर्त्तव्य है। केवल बचपनमें ही क्यों, सदा हमको दूस-

देसे शिक्षा लेनेकी दरकार है। इसीसे तो हिन्दूधर्म्ममें गुरुका इतना मान है। अब गुरु नहीं हैं, गुरुका सम्मान नहीं है, इसीसे समाजकी उन्नति नहीं होती। भक्ति वृत्तिके अनुशीलनकी चर्चा जब करूंगा उस समय यह बात याद रखना। अब जो कहता था उसे कहता हूं।

(२) वृत्तियोंके इस प्रकार एक दूसरे पर मुनहसर होनेसे शारीरिकी वृत्तियोंके अनुशीलनकी दूसरी जरूरत या धर्म्मके दूसरे विघ्नकी बात पायी जाती है। जब दूसरी वृत्तियां शारीरिकी वृत्तियोंपर मुनहसर हुई तब ज्ञानार्जनी आदि वृत्तियोंके भलीभांति अनुशीलनके लिये शारीरिकी वृत्तियोंका भलीभांति अनुशीलन होना चाहिये। वास्तवमें यह बात निश्चित है कि शारीरिकी शक्तियोंके बलिष्ठ और पुष्ट न होनेसे मानसिक शक्तियां बलिष्ठ और पुष्ट नहीं होतीं, या अधूरी तेजी पाती हैं। शारीरिक स्वास्थ्यके लिये मानसिक स्वास्थ्यकी दरकार है और मानसिक स्वास्थ्यके लिये शारीरिक स्वास्थ्यका प्रयोजन है। युरोपके विज्ञानविशारद पण्डितोंने शरीर और मनका यह सम्बन्ध अच्छी तरह सिद्ध कर दिया है। हमारे देशमें आजकल जो कालिजी शिक्षा जारी है उसकी मुख्य निन्दा यही है कि उसमें विद्यार्थियोंकी शारीरिक फुर्तीकी ओर कुछ ध्यान नहीं दिया जाता। इससे केवल शारीरिक नहीं, असमय ही मानसिक अधःपतन भी हो जाता है। धर्म्म मानसिक शक्ति पर निर्भर करता है, इससे धर्म्मकी भी अधोगति होती है।

(३) किन्तु इस विषयमें तीसरा या शारीरिक विघ्न और भी बड़ा है। जिसकी शारीरिक वृत्तियोंका उचित अनुशीलन नहीं हुआ वह आत्मरक्षा नहीं कर सकता। जो आत्मरक्षा नहीं कर सकता उसका धर्म्म कर्म्म क्योंकर निर्विघ्न होगा? सबके शत्रु हैं। डाकू हैं। वे सदा धर्म्ममें विघ्न करते हैं; इसके सिवा कितनी ही बार जो बलसे शत्रुको दबा नहीं सकता वह बलहीनताके कारण ही आत्मरक्षाके लिये अधर्म्मका आश्रय लेता है। आत्मरक्षार्थ बड़ी दरकार है कि परम धार्मिक भी ऐसी दशामें अधर्म्मका

आश्रय नहीं छोड़ सकता। महाभारतके रचियताने "अश्वत्थामा हत इति गजः" में * इसका बढ़िया उदाहरण दिया है। बलसे द्रोणाचार्य्यको हरानेमें असमर्थ होकर युधिष्ठिर सरीखे परम धार्म्मिक भी धोखा देनेको तय्यार हो गये।

शिष्य। पुराने समयके लिये यह बात घट सकती है, किन्तु आजकलके सभ्य समाजमें राजा ही सबकी रक्षा करते हैं। अब क्या आत्मरक्षाके लिये सबको उसी तरह समर्थ होना दरकार है?

गुरु। अवश्य ही यह कानून है कि राजा सबकी रक्षा करेंगे। किन्तु मौके पर ऐसा होता नहीं। राजा सबकी रक्षा नहीं कर सकते। कर सकते तो इतनी खूनखराबियां, चोरी डकैतियां दङ्गे फसाद नित्य नहीं होते। पुलिसके विज्ञापन पढ़नेसे विदित हो जायगा कि जो आत्मरक्षामें असमर्थ हैं बहुधा उन्हीं पर ये सब अत्याचार होते हैं। बलवानके सामने कोई नहीं जाता। किन्तु तुम्हें यह भी समझना चाहिये कि आत्मरक्षाकी चर्चा उठाकर मैं केवल अपने शरीर या सम्पत्ति रक्षाकी बात नहीं कहता था। जब तुमसे प्रीतिवृत्तिका अनुशीलन बताऊंगा तब तुम समझोगे कि जैसे आत्मरक्षा हमारा अनुष्ठेय धर्म्म है वैसेही अपने स्त्री पुत्र परिवार स्वजन पड़ोसी आदिकी रक्षा भी हमारा अनुष्ठेय धर्म्म है। जो इसको नहीं करता वह बड़ा ही अधार्म्मिक है। इसलिये जिसको उसके योग्य बल या शारीरिक शिक्षा नहीं हुई वह भी अधार्म्मिक है।

(४) आत्मरक्षा या स्वजनरक्षा करे इस जिक्रसे धर्म्मके चौथे विभागकी बात उठती है। यह तत्त्व बहुत बड़ा है; धर्म्मका सबसे प्रधान अंश है। कितने ही महात्माओंने इस धर्म्मके लिये प्राण तक, प्राण ही क्या सब सुख त्याग दिया है। मैं स्वदेशरक्षाकी बात कह रहा हूं।

अगर आत्मरक्षा और स्वजनरक्षा धर्म्म है तो स्वदेशरक्षा भी

* महाभारतमें "अश्वत्थामा हत इति गजः" नहीं है, "हत कुञ्जरः" है।

धर्म है। समाजके एक एक आदमी जैसे दूसरे आदमीपर सर्वस्व लूट लेनेके लिये हमला करते हैं वैसेही एक एक समाज या देश भी दूसरे समाज या देशपर हमला करता है। मनुष्य जबतक राजा या धर्मके शासनमें नहीं पड़ता तबतक लूटकर खानेका मौका पाने पर नहीं चूकता। जिस समाजमें राजशासन नहीं है उस समाजके आदमी जिसका पाते हैं उसका छीनकर खाते हैं। उसी तरह विविध समाजों पर कोई एक राजा न हो तो जो समाज बलवान होता है वह दुर्बल समाजको लूट खाता है। असभ्य समाजकी बात नहीं कहता, सभ्य युरोपकी यह प्रचलित रीति है। आज फ्रांस जर्मनीका छीन लेता है, कल तुर्क ग्रीसका छीन लेता है, परसों रूस तुर्कका छीन लेता है, आज पोलेण्ड, कल बुलगेरिया, परसों मिसर। इन सबको लेकर युरोपियन सभ्य जातियां कुत्तोंकी तरह छीन झपट मार धाड़ किया करती हैं। जैसे आवारे कुत्ते जिसका जो पाते हैं छीन खाते हैं उसी तरह सभ्य असभ्य सब जातियां दूसरेका पानेपर छीन लेती हैं। बलवान समाज दुर्बल समाज पर हमला करनेकी घातमें हमेशा रहता है। इसलिये देशरक्षा बिना आत्मरक्षा नहीं हो सकती। अगर आत्मरक्षा और स्वजनरक्षा धर्म है तो देशरक्षा भी धर्म है। बल्कि वह और भी बड़ा धर्म है, क्योंकि इसमें अपने और पराये दोनोंकी रक्षा होती है और धर्मोन्नतिका मार्ग साफ होता है। खुलासा समझाता हूं।

कुछ सामाजिक अवस्थाएं धर्मके उपयोगी और कुछ अनुपयोगी हैं। कुछ अवस्थाएं सब वृत्तियोंके अनुशीलन और परितृप्तिके अनुकूल हैं। और कोई कोई कुछ वृत्तियोंके अनुशीलन और परितृप्तिके प्रतिकूल हैं। बहुधा यह प्रतिकूलता राजा या राजपुरुषों द्वारा ही होती है। युरोपकी जिस अवस्थामें प्रोटेष्टाण्ट मतवालोंको राजा आगमें जलाया करते थे वह अवस्था इसका एक उदाहरण है; और इङ्गलैंडका हिन्दूधर्मसे विद्वेष करना दूसरा उदाहरण है। समाजकी जो अवस्था धर्मके अनुकूल है उसको स्वाधीनता कहते हैं। स्वाधीनता देशी बात नहीं है; विलायतसे इसकी आमद हुई है। यह लिबर्टी शब्दका अनुवाद है। इसका यह आशय नहीं है कि

राजा स्वदेशी होना चाहिये। कितने ही समय स्वदेशी राजा स्वाधीनताके शत्रु और विदेशी राजा स्वाधीनताके मित्र होते हैं। इसके बहुतसे उदाहरण दिये जा सकते हैं। यह धर्म्मोन्नतिके लिये बहुत आवश्यक है। इसलिये आत्मरक्षा, स्वजनरक्षा और स्वदेश-रक्षाके लिये शारीरिकी वृत्तियोंका अनुशीलन सबको करना चाहिये।

शिष्य। अर्थात् सबको योद्धा बनाना चाहिये ?

गुरु। इसका यह अर्थ नहीं है कि सबको युद्धका पेशा करना होगा। किन्तु सबको आवश्यकतानुसार युद्ध योग्य होना चाहिये। छोटे छोटे राज्योंमें सब बालिकोंको युद्ध सीखना पड़ता है; नहीं तो सेना इतनी थोड़ी होती है कि बड़ा राजा उन छोटे राज्योंको आसानीसे दबा ले सकते हैं। पुराने ग्रीक नगरमें इसीसे सबको लड़ना पड़ता था। बड़े राज्य या समाजमें युद्ध किसी खास श्रेणीके सपुर्द रहता है। प्राचीन भारतवर्षके क्षत्रिय और बीचके समयके भारतवर्षके राजपूत इसके उदाहरण हैं। किन्तु इसका फल यह होता है कि अगर वह खास श्रेणी हमला करने वालोंसे हार जाय तो फिर देशकी रक्षा नहीं होती। राजपूतोंके हारते ही भारतवर्ष मुसलमानोंके अधिकारमें आ गया। अगर राज-पूतोंके सिवा भारतकी दूसरी जातियां भी युद्ध करना जानतीं तो भारतवर्षकी वह दुर्दशा नहीं होती। सन् १७८३ ईस्वीमें फ्रांसके सब बालिग पुरुषोंने अस्त्र धारण कर समूचे युरोपको हरा दिया था। यदि वे ऐसा न करते तो फ्रांसकी बड़ी दुर्दशा होती।

शिष्य। किस प्रकारके शारीरिक अनुशीलनसे यह धर्म्म सम्पन्न हो सकता है ?

गुरु। केवल बलसे नहीं हो सकता। गंवारोंके साथ लड़नेके लिये केवल शारीरिक बल ही काफी है; किन्तु वर्त्तमान शताब्दीमें शारीरिक बलकी अपेक्षा शारीरिक शिक्षा ही अधिक दरकार है। आजकल पहले शारीरिक बल और रग पुट्ठे आदिकी पुख्तगीके लिये कसरत दरकार है। इस देशमें डण्ड कुश्ती मुग्दर आदि तरह तरहकी कसरतोंका रिवाज था। नहीं जानते क्यों अङ्गरेजी सभ्य-

तामें पड़कर हम लोगोंने इन कसरतोंको छोड़ दिया। हमारी बुद्धिके फेरका यह उदाहरण है।

दूसरा और मुख्य शारीरिक अनुशीलन शस्त्र शिक्षा है। सबको सब तरहके हथियार चलानेमें चतुर होना चाहिये।

शिष्य। किन्तु आजकलके कानूनसे तो हमें हथियार रखना मना है।

गुरु। यह कानूनकी भूल है। हम लोग महाराजकी राजभक्त प्रजा हैं, हमारा उद्देश्य यही है कि शस्त्र धारण कर हम उनके राज्यकी रक्षा करें। आईनकी भूल पीछे सुधारी जा सकती है।

इसके बाद अस्त्र शिक्षाके सिवा शारीरिक धर्म्म पूरा करनेके लिये और कुछ शारीरिक शिक्षा दरकार है। जैसे घोड़े पर चढ़ना, युरोपमें जो आदमी घोड़े पर नहीं चढ़ सकता और जिसने अस्त्र चलाना नहीं सीखा समाजमें उसकी हंसी होती है। विलायती स्त्रियोंमें भी ये शक्तियां होती हैं। हमारी क्या ही दुर्दशा है!

घोड़े पर चढ़नेकी तरह दूर तक पैदल चलना और तैरना भी शारीरिक धर्म्मशिक्षा है; योद्धाका काम तो इनके बिना चल ही नहीं सकता, परन्तु केवल योद्धाके लिये ही इनकी जरूरत न समझना। जो तैरना नहीं जानता वह जलसे अपनी और दूसरोंकी रक्षा नहीं कर सकता। युद्धके समय केवल जलसे अपनी और दूसरोंकी रक्षाके लिये ही यह जरूरी नहीं है; चढ़ाई करने, चढ़ाई रोकने और भागनेके लिये भी अक्सर इनकी जरूरत पड़ती है। और पैदल दूर तक जाना तो जरूरी है ही। मनुष्य मात्रके लिये यह बहुत जरूरी है।

शिष्य। इसलिये जो शारीरिक वृत्तियोंका अनुशीलन करेगा उसका केवल शरीर पुष्ट और बलवान होनेसे ही नहीं बनेगा। उसका कसरतमें कुश्ती—

गुरु। इस कसरतमें कुश्ती लड़नेको भी शामिल रखना होगा। यह बहुत बढ़ानेवाली कसरत है। आत्मरक्षा और परोपकारके लिये बड़े कामकी है।*

शिष्य। इसलिये चाहिये शरीर पुष्टि, कसरत, कुश्ती, अस्त्र-शिक्षा, घोड़े पर चढ़ना, तैरना, दूर तक पैदल चलना—

गुरु। और चाहिये सहिष्णुता। सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, थकावट आदि सबको सहनेकी शक्ति चाहिये। इसके सिवा योद्धाके लिये कुछ और भी चाहिये। जरूरत पड़ने पर मट्टी खोद सके, घर उठा सके, बोझ ढो सके। अक्सर सैनिकोंको दस बारह दिनका भोजन अपने पीठ पर लादकर ले जाना पड़ता है। खुलासा यह है कि जो लुहार अपनी विद्या जानता है वह जैसे हथियारको तेज कर शान देकर सब चीजें काटने योग्य बना लेता है वैसे ही शरीरको एक तेज अस्त्र बनाना होगा जिससे सब काम पूरा हो।

शिष्य। किस उपायसे ऐसा हो सकता है?

गुरु। इसके उपाय (१) कसरत (२) शिक्षा (३) आहार और (४) इन्द्रिय संयम है; चारो ही अनुशीलन हैं।

शिष्य। इनमेंसे कसरत और शिक्षाके विषयमें आपका उपदेश सुन चुका। किन्तु आहारके विषयमें कुछ पूछना है। वाचस्पतिजीके साग भातकी बात याद कीजिये। क्या उतना ही भोजन करना धर्म्मकी आज्ञा है? क्या उससे अधिक खाना अधर्म्म है? आपने तो ऐसा ही कहा था।

गुरु। मैंने कहा है कि शरीरकी रक्षा और पुष्टिके लिये अगर वही काफी हो तो उससे अधिक चाहना अधर्म्म है। यह बात वैज्ञानिक लोग बतावेंगे कि शरीरकी रक्षा और पुष्टिके लिये कैसा आहार चाहिये; धर्म्मोपदेशकका यह काम नहीं है। शायद वे लोग कहेंगे कि साग भात शरीरकी रक्षा और पुष्टिके लिये काफी नहीं है। कोई यह भी कह सकता है कि वाचस्पतिजी सरीखे जो लोग सिर्फ बैठे बैठे दिन काटते हैं उनके लिये वही काफी है। जो हो उस बखेड़ेसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। वैज्ञानिकका काम वैज्ञानिक

कुमारी अनुशीलनके उदाहरण स्वरूप बनायी गयी है। इसीसे स्त्री होने पर भी उसको लड़ना सिखाया गया है।

लनमें कुछ विरोध पड़ता है। सब जीवोंपर प्रीति हिन्दूधर्म्मका सार तत्त्व है। अनुशीलन तत्त्वमें भी यही बात है। अनुशीलन हिन्दू धर्म्मके अन्तर्गत है, अलग नहीं है। शायद इसीसे हिन्दूशास्त्रकारोंने मछली मांस खानेसे निषेध किया है। किन्तु इसके भीतर और एक बात है। मछली मांस न खानेसे शारीरिक वृत्तियोंमें पूरी फुर्ती आती है कि नहीं? यह बात वैज्ञानिकोंके विचारनेकी है। अगर विज्ञान-शास्त्र कहे कि न खानेसे पूरी फुर्ती नहीं आती तब प्रीतिवृत्तिकी अनुचित वृद्धि होती है, सामञ्जस्य बिगड़ जाता है। ऐसी अवस्थामें मछली मांस खाना चाहिये। परन्तु इस बातका विचार विज्ञानके ऊपर है। पहले ही कह चुका हूं कि धर्म्मोप-देशकको वैज्ञानिकका आसन लेना उचित नहीं है।

शारीरिक वृत्तियोंके अनुशीलनकी जरूरी चीजोंमें (१) व्याय-ाम (२) शिक्षा और (३) आहारका जिक्र कर चुका। अब (४) इन्द्रिय संयमके विषयमें भी एक बात कहनी चाहिये। शायद

करना है, वह शिक्षा अधूरी है; इसलिये धर्म विरुद्ध है। पाठशालामें पढ़नेसे ही लड़का मनुष्य नहीं बनता। और कई पोथियां पढ़नेसे भी पण्डित नहीं होता, पाण्डित्यके विषयमें यह रिवाज बड़ी हानि पहुंचा रहा है।

नवां अध्याय—ज्ञानार्ज्जनी वृत्तियां।

——:0:——

शिष्य। शारीरिक वृत्तियोंके अनुशीलनके विषयमें कुछ उपदेश पाया है। अब ज्ञानार्ज्जनी वृत्तियोंके अनुशीलनके बारेमें कुछ सुनना चाहता हूं। मैंने जो कुछ समझा है वह यही है कि दूसरी वृत्तियोंकी तरह इन वृत्तियोंके अनुशीलनमें सुख है, वही धर्म है। इसलिये ज्ञानार्ज्जनी वृत्तियोंका अनुशीलन और ज्ञान प्राप्त करना होगा।

गुरु। यह पहली आवश्यकता है। दूसरी आवश्यकता यह है कि ज्ञान प्राप्त किये बिना दूसरी वृत्तियोंका अनुशीलन भलीभांति नहीं किया जा सकता। शारीरिक वृत्तियोंके उदाहरणसे यह बात समझा चुका हूं। इसके सिवा तीसरी आवश्यकता भी है और यह शायद सबसे बड़ी है। ज्ञानके बिना ईश्वर जाना नहीं जाता। ईश्वरकी विधिपूर्वक उपासना नहीं की जा सकती।

शिष्य। तो क्या मूर्खोंमें ईश्वरोपासना नहीं है? ईश्वर क्या केवल पण्डितोंके लिये हैं?

गुरु। मूर्खोंमें ईश्वरोपासना नहीं है। यह कहना भी अनुचित नहीं होगा कि मूर्खोंमें धर्म नहीं है। पृथिवी पर जान बूझकर किये हुए जितने पाप देखनेमें आते हैं वे प्रायः सभी मूर्खों द्वारा होते हैं। परन्तु, एक भूल सुधारे देता हूं। जो पढ़ना लिखना नहीं जानता उसीको मूर्ख मत समझना। और जो पढ़ना लिखना जानता है

उसीको ज्ञानी मत समझ लेना। ज्ञान पुस्तक पढ़नेके सिवा और तरहसे भी प्राप्त हो सकता है; ज्ञानार्ज्जनी वृत्तियोंका अनुशीलन विद्यालयके सिवा दूसरी जगह भी हो सकता है। हमारे देशकी पुराने समयकी स्त्रियां इसका उत्तम उदाहरण हैं। उनमेंसे प्रायः कोई पढ़ना लिखना नहीं जानती थीं; किन्तु उनके समान धार्म्मिक भी पृथिवी पर मिलना दुर्लभ है। परन्तु वे चाहे पुस्तकें न पढ़ें, मूर्ख नहीं थीं। हमारे देशमें ज्ञान प्राप्त करनेके कई उपाय थे, जो अब लुप्तप्राय हो गये हैं। कथा बांचना उनमेंसे एक है। पुरानी स्त्रियां पण्डितोंके मुंहसे पुराण और इतिहास सुनती थीं। पुराण और इतिहासोंमें अनन्त ज्ञानका भण्डार है। उनके सुननेसे उनकी ज्ञानार्ज्जनी वृत्तियां परिमार्जित और परितृप्त होती थीं। इसके सिवा हमारे देशमें हिन्दूधर्म्मकी महिमासे पीढ़ी दर पीढ़ी एक अपूर्व ज्ञानकी धारा चली आती थी। वे उसकी अधिकारिणी थीं। इन सब उपायोंसे वे शिक्षित बाबुओंसे बहुत बातें अच्छी तरह जानती थीं। उदाहरणके लिये अतिथि-सत्कारको लो। अतिथि-सत्कारकी महिमा ज्ञानसे जानी जाती है; जगत्की रक्षाके साथ इसका विशेष सम्बन्ध है। हमारा शिक्षित दल अतिथिका नाम सुनते ही जल उठता है; भिखारीको देखते ही लाठी लेकर दौड़ता है। किन्तु इन लोगोंको जो ज्ञान नहीं है वह पुरानी स्त्रियोंमें था; वे अतिथि-सत्कारकी महिमा समझती थीं। ऐसे सैकड़ों उदाहरण दिये जा सकते हैं। इसलिये इस विषयमें यही कहना होगा कि निरक्षर प्राचीन स्त्रियां ज्ञानी थीं और हमारा शिक्षित-दल अज्ञान है।

है। इसी विश्वासका फल वर्तमान शिक्षाप्रणाली है। इस शिक्षाप्रणालीमें तीन बड़े बड़े दोष हैं। मनुष्यत्व तत्त्वपर ध्यान देनेसे ही उन दोषोंका पता लगाकर उनके दूर करनेका उपाय किया जा सकता है।

शिष्य। वे दोष क्या क्या हैं?

गुरु। पहला दोष ज्ञानार्ज्जनी वृत्तियोंकी ओर ही अधिक ध्यान और कार्य्यकारिणी या चित्तरञ्जिनीकी ओरसे लापरवाही है।

इसी रिवाजके अनुसार आजकलके शिक्षक शिक्षालयोंमें शिक्षा देते हैं। इन्हींसे इस देशमें और युरोपमें इतना नुकसान हो रहा है। इस देशके पढ़े लिखे लोग अमानुष होते हैं; तर्कपटुता वाग्मीता या सुलेखकता—यही अङ्गरेजी पढ़नेवालोंकी परमोन्नति है। इसीके प्रभावसे युरोपके किसी प्रदेशके आदमी केवल शिल्पकुशल, अर्थलोलुप और स्वार्थी होते हैं; किसी प्रदेशमें युद्धप्रिय, परधनहारी पिशाच पैदा होते हैं। इसीके प्रभावसे युरोपमें इतने युद्ध होते हैं, दुर्बल इतने सताये जाते हैं। शारीरिकी वृत्ति, कार्य्यकारिणी वृत्ति, मनोरञ्जिनी वृत्ति इत्यादि सबका सामञ्जस्य रखकर जिस बुद्धिवृत्तिका अनुशीलन होता है वही मङ्गलदायक है; उनसे लापरवाही और बुद्धिवृत्तिकी अनुचित स्फूर्त्ति मङ्गलदायक नहीं है। हमारे साधारण लोगोंका धर्म्म सम्बन्धी विश्वास ऐसा नहीं है। हिन्दुओंके पूजनीय देवताओंकी प्रधानता, रूपवान चन्द्रमा या बलवान कार्त्तिकेयको नहीं दी गयी है; बुद्धिमान बृहस्पति या ज्ञानी ब्रह्माको अर्पित नहीं हुई है; रसज्ञ गन्धर्वराज या वाग्देवीमें नहीं है। केवल उन्हीं सर्वाङ्ग-सम्पन्न अर्थात् सर्व अङ्गोंसे पूर्ण षड़ैश्वर्य्य-शाली विष्णुमें है। अनुशीलन नीतिकी स्थूल गांठ यही है कि सब प्रकारकी वृत्तियोंका परस्पर सामञ्जस्य रखकर अनुशीलन हो, कोई किसीको कम करके अनुचित रूपसे न बढ़ने पावे।

शिष्य। यह तो हुआ एक दोष। और?

गुरु। वर्त्तमान शिक्षाप्रणालीकी दूसरी भूल यह है कि सबको एक एक या खास खास विशेषत्वमें प्रवीण होना पड़ता है—सबको सब विषय सीखनेकी दरकार नहीं है। जिससे बने वह अच्छी तरह

विज्ञान सीखे, उसको साहित्यकी दरकार नहीं है। जिससे बने वह साहित्य भलीभांति सीखे, उसको विज्ञानकी दरकार नहीं। इस दशामें सब मानसिक वृत्तियोंकी स्फूर्ति और पूर्णता कहांसे हो? सभी अधूरे आदमी बनें तो पूरे आदमी कहां मिलें? जो विज्ञानमें चतुर है किन्तु काव्यरसादिके स्वादसे वञ्चित है वह केवल आधा आदमी है। अथवा जो सौन्दर्य्यप्रेमी सर्वसौन्दर्य्यका रसग्राही है, किन्तु जगत्के अपूर्व वैज्ञानिक तत्त्वको नहीं जानता वह भी अधूरा आदमी है। दोनों ही मनुष्यत्वविहीन हैं; इसलिये धर्म्मसे पतित हैं। जो क्षत्रिय युद्धविशारद है, किन्तु राजधर्म्ममें अनभिज्ञ है अथवा जो क्षत्रिय-धर्म्म जानता है किन्तु रणविद्यामें अनभिज्ञ है, वह हिन्दू शास्त्रानुसार धर्म्मच्युत है। वैसेही ये लोग भी धर्म्मच्युत हैं—यही असली हिन्दूधर्म्मका मर्म्म है।

शिष्य। आपकी धर्म्मव्याख्याके अनुसार सबको सब कुछ सीखना होगा।

गुरु। नहीं, ठीक ऐसा नहीं है। सबको सब मनोवृत्तियां संकर्षित करनी होंगी।

शिष्य। यही सही, किन्तु ऐसा सब सबसे हो सकता है? सबकी सब वृत्तियां एक समान तेजस्विनी नहीं होतीं। किसीकी विज्ञानानुशीलनी वृत्तियां अधिक तेजस्विनी होती हैं, साहित्यानुगामिनी वृत्तियां उसकी वैसी नहीं होतीं। विज्ञानका अनुशीलन करनेसे वह एक बड़ा भारी वैज्ञानिक हो सकता है; किन्तु साहित्यके अनुशीलनसे उसको कुछ फल नहीं मिलता, ऐसी दशामें क्या उसको साहित्य और विज्ञानमें एक समान मन लगाना चाहिये?

गुरु। [illegible] विचार करते समय जो कुछ कहा है उसको याद करो। वहीं इसका उत्तर है। अब तीसरा दोष सुनो।

ज्ञानार्जनी वृत्तियोंके सम्बन्धमें एक बड़ी भारी भूल यह है कि संकर्षण अर्थात् शिक्षाका उद्देश्य ज्ञानार्जनी वृत्तियोंकी स्फूर्ति मात्र नहीं है। अगर कोई [illegible] पर पेट भर भोजन मिलनेके लिये [illegible] हो, मगर उसकी कुछ [illegible] शक्तिकी ओर कुछ ख्याल न रहे तो यह [illegible] है वैसे ही इन ज्ञानार्जनी

शिक्षक भी भ्रान्त हैं। जैसे उस वैद्यकी चिकित्साका फल अजीर्ण और रोगवृद्धि है वैसे ही इस ज्ञानार्ज्जन-वाणिज्यग्रस्त शिक्षकोंकी शिक्षाका फल मानसिक अजीर्ण अर्थात् सब वृत्तियोंकी अवनति है। रटो, घोखो, कि जिससे पूछते ही धड़धड़ाकर कह सको। इसके बाद बुद्धि तेज हुई या सूखी लकड़ी खाते खाते निस्तेज हो गयी, अपनी शक्ति अवलम्बन करनेवाली नयी या पुरानी-पुस्तकोंके प्रणेता और समाजके शासनकर्त्ता रूपी बूढ़ी दादियोंका आंचल पकड़कर चली, ज्ञानार्ज्जनी वृत्तियां बूढ़े बच्चेकी तरह केवल खिला देनेसे ही निगलने लायक हुई या स्वयं आहार ढूंढ़ने योग्य हुई, इस विषयकी चिन्ता कोई भूलसे भी नहीं करता। ये सब शिक्षित-गर्दभ ज्ञानका बोझ पीठ पर लादकर व्याकुल चित्तसे घूमते हैं, विस्मृति नामक करुणामयी देवी आकर जब बोझ उतार लेती है तब झुण्डमें मिल-कर आनन्दसे घास चरा करते हैं।

शिष्य। हमारे देशके शिक्षित समाज पर आपकी इतनी नाराजी क्यों है?

गुरु। मैं केवल अपने देशके शिक्षित-समाजकी बात नहीं कहता था। आजकलके अङ्गरेजोंकी शिक्षा भी ऐसी ही है। हम लोग जिन हुजूरोंकी नकल करके जन्मसार्थक करना चाहते हैं उनकी बुद्धि भी सङ्कीर्ण और ज्ञान कष्टदायक है।

शिष्य। अङ्गरेजोंकी बुद्धि सङ्कीर्ण है। आप क्षुद्र बङ्गाली होकर इतनी बड़ी बात कहनेका साहस करते हैं? फिर ज्ञान कष्ट-दायक है?

गुरु। एक एक करके, भैया! अङ्गरेजोंकी बुद्धि सङ्कीर्ण है, यह बात क्षुद्र बङ्गाली होकर कहता हूं। मैं गोष्पद होनेसे गड्ढेको समुद्र कहूंगा ऐसा नहीं हो सकता। जिस जातिने एक सौ बीस (अब डेढ़ सौ) वर्षों तक भारतवर्ष पर हुकूमत करके भारतवासियोंके विषयमें एक बात भी नहीं समझी, उनके चाहे लाखों गुण मान लूंगा, किन्तु, उनको बड़ी बुद्धि वाले नहीं कह सकता। इस बातको बहुत बढ़ानेकी दरकार नहीं है, कड़वा हो जायगा। अलबत्ते यह बात स्वीकार कर लेता हूं कि अङ्गरेजोंकी अपेक्षा भी सङ्कीर्ण मार्गमें

बङ्गालियोंकी बुद्धि जा रही है। मुक्तकण्ठसे स्वीकार करता हूं कि अङ्गरेजोंकी शिक्षाकी अपेक्षा भी हमारी शिक्षा निकृष्ट है। किन्तु हमारी इस कुशिक्षाकी जड़ युरोपका दृष्टान्त है। हमारी प्राचीन शिक्षा चाहे और भी निकृष्ट रही हो किन्तु इसीसे वर्त्तमान शिक्षाको उत्तम नहीं कह सकता। एक उज्र दूर हुआ तो?

शिष्य। यह अभीतक समझमें नहीं आया कि ज्ञान कष्टदायक है।

गुरु। ज्ञान स्वास्थ्यकर है और कष्टदायक भी है। आहार स्वास्थ्यकर है और अजीर्ण होने पर कष्टदायक है। अजीर्ण ज्ञान कष्टदायक है अर्थात् कुछ बातें जान गया हूं किन्तु जो कुछ जाना है उन सबका क्या सम्बन्ध है, उसके सम्बन्धका क्या फल है, यह कुछ नहीं जानता; उसमें बहुतसे निराश जलते हैं, केवल सीढ़ी पर भ्रान्त रहते हैं। अज्ञान-रोगग्रस्त आदमी नहीं जानते कि इस ज्ञानसे क्या करना होता है। एक अंगरेजने स्वदेशसे नये आकर एक बाग खरीदा था। मालीने बागसे नारियल तोड़कर साहबको उपहार दिया। साहबने उसका छिलका खानेके बाद उसे बेस्वाद कह-कर फेंक दिया। मालीने सिखाया—"साहब! छिलका नहीं खाया जाता, गरी खायी जाती है।" इसके बाद आम आया, साहबने मालीकी बात याद कर छिलका वगैरह फेंककर गुठली खायी। देखा कि इस बार भी उतना स्वाद नहीं आया। मालीने कहा—"साहब! केवल छिलका फेंककर गूदा, गुठली काटकर खाना होता है।" साहबको यह बात याद रही, अनानास आया। साहबने उसका छिलका फेंककर गूदा खाया। पीछे तकलीफसे हैरान होकर मालीको बहुत मारा और बागको कानी कौड़ीपर बेच दिया। शिक्षितोंके मानस-क्षेत्र इस बागकी तरह फल और फूलोंसे लदे होते हैं; परन्तु वे उन्हें भोग नहीं सकते। वे, छिलकेकी जगह—गरी और गरीकी जगह छिलका खाकर बैठे रहते हैं। ऐसा ज्ञान विडम्बना मात्र है।

शिष्य। तो क्या ज्ञानार्जनी वृत्तियोंके अनुशीलनके लिये दरकार नहीं?

गुरु। पागल! अस्त्रको तेज करनेके लिये क्या शून्यपर शान धराया जाता है? ज्ञेय वस्तुके बिना किसपर अनुशीलन करोगे? ज्ञानार्ज्जनी वृत्तियोंके अनुशीलनके लिये ज्ञानार्ज्जनकी अवश्य दरकार है। परन्तु मैं यह समझाना चाहता हूं कि ज्ञानार्ज्जन जैसे अनुशीलनका उद्देश्य है वैसे ही वृत्तियोंका विकाश भी उसका मुख्य उद्देश्य है। और यह भी याद रखना होगा कि ज्ञान प्राप्त करनेमें ही ज्ञानार्ज्जनी वृत्तियोंकी परितृप्ति है। अतएव परम उद्देश्य ज्ञानार्ज्जन है, किन्तु जो अनुशीलन प्रथा जारी है उससे पेट बड़ा न होनेपर भी आहार ठूस दिया जाता है। हाजमा शक्तिको बढ़ानेकी ओर दृष्टि नहीं, भूख बढ़ानेकी ओर नजर नहीं, आधार बढ़ानेकी ओर दृष्टि नहीं, किन्तु ठूसते गये। जैसे कुछ अबोध मातायें योंही बच्चोंकी शारीरिक अवनति करती हैं वैसे ही आज कलके पिता और शिक्षक पुत्र और छात्रोंकी अवनति करते हैं।

ज्ञानार्ज्जन धर्म्मका एक प्रधान अंश है। किन्तु आजकल इस विषयमें ये तीन सामाजिक पाप मौजूद हैं। धर्म्मका असली तात्पर्य्य समाजमें जब लिया जायगा तब यह कुशिक्षा रूपी पाप समाजसे दूर होगा।

दूसरा अध्याय—मनुष्य पर भक्ति।

—:0:—

शिष्य। सुख सब वृत्तियोंकी पूरी स्फूर्त्ति, पूर्णता, सामञ्जस्य और चरितार्थता है। वृत्तियोंकी पूरी स्फूर्त्ति, पूर्णता और सामञ्जस्यमें मनुष्यत्व है। वृत्तियां शारीरिकी, ज्ञानार्ज्जनी, कार्य्यकारिणी और चित्तरञ्जिनी हैं। उनमेंसे शारीरिकी और ज्ञानार्ज्जनी वृत्तियोंकी अनुशीलन-विधिके विषयमें कुछ उपदेश पा चुका हूं। दूसरी कार्य्यकारिणी वृत्तियोंका अनुशीलन क्या है, यह भी सामञ्जस्य समझनेके समय भय, क्रोध, लोभ इत्यादिके उदाहरणसे समझा है।

बुरी कार्यकारिणी वृत्तियोंके विषयमें, शायद आपको और कुछ उपदेश देना नहीं है, यह भी समझा है। किन्तु यह सब तो अनुशीलन तत्त्वका मामूली अंश है। बाकी जो सुनने योग्य है उसे सुनना चाहता हूं।

गुरु। अब वैसी वृत्तियोंकी चर्चा करूंगा जिनको कार्यकारिणी वृत्तियोंमें लोग उत्तम कहते हैं। वृत्तियोंको जिस विचारसे घटिया या बढ़िया कहते हैं उस विचारसे ये दो वृत्तियां, भक्ति और प्रीति सबसे बढ़िया हैं।

शिष्य। भक्ति और प्रीति क्या दोनों एक वृत्ति नहीं हैं? प्रीति ईश्वरमें लगानेपर ही वह भक्ति हो जाती है न?

गुरु। अगर ऐसा कहना चाहते हो तो उसमें मुझे इस समय कुछ उज्र नहीं है; किन्तु अनुशीलनके लिये दोनोंको अलग अलग समझना ही अच्छा है। विशेषकर यह बात नहीं है कि ईश्वरमें लगायी हुई प्रीति ही भक्ति है। मनुष्य—जैसे राजा, गुरु, पिता, माता, स्वामी प्रभृति भी भक्तिके पात्र हैं। और ईश्वरमें भक्ति हुए बिना भी प्रीति पैदा हो सकती है।

किन्तु अभी ईश्वर-भक्तिकी बात रहे। पहले मनुष्य-भक्तिकी बात कही जाय। जो हमसे श्रेष्ठ हैं और जिनकी श्रेष्ठतासे हमारा उपकार होता है, वेही भक्तिके पात्र हैं। भक्तिकी सामाजिक आवश्यकता यह है कि (१) भक्तिके बिना बुरा कभी भलेका अनुगामी नहीं होता, (२) बुरा भलेका अनुगामी न हो तो समाजका ऐक्य नहीं रहता, बन्धन नहीं रहता, उन्नति नहीं होती।

देखना चाहिये कि मनुष्योंमें कौन कौन भक्तिके पात्र हैं। (१) पिता माता भक्तिके पात्र हैं। यह समझाना नहीं पड़ेगा कि वे हमसे श्रेष्ठ हैं। (२) गुरु ज्ञानमें श्रेष्ठ हैं, हमारे ज्ञानदाता हैं, इसलिये वे भी भक्तिके पात्र हैं। इनके बिना मनुष्यका मनुष्यत्व ही असम्भव है; यह बात ज्ञानार्जनी वृत्तियोंकी आलोचनामें बता चुका हूं। इसलिये गुरु विशेष प्रकारसे भक्तिके पात्र हैं। हिन्दू धर्म सर्व-सम्पन्न है, इसीलिये हिन्दू-धर्ममें गुरुभक्तिपर विशेष दृष्टि रखी गयी है। (३) पुरोहित। यद्यपि जो ईश्वरसे हमारा मङ्गल मनाते हैं,

हमारा पूरा हित चाहते हैं और हमारी अपेक्षा धर्मात्मा और पवित्रस्वभाव हैं, वेभी भक्तिके पात्र हैं ; जो केवल दक्षिणाके लिये पुरोहित हैं वे भक्तिके पात्र नहीं हैं। स्वामी सब विषयोंमें स्त्रीसे श्रेष्ठ हैं, वे भक्तिके पात्र हैं। हिन्दूधर्म्म यह भी कहता है कि स्त्रीका भी स्वामीकी भक्तिका पात्र होना उचित है क्योंकि हिन्दूधर्म्म कहता है, स्त्रीको लक्ष्मीके समान जानना। किन्तु यहां हिन्दूधर्म्मकी अपेक्षा कोमत् धर्म्मकी उक्ति कुछ अधिक स्पष्ट और श्रद्धाके योग्य है। जहां स्त्री स्नेह, धर्म्म या पवित्रतामें श्रेष्ठ है वहां उसका भी स्वामीकी भक्तिका पात्र होना उचित है। गृहधर्म्ममें स्त्रियां भक्तिके पात्र हैं। जो उनके स्थानीय हैं वे भी उसी प्रकार भक्तिके पात्र हैं ; घरमें जो स्त्रियां नीचेके दरजेकी हैं वे यदि भक्तिके पात्रोंपर भक्ति न करें, यदि पिता मातापर पुत्र कन्या या सास ससुर पर बहू भक्ति न करे, यदि स्वामीपर स्त्री भक्ति न करे, यदि स्त्रीसे स्वामी घृणा करे, यदि शिक्षादातासे छात्र घृणा करे तो उस घरमें कुछ भी उन्नति नहीं है—वह घर नरकके समान है। यह बात परिश्रमसे समझानी नहीं पड़ेगी, प्रायः स्वयंसिद्ध है। इन सब भक्तिके पात्रोंपर उचित भक्ति पैदा करना अनुशीलनका एक मुख्य उद्देश्य है। हिन्दूधर्म्मका भी यही उद्देश्य है। बल्कि दूसरे धर्म्मोंकी अपेक्षा इस विषयमें हिन्दूधर्म्मकी प्रधानता है। हिन्दूधर्म्मके पृथिवी भरमें श्रेष्ठ धर्म्म होनेका यह एक प्रबल प्रमाण है।

(२) अब विचार कर देखो कि गृहस्थ परिवारका जो गठन है वही समाजका गठन है। घरके मालिककी तरह, पिता माताकी भांति राजा उस समाजका सिर है। उसके गुणसे, उसके दण्डसे, उसके पालनसे समाज रक्षित होता है। पिता जैसे सन्तानके भक्तिपात्र हैं वैसे ही राजा भी प्रजाके भक्तिपात्र हैं। प्रजाकी भक्तिसे ही राजा शक्तिमान है, नहीं तो राजाकी अपनी भुजामें कितना बल है? राजाके बलशून्य होनेसे समाज नहीं रहता, इसलिये राजापर समाजके पिताके तुल्य समझकर भक्ति करना। लार्ड रिपनके लिये जैसा उत्साह और उत्सव देखा गया है वैसे ही तथा दूसरे अच्छे उपायोंसे राजभक्तिका अनुशीलन करना। युद्धके सम-

यमें राजाका सहाय होना। हिन्दूधर्म्ममें बार बार राजभक्तिकी प्रशंसा है। विलायती धर्म्ममें हो चाहे न हो, विलायती सामाजिक नीतिमें राजभक्तिका बड़ा ऊंचा दरजा था। वहां अब राजभक्तिका वह दरजा नहीं है। जहां है—जैसे जर्मनी या इटली, वहां राज्य उन्नतिशील है।

शिष्य। यह युरोपियन राजभक्ति मुझे बड़ी विचित्र वस्तु विदित होती है। लोगोंका रामचन्द्र या युधिष्ठिर जैसे राजा पर भक्ति करना समझ सकता हूं, अकबर या अशोकपर भक्ति करना भी एक तरहसे समझ गया हूं, किन्तु दूसरे चार्लस या पन्द्रहवें लुईसे जैसे राजापर जैसी राजभक्ति होती है उससे बढ़के मनुष्यके अधःपतनका चिन्ह और क्या हो सकता है?

उसके प्रतिनिधिस्वरूप राजपुरुषगण भी यथायोग्य सम्मानके पात्र हैं। किन्तु वे जबतक अपने अपने राजकाजमें नियुक्त रहते हैं और धर्मसे यह काम करते हैं तभी तक वे सम्मानके पात्र हैं। उसके बाद वे मामूली आदमी हैं।

राजपुरुषोंपर यथायोग्य भक्ति अच्छी है; किन्तु अति किसीबातमें अच्छी नहीं है क्योंकि अति असामञ्जस्यका कारण है। राजा समाजके प्रतिनिधि और राजपुरुष समाजके नौकर हैं—यह बात किसीको भूलना नहीं चाहिये। हमारे देशके लोग यह बात भूलकर राजपुरुषोंकी बेहद खुशामद किया करते हैं।

(३) राजासे भी बढ़कर, जो समाजके शिक्षक हैं वे भक्तिके पात्र हैं। घराऊ गुरुकी बात घरवाली भक्तिके पात्रोंके साथ कही है, किन्तु ये गुरु केवल गृहस्थ्य गुरु ही नहीं, सामाजिक गुरु भी हैं। जो विद्या और बुद्धिसे परिश्रम सहित समाजको शिक्षा देते हैं वेही समाजके सच्चे नेता हैं, वेही यथार्थ राजा हैं। इसलिये धर्म्मवेत्ता, विज्ञानवेत्ता, नीतिवेत्ता, दार्शनिक, पुराणवेत्ता, साहित्यकार, कवि प्रभृतिके प्रति यथोचित भक्तिका अनुशीलन करना उचित है। पृथिवी पर जो कुछ उन्नति हुई है वह उन्हीं लोगोंसे हुई है। वे पृथिवीको जिस रास्तेसे चलाते हैं उसी रास्ते पृथिवी चलती है। वे राजाओंके भी गुरु हैं। राजा उनसे शिक्षा पानेपर समाज-शासनमें समर्थ होते हैं। इसी बातसे भारतीय ऋषियोंकी सृष्टि है—इसीसे व्यास, वाल्मीकि, वशिष्ठ, विश्वामित्र, मनु, याज्ञवल्क्य, कपिल, गौतम—समस्त भारतवर्षके पूज्यपाद पिता स्वरूप हैं। युरोपमें भी गलीलियो, न्यूटन, कान्त, कोमत, दान्ते, शेक्सपियर प्रभृति उसी स्थान पर हैं।

शिष्य। आपकी बातका क्या यही तात्पर्य्य समझना होगा कि जिनसे मैं जितना उपकार पाऊं उनपर उतनी ही भक्ति रखूं?

गुरु। नहीं। भक्ति कृतज्ञता नहीं है। कितनी ही बार नीचका भी कृतज्ञ होना पड़ता है। भक्ति अपनी उन्नतिके लिये है। जिसमें भक्ति नहीं है उसके चरित्रको उन्नति नहीं होती।

इन लोकशिक्षकोंके प्रति जिस भक्तिकी बात कही है उसीको उदाहरण मानकर समझो। तुम किसी लेखककी बनायी पुस्तक पढ़ते हो। अगर उस लेखक पर तुम्हारी भक्ति न हो तो उस पुस्तकसे तुम्हें कुछ लाभ नहीं होगा। उनके दिये हुए उपदेशोंका कुछ भी असर तुम्हारे चरित्र पर नहीं पड़ेगा। उनका मतलब तुम नहीं निकाल सकोगे। ग्रंथकारके साथ सहृदयता न होनेसे उसको बातका तात्पर्य्य समझमें नहीं आता। इसलिये जगत्‌के शिक्षकों पर भक्ति न रहनेसे शिक्षा नहीं होती। यह शिक्षा ही सब उन्नतिकी जड़ है; इसलिये भक्तिके बिना उन्नति भी नहीं होती। अतएव यथोचित भक्तिका अनुशीलन परम धर्म्म है।

शिष्य। यह धर्म्म तो आपके प्रशंसित हिन्दुधर्म्ममें नहीं है?

गुरु। यह बड़ी मूर्खताकी बात है। परन्तु हिन्दुधर्म्म इस बातको जितना अधिक सिखाता है उतना और कोई धर्म्म नहीं सिखाता। हिन्दुधर्म्ममें ब्राह्मण सबके गुरु हैं। उनके पद सबोंमें श्रेष्ठ और लोकके लिये उनके प्रति विशेष भक्तिका आदेश होनेका यही कारण है कि ब्राह्मण ही भारतवर्षमें सामाजिक शिक्षक थे। वे धर्म्मवेत्ता थे, वेही दार्शनिक थे, वेही साहित्यप्रणेता थे, वेही कवि थे, इसलिये हिन्दुधर्म्मके अनन्त ज्ञानी उपदेशकोंने उन्हें लोगोंकी असीम भक्तिका पात्र बनाया है। समाजके शिक्षकों पर इतनी भक्ति करनेसे ही भारतवर्ष थोड़े समयमें इतना उन्नत हुआ था। समाज शिक्षकोंके पूर्ण रूपसे वशीभूत था। इसीसे समाज उन्नत हुआ था।

जीविकाके अधिकारी नहीं है। जो जीविका ब्राह्मणोंने चुनकर अपने लिये रखी, वह क्या है? जिससे बढ़कर दुःखकी कोई और जीविका नहीं है, जिससे बढ़कर और किसीमें दरिद्रताका लक्षण नहीं है वही—भिक्षा उनकी जीविका है। ऐसी निःस्वार्थ उन्नतचित्त मनुष्य श्रेणी भूमण्डलमें और कहीं नहीं जन्मी है। उन्होंने बहादुरी का पुण्य लूटनेके लिये भिक्षा-वृत्तिको चुनकर अपनी जीविकाका अवलम्ब नहीं बनाया। वे समझ गये थे कि धन दौलतमें मन लगानेसे ज्ञानोपार्ज्जनमें विघ्न पड़ता है, समाजको शिक्षा देनेमें विघ्न पड़ता है। एक मन, एक ध्यान होकर लोगोंको शिक्षा देनेके लिये ही वे सर्वत्यागी हुए थे। यथार्थ निष्काम धर्म्म जिनकी नस नसमें समा गया है वेही परहित-व्रतका सङ्कल्प करके इस प्रकार सर्वत्यागी हो सकते हैं। उन्होंने अपने ऊपर लोगोंकी अचला भक्ति करनेकी जो आज्ञा दी थी वह भी स्वार्थके लिये नहीं। उन्होंने समझा था कि समाज-शिक्षकों पर भक्ति हुए विना उन्नति नहीं हो सकती, इसीसे ब्राह्मण-भक्तिका प्रचार किया था। यह सब करके उन्होंने जो समाज और जो सभ्यता बनायी थी वह आज भी जगत्में अतुलनीय है, युरोप आज भी उसे आदर्श स्वरूप ग्रहण कर सकता है। युरोपमें आज दिन भी युद्ध सामाजिक आवश्यकताके शामिल है। केवल ब्राह्मण ही इस भयङ्कर दुःखको—सब दुःखोंसे बढ़कर दुःखको—सब सामाजिक उत्पातोंसे बढ़कर उत्पातोंको—समाजसे उठा देनेको समर्थ हुए थे। समाज ब्राह्मण-नीति अवलम्बन करे तो फिर युद्धकी दरकार नहीं रहती। ब्राह्मणोंकी कीर्त्ति अक्षय है। पृथिवी पर जितनी जातियां जन्मी हैं उनमेंसे कोई प्राचीन भारतके ब्राह्मणोंके समान प्रतिभाशाली, क्षमताशाली, ज्ञानी और धार्म्मिक नहीं है। प्राचीन एथेंस या रोम, मध्यकालकी इटली, नवीन जर्मनी या इङ्गलैण्डके निवासी—कोई वैसे प्रतिभाशाली या क्षमताशाली नहीं थे; रोमके धर्म्मयाजक, बौद्ध भिक्षु या और किसी सम्प्रदायके आदमी वैसे ज्ञानी या धार्म्मिक नहीं थे।

शिष्य। अच्छा, यह जाने दीजिये। अब तो देखता हूं कि

अङ्गरेजीमें इसका बहुत अच्छा नाम Subordination है। इस नामसे पहले Official subordination याद पड़ता है। हमारे देशमें उस वस्तुका अभाव नहीं है, किन्तु जो है वह बहुत अच्छी नहीं है। भक्ति नहीं है; भय है। भक्ति मनुष्यकी श्रेष्ठ वृत्ति है और भय निकृष्ट वृत्तियोंमें है। भक्तिशून्य भयसे समाजकी मानसिक अवनतिका बड़ा कारण बहुत थोड़ा ही है। बड़े अफसरकी आज्ञा पालन करो, उनकी इज्जत करो, हो सके तो भक्ति करो, किन्तु कभी अकारण भय मत करो। किन्तु Official subordination के सिवा और एक जातीय आज्ञाकारिता दरकार है। वह हमारे देशके लिये बड़ी ही नाजुक है। अधिकांश धर्म-कर्म्म समाजके मङ्गलके लिये हैं। अक्सर दश आदमियोंको मिलकर वे सब काम करने पड़ते हैं; वे एक आदमीसे नहीं होते। जो दस आदमियोंके मेलसे होता है उसमें एकता चाहिये। एकताके लिये यही दरकार है कि एक आदमी नेता होगा और सबको उसकी और पर्यायक्रमसे दूसरोंकी आज्ञाके अनुसार कार्य्य करना होगा। यहां भी Subordination (सबार्डिनेशन) दरकार है। इसलिये यह एक बड़ा भारी धर्म्म है। दुर्भाग्यवश हमारे समाजमें यह सामग्री नहीं है। जो काम दस आदमियोंके मेलसे करना है उसमें सभी लोग अपनी अपनी प्रधानता चाहते हैं, कोई किसीकी आज्ञा नहीं मानता। इससे सब कुछ व्यर्थ होता है। अक्सर ऐसा होता है कि निकृष्ट आदमी नेता और श्रेष्ठ आदमी अधीन होता है। वहां श्रेष्ठ आदमीका कर्त्तव्य है कि वह निकृष्टको श्रेष्ठ समझकर उसकी आज्ञा पर चले, नहीं तो काम नहीं चलेगा। किन्तु हमारे देशके आदमी किसी तरह यह बात नहीं मानते। इसीसे हमारे समाजकी उन्नति इतनी कम है।

(६) और यह बात भी भक्तितत्त्वके अन्तर्गत है कि जिसकी जिस विषयमें निपुणता है सम्मान उस विषयमें उसका करना होगा। इतरमें बड़ेका भी केवल वयोज्येष्ठ होनेके लिये सम्मान करना।

(७) समाज पर भक्ति करना। यह स्मरण रखना कि मनुष्यमें जितने गुण हैं वे सब समाजमें हैं। समाज हमारा शिक्षादाता,

दण्डप्रणेता, भरणपोषणकारी और रक्षाकर्त्ता है। समाज ही राजा है, समाज ही शिक्षक है। भक्तिभावसे समाजके उपकारके लिये प्रयत्न करना। इसी तत्त्वको फैलाकर अगस्त कोम्तने "मानवदेवी" पूजाका विधान किया है। सुतरां इस विषयमें और कुछ कहनेकी दरकार नहीं है।

अब यह देखो कि भक्तिके अभावसे हमारे देशमें क्या अमङ्गल और गड़बड़ हो रही है। हिन्दुओंमें भक्तिका कुछ भी अभाव नहीं था। भक्ति हिन्दूधर्म्मकी और हिन्दूशास्त्रकी एक पुरानी सामग्री है। किन्तु अब शिक्षित और अर्द्धशिक्षित आदमियोंसे भक्ति एकबार ही निकल गयी है। पश्चिमी साम्यवादका असली मतलब न समझकर उन्होंने यही उलटा अर्थ समझ लिया है कि आदमी आदमीके सर्वत्र सब तरहसे समान है, किसीको किसी पर भक्ति करनेकी दरकार नहीं है। जो भक्ति मनुष्यकी सर्वोत्तम वृत्ति है वह उन्हें हीनताका चिह्न जान पड़ी है। पिता अब My dear father अर्थात् बूढ़ा...... है। माता बापकी बीबी है। बड़ा भाई जालिमाच है। शिक्षक मास्टरवा है। पुरोहित दक्षिणाका लालची पाखण्डी है। जो स्वामी देवता थे वह अब केवल प्यारा मित्र है, कोई कोई उसे दास भी समझती हैं। स्त्रीको अब हम लक्ष्मी स्वरूप नहीं समझ सकते। क्योंकि अब लक्ष्मीको ही नहीं मानते। यह तो हुई, घरके भीतरकी बात। घरके बाहर कितने ही राजाको शत्रु समझते हैं। उनकी समझमें राजपुरुष अत्याचारी राक्षस हैं। समाज-शिक्षक केवल हमारी समालोचना-शक्तिके परिचय-स्थल हैं। धार्म्मिक या ज्ञानी किसीको नहीं मानते। यदि मानते हैं तो धार्म्मिकको बेचारी गौसी समझकर उस पर दया करते हैं, ज्ञानीको शिक्षा देनेके लिये तय्यार रहते हैं। किसीको किसीसे निकृष्ट नहीं मानेंगे, इससे कोई किसीके आज्ञाधीन होकर नहीं चलेगा; सुतरां एकतापूर्वक कोई सामाजिक मङ्गल नहीं कर सकते। निपुणताका आदर नहीं करेंगे; वृद्धकी बहुदर्शिता पर व्यङ्ग करते हैं। समाजसे डरकर ठिठके रहते हैं। किन्तु समाज पर भक्ति नहीं करते। इसीसे घर नरक बन रहा है, राजनीतिक भेद पड़ रहा है, शिक्षा अनिष्टकारी होती है, समाज

अनुन्नत और तमःपङ्कमय है। अथवा चित्त अपरिशुद्ध और घमण्डसे परिपूर्ण है।

शिष्य। उन्नतिके लिये भक्तिकी इतनी आवश्यकता मैंने कभी नहीं समझी थी।

गुरु। इसीसे मैं भक्तिको सर्वोत्तम वृत्ति कहता था। अभी केवल मनुष्य-भक्तिकी बात कही है। अगले दिन ईश्वरभक्तिकी बात सुनना। भक्तिकी श्रेष्ठता और भी अच्छी तरह समझ सकोगे।

ग्यारहवां अध्याय—ईश्वरपर भक्ति।

—:०:—

शिष्य। आज ईश्वरभक्तिके विषयमें कुछ उपदेश देनेकी प्रार्थना करता हूं।

गुरु। तुमने जो कुछ मुझसे सुना है और जो कुछ सुनोगे, वह सभी ईश्वरभक्ति सम्बन्धी उपदेश हैं। केवल कहने और समझनेमें भेद है। भक्ति शब्द हिन्दूधर्म्ममें बड़ा भारी अर्थग्राहक है और हिन्दूधर्म्ममें यह बात बहुत प्रसिद्ध है। भिन्न भिन्न धर्म्माचार्योंने इसको अनेक प्रकारसे समझाया है और ईसा आदि आर्य्येतर धर्म्म-वेत्ता भी भक्ति-वादी हैं। सबकी उक्तियोंको मिलाकर और पहुंचे हुए भक्तोंके चरित्रोंको विचारकर मैंने भक्तिका जो लक्षण स्थिर किया है वह एक वाक्यमें कहता हूं, ध्यान देकर सुनो और अच्छी तरह याद रखना। नहीं तो सब परिश्रम व्यर्थ जायगा।

शिष्य। आज्ञा कीजिये।

गुरु। **जिस अवस्थामें मनुष्यकी सब वृत्तियां ईश्वरकी ओर झुकती हैं या ईश्वरानुवर्तिनी होती हैं वही अवस्था भक्ति है।**

शिष्य। समझा नहीं।

गुरु। अर्थात् जिस अवस्थामें ज्ञानार्ज्जनी वृत्तियां ईश्वरको ढूंढ़ती हैं, कार्य्यकारिणी वृत्तियां ईश्वरमें अर्पित होती हैं, चित्तर-ञ्जिनी वृत्तियां ईश्वरका सौन्दर्य्य उपभोग करती हैं और शारीरिकी वृत्तियां ईश्वरका काम करने या ईश्वरकी आज्ञा पालनेमें नियुक्त होती हैं उसी अवस्थाको भक्ति कहता हूं। जिसका ज्ञान ईश्वरमें है, कर्म्म ईश्वरमें है, आनन्द ईश्वरमें है और शरीरार्पण ईश्वरमें है उसीको ईश्वरपर भक्ति हुई है। अथवा उसीकी ईश्वर सम्बन्धी भक्तिकी उचित स्फूर्त्ति और पूर्णता हुई है।

शिष्य। इस बात पर मेरा पहला उज्र यह है कि आपने अब तक समझाया है कि भक्ति सब वृत्तियोंमेंसे एक है। किन्तु अब आप सब वृत्तियोंके समूहको भक्ति कहते हैं।

गुरु। नहीं। भक्ति एक ही वृत्ति है। मेरे कहनेका तात्पर्य्य यह है कि जब सब वृत्तियां इस एक वृत्तिकी अनुगामिनी होंगी तभी भक्तिकी उचित स्फूर्त्ति होगी। इस बातसे वृत्तियोंमें भक्तिकी श्रेष्ठताका समर्थन हुआ। भक्ति ईश्वरमें अर्पित होने पर और सब वृत्तियां उसके अधीन होंगी, उसके दिखाये मार्गपर चलेंगी। यही मेरे कहनेका खुलासा अर्थ है। यह मतलब नहीं कि सब वृत्तियोंका समूह भक्ति है।

शिष्य। किन्तु तब सामञ्जस्य कहां रहा? आपने कहा है कि सब वृत्तियोंकी समुचित स्फूर्त्ति ही मनुष्यत्व है। उस समुचित स्फूर्त्तिका यह अर्थ बताया है कि किसी वृत्तिकी अधिक स्फूर्त्तिसे दूसरी वृत्तियोंकी उचित स्फूर्त्तिमें बाधा नहीं पड़ती। किन्तु जब सब वृत्तियां ही इस एक भक्ति वृत्तिके अधीन हुईं, जब भक्तिही दूसरी वृत्तियोंका शासन करने लगी तब परस्परका सामञ्जस्य कहां रहा?

गुरु। भक्तिका अनुगमन करनेवाली किसी वृत्तिकी चरम स्फूर्त्तिमें विघ्न नहीं पड़ता। मनुष्यकी वृत्तिमात्रके जो कुछ उद्देश्य हो सकते हैं उनमें सबसे ईश्वर ही बड़ा है। जिस वृत्ति का चाहे जितना फैलाव हो ईश्वरमें लगनेसे वह फैलाव बढ़नेके सिवा घटेगा नहीं। ईश्वर जिस वृत्तिका उद्देश्य है—अनन्त मङ्गल, अनन्त

ज्ञान, अनन्त धर्म्म, अनन्त सौन्दर्य, अनन्त शक्ति, अनन्त ही जिस वृत्तिका उद्देश्य है उसमें रुकावट कहां? भक्तिके अधीन रहनेकी अवस्थामें ही सब वृत्तियोंका यथार्थ सामञ्जस्य है।

शिष्य। तो आप जो मनुष्यत्व-तत्व और अनुशीलन धर्म्म मुझे सिखाते हैं क्या उसका स्थूल तात्पर्य यही है कि ईश्वर-भक्ति ही पूर्ण मनुष्यत्व है और अनुशीलनका एकमात्र उद्देश्य ईश्वर-भक्ति ही है।

गुरु। अनुशीलन धर्म्मके मर्म्ममें यही बात है कि सब वृत्तियोंको ईश्वरमें समर्पण किये बिना मनुष्यत्व नहीं मिलता। यही यथार्थ कृष्णार्पण है, यही यथार्थ निष्काम धर्म्म है, यही स्थायी सुख है। इसीका दूसरा नाम चित्तशुद्धि है। इसीका लक्षण "भक्ति, प्रीति, शान्ति" है। यही धर्म्म है, इसके सिवा और कोई धर्म्म नहीं है। मैं यही बताता हूं। किन्तु तुम यह न समझ लेना कि यह बात समझनेसे ही तुम अनुशीलन धर्म्म समझ गये।

शिष्य। मैं स्वयं स्वीकार करता हूं कि अभीतक मैं कुछ नहीं समझा। अनुशीलन धर्म्ममें इस तत्वका असली स्थान क्या है, यह अभीतक नहीं समझ सका। आपने वृत्तियोंको जिस भावसे समझाया है उसमें शारीरिक बल अर्थात् मुट्ठीका बल भी एक Faculty चाहे न हो, एक वृत्ति है। अनुशीलन धर्म्मके विधानसे इसका उचित अनुशीलन चाहिये। मान लीजिये कि रोग, अति दुःख, आलस्य या ऐसे ही और किसी कारणसे किसी आदमीकी इस वृत्तिकी उचित स्फूर्त्ति नहीं हुई। क्या उसमें ईश्वर-भक्ति नहीं हो सकती?

एक डाकू एक भलेमानसको सता रहा है। मान लो कि दो आदमियोंने यह देख लिया। मान लो कि दोनों ही ईश्वरभक्त हैं; किन्तु एक बलवान है और दूसरा दुर्बल। जो बलवान है उसने भले आदमीको डाकूके हाथसे छुड़ा लिया; किन्तु जो दुर्बल है वह कोशिश करके भी न छुड़ा सका। इसी हिसाबसे अनुशीलनके अभावसे दुर्बल आदमीके मनुष्यत्वकी अपूर्णता कह सकते हैं, किन्तु भक्तिमें त्रुटि नहीं कह सकते। वृत्तियोंकी उचित स्फूर्तिके बिना मनुष्यत्व नहीं है; और उन वृत्तियोंके भक्तिके अनुगामी न होनेमें भी मनुष्यत्व नहीं है। दोनोंके समावेशमें ही सम्पूर्ण मनुष्यत्व है। इसमें वृत्तियोंकी स्वतन्त्रताकी रक्षा होती है और भक्तिकी प्रधानता भी बनी रहती है। इसीसे कहता था कि वृत्तियोंका ईश्वरार्पण समझनेसे ही मनुष्यत्व नहीं समझ जाओगे। उसके साथ यह भी समझना चाहिये।

शिष्य। अब और भी उज्र है। जिस उपदेशके अनुसार काम नहीं हो सकता, वह उपदेश ही नहीं है। क्या सब वृत्तियां ईश्वरमें लगायी जा सकती हैं? क्रोध एक वृत्ति है, क्या क्रोधको ईश्वरमें लगा सकते हैं?

गुरु। जगत्में अतुलनीय उस महाक्रोधका श्लोक तुम्हें याद है?

> क्रोधं प्रभो संहर संहरेति,
> यावद् गिरः खे मरुतां चरन्ति।
> तावत् स वन्हिर्भवनेत्र जन्मा,
> भस्मावशेषं मदनञ्चकार॥

यह क्रोध महापवित्र क्रोध है; क्योंकि योगभङ्ग करनेवाली कुप्रवृत्ति इससे नष्ट हुई। यह स्वयं ईश्वरका क्रोध है। और जो एक नीच वृत्ति व्यासदेवमें ईश्वरानुवर्त्ती हुई थी उसका एक अद्भुत उदाहरण महाभारतमें है, मगर तुम उन्नीसवीं सदीके आदमी हो। वह मैं तुम्हें नहीं समझा सकूंगा।

शिष्य। और भी उज्र है—

गुरु। होना ही सम्भव है। जब मनुष्यकी सब वृत्तियां ईश्व-

रकी ओर झुकती हैं या ईश्वरानुवर्त्तिनी होती हैं वही अवस्था भक्ति है। यह बात इतनी बड़ी है और इसके भीतर ऐसे बड़े बड़े तत्व हैं कि तुम एकबारके सुननेसे ही समझने लगोगे, यह सम्भव नहीं है। बहुत सन्देह होगा, बहुत घिचपिचाहट होगी, बहुत गुत्थ देखोगे और शायद अन्तमें यह बात अर्थहीन प्रलाप जान पड़ेगी। किन्तु तो भी निराश मत होना। दिन दिन, महीने महीने, साल साल इस तत्वकी चिन्ता करना। इसको काममें लानेकी चेष्टा करना। इन्धनसे पुष्ट अग्निकी भांति यह क्रमशः तुम्हारे सामने चमकती जायगी। यदि ऐसा हो तब समझना कि तुम्हारा जीवन सार्थक हुआ। मनुष्यके सीखने योग्य इसके समान बड़ा तत्व दूसरा नहीं है। अगर एक आदमी अपना सारा जीवन सत्शिक्षामें लगा कर अन्तमें इस तत्व तक पहुंच जाय तभी उसका जीवन सार्थक समझना।

शिष्य। जो ऐसा दुर्लभ है उसे आपने ही कहांसे पाया?

गुरु। शुरू जवानीसे मेरे मनमें यह प्रश्न उठता था,—"इस जीवनको लेकर क्या करूंगा? लेकर क्या किया जाता है? तमाम जिन्दगी इसीका उत्तर ढूंढ़ा है। उत्तर ढूंढ़ते ढूंढ़ते जिन्दगी प्रायः पूरी हो गयी है। अनेक प्रकारके लोक-प्रचलित उत्तर पाये हैं। उनका सत्यासत्य निश्चय करनेके लिये अनेक भोग भोगने हैं, अनेक कष्ट पाया है। यथासाध्य पढ़ा है, अनेक लिखा है, अनेक लोगोंसे बातचीत की है और कामोंमें शामिल हुआ हूं। साहित्य, विज्ञान, इतिहास, दर्शन, देशी विदेशी शास्त्र यथासाध्य अध्ययन किये हैं। जीवनकी सार्थकताके लिये प्राणका मोह छोड़कर परिश्रम किया है। इस परिश्रम, इस कष्ट भोगके फलसे इतना ही सीखा है कि सब वृत्तियोंको ईश्वरमें लगाना ही भक्ति है और इस भक्तिके बिना मनुष्यत्व नहीं है। "जीवन लेकर क्या करूंगा?" इस प्रश्नका उत्तर पाया है। यही असली उत्तर है और सब उत्तर नकली है। आदमीके सारे जीवनके परिश्रमका यही अन्तिम फल है; यही एक मात्र सुफल है। तुम पूछते हो, मैंने यह तत्व कहां पाया। जीवन भर ढूंढ़ते ढूंढ़ते अब अपने प्रश्नका उत्तर पाया है।

तुम एक दिनमें क्या समझोगे ?

शिष्य। आपकी बातसे मैंने यही समझा कि भक्तिके लक्षणके विषयमें आपने मुझे जो उपदेश दिया वह आपका अपना मत है।

गुरु। मूर्ख ! मेरे ऐसे क्षुद्र व्यक्तिमें क्या ऐसी शक्ति हो सकती है कि जिसे आर्य्य ऋषि नहीं जानते थे उसका पता मैं लगा सकूं। मैं जो कहता था उसका तात्पर्य यह है कि जीवन भर चेष्टा करने पर उनकी शिक्षाका मर्म समझा है। अतएव मैंने जिस भाषामें तुमको भक्ति समझायी है उस भाषामें, उन बातोंमें उन्होंने भक्ति-तत्त्व नहीं समझाया है। तुम लोग उन्नीसवीं सदीके आदमी हो—उन्नीसवीं सदीकी भाषामें ही तुमको समझाना पड़ता है। भाषाका भेद है, किन्तु सत्य नित्य है। भक्ति शाण्डिल्यके समय जैसी थी अब भी वैसी ही है। भक्ति आर्य्य-ऋषियोंके उपदेशोंमें मिलती है। परन्तु जैसे समुद्रमें पड़े हुए रत्नोंका यथार्थ स्वरूप गोता लगा कर देखे बिना नहीं दिखाई देता वैसे ही अगाध समुद्ररूपी हिन्दूशास्त्रोंके भीतर गोता न लगानेसे उसमें पड़े हुए रत्न पहचाने नहीं जा सकते।

शिष्य। मेरी इच्छा है कि आपसे उनकी की हुई भक्तिकी व्याख्या सुनूं।

गुरु। सुनना बहुत जरूरी है, क्योंकि भक्ति ही हिन्दुओंकी वस्तु है। ईसाई धर्म्ममें भक्तिवाद है, मगर हिन्दुओंके पास ही भक्तिका यथार्थ फल है। किन्तु उनकी की हुई भक्तिकी व्याख्या विस्तार सहित कहने या सुननेका मुझे या तुम्हें अवकाश नहीं होगा और हमारा मुख्य उद्देश्य अनुशीलन धर्म्म समझना है ; उसके लिये वैसी सविस्तार व्याख्याकी दरकार नहीं है ; मोटी मोटी बातें तुमसे कहूंगा।

शिष्य। पहले बताइये कि भक्तिवाद क्या चिरकालसे हिन्दू-धर्म्मका अंग है ?

गुरु। नहीं। वैदिक धर्म्ममें भक्ति नहीं है। वेदके धर्म्मका परिचय शायद तुम्हें कुछ है। साधारण उपासकके साथ

आम तौरपर उपास्य देवका जो सम्बन्ध देखा जाता है, वैदिकधर्म्ममें उपास्य और उपासकका वही सम्बन्ध था। 'हे देव! मेरा दिया हुआ यह सोमरस पान करो! हविभोजन करो और मुझे धन दो, सम्पद दो, पुत्र दो, गौ दो, अन्न दो और मेरे शत्रुको पछाड़ो।' बहुत हुआ तो कहा—'मेरा पाप नाश करो।' देवताओंको इस मतलबसे प्रसन्न करनेके लिये वैदिक लोग यज्ञादि करते थे। यों बाह्य वस्तुके उद्देश्यसे यज्ञादि करनेको काम्य कर्म्म कहते हैं। काम्यादि कर्म्मात्मक जो उपासना है उसका साधारण नाम कर्म्म है। यह काम करनेसे उसका यह फल है, इसलिये यह काम करना होगा—यों धर्म्म प्राप्त करनेकी जो पद्धति है उसका नाम कर्म्म है। वैदिक कालके अन्तिम भागमें ऐसे ही कर्म्मात्मक धर्म्मका बड़ा जोर हुआ था। याग यज्ञके ऊहापोहसे धर्म्मका असली मर्म्म लुप्त हो गया था। ऐसी दशामें उच्च श्रेणीके प्रतिभाशाली पुरुषोंने देखा कि यह कर्म्मात्मक धर्म्म वृथा धर्म्म है। उनमेंसे बहुतोंने समझा था कि वैदिक देव देवियोंकी कल्पनासे इस जगत्‌का अस्तित्व नहीं समझमें आ सकता; भीतर इसका एक अनन्त अज्ञेय कारण है। वे लोग उसी कारणकी खोजमें लगे।

इन्हीं कारणोंसे कितने ही आदमियोंकी श्रद्धा धर्म्मके ऊपरसे उठ गयी। उन्होंने तीन प्रकारका विप्लव खड़ा किया—उसी विप्लवके फलसे एशिया महादेश अबतक शासित होता है। एक दल चार्वाकोंका था; उसने कहा कि सब कर्म्मकाण्ड मिथ्या है—खाओ, पियो, मौज उड़ाओ। दूसरे सम्प्रदायके सृष्टिकर्त्ता और नेता शाक्य सिंह थे; उन्होंने कहा कि कर्म्मफल मानता हूं किन्तु कर्म्मसे ही दुःख है। कर्म्मसे पुनर्ज्जन्म है, इसलिये कर्म्मको नष्ट करो, तृष्णा त्यागकर चित्तसंयम करते हुए अष्टांग धर्म्म पथमें जाकर निर्वाण लाभ करो। तीसरा विप्लव दार्शनिकों द्वारा हुआ था। वे प्रायः ब्रह्मवादी थे। उन्होंने देखा कि जगत्‌के जिस अनन्त कारण-भूत चैतन्यकी खोजमें हम लगे हुए हैं वह बड़ा ही दुर्ज्ञेय है। वह ब्रह्मको जान लेनेसे—इस जगत्‌के अन्तरात्मा या परमात्माके साथ हमारा क्या सम्बन्ध है और जगत्‌के साथ उनका

या हमारा क्या सम्बन्ध है यह ज्ञान होनेसे समझा जा सकता है कि यह जीवन लेकर क्या करना होगा। यह जानना कठिन है—यह जानना ही धर्म्म है। इसलिये ज्ञान ही धर्म्म है, ज्ञान ही निःश्रेयस है। वेदके जिस अंशको उपनिषद कहते हैं वह इन्हीं प्रथम ज्ञानवादियोंकी कीर्त्ति है। ब्रह्मनिरूपण और आत्मज्ञान ही उपनिषदोंका उद्देश्य है। उसके बाद छः दर्शनोंमें यह ज्ञानवाद और भी बढ़ाया चढ़ाया गया है। कपिलके सांख्यमें ब्रह्मको त्याग दिये जानेपर भी वह दर्शन शास्त्र ज्ञानवादात्मक है, दर्शनोंमें केवल पूर्व मीमांसा कर्म्मवादी है और सभी ज्ञानवादी हैं।

शिष्य। मुझे ज्ञानवाद बहुत अधूरा जान पड़ता है। ज्ञानसे ईश्वरको जान ले सकते हैं, किन्तु ज्ञानसे क्या ईश्वरको पा सकते हैं? क्या जाननेसे वह पाया जा सकता है? मान लीजिये, मैं समझ गया कि ईश्वरके साथ आत्माकी एकता है। तो क्या यह जाननेसे ही ईश्वर मिल गया? दोको एक करके मिलावेगा कौन?

गुरु। जिसको उस रीतिपर नहीं मिल सकता उसके लिये भक्ति-मार्ग है। भक्तिवादी कहते हैं कि ज्ञानसे ईश्वरको जान तो सकते हैं किन्तु क्या जाननेसे ही उनको पा गये? बहुत चीजें हम जानते हैं किन्तु क्या जाननेसे ही उसे पा गये? हम जिसका द्वेष करते हैं उसे भी तो जानते हैं किन्तु क्या उससे हम मिले हुए हैं? हम अगर ईश्वरका द्वेष करें तो क्या उनको पावेंगे? बल्कि जिनपर हमारा अनुराग है उनको पानेकी सम्भावना है। जो शरीरी हैं उनको अनु-राग विना नहीं पा सकते, किन्तु जो अशरीरी हैं वे केवल अन्तः-करणसे ही पाये जा सकते हैं। अतएव उनपर गहरा अनुराग होनेसे ही हम उनको पावेंगे। उसी प्रकारके अनुरागका नाम भक्ति है शाण्डिल्यसूत्रका दूसरा सूत्र यही है—"सा (भक्तिः) परानुरक्ति-रीश्वरे।"

शिष्य। भक्तिवादकी उत्पत्तिका यह इतिहास सुनकर मैं बहुत ही कृतार्थ हुआ। इसे सुने विना भक्तिवादको मैं अच्छी तरह न समझ सकता। सुनकर मनमें और एक बात उठती है। साहबों और दयानन्द सरस्वती प्रभृति इस देशके पण्डित वैदिक

धर्म्मको ही श्रेष्ठ धर्म्म कहते हैं और पौराणिक या आधुनिक हिन्दू वैदिक धर्म्मको निकृष्ट बताते हैं। किन्तु अब मैं देखता हूं कि वह बात सरासर गलत है। भक्तिशून्य जो धर्म्म है, वह अधूरा या निकृष्ट धर्म्म है—इसलिये जब वेदमें भक्ति नहीं है तब वैदिक धर्म्म ही निकृष्ट है, पौराणिक या आधुनिक वैष्णवादि धर्म्म ही श्रेष्ठ धर्म्म है। जो लोग इन धर्म्मोंको लोप करके वैदिक धर्म्मको फिरसे चलानेकी चेष्टा करते हैं उनको भ्रान्त समझता हूं—

गुरु। ठीक है। परन्तु यह भी कहना पड़ता है कि यह बात ठीक नहीं है कि वेदमें कहीं भक्तिवाद नहीं है। शाण्डिल्य सूत्रके टीकाकार स्वप्नेश्वरने छान्दोग्य उपनिषद्से एक वचन उद्धृत किया है। उसमें भक्ति शब्दका व्यवहार न होनेपर भी भक्तिवादका सार मर्म्म है। वह वचन यों है—

"आत्मैवेदं सर्व्वमिति स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड़ः आत्ममिथुन आत्मानन्दः स स्वराड्-भवतीति।"

इसका यह अर्थ है कि आत्मा यह सभी है (अर्थात् पहले जो कुछ कहा गया है)। जो इसे देखकर, इसे सोचकर, इसे जानकर आत्मामें रत होता है, आत्मामें खेलता है, आत्मा ही जिसका मिथुन (सहचर) है, आत्मा ही जिसका आनन्द है, वह स्वराज (अपना राजा या अपने द्वारा रञ्जित) होता है। यह यथार्थ भक्तिवाद है।

बारहवां अध्याय—भक्ति।

ईश्वरपर भक्ति—शाण्डिल्य।

——:0:——

गुरु। श्रीमद्भगवद्गीता ही भक्ति-तत्त्वका प्रधान ग्रंथ है। किन्तु गीताका भक्तितत्त्व समझानेसे पहले ऐतिहासिक रीत्यनुसार वेदमें जो कुछ भक्तितत्त्व है वह तुमको सुनाना अच्छा है। वेदमें

यह बात प्रायः नहीं है, छान्दोग्य उपनिषद्में कुछ है, यह कह चुका हूं। जो है उसके साथ शाण्डिल्य महर्षिका नाम संयुक्त है।

शिष्य। जो भक्तिसूत्रके प्रणेता है?

गुरु। पहले तुमको बताना चाहिये कि शायद दो शाण्डिल्य थे। एक उपनिषद्में कहे हुए,—ये ऋषि थे और दूसरे शाण्डिल्य-सूत्रके प्रणेता थे। प्रथम शाण्डिल्य प्राचीन ऋषि थे और दूसरे शाण्डिल्य उनके पीछेके पण्डित थे। भक्तिसूत्रके ३१ वें सूत्रमें प्राचीन शाण्डिल्यका नाम आया है।

शिष्य। अथवा यह हो सकता है कि आधुनिक सूत्रकारने पुराने ऋषिके नामसे अपना ग्रंथ चलाया हो। इस समय पुराने ऋषि शाण्डिल्यके मतकी व्याख्या कीजिये।

गुरु। दुर्भाग्यवश उन प्राचीन ऋषिका बनाया कोई ग्रंथ वर्त्तमान नहीं है। शङ्कराचार्य्यने वेदान्तसूत्रका जो भाष्य किया है उसमेंसे सूत्रविशेषके भाष्यके भावार्थसे कोलब्रुक साहब यह अनुमान करते हैं कि पञ्चरात्रके प्रणेता यही प्राचीन शाण्डिल्य थे। ऐसा हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है; पञ्चरात्रमें भागवतधर्म्म कहा तो गया है। किन्तु ऐसे सामान्य मूलपर निर्भर कर स्थिर नहीं किया जा सकता कि शाण्डिल्य ही पञ्चरात्रके प्रणेता थे। सारांश यह कि प्राचीन ऋषि शाण्डिल्यको भक्तिधर्म्मका प्रवर्त्तक समझनेके अनेक कारण हैं। उक्त भाष्यमें ज्ञानवादी शङ्कर भक्तिवादी शाण्डिल्यकी निन्दा करके कहते हैं—

"वेद प्रतिषेधश्च भवति। चतुर्षु वेदेषु परं श्रेयोऽलब्ध्वा शाण्डिल्य इदं शास्त्रमधिगतवान् इत्यादि वेदनिन्दा दर्शनात्। तस्मादसंगत। एषा कल्पना इति सिद्धः।"

अर्थात्, "इसमें वेदका विप्रतिषेध होता है; चारों वेदोंमें परंश्रेयः न लाभकरके शाण्डिल्यने यह शास्त्र अधिगमन किया था। यह सब वेदनिन्दा देखनेसे सिद्ध होता है कि यह कल्पना असङ्गत है।"

शिष्य। किन्तु ये प्राचीन ऋषि शाण्डिल्य भक्तिवादमें कहां तक अग्रसर हुए थे यह जाननेका कुछ उपाय है?

गुरु। कुछ है। छान्दोग्य उपनिषद्के तृतीय प्रपाठकके चौदहवें अध्यायसे कुछ पढ़ता हूं, सुनो—

सर्व्वकर्म्मा सर्व्वकामः सर्व्वगन्धः सर्व्वरसः सर्व्वमिदमभ्यात्तोऽवाक्यनादर एष मम आत्मान्तर्हृदय एतद्ब्रह्मैतमितः प्रेत्याभिसम्भावितास्मीति यस्य स्यादद्धा न विचिकित्सास्तीतिहस्माह शाण्डिल्यः।"

अर्थात्, "सर्व्वकर्म्मा, सर्व्वकाम, सर्व्वगन्ध, सर्व्वरस इस जगत्में परिव्याप्त वाक्यविहीन और आप्तकाम होनेके कारण आदरकी अपेक्षा नहीं करते। यह मेरी आत्मा हृदयमें है, यही ब्रह्म है। इस लोकसे अलग होकर इसीको सुस्पष्ट रूपसे अनुभव किया करता हूं। इसमें जिनकी श्रद्धा होती है उनको इसमें सन्देह नहीं रहता। यह शाण्डिल्यने कहा है।"

यह बात बहुत दूर तक नहीं गयी। ऐसा उपनिषदोंके ज्ञानवादी भी कहा करते हैं। "श्रद्धा" शब्द यद्यपि भक्तिवाचक नहीं है तथापि श्रद्धा होनेसे सन्देह नहीं रहता कि यह भक्तिकी बात ही है। किन्तु असल बात वेदान्तसारमें मिलती है। वेदान्तसारके कर्त्ता सदानन्दाचार्य्यने उपासना शब्दकी व्याख्यामें कहा है—"उपासनानि सगुणब्रह्मविषयकमानसव्यापाररूपाणि शाण्डिल्यविद्यादीनि।"

अब जरा समझकर देखो। हिन्दू धर्म्ममें ईश्वरकी बहुत प्रकारकी कल्पनाएं हैं—अथवा यों कहो कि हिन्दू ईश्वरको दो प्रकारसे समझते हैं। ईश्वर निर्गुण हैं और ईश्वर सगुण हैं। तुम लोगोंकी अङ्गरेजीमें जिसको Absolute या Unconditioned कहते हैं वही निर्गुण है। जो निर्गुण हैं उनकी कोई उपासना नहीं हो सकती; जो निर्गुण हैं उनका कोई गुणानुवाद नहीं किया जा सकता; जो निर्गुण हैं, जिनका किसी प्रकार Condition of existence नहीं है या नहीं कहा जा सकता उनको क्या कहकर पुकारूंगा? क्या कहकर चिन्तन करूंगा? इसलिये केवल सगुण ईश्वरकी ही उपासना हो सकती है। निर्गुणवादमें उपासना नहीं है। सगुणवादी भक्तिवादी अर्थात् शाण्डिल्यादि ही उपासना कर सकते हैं। अब तुम समझ सकते हो कि वेदान्तसारकी इस बातसे दो विषय

सिद्ध हुए। प्रथम यह कि सगुणवादके प्रथम प्रवर्त्तक शाण्डिल्य हैं। और उपासनाके भी प्रथम प्रवर्त्तक शाण्डिल्य हैं। और भक्ति सगुणवादकी अनुसारिणी है।

शिष्य। तो क्या सब उपनिषद् निर्गुणवादी हैं?

गुरु। ईश्वरवादियोंमें कोई सचमुच निर्गुणवादी है या नहीं इसमें सन्देह है। जो सचमुच निर्गुणवादी है उसको नास्तिक भी कह सकते हैं। मगर ज्ञानवादी माया नामसे ईश्वरकी एक शक्ति कल्पना करते हैं। वही इस जगत्-सृष्टिका कारण है। उस मायाके कारण ही हम ईश्वरको नहीं जानने पाते। मायासे विमुक्त होनेसे ही ब्रह्मज्ञान पैदा होता है और ब्रह्ममें लीन हो सकते हैं। अतएव ईश्वर उनके लिये केवल ज्ञेय है। यह ज्ञान ठीक "जानना" नहीं है। साधनाके बिना वह ज्ञान नहीं उत्पन्न हो सकता। शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान और श्रद्धा ये ६ साधनाएं हैं। ईश्वर विषयक श्रवण, मनन और निदिध्यासनके सिवा दूसरे विषयोंसे भीतरी इन्द्रियोंको रोकना शम है। उनसे बाहरी इन्द्रियोंका दमन ही दम है। उनके अतिरिक्त विषयोंसे निवर्त्तित बाहरी इन्द्रियोंका दमन अथवा विधिपूर्वक विहित कर्म्मोंका परित्याग ही उपरति है। जाड़ा गर्मी आदि सहना तितिक्षा है। मनकी एकाग्रता समाधान है। गुरु वाक्यादिमें विश्वास श्रद्धा है। यह बात नहीं है कि सर्वत्र ऐसा साधन कहा है। किन्तु ध्यान धारण तपस्यादि प्रायः ज्ञानवादियोंके लिये ही विहित है। अतएव ज्ञानवादियोंकी भी उपासना है। वह अनुशीलन है। मैंने तुम्हें समझाया है कि उपासना भी अनुशीलन है। इसलिये ज्ञानवादियोंके ऐसे अनुशीलनको तुम उपासना कह सकते हो। किन्तु वह उपासना अधूरी है, यह बात पहले कही हुई बातोंको याद करनेसे समझ सकोगे। यथार्थ उपासना भक्तिप्रसूत है। भक्ति-तत्वकी व्याख्यामें गीताका भक्तितत्व तुमको समझाना होगा, उस समय इस बातका जरा खुलासा हो जायगा।

शिष्य। इस समय आपसे जो कुछ सुना उससे क्या यह सम-

झना होगा कि वे प्राचीन ऋषि शाण्डिल्य ही भक्तिमार्गके प्रथम प्रवर्त्तक थे ?

गुरु। छान्दोग्य उपनिषद्‌में जैसे शाण्डिल्यका नाम है वैसे ही देवकीनन्दन कृष्णका भी नाम है। अतएव कृष्ण पहले हैं या शाण्डिल्य ? यह मैं नहीं जानता। सो कह नहीं सकता कि श्रीकृष्ण भक्तिमार्गके प्रथम प्रवर्त्तक हैं या शाण्डिल्य।

तेरहवां अध्याय—भक्ति।

भगवद्गीता। स्थूल उद्देश्य।

———:0:———

शिष्य। अब गीतामें कहे हुए भक्तितत्वकी कथा सुननेकी इच्छा है।

गुरु। गीताके बारहवें अध्यायका नाम भक्तियोग है। किन्तु असली भक्तिकी व्याख्या बारहवें अध्यायमें बहुत ही कम है। दूसरेसे बारहवें तक सब अध्यायोंकी पर्य्यालोचना न करनेसे असली भक्तितत्व समझमें नहीं आता। अगर गीताका भक्तितत्व समझना चाहते हो तो इन ग्यारहो अध्यायोंकी बातें कुछ कुछ समझनी होंगी। इन ग्यारह अध्यायोंमें ज्ञान, कर्म्म और भक्ति तीनोंकी बात है, तीनोंकी प्रशंसा है। जो और कहीं नहीं है वह भी इसमें है। ज्ञान कर्म्म और भक्तिका सामञ्जस्य है। यह सामञ्जस्य होनेसे ही इसको सर्वोत्कृष्ट धर्म्मग्रन्थ कह सकते हैं। किन्तु उस सामञ्जस्यका असली तात्पर्य यह है कि इन तीनोंकी जो परमावस्था है वह भक्ति है। इसलिये गीता वास्तवमें भक्तिशास्त्र है।

शिष्य। बातें ज़रा बेढंगी मालूम हो रही हैं। आत्मीय और अन्तरङ्गोंका वध करके राज्य लेनेमें अनिच्छुक होकर अर्जुन युद्धसे निवृत्त होते थे। कृष्णने उनको प्रवृत्ति देकर युद्धमें प्रवृत्त किया, यही गीताका विषय है। अतएव इसको घातक शास्त्र कहना उचित है ; उसको भक्तिशास्त्र कैसे कहेंगे ?

गुरु। बहुतोंका यह अभ्यास है कि वे ग्रन्थका एक पन्ना पढ़कर सोच लेते हैं हम उसका आशय समझ गये। जो लोग इस श्रेणीके पण्डित हैं वे ही भगवद्गीताको घातक शास्त्र समझते हैं। सारांश यह है कि अर्जुनको युद्धमें प्रवृत्त करना ही उस ग्रन्थका उद्देश्य नहीं है। किन्तु वह बात अभी रहने दो। तुमको पहले समझा चुका हूं कि युद्धमात्र ही पाप नहीं है।

शिष्य। समझ चुके हैं कि आत्मरक्षा और स्वदेशरक्षाके निमित्त जो युद्ध होता है उसकी गिन्ती धर्म्ममें है।

गुरु। यहां अर्ज्जुन आत्मरक्षामें लगे हैं। क्योंकि अपनी सम्पत्तिका उद्धार आत्मरक्षाके भीतर है।

शिष्य। जो नरपिशाच अनर्थक युद्ध करता है वह यही बात कहकर लड़ाई छेड़ता है। नरपिशाचोंके प्रधान, पहले नेपोलियनने फ्रांसरक्षाका वहाना करके युरोपमें रक्तकी नदियां बहायी थीं।

गुरु। उसका इतिहास जब निरपेक्ष लेखकके हाथसे लिखा जायगा तब समझोगे कि नेपोलियनकी बात झूठी नहीं थी। नेपोलियन नरपिशाच नहीं थे। और, उस पर विचार करनेकी दरकार नहीं है। हमें यह विचारना है कि बहुधा युद्ध भी पुण्यकर्म्म होता है।

शिष्य। किन्तु कब?

गुरु। इस प्रश्नके दो उत्तर हैं। उनमेंसे एक, एक युरोपियन हितवादीका उत्तर है। वह उत्तर यह है कि युद्धमें जहां लाख आदमियोंका अनिष्ट करके करोड़ों आदमियोंका हित साधन किया जाता है वह युद्ध पुण्य कर्म्म है। किन्तु करोड़ों आदमियोंके लिये एक लाख आदमियोंका संहार करनेका ही हमें क्या अधिकार है?" इसका उत्तर हितवादी नहीं दे सकते। दूसरा उत्तर भारतवर्षीय है। यह उत्तर आध्यात्मिक और पारमार्थिक है। हिन्दुओंकी सब नीतियोंका मूल आध्यात्मिक और पारमार्थिक है। वह मूल, युद्धकी कर्त्तव्यताकी तरह एक कठिन तत्त्वके सहारे जिस खूबीसे समझाया जा सकता है किसी वैसी खूबीके साथ साधारण तत्त्वके सहारे

नहीं समझाया जा सकता। इसीसे गीताकार अर्जुनकी युद्धसे अरुचि कल्पित कर उसके उपलक्ष्यमें परम पवित्र धर्मकी आमूल व्याख्या करते हैं।

शिष्य। कथाका आरम्भ कैसे है?

गुरु। भगवान् कर्त्तव्याकर्त्तव्यके सम्बन्धमें अर्जुनको पहले दो तरहका अनुष्ठान समझाते हैं। पहले आध्यात्मिकता, अर्थात् आत्माकी अविनश्वरता आदि जो ज्ञानका विषय है। यह ज्ञानयोग या सांख्ययोगके नामसे कहा गया है। तीसरे अध्यायमें वे कहते हैं—

लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्म्मयोगेन योगिनाम् ॥३।३

इसमें ज्ञानयोग पहले संक्षेपमें समझाकर कर्म्म योग विस्तार सहित समझाते हैं। यह ज्ञान और कर्म्मयोग आदि समझनेसे तुम जान सकोगे कि गीता भक्तिशास्त्र है—इसीसे इतने विस्तारके साथ भक्तिकी व्याख्यामें गीताका परिचय देता हूं।

चौदहवां अध्याय—भक्ति।

भगवद्गीता—कर्म्म।

——:o:——

गुरु। अब तुम्हें गीतोक्त कर्म्मयोग समझाता हूं, किन्तु इसे सुननेसे पहले मैंने भक्तिकी जो व्याख्या की है उसे याद करो। मनुष्यकी जिस अवस्थामें सब वृत्तियां ईश्वरकी ओर झुकती हैं वही मानसिक अवस्था या जिस वृत्तिकी प्रबलतासे यह अवस्था होती है, वही भक्ति है। अब सुनो।

श्रीकृष्ण कर्म्मयोगकी प्रशंसा करके अर्जुनको कर्म्ममें प्रवृत्ति देते हैं।

नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्म्मकृत्।
कार्य्यते ह्यवशः कर्म्म सर्व्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥३।५

कोई कभी बेकार होकर नहीं रह सकता। काम न करनेसे स्वाभाविक गुणों द्वारा कर्म्ममें प्रवृत्त होना होगा। इसलिये कर्म्म करना ही होगा। किन्तु वह कौनसा कर्म्म है?

कर्म्म कहनेसे वेदोक्त कर्म्म ही समझा जाता था, अर्थात् अपने कल्याणकी इच्छासे देवताओंको प्रसन्न करनेके लिये याग यज्ञ इत्यादि करना समझा जाता था, यह पहले कह चुका हूं। अर्थात् काम्य धर्म्म समझा जाता था। यहां प्राचीन वेदोक्त धर्म्मके साथ कृष्णोक्त धर्म्मका प्रथम विवाद है, यहांसे गीतोक्त धर्म्मके उत्कर्षके परिचयका आरम्भ है। उस वेदोक्त काम्य कर्म्मके अनुष्ठानकी निन्दा करके कृष्ण कहते हैं।

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीतिवादिनः॥
कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्म्मफलप्रदाम्।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्य्यगतिं प्रति॥
भोगैश्वर्य्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥२।४२—४४

"जो लोग वक्ष्यमान रूप श्रुतिमधुर वाक्य प्रयोग करते हैं वे विवेकशून्य हैं। जो लोग वेदवाक्यमें लीन होकर कहते हैं कि फलसाधक कर्म्मके सिवा और कुछ नहीं है, जो लोग कामके वशीभूत होकर स्वर्गको ही परम पुरुषार्थ समझते हुए कहते हैं कि जन्म ही कर्म्मका फल है, जो (केवल) भोगैश्वर्य्यकी प्राप्तिके साधक विशेष विशेष क्रियाओंके विषयमें ही वाक्यका प्रयोग करते हैं वे बड़े मूर्ख हैं। ऐसे वाक्योंसे लोभायमान चित्त भोगैश्वर्य्यमें आसक्त मनुष्योंकी व्यवसायात्मिका बुद्धि कभी समाधिमें नहीं लग सकती।"

अर्थात् वैदिक कर्म्म या काम्य कर्म्मका अनुष्ठान धर्म्म नहीं है। अथच कर्म्म करना ही होगा। तब क्या कर्म्म किया जाय? जो काम्य नहीं है वही निष्काम है। जो निष्काम धर्म्म नामसे परिचित है वह कर्म्ममार्ग केवल मात्र कर्म्मका अनुष्ठान है।

गुरु। केवल तुम्हारा अनुष्ठेय कर्म्म है यही समझकर आहार और देशोद्धारका अनुष्ठान दोनों तुम्हें करना चाहिये। चोरी तुम्हारा अनुष्ठेय नहीं है।

शिष्य। तब यह कैसे मालूम होगा कि कौन कर्म्म अनुष्ठेय है—करने योग्य है और कौन कर्म्म नहीं। इसके बताये बिना तो निष्काम धर्म्मका मूल ही नहीं समझमें आता।

गुरु। वे अपूर्व धर्म्मप्रणेता कोई बात छोड़ नहीं गये हैं। वे बतलाते हैं कि कौन कर्म्म अनुष्ठेय है—

यज्ञार्थात् कर्म्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्म्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर ॥३।९॥

यहां यज्ञ शब्द ईश्वरके लिये है। मेरी बात पर विश्वास न हो तो शङ्कराचार्य्यकी बात मानो। उन्होंने इस श्लोकके भाष्यमें लिखा है—

यज्ञोवै विष्णुरिति श्रुतेर्यज्ञ ईश्वरस्तादर्थम्।

इससे श्लोकका यह अर्थ हुआ कि ईश्वरके लिये या ईश्वरके उद्देश्यसे जो कर्म्म होते हैं उनके सिवा और सब कर्म्म बन्धन मात्र हैं (अनुष्ठेय नहीं हैं) अतएव केवल ईश्वरोद्दिष्ट कर्म्म ही करना। इसका तात्पर्य्य क्या हुआ? यह कि सब वृत्तियोंको ईश्वरकी ओर ले जाना, नहीं तो सब कर्म्म ईश्वरके उद्देश्यसे नहीं होंगे। यह निष्काम धर्म्म ही दूसरी बातोंमें भक्ति कहलाता है। इसी प्रकार कर्म्म और भक्तिका सामञ्जस्य अन्यत्र और भी खुलासा हो जाता है। यथा—

मयि सर्वाणि कर्म्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्म्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥

अर्थात् विवेकबुद्धिसे सब कर्म्म मुझमें अर्पण करके निष्काम होकर और ममता तथा विकारशून्य होकर युद्धमें प्रवृत्त होओ।

शिष्य। ईश्वरमें कर्म्म अर्पण कैसे हो सकता है?

गुरु। "अध्यात्मचेतसा" इस वाक्यके साथ "संन्यस्य" शब्दको समझना होगा। भगवान शङ्कराचार्य्यने "अध्यात्मचेतसा" शब्दकी व्याख्यामें लिखा है—"अहं कर्त्तेश्वराय भृत्यवत् करो-

मीत्यनया बुद्धया।" "कर्त्ता जो ईश्वर हैं उन्हींके लिये उनके नौकरकी तरह काम करता हूं।" यह सोच कर काम करनेसे कृष्णमें कर्म्मार्पण होता है।

अब यह कर्म्म योग समझा? कर्म्म अवश्य कर्त्तव्य है। किन्तु केवल अनुष्ठेय कर्म्म ही कर्म्म है। जो कर्म्म ईश्वरोदिष्ट अर्थात् ईश्वरके निमित्त है वही अनुष्ठेय है। उसमें आसक्तिशून्य और फलाकांक्षाशून्य होकर उसका अनुष्ठान करना होगा। सिद्धि और असिद्धिको समान समझना। कर्म्मको ईश्वरमें अर्पण करना अर्थात् कर्म्म उनका है। मैं उनका भृत्यस्वरूप कर्म्म करता हूं। इसी विचार से कर्म्म करना। तभी कर्म्म योग सिद्ध होगा।

इसके करनेसे सब कार्य्यकारिणी और शारीरिकी वृत्तियोंको ईश्वरकी ओर झुकाना होगा। अतएव कर्म्मयोगही भक्तियोग है। भक्तिके साथ इसका ऐक्य और सामञ्जस्य देख लिया। यह अपूर्व तत्व, अपूर्व धर्म्म केवल गीतामें ही है। ऐसी आश्चर्य्यजनक धर्म्मव्याख्या और किसी देशमें कभी नहीं हुई। किन्तु इसकी सम्पूर्ण व्याख्या तुमको अभी तक नहीं मिली है। कर्म्मयोगमें ही धर्म्म सम्पूर्ण नहीं होता; कर्म्म धर्म्मकी केवल पहली सीढ़ी है। अब तुमसे ज्ञानयोगकी कुछ बातें कहूंगा।

पन्द्रहवां अध्याय।—भक्ति।

भगवद्गीता—ज्ञान।

—:०:—

गुरु। अब ज्ञानके विषयमें भगवदुक्तिका सार मर्म्म सुनो। कर्म्मकी बात कहकर चौथे अध्यायमें अपना अवतार कहते समय भगवान कहते हैं—

वीतरागभयक्रोधो मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥४।१०॥

इसका भावार्थ यह है कि कितनेही मनुष्य राग भय और क्रोधसे रहित होकर मन्मय (ईश्वरमय) और मेरे उपाश्रित होकर ज्ञान-तपके द्वारा पवित्र होकर मेरे भाव अर्थात् ईश्वरत्व वा मोक्ष पा गये हैं।

शिष्य। यह ज्ञान कैसा है ?

गुरु। जिस ज्ञानसे सब भूतोंको आत्मामें और ईश्वरमें देखता है। यथा—

येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ।४।३५।

शिष्य। यह ज्ञान कैसे पाऊंगा ?

गुरु। भगवानने इसका उपाय यह बताया है—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः ॥ ४ ३४ ।

अर्थात् प्रणिपात, जिज्ञासा और सेवा करके ज्ञानी तत्वदर्शियोंसे उसे पूछना।

शिष्य। मैं आपको सेवासे तुष्ट करके प्रणिपात और प्रश्न पूर्वक पूछता हूं। मुझे यह ज्ञान दीजिये।

गुरु। मैं नहीं दे सकता, क्योंकि मैं ज्ञानी भी नहीं हूं; तत्वदर्शी भी नहीं हूं। मगर एक मोटा सङ्केत बता दे सकता हूं।

ज्ञानसे सब भूतोंको अपनेमें और ईश्वरमें देख सकते हैं—
इस वाक्यमें किस किसका परस्पर सम्बन्ध जाननेयोग्य कहा है ?

शिष्य। भूतका, मेरा और ईश्वरका।

गुरु। भूतको किस शास्त्रसे जानोगे ?

शिष्य। बाहरी विज्ञानसे।

गुरु। अर्थात् उन्नीसवीं सदीके कौमतके पहले चार Mathemetics, Astronomy, Physics, Chemistry गणित, ज्योतिष, पदार्थतत्व और रसायनसे। इस ज्ञानके लिये आजकलके पाश्चात्योंको गुरु बनाना। उसके बाद अपनेको किस शास्त्रसे जानोगे।

शिष्य। वाह्य विज्ञान और अन्तर्विज्ञानसे।

गुरु। अर्थात् कोम्तके अन्तिम दो Biolagy. Sociology से यह भी पाश्चात्योंसे मांग लेना।

शिष्य। फिर ईश्वरको कैसे जानूंगा!

गुरु। हिन्दूशास्त्रोंसे। उपनिषद, दर्शन, पुराण, इतिहास और मुख्य करके गीतासे।

शिष्य। तो, जगत्में जो कुछ जानने योग्य है वह सब जानना होगा। पृथिवोमें जितने प्रकारके ज्ञानका प्रचार हुआ है सब जानना होगा। तो ज्ञान यहां साधारण अर्थमें कहा गया होगा?

गुरु। तुम्हें जो सिखाया है उसको याद रखनेहीसे ठीक समझोगे। ज्ञानार्ज्जनी वृत्तियोंकी पूरी स्फूर्त्ति और पूर्णता होनी चाहिये। सब प्रकारके ज्ञानकी चर्चा किये विना वह हो नहीं सकती। ज्ञानार्जनी वृत्तियोंकी उपयुक्त स्फूर्त्ति और पूर्णता होनेपर उसीके साथ अनुशीलन धर्मकी व्याख्याके अनुसार अगर भक्ति वृत्तिकी भी पूरी स्फूर्त्ति और पूर्णता हुई हो तो ज्ञानार्जनी वृत्तियां जब भक्तिके अधीन हो कर ईश्वरकी ओर जायंगी तभी इस गीतोक्त ज्ञानमें पहुंचोगे। अनुशीलन धर्ममेंही जैसे कर्म्मयोग है वैसेही उसमें ज्ञानयोग है।

शिष्य। मैंने निपट मूर्खकी भांति आपका कहा हुआ समूचा अनुशीलन धर्म्म उलटाही समझा था। अब कुछ कुछ समझमें आ रहा है।

गुरु। इस समय वह बात रहने दो। यह ज्ञानयोग समझनेकी चेष्टा करो।

शिष्य। पहले बताइये कि केवल ज्ञानसेही कैसे धर्म्मकी पूर्णता हो सकती है? तब तो पण्डित ही धार्म्मिक हैं।

गुरु। यह बात पहले कह चूका हूं। पाण्डित्य ज्ञान नहीं है। जिसने ईश्वरको समझा है, जिसने ईश्वर और जगत्का जो सम्बन्ध है उसे समझा है वह केवल पण्डित नहीं है वह ज्ञानी है। पण्डित होने पर भी वह ज्ञानी है। श्रीकृष्ण यह नहीं कहते कि केवल ज्ञानसेही मुझे किसीने पाया है। वे कहते हैं,—

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः॥ ४।१०।

अर्थात् जो लोग संयतचित्त और ईश्वरपरायण हैं वेही ज्ञानसे पवित्र होकर उनको पाते हैं। असल बात यह है कि कृष्णोक्त धर्म्मका मर्म्म यह नहीं है कि केवल ज्ञानसेही साधन सम्पूर्ण होता हो। ज्ञान और कर्म्म दोनोंका संयोग चाहिये।* केवल कर्म्मसेही नहीं होगा, केवल ज्ञानसेभी नहीं होगा। कर्म्म ही ज्ञानका साधन है। कर्म्मसे ज्ञान मिलता है, भगवान कहते हैं,—

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म्म कारणमुच्यते। ६।

जो ज्ञान योगपर आरूढ़ होना चाहते हैं उनके आरूढ़ होनेका कारण कर्म्मही कहा जाता है। अतएव कर्म्म करके ज्ञान होगा। यहां भगवद्वाक्यका अर्थ यह है कि कर्म्मयोगके बिना चित्तशुद्धि नहीं होती। चित्तशुद्धिके बिना ज्ञानयोगमें नहीं पहुंचा जाता।

शिष्य। तो क्या कर्म्मसे ज्ञान उत्पन्न होने पर कर्म्मको छोड़ देना होगा?

गुरु। दोनोंका ही संयोग और सामञ्जस्य चाहिये।

योगसंन्यस्तकर्म्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम्।
आत्मवन्तं न कर्म्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय॥४।४१॥

---

*यह कहना फजूल है कि यह बात ज्ञानवादी शङ्कराचार्य्यके मतसे विरुद्ध है। उनके मतानुसार ज्ञान और कर्म्ममें समुच्चय नहीं है। शङ्कराचार्य्यके विरुद्ध मतको शिक्षित सम्प्रदायके सिवा और कोई आजकल नहीं मानेगा, यह बात मैं जानता हूं। पक्षान्तरमें यह भी वक्तव्य है कि श्रीधर स्वामी प्रभृति भक्तिवादी लोग शङ्कराचार्य्यके अनुयायी नहीं हैं। और बहुतसे पहलेके पण्डितोंको इस मतके विरोधी होनेके कारण ही शङ्कराचार्य्यको अपना पक्ष समर्थन करनेके लिये भाष्यमें बड़े बड़े प्रबन्ध लिखने पड़े हैं।

हे धनञ्जय! कर्म्मयोगसे जो व्यक्ति सन्यस्तकर्म्म हुआ है और ज्ञानसे जिसका संशय मिट गया है उस आत्मवानको कर्म्म बन्धनमें नहीं रख सकते।

इसलिये चाहिये (१) कर्म्मका सन्यास या ईश्वरार्पण और (२) ज्ञानसे संशयच्छेदन। यों कर्म्मवाद और ज्ञानवादका विवाद मिट जाता है। धर्म्म सम्पूर्ण होता है। इस प्रकारसे धर्म्मप्रणेताओंमें श्रेष्ठ पुरुषने भूतल पर महामहिमामय यह नया धर्म्म प्रचारित किया। कर्म्म ईश्वरमें अर्पण करो; कर्म्मसे ज्ञान प्राप्त करके परमार्थतत्त्वमें संशय मिटाओ। यह ज्ञान भी भक्तिसे युक्त है; क्योंकि,—

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञान निर्द्धूतकल्मषाः॥५।१७।

ईश्वरमें ही जिनकी बुद्धि है, ईश्वरमें ही जिनकी आत्मा है, उनमें जिनकी निष्ठा है और जो तत्परायण हैं उनका सब पाप ज्ञानमें निर्द्धूत हो जाता है, वे मोक्ष पा जाते हैं।

शिष्य। अब समझ रहा हूं कि ज्ञान और कर्म्मके संयोगसे भक्ति है। कर्म्मके लिये यह दरकार है कि कार्य्यकारिणी और शारीरिकी वृत्तियां सबके सब उपयुक्त स्फूर्त्ति और पूर्णता प्राप्त करके ईश्वरकी ओर झुकें। ज्ञानके लिये यह दरकार है कि ज्ञानार्ज्जनी वृत्तियां उसी प्रकार स्फूर्त्ति और पूर्णता प्राप्त करके ईश्वरकी ओर झुकें। और चित्तरञ्जिनी वृत्तियां?

गुरु। वे भी उसी तरह होंगी। वह उनकी चर्चा करते समय बताऊंगा।

शिष्य। तब मनुष्यकी सब वृत्तियां उपयुक्त स्फूर्त्ति और पूर्णता प्राप्त होकर ईश्वरमुखी होने पर यह गीतोक्त ज्ञान कर्म्म-न्यास योगमें परिणत होता है। ये दोनों ही भक्तिवाद हैं। आपने मुझे जो मनुष्यत्व और अनुशीलन धर्म्म सुनाया है वह इस गीतोक्त धर्मकी केवल नयी व्याख्या मात्र है।

गुरु। धीरे धीरे यह बात और भी अच्छी तरह समझोगे।

सोलहवां अध्याय—भक्ति।

भगवद्गीता—सन्न्यास।

——:o:——

गुरु। इसके सिवा और एक बात सुनो। हिन्दूशास्त्रके अनुसार जवानीमें ज्ञान लाभ करना होता है और मध्य अवस्थामें गृहस्थ होकर कर्म्म करना पड़ता है। गीतोक्त धर्म्म ठीक ऐसा ही नहीं कहा गया है; वरञ्च ऐसा कहा गया है कि कर्म्म से ज्ञान लाभ करना। यही सत्य है, क्योंकि अध्ययन भी कर्म्म में ही दाखिल है, और केवल अध्ययनसे ज्ञान नहीं हो सकता। जो हो मनुष्यका एक दिन ऐसा भी आता है जो न कर्म्म करनेका समय है और न ज्ञानोपार्ज्जनका। उस समय ज्ञान प्राप्त रहता है और कर्म्मकी शक्ति या दरकार भी नहीं रहती। हिन्दूशास्त्रमें इस अवस्थामें तीसरा और चौथा आश्रम लेनेकी विधि है। उसको साधारणतः सन्न्यास कहते हैं। सन्न्यासका खुलासा अर्थ कर्म्म त्याग है। भगवानने इसको भी मुक्तिका उपाय माना है। वरञ्च उन्होंने यह भी कहा है कि ज्ञानयोगमें जानेकी जो इच्छा करता है यद्यपि उसका सहाय कर्म्म ही है किन्तु जो ज्ञानयोगमें पहुंच गया है उसका सहाय कर्म्मत्याग है।

> आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म्म कारणमुच्यते।
> योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते।

शिष्य। किन्तु कर्म्मत्याग और संसारत्याग एकही बात है। तो क्या संसारत्याग एक धर्म्म है? ज्ञानीके लिये क्या यही विहित है।

गुरु। पहलेके हिन्दूधर्म्मशास्त्रोंकारोंका यही मत है। यह भी ... है कि कर्म्मत्याग ज्ञानीकी साधनामें सहायता करता है। इस ...यमें भगवद्वाक्यही प्रमाण है। तथापि कृष्णोक्त इस पुण्यमय ...की यह शिक्षा नहीं है कि कोई कर्म्मत्याग या संसारत्याग

करे। भगवान कहते हैं कि कर्म्मयोग और कर्म्मत्याग दोनोंही मुक्तिके कारण हैं; किन्तु कर्म्मत्यगही श्रेष्ठ है।

संन्यासः कर्म्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्म्मसंन्यासात् कर्म्मयोगो विशिष्यते॥५।२।

शिष्य। यह कभी नहीं हो सकता। अगर ज्वरका घटना अच्छा हो तो ज्वरका रहना कभी अच्छा नहीं हो सकता। अगर कर्म्म त्याग अच्छा है तो कर्म्म अच्छा नहीं हो सकता। क्या ज्वरके त्यागसे ज्वरका रहना अच्छा है?

गुरु। किन्तु अगर ऐसा हो कि कर्म्मको जारी रखकर भी कर्म्म त्यागका फल मिल जाय?

शिष्य। तब कर्म्म ही श्रेष्ठ है। क्योंकि उस दशामें कर्म्म और कर्म्मत्याग दोनोंका फल मिलता है।

गुरु। ठीक ऐसाही है। पहलेके हिन्दूधर्म्मका उपदेश है, कर्म्म त्याग करके संन्यास ग्रहण करना, गीताका उपदेश है। कर्म्म ऐसे चित्तसे करो कि उसीमें संन्यासका फल मिले। निष्काम कर्म्म ही संन्यास है। संन्यासमें और अधिक क्या हो? अधिक जो कुछ है वह व्यर्थ दुःख है।

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति।
निर्द्वन्दो हि महाबाहो सुखं बन्धात प्रमुच्यते॥
सांख्ययोगं पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयो र्विन्दते फलम्॥
यत्सांख्यै प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं सांख्यञ्च योगञ्च यः पश्यति स पश्यति॥
संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तमयोगतः।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म न चिरेनाधिगच्छति॥५।३-६
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयो विन्दते फलम्॥

"जिनको द्वेष नहीं है और आकांक्षा नही है उनको नित्य संन्यासी जानना। हे महाबाहो! ऐसे निर्द्वन्द पुरुष ही सुखपूर्वक बन्धनसे मुक्त हो सकते हैं। यह बात बालकही कहते हैं कि (सांख्य) संन्यास और (कर्म्म) योग पृथक हैं, पण्डित ऐसा नहीं कहते। एकके आश्रयसे एक

साथ ही दोनोंका फल मिलता है। संख्यामें (संन्यासमें)* जो मिलता है (कर्ममें) योगमें भी वही मिलता है। जो दोनोंको एकही समझते हैं वेही यथार्थदर्शी हैं। हे महावाहो! कर्मयोगके विना संन्यास दुःखका कारण है। योगयुक्त मुनि शीघ्रही ब्रह्मको पाते हैं। "सारांश यह कि जो समस्त अनुष्ठेय कर्मोंको किया करते हैं अथच चित्तमें सब कर्मोंके लिये संन्यासी हैं वे ही धार्म्मिक हैं।

शिष्य। ऐसा परम वैष्णव धर्म्म त्याग कर वैरागी लोग इन दिनों करवा कौपीन पहनकर क्यों स्वांग रचते हैं यह समझमें नहीं आता। वैराग्यसे उसका अर्थ तो नहीं जान पड़ता। उस परम पवित्र धर्म्मसे उस पापकी जड़ कटती है अथवा ऐसा पवित्र, सर्व्वव्यापी उन्नतिशील वैराग्य और कहीं नहीं है। इसमें सर्वत्र वही पवित्र वैराग्य, सकर्म वैराग्य है, अथच Asceticism कहीं नहीं है। आपने ठीक ही कहा है कि ऐसा आश्चर्यमय धर्म्म, ऐसा सत्यमय उन्नतिकर धर्म्म जगत्में और कभी प्रचारित नहीं हुआ। गीता रहते लोग वेद स्मृति, बाईबल या कुरानमें धर्म्म ढूंढ़ने जाते हैं यह आश्चर्य मालूम होताहै। इस धर्म्मके प्रथम प्रचारकके आगे किसीकी धर्म्मवेत्ताओंमें गिन्ती नहीं हो सकती। इस धर्म्मके प्रणेता कौन हैं?

गुरु। मुझे यह विश्वास नहीं है कि श्रीकृष्णने अर्जुनके रथ पर चढ़कर कुरुक्षेत्रमें युद्धसे कुछही पहले ये सब बातें कही थीं। विश्वास न करनेके कई कारण हैं। यह भी कहा जा सकता है कि गीता महाभारतमें क्षेपक है। किन्तु इसका विश्वास मुझे है कि कृष्ण गीतोक्त धर्म्मके सृष्टिकर्त्ता हैं। इसका कारण है। तात्पर्य यह कि तुम देख सकते हो, एक निष्काम बादसे समुदाय मनुष्य-जीवन शासित और नीति तथा धर्म्मके सब उच्च तत्त्व एकता प्राप्त होकर पवित्र होते हैं। काम्य कर्म्मका त्यागही संन्यास है। निष्काम कर्म्म ही संन्यास है, निष्काम कर्म्म त्याग संन्यास नहीं है।

---

* "सांख्य" शब्दके अर्थमें इस समय कुछ सन्देह हो सकता है सब ऐसी समझ हो के शाङ्कर भाष्य देखें।

काम्यानां कर्म्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः :
सर्व्वकर्म्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥ १८ । २।

जिसदिन युरोपियन विज्ञान तथा शिल्प और भारतवर्षका यह निष्काम धर्म्म एकत्र होंगे उसी दिन मनुष्य देवता होंगे। उस समय उक्त विज्ञान और शिल्पका निष्कामप्रयोग छोड़कर सकाम प्रयोग नहीं होगा।

शिष्य। क्या मनुष्यको ऐसा दिन नसीब होगा?

गुरु। तुमलोग भारतवासी हो, तुमलोगोंके करनेसे ही होगा। दोनो ही तुम लोगोंके हाथमें हैं। इस समय चाहो तो तुमलोग ही पृथिवीके मालिक और नेता हो सकते हो। यह आशा यदि तुमलोगोंमें न हो तो मेरा बकना व्यर्थ है। जो हो, अब इस गीतोक्त संन्यासवादका असली तात्पर्य्य क्या है? यही कि कर्म्म-हीन संन्यास निकृष्ट संन्यास है। कर्म्म, समझा चुका हूँ कि भक्त्यात्मक है। अतएव इस गीतोक्त संन्यासवादका तात्पर्य्य यह है कि भक्त्यात्मक कर्म्मयुक्त संन्यास ही असली संन्यास है।

सत्रहवां अध्याय— भक्ति।

ध्यान विज्ञानादि।

गुरु। भगवद्गीताके पांच अध्यायोंकी बातें तुम्हें समझायी हैं। पहले अध्यायमें सैन्यदर्शन और दूसरेमें ज्ञानयोगका स्थूल आभास है जिसका नाम सांख्ययोग है; तीसरेमें कर्म्मयोग, चौथेमें त्यागयोग और पांचवेंमें संन्यासयोग है, यह सब तुम्हें समझा चुका। छठेमें ध्यानयोग है। ध्यान ज्ञानवादियोंका अनुष्ठान है। इसलिये उसकी अलग आलोचना करनेकी दरकार

नहीं है। जो ध्यान मार्गावलम्बी है वह योगी है। योगी कौन है इसका लक्षण इस अध्यायमें लिखा है। जिस अवस्थामें चित्त योगानुष्ठान द्वारा निरुद्ध होकर उपरत होता है; जिस अवस्थामें विशुद्धान्तःकरण द्वारा आत्माको अवलोकन करके आत्मामें ही परितृप्त होता है, जिस अवस्थामें बुद्धिमात्रलभ्य, अतीन्द्रिय, आत्यन्तिक सुख उपलब्ध होता है, जिस अवस्थामें रहनेसे आत्म-तत्त्वसे परिच्युत होना नहीं पड़ता, जिस अवस्थाको लाभ करनेसे दूसरा कोई लाभ अधिक मालूम नहीं होता और जिस अवस्थामें पहुंचनेसे कठिनसे कठिन दुःख भी विचलित नहीं कर सकता उसी अवस्थाका नाम योग है। नहीं तो खाना छोड़कर बारह वर्ष आंखें मूंदे और एक जगह बैठे सोचनेसे योग नहीं होता। किन्तु योगियोंमें भी प्रधान भक्त हैं।

योगिनामपि सर्व्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥ ६। ४७

"जो मुझमें आसक्त होकर श्रद्धापूर्वक मुझे भजते हैं, मेरे मतमें योगयुक्त व्यक्तियोंमें वेही श्रेष्ठ हैं।" यही भगवानकी उक्ति है, अतएव गीतोक्त धर्म्ममें, ज्ञान कर्म्म ध्यान संन्यास—भक्तिके बिना कुछ भी सम्पूर्ण नहीं है। भक्ति ही सब साधनोंका सार है।

सातवेंमें विज्ञानयोग है। इसीमें ईश्वर अपना स्वरूप कहते हैं। ईश्वरने निर्गुण और सगुण, अर्थात् स्वरूप और तटस्थ लक्षणसे अपना वर्णन किया है। किन्तु इसमें विशेषरूपसे कहा है कि ईश्वरमें भक्ति करनेके सिवा उनके जाननेका और कोई उपाय नहीं है। अतएव भक्ति ही ब्रह्मज्ञानकी सहाय है।

आठवेंमें तारकब्रह्मयोग है। एकान्त भक्तिसे ही वे प्राप्त होते हैं।

नवें अध्यायमें विख्यात राजगुह्य योग है। इसमें बड़ी ही मनोहारी बातें हैं। इसमें पहले जगदीश्वरने एक बड़ी ही सुन्दर उपमासे अपने साथ जगत्का सम्बन्ध प्रकट किया—"जैसे सूतमें मणि गुथे हुए हैं वैसे ही मुझमें यह विश्व गुथा है।" ऐसे और एक सुन्दर उपमा दी गयी है। यथा,—

मेरी आत्मा सबभूतोंको धारण और पालन करती है, किन्तु किसी भूतमें नहीं बसती। जैसे समीरण सर्वत्रगामी और महत होने पर भी सदा आकाशमें रहता है वैसेही सब भूत मुझमें रहते हैं। हर्बर्ट स्पेंसरके नदी वाले बुलबुलेकी उपमासे यह उपमा कहीं बढ़कर है।

शिष्य। मेरी आंखकी फूली निकल गयी। मेरा विश्वास था कि निर्गुण ब्रह्मवाद Pantheism मात्र है। अब देखता हूं कि उससे बिल्कुल अलग है।

गुरु। अंगरेजी संस्कारके वश होकर इन सबकी आलोचना करनेमें यही दोष है। हम लोगोंमें कितने ही ऐसे बाबू हैं जिनको नामचीनके ग्लासमें न पीनेसे पानी मीठा नहीं लगता। शायद तुम लोगोंको और एक भ्रम है कि मनुष्य मात्र ही—मूर्ख और ज्ञानी, धनी और दरिद्र, पुरुष और स्त्री, बूढ़े और बालक—सब जातियां समान रूपसे परित्राणके अधिकारी हैं। यह साम्य वाद केवल गौतम बुद्धके और ईसाके धर्ममें ही है, वर्णभेदज्ञ हिन्दूधर्ममें नहीं है। इस अध्यायके दो श्लोक सुनो

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥ ९। २९।

* * *

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥ ९। ३२।

"मैं सब भूतोंके लिये समान हूं। मेरा न तो कोई द्वेष्य है और न कोई प्रिय; जो भक्तिपूर्वक मुझे जानता है मैं उसमें हूं और वह मुझमें है।

* * *

पापयोनि भी आश्रय लेनेसे परागति पाती है—वैश्य, शूद्र, स्त्री सभी पाते हैं।

शिष्य। यह शायद बौद्धधर्मसे लिया है।

गुरु। पढ़े लिखों पर यही पागलपन सवार हो गया है।

अङ्गरेज पण्डितोंसे तुम लोगोंने सुना है कि सन् ईस्वीसे ५४३ (या ४४७) वर्ष पहले शाक्य सिंह मरे ; इससे उनकी देखादेखी सिद्धान्त करना सीखा है कि जो कुछ भारतवर्षमें हुआ है वह सब बौद्धधर्म्मसे लिया गया है, तुम लोगोंका दृढ़ विश्वास है कि हिन्दूधर्म्म ऐसी निकृष्ट सामग्री है कि कोई अच्छी वस्तु उसके निजके क्षेत्रसे उत्पन्न नहीं हो सकती। यह नकलनवीस सम्प्रदाय यह बात भूल जाती है कि स्वयं बौद्धधर्म्म ही हिन्दुधर्म्मसे उत्पन्न हुआ है। जब समूचा बौद्धधर्म्म इससे उत्पन्न हुआ तब और कोई अच्छी वस्तु इससे नहीं निकल सकती ?

शिष्य। योगशास्त्रकी व्याख्या करते समय आपका यह क्षोभ उचित नहीं जान पड़ता। अब राजगुह्य योगका वृत्तान्त सुनना चाहता हूं।

गुरु। राजगुह्य योगको सबसे प्रधान साधन कहा है। इसका खुलासा यह है कि यद्यपि ईश्वर सबका साध्य है तथापि जो जिस भावसे चिन्तन करता है वह उसी भावसे उनको पाता है। जो लोग देवदेवियोंकी सकाम उपासना करते हैं वे ईश्वरकी कृपासे सिद्धकाम होकर स्वर्गभोग तो करते हैं, किन्तु ईश्वरको नहीं पाते ; परन्तु जो निष्काम होकर देवदेवियोंकी उपासना करते हैं उनकी उपासना निष्काम होनेसे वे ईश्वरकी ही उपासना करते हैं, क्योंकि ईश्वरके सिवा और कोई देवता नहीं है। जो सकाम होकर देवदेवियोंकी उपासना करते हैं उनके भावान्तरमें ईश्वरोपासनासे ईश्वर न पानेका कारण यह है कि सकाम उपासना ईश्वरोपासनाकी असली पद्धति नहीं है। परन्तु ईश्वरकी निष्काम उपासना ही मुख्य उपासना है, इसके बिना ईश्वरप्राप्ति नहीं होती। अतएव सब कामनाएं त्यागकर सब कर्म्म ईश्वरमें अर्पण करते हुए ईश्वरमें भक्ति करना ही धर्म्म और मोक्षका उपाय है। यह राजगुह्य योग भक्तिपूर्ण है।

सातवेंमें ईश्वरका स्वरूप कहा है। दसवेंमें उसकी विभूतियोंका वर्णन है। यह विभूतियोग बड़ा ही विचित्र है ; परन्तु इस समय उसकी तुम्हें कुछ दरकार नहीं है। दसवेंमें वि-

तियोंका वर्णन करके उसके प्रत्यक्ष स्वरूप ग्यारहवेंमें भगवानने अर्जुनको विश्वरूप दर्शन कराया। उसीसे बारहवेंमें भक्ति प्रसङ्ग उठा। कल तुम्हें वह भक्ति योग सुनाऊंगा।

अठारहवां अध्याय—भक्ति।

भगवद्गीता-भक्तियोग।

——:o:——

शिष्य। भक्तियोग बतानेसे पहले एक बात समझा दीजिये। ईश्वर एक है, किन्तु साधन भिन्न भिन्न प्रकारका है क्यों है? सीधा रास्ता एकही हो सकता है, पांच नहीं।

गुरु। निःसन्देह सीधा रास्ता एक ही होता है, पांच नहीं; किन्तु सब कोई सब समय सीधे रास्ते नहीं जा सकते। पहाड़की चोटीपर चढ़नेका जो सीधा रास्ता है उस पर दो एक बलवान आदमी ही जा सकते हैं। साधारण के लिये घुमाव फिरावका रास्ताही ठीक है। इस संसारमें अनेक प्रकारके आदमी हैं। उनकी अलग अलग शिक्षा और अलग अलग प्रकृति है। कोई गृहस्थ है, किसीको गृहस्थी नसीब नहीं हुई या हुई हो तो उसे उसने त्याग दिया है। जो अगृहस्थ है उसके लिये सन्न्यास है। जो ज्ञानी है और गृहस्थ भी है उसके लिये ज्ञान और विज्ञान योगही उत्तम है; जो ज्ञानी है, मगर गृहस्थ नहीं है अर्थात् जो योगी है उसके लिये ध्यानयोगही उत्तम है। और आपामर सर्वसाधारणके लिये सब साधनोंमें श्रेष्ठ राजगुह्ययोग ही उत्तम है। अतएव जगदीश्वरने सब प्रकारके मनुष्योंकी उन्नतिके लिये इस आश्चर्य्यपूर्ण धर्म्मका प्रचार किया है। वे करुणामय हैं जिससे सबके लिये धर्म्म सरल हो जाय, यही उनका उद्देश्य है।

शिष्य। किन्तु आपने जो समझाया है वह अगर सत्य हो तो भक्ति सब साधनोंके अन्तर्गत है। तब तो एक भक्तिको विहित कर देनेसे ही सबके लिये सीधा रास्ता हो जाता।

गुरु। किन्तु भक्तिका अनुशीलन चाहिये। इसीलिये विविध-साधन हैं, विविध अनुशीलनपद्धतियां हैं। मेरा कहा हुआ अनुशीलन-तत्त्व अगर तुमने समझा हो तो यह बात जल्द समझ जाओगे। भिन्न भिन्न मनुष्योंके लिये भिन्न भिन्न अनुशीलन-पद्धतियां विधेय हैं। योग उन अनुशीलन-पद्धतियोंका दूसरा नाम मात्र है।

शिष्य। किन्तु जिस प्रकारसे ये योग कहे गये हैं उनसे पाठकोंके मनमें एक प्रश्न उठ सकता है। निर्गुण ब्रह्मकी उपासना अर्थात् ज्ञान, साधन विशेष कहा गया है और सगुण ब्रह्मकी उपासना अर्थात् भक्ति भी साधन विशेष कही गयी है। कितनोंहीके लिये दोनोंही साध्य हैं। जिसके लिये दोनों साध्य हैं वह किस मार्गपर जाय? जानता हूं कि दोनोंही भक्ति हैं, तथापि ज्ञानबुद्धिमयी भक्ति और कर्म्ममयी भक्तिमें कौन श्रेष्ठ है?

गुरु। बारहवें अध्यायके अन्तमें यही प्रश्न अर्जुनने कृष्णसे किया है और इसी प्रश्नके उत्तरमें बारहवें अध्यायमें भक्तियोग है। यही प्रश्न समझानेके लिये गीताके पहले अध्यायोंका मर्म संक्षेपमें तुम्हें बताया। प्रश्न समझे विना उत्तर समझमें नहीं आ सकता।

इन्होंने स्पष्ट कहा है कि निर्गुण ब्रह्मके उपासक और ईश्वरभक्त दोनोंही ईश्वरको पाते हैं। किन्तु उनमें भेद यही है कि ब्रह्मोपासक अधिक दुःख भोगते हैं और भक्त सहजमें उद्धार हो जाते हैं।

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥
ये तु सर्व्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते।
तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरात्॥ १२।५-७।

शिष्य। तो यह बताइये कि वह भक्त कौन है?

गुरु। भगवान् स्वयं कहते हैं—

अद्वेष्टा सर्व्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।

निर्म्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी ॥
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़निश्चयः।
मय्यर्पित मनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥
यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥
अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्व्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥
यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभ परित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः॥
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्ज्जितः॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान् मे प्रियोनरः॥
ये तु धर्म्मामृतमिदं यथोक्तं पर्य्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियः॥१२।१३—२०

"जो ममताशून्य है (अर्थात् जिसको 'मेरा' 'मेरा'का ज्ञान नहीं है) जो अहङ्कारशून्य है, जो सुख और दुःखको समान जानता है जो क्षमाशील, सन्तुष्ट, योगी, संयतात्मा और दृढ़सङ्कल्प है और जिसका मन और बुद्धि मुझमें अर्पित है, ऐसा जो मेरा भक्त है वही मेरा प्रिय है। जिससे लोग नहीं घबराते, जो हर्ष विषाद और उद्वेगसे मुक्त है वही मेरा प्रिय है। जो विषयादिमें अनपेक्ष शुचि, दक्ष, उदासीन, व्यथारहित अथच सर्वारम्भ त्यागनेमें समर्थ है वही मेरा प्रिय है। जिसको किसीसे हर्ष नहीं है, और द्वेष भी नहीं है, जो शोक भी नहीं करता और आकांक्षा भी नहीं करता, शुभ और अशुभ सब कुछ त्यागनेमें समर्थ है वही भक्त मेरा प्रिय है। जिसके लिये शत्रु और मित्र, मान और अपमान, शीतोष्ण सुख और दुःख समान है, जो सङ्गविवर्ज्जित है, जो निन्दा और स्तुतिको तुल्य समझता है, जो संयतवाक्य है, जो हर तरहसे सन्तुष्ट है, जो सदा आश्रयमें नहीं रहता तथा स्थिरमति है वही भक्त मेरा प्रिय है। यह धर्म्मामृत जिस प्रकार कहा है जो उसी प्रकार अनु-

ज्ञान करता है वही श्रद्धावान मेरा परम भक्त है, मेरा बड़ा ही प्रिय है।"

अब समझे, भक्ति क्या है? घरमें किवाड़ बन्द करके पूजाका ढोंग रचनेसे भक्त नहीं हो सकता। माला खुटखुटाकर राम राम कहनेसे भक्त नहीं हो सकता, हे राम! हे दैव! कहकर शोर मचाते फिरनेसे भक्त नहीं हो सकता; जो आत्मजयी है, जिसका चित्तसंयम है, जो समदर्शी है, जो परोपकारमें लीन है, वही भक्त है। ईश्वरको सदा हृदयमें विद्यमान जानकर जिसने अपना चरित्र पवित्र नहीं किया है, जिसका चरित्र ईश्वरके अनुरूप नहीं है वह भक्त नहीं है। जिसका सारा चरित्र भक्तिसे शासित नहीं हुआ है वह भक्त नहीं है। जिसकी सब चित्तवृत्तियां ईश्वरकी ओर नहीं झुकी हैं वह भक्त नहीं है, गीतोक्त भक्तिका खुलासा यही है। ऐसा उदार और ऐसा प्रशस्त भक्तिवाद संसारमें और कहीं नहीं है। इसीसे भगवद्गीता संसारमें सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है।

उन्नीसवां अध्याय।—भक्ति।

ईश्वर भक्ति—विष्णुपुराण।

—:0:—

गुरु। भगवद्गीताके बाकी अंशकी कोई बात उठानेकी अब हमें दरकार नहीं है। अब, मैंने जो कुछ कहा है उसको स्पष्ट करनेके लिये हम विष्णुपुराणोक्त प्रह्लादचरित्रकी समालोचना करेंगे। विष्णुपुराणमें दो भक्तोंकी कथा है। सब लोग जानते हैं कि वे ध्रुव और प्रह्लाद हैं। इन दोनोंकी भक्ति दो प्रकारकी है। जो ... गया है उससे समझ चुके होगे कि उपासना दो तरहकी है, सकाम और निष्काम। जो उपासना सकाम है वही काम्य कर्म है और

जो उपासना निष्काम है वही भक्ति है। ध्रुवकी उपासना सकाम थी; उन्होंने उच्च पद पानेके लिये ही विष्णुकी उपासना की थी। अतएव उनकी की हुई उपासना असली भक्ति नहीं थी; ईश्वरमें उनका दृढ़ विश्वास रहने और मनोबुद्धि समर्पण करने पर भी वह भक्तकी उपासना नहीं थी। प्रह्लादकी उपासना निष्काम थी। उन्होंने कुछ पानेके लिये ईश्वरमें भक्ति नहीं की थी; वलिक ईश्वरमें भक्ति करनेसे वे अनेक प्रकारकी विपदमें पड़े थे, किन्तु ईश्वरमें भक्ति ही उन सब विपदोंका कारण है, यह जानकर भी उन्होंने भक्ति नहीं छोड़ी। यह निष्काम प्रेमही यथार्थ भक्ति है और प्रह्लाद ही परम भक्त थे। अनुमान होता है कि ग्रन्थकारने सकाम और निष्काम उपासनाके उदाहरणके तौरपर और परस्परकी तुलनाके लिये ध्रुव और प्रह्लाद नामक दो उपाख्यान रचे हैं। भगवद्गीताके राज-योगके सम्बन्धमें जो कहा है वह यदि तुम्हें याद हो तो समझ जाओगे कि सकाम उपासना भी विलकुल निष्फल नहीं है। जो जिस कामनासे उपासना करता है वह उसे पाता है किन्तु ईश्वरको नहीं पाता। ध्रुवने उच्च पदकी कामनासे उपासना की थी। वे उसे पा गये थे। तथापि उनकी वह उपासना निम्न श्रेणीकी उपासना थी, भक्ति नहीं थी। प्रह्लादकी उपासना भक्ति थी, इसीसे उन्होंने मुक्ति पायी।

शिष्य। कितनेही लोग कहेंगे कि लाभ ध्रुवको ही अधिक हुआ। मुक्ति पारलौकिक लाभ है, उसकी सत्यतामें बहुत लोगोंको सन्देह है। ऐसा भक्तिधर्म्म लोगोंमें आनेकी सम्भावना नहीं है।

गुरु। मुक्तिका असली तात्पर्य्य क्या है यह तुम भूल गये हो। इस लोकमें ही मुक्ति हो सकती है और होती है। जिसका चित्त शुद्ध और दुःखके अतीत है वह इस लोकमें ही मुक्त है। सम्राट दुःखसे अतीत नहीं हैं; किन्तु मुक्त जीव इस लोकमें ही दुःखके अतीत है; क्योंकि वह आत्मजयी होकर विश्वजयी हो गया है। सम्राटको क्या सुख है, यह मैं नहीं कह सकता। बहुत अधिक सुख है, ऐसा अनुमान नहीं होता। किन्तु जो मुक्त—अर्थात् स्वयंतात्मा और विशुद्धचित्त है उसके मनके सुखकी सीमा नहीं है।

जो मुक्त है वह इस जीवनमें ही सुखी है। इसी लिये तुमसे कहा था कि सुखका उपाय धर्म्म है। मुक्त व्यक्ति की सब वृत्तियां पूरी स्फूर्त्ति पाकर सामञ्जस्ययुक्त हो जाती हैं; इससे वह मुक्त है। जिसकी सब वृत्तियां स्फूर्त्तिप्राप्त नहीं हैं वह अज्ञानता, असामर्थ्य या चित्तकी मलिनताके कारण मुक्त नहीं हो सकता।

शिष्य। मेरा विश्वास है कि इस जीवन्मुक्तकी कामना करके ही भारतवासी इस प्रकार अधःपतित हुए हैं। जो इस प्रकारके जीवन्मुक्त हैं उनका ध्यान सांसारिक कार्य्योंमें उतना नहीं रहता; इसीसे भारतवर्षकी यह अवनति हुई है।

गुरु। मुक्तिका यथार्थ तात्पर्य्य न समझनाही इस अधःपतनका कारण है। जो लोग मुक्ति या मुक्तिपथके पथिक हैं वे संसारसे निर्लिप्त होते हैं, किन्तु निष्काम होकर सब अनुष्ठेय कर्म्मोंका अनुष्ठान करते हैं। निष्काम होनेके कारण उनका कर्म्म स्वदेश और जगत्के लिये कल्याणकारी होता है; सकाम कर्म्मियोंके कर्म्मसे किसीका मङ्गल नहीं होता। और उनकी सब वृत्तियां अनुशीलित और स्फूर्त्तिप्राप्त होती हैं, इसलिये वे दक्ष और कर्म्मठ होते हैं; पहले जो भगवद्वाक्य उद्धृत किया है उसमें देखोगे कि दक्षता * भगवद्भक्तका एक लक्षण है। वे दक्ष अथच निष्काम कर्म्मी होते हैं। इसलिये उनसे स्वजाति और जगत्का जितना मङ्गल होता है उतना और किसीसे नहीं हो सकता। इस देशके सब लोग ऐसेही मुक्तिमार्गका अवलम्बन करें तो भारतवासी ही जगत्में श्रेष्ठ जातिका पद पावें। मुक्तितत्वकी इस यथार्थ व्याख्याका लोप होनेके कारण मैं अनुशीलन वादसे उसे तुम्हारे हृदयङ्गम करा रहा हूं।

शिष्य। अब प्रह्लाद चरित्र सुननेकी इच्छा है।

गुरु। प्रह्लाद चरित्र सविस्तार कहनेकी मेरी इच्छा भी नहीं है और दरकार भी नहीं है। अलबत्ते एक बात प्रह्लादचरित्रसे समझाना चाहता हूं। मैंने कहा है कि केवल हे राम! हे

---

* अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।

देव ! कहते फिरनेसे भी नहीं होती। जो आत्मजयी है, सर्वभूतको अपने समान जानकर सब लोगोंके हितमें रत होता है, और शत्रु मित्रके लिये समदर्शी है और निष्काम कर्म्मी है वही भक्त है। यह बात भगवद्गीतामें कही है, सो बता चुका हूं। प्रह्लाद उसके उदाहरण हैं। भगवद्गीतामें जो उपदेश है, उसे विष्णुपुराणमें उपन्यासके ढंगसे खुलासा कर दिया है। गीतामें भक्तके जितने लक्षण कहे गये हैं उन्हें शायद तुम भूल गये हो। इस लिये फिर एक बार सुना देता हूं।

अद्वेष्टा सर्व्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्म्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुख क्षमी॥
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़निश्चयः।
मय्यर्पित मनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥
यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥
अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्व्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥
समः शत्रौच मित्रेच तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्ग विवर्ज्जितः॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्म्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान् मे प्रियो नरः॥

गीता १२। १३-२०

पहलेही प्रह्लादको "सर्वत्र समदृग्वशी" कहा है।

समचेता जगत्यस्मिन् यः सर्व्वेष्वेव जन्तुषु।
यथात्मनि तथान्यत्र परं मैत्र गुणान्वितः॥
धर्म्मात्मा सत्यशौचादिगुणानामाकरस्तथा।
उपमानमशेषाणां साधूनां यः सदाभवत्॥

किन्तु बातें कहनेसे कुछ नहीं होता, काम करके दिखाना होता है। प्रह्लादका पहला काम देखते हैं, कि वे सत्यवादी हैं। सत्यमें उनकी इतनी दृढ़ता है कि किसी प्रकारके भयसे डरकर वे सत्यको नहीं छोड़ते। गुरुके घरसे पिताके पास लाये जाने

पर हिरण्यकशिपुने उनसे पूछा—"क्या सीखा है? उसका सार सुनाओ तो।"

प्रल्हादने कहा—"जो सीखा है उसका सार यही है कि जिनका आदि नहीं है, अन्त नहीं है, मध्य नहीं है, जिनकी वृद्धि नहीं है, क्षय नहीं है, जो अच्युत, महात्मा, सब कारणोंके कारण हैं, उन्हें नमस्कार है।"

इस पर हिरण्यकशिपुने क्रोधसे आंखें लाल करके कांपते हुए होठोंसे प्रल्हादके गुरुको फटकारा। गुरुने कहा—"मेरा दोष नहीं है, मैंने यह सब नहीं सिखाया है।"

तब हिरण्यकशिपुने प्रल्हादसे पूछा—"तब किसने सिखाया रे?

प्रल्हादने कहा—"पिता! जो विष्णु इस जगत्के शास्ता हैं, जो मेरे हृदयमें विराजमान हैं, उन परमात्माको छोड़कर और कौन सिखा सकता है?

हिरण्यकशिपुने कहा—"जगत्का ईश्वर तो मैं हूं; विष्णु कौन है रे दुर्बुद्धि!"

प्रल्हादने कहा जिनका परंपद शब्दोंमें नहीं कहा जा सकता जिनके परंपदका योगी लोग ध्यान करते हैं, जिनसे विश्व है और जो स्वयं ही विश्व हैं वही विष्णु परमेश्वर हैं।"

हिरण्यकशिपुने बड़े ही क्रोधसे कहा—"क्या तू मरना चाहता है कि बार बार यह बात कहता है? नहीं जानता कि परमेश्वर किसे कहते हैं? मेरे रहते तेरा और कौन परमेश्वर है?

निडर प्रल्हादने कहा—"पिता! वे क्या केवल मेरे ही परमेश्वर हैं? सब जीवोंके वे ही परमेश्वर हैं; तुम्हारे भी वे ही परमेश्वर हैं, धाता विधाता परमेश्वर हैं। क्रोध मत करो, प्रसन्न हो!

हिरण्यकशिपुने कहा—"जान पड़ता है किसी पापाशयने इस दुर्बुद्धि बालकके हृदयमें प्रवेश किया है।"

प्रल्हादने कहा—"केवल मेरे हृदयमें क्यों? वे सब लोगोंमें निवास करते हैं। सर्व स्वामी विष्णु ही मुझे, तुम्हें सबको सब कामोंमें नियुक्त करते हैं;"

अब भगद्वाक्य स्मरण करो। "यतात्मा दृढ़निश्चयः।" * दृढ़-निश्चय क्यों, यह समझे? वह "हर्षामर्ष भयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः" स्मरण करो। अब समझे कि भयसे मुक्त जो भक्त है वह कैसा है? "मय्यर्पित मनोबुद्धि"से क्या समझा? † भक्तोंके सब लक्षण समझानेके लिये यह प्रह्लाद चरित्र कहता हूं।

हिरण्यकशिपुने वहांसे प्रह्लादको निकाल दिया, प्रह्लाद फिर गुरु गृहमें गये। बहुत दिनोंके बाद हिरण्यकशिपुने फिर उनको बुलाकर परीक्षा लेनी आरम्भ की। पहलेही उत्तरमें प्रह्लादने फिर वही बात कही,

कारणं सकलस्यास्य स नो विष्णु प्रसीदतु।

हिरण्यकशिपुने प्रह्लादको मार डालनेका हुक्म दिया। सैकड़ों दैत्य उनको मारने दौड़े, किन्तु प्रह्लाद "दृढ़निश्चय" "ईश्वरार्पित-मनोबुद्धि" हैं, जो मारने आये, उनको प्रह्लादने कहा, "विष्णु तुम्हारे अस्त्रमें भी हैं, मुझमें भी हैं, इस सत्यके अनुसार मैं तुम्हारे अस्त्रसे नहीं मरूंगा।" यही "दृढ़निश्चय" है।

शिष्य। मैं जानता हूं, विष्णुपुराणके उपन्यासमें है कि प्रह्लादको अस्त्रसे कुछ भी चोट नहीं लगी। किन्तु उपन्यासमें ही ऐसी बात हो सकती है; वास्तवमें ऐसी घटना नहीं होती। कोई कैसा ही ईश्वरभक्त हो नैसर्गिक नियम उसके आगे निष्फल नहीं होता। अस्त्र परम भक्तोंका मांस भी काट डालता है।

गुरु। अर्थात् तुम miracle नहीं मानते। तर्क पुराना है। मैं तुम लोगोंकी तरह ईश्वरकी शक्तिको सीमाबद्ध करना नहीं चाहता। विष्णुपुराणमें जिस प्रकारसे प्रह्लादकी रक्षाका वर्णन है यद्यपि ठीक उसी प्रकारकी घटना नहीं देखी जाती और उपन्यास होनेके कारणही वह वर्णन सम्भव हुआ है, यह भी मानता हूं; किन्तु यह बात तुम नहीं कह सकते कि एक नैसर्गिक नियम द्वारा ईश्वरकी कृपासे दूसरे नियमका ऐसा प्रतिबन्ध नहीं हो सकता जैसा

* सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़निश्चयः।

† मय्यर्पित मनोबुद्धिर्योमद्भक्तः समे प्रियः।

पहले कभी देखनेमें नहीं आया था। अस्त्र परम भक्तका मांस भी काटता है; किन्तु भक्त ईश्वरकी कृपासे अपने बल या बुद्धिका इस प्रकार प्रयोग कर सकता है कि जिससे वह अस्त्र निष्फल हो जाय। विशेषकर जो भक्त है वह "दक्ष" है; पहले कहा गया है, उसकी सब वृत्तियां भली भांति अनुशीलित हैं; इसलिये वह बड़ाही कार्य्यक्षम है; इसके ऊपर ईश्वरकी कृपा पानेसे वह नैसर्गिक नियमके सहारे ही बहुत बड़ी विपदमें पड़कर भी आत्मरक्षा कर सकता है, इसमें असम्भवही क्या है? जोहो इन सब बातोंकी हमें इस समय कुछ दरकार नहीं जान पड़ती। क्योंकि मैं भक्ति समझाता हूं; भक्त किस प्रकारसे ईश्वरकी कृपा पाते हैं या पाते हैं कि नहीं, यह मैं नहीं समझाता हूं। ऐसे किसी फलकी कामना करना भक्तको उचित नहीं है; नहीं तो उसकी भक्ति निष्काम नहीं होगी।

शिष्य। किन्तु प्रह्लादने तो यहां रक्षाकी कामना की—

गुरु। नहीं, उन्होंने रक्षाकी कामना नहीं की। उन्होंने केवल यही मनमें ठीक समझा कि जब मेरे आराध्य विष्णु मुझमें भी हैं और इस अस्त्रमें भी हैं तब इस अस्त्रसे कभी मेरा अनिष्ट नहीं होगा। यह दृढ़निश्चयताही और भी स्पष्ट होती है। केवल यही समझाना मेरा उद्देश्य है। प्रह्लादचरित्र उपन्यास है, इसमें सन्देह ही क्या है? इस उपन्यासमें नैसर्गिक या अनैसर्गिक बातें हैं, इससे क्या? उपन्यासमें ऐसी अनैसर्गिक बातें रहनेसे हानि क्या है? अर्थात् जहां उपन्यासकारका उद्देश्य मानस दशाका विवरण करना है, जड़की गुण व्याख्या करना नहीं है, वहां जड़की अप्राकृत व्याख्या होनेसे मानस दशाकी व्याख्या अस्पष्ट नहीं होती। वरंच बहुधा और अधिक स्पष्ट होती है। इससे जगत्‌के श्रेष्ठ कवियोंमेंसे कितनोंहीने बहुत कुछ अस्वाभाविकतासे काम लिया है।

जिनके स्मरणसे जन्म जरा, यम प्रभृति सब भय दूर हो जाते हैं। उन अनन्त ईश्वरके हृदयमें रहते मुझे किसका भय है?"

यह "भयोद्वेगैर्मुक्तः" वाली बात याद करो। इसके बाद हिरण्यकशिपुने सांपोंको आज्ञा दी कि इसे काटो। बात उपन्यासकी है इसलिये मुझमें ऐसा है कि ऐसे वर्णनसे तुम नाराज न होगे सांपके काटनेसे भी प्रल्हाद नहीं मरे। इस पर भी तुम्हें विश्वास करनेको दरकार नहीं है। किन्तु जिस बातके लिये पुराणकारने इस सर्पदंशनका वृत्तान्त लिखा है उस पर ध्यान दो।

सत्वासक्तमतिः कृष्णे दृश्यमानो महोरगैः।
न विवेदात्मनो गात्रं तत्स्मृत्याल्हाद संस्थितः॥

प्रल्हादका मन उस समय कृष्णमें ऐसा आसक्त था कि बड़े बड़े सांप काट रहे तथापि कृष्ण स्मरणके आल्हादमें वे कुछ भी कष्ट अनुभव न कर सके। इसी आल्हादके कारण सुख दुःख समान जान पड़ता है। उक्त भगवद्वाक्य फिर स्मरण करो "सम दुःख सुखः क्षमी।" "क्षमी" क्या है यह पीछे समझोगे यहां "सम दुःख सुखः" समझा?

शिष्य। यही समझा कि भक्तके मनमें एक बड़ा भारी सुख रात दिन रहनेके कारण दूसरे सुख दुःख उसे सुख दुःख नहीं मालूम पड़ते।

गुरु। हां। सांपसे प्रल्हादको मरते न देखकर हिरण्यकशिपुने हाथियोंको आज्ञा दी कि इसको दांतोंसे फाड़कर मार डालो। हाथियोंके दांत टूट गये और प्रल्हादका कुछ नहीं हुआ। इस पर विश्वास मत करना यह केवल उपन्यास है। किन्तु इस पर प्रल्हादने पितासे क्या कहा सुनो,—

दन्ता गजानां कुलिशाग्र निष्ठुराः
शीर्णा यदेते न बलं ममैतत्॥
महा विपत् पाप विनाशनोऽयं
जनार्द्दनानु स्मरणानुभावः॥

"वज्रसे भी कठिन इन हाथियोंके जो दांत टूट गये वह मेरे

सकते नहीं। जो महा विपद और पापको नाश करनेवाले हैं उन्हींके स्मरणसे ऐसा हुआ है।"

फिर यह "निर्ममो निरहङ्कार"* वाला भगवद्वाक्य स्मरण करो यही निरहङ्कार है। भक्त जानता है कि सब कुछ ईश्वर ही करते हैं इसलिये उसको अहङ्कार नहीं होता।

हाथियोंसे भी प्रल्हादका कुछ नहीं हुआ। यह देखकर हिरण्यकशिपुने आगमें जलानेकी आज्ञा दी। प्रल्हाद आगमें भी नहीं जले। प्रल्हाद "शीतोष्ण सुख दुःखेषु समः" † हैं इसीसे वह आग उनको कमलदलकी तरह ठंडी मालूम हुई। तब दैत्य पुरोहित भार्गवने दैत्यपतिसे कहा कि "इनको आप क्षमा करके हमारे जिम्मे कर दीजिये। अगर इतने पर भी ये विष्णु भक्ति नहीं छोड़ेंगे तो हम लोग अभिचारसे इनको वध करेंगे। हम लोगोंका किया हुआ अभिचार कभी व्यर्थ नहीं जाता।"

दैत्येश्वरके सहमत होने पर भार्गव प्रल्हादको ले जाकर दूसरे दैत्योंके साथ पढ़ाने लगे। प्रल्हादने वहां स्वयं क्लास खोल दिया दैत्य पुत्रोंको एकत्र करके विष्णु भक्तिका उपदेश देने लगे। प्रल्हादकी विष्णु भक्ति और कुछ नहीं—केवल परोपकार व्रत है।

विस्तारः सर्व भूतस्य विष्णोर्विश्वमिदं जगत्।
द्रष्टव्य मात्मवत् तस्माद भेदेन विचक्षणैः॥

* * *

सर्वत्र दैत्याः समतामुपेत
समत्व माराधन मच्युतस्य॥

अर्थात् विश्व, जगत सब भूत विष्णुके विस्तार मात्र हैं, इसलिये चतुर मनुष्य सबको अपनेसे अभिन्न जानें। * * हे दैत्यो! तुम लोग सर्वको समान समझना, यह समता ही (अपने साथ सब भूतोंकी) ईश्वरकी आराधना है।

मेरा अनुरोध है कि तुम प्रल्हादकी उक्ति विष्णुपुराणमें पढ़ना। यहां केवल और दो श्लोक सुनो।

* निर्ममो निरहङ्कारः सम दुःख सुखः क्षमी।

† शीतोष्ण सुख दुःखेषु समः सङ्ग विवर्जितः।

अपरे भद्राणि भूतानि हीन शक्ति रहं परम्।
मुदं तथापि कुर्व्वीत हानिर्द्वेष फलं यतः।
वद्धवैराणि भूतानि द्वेषं कुर्व्वन्ति चेत्ततः।
शोच्यान्यहो अति मोहेन व्याप्तानीति मनोषिणा॥

"दूसरेका भला होता है और आप हीन शक्ति हो यह देखकर भी आनन्दित होना, डाह मत करना, क्योंकि डाह करनेसे अनिष्ट ही होता है। जिनसे शत्रुता हो गयी है उनसे भी जो डाह करता है उसे बड़े मोहमें फंसा हुआ जानकर ज्ञानी लोग अफसोस करते हैं।"

अब वह भगवानका कहा हुआ लक्षण स्मरण करो।

"यस्मान्नो द्विजते लोको लोकान्नो द्विजते चयः" और 'न द्वेष्टि'* शब्द स्मरण करो। भगद्वाक्य पर पुराण कर्त्ताकी यह टीका है। प्रल्हादको फिर विष्णु भक्तिका उपद्रव करते जानकर हिरण्य कशिपुने विष खिलानेकी आज्ञा दी। विषसे भी प्रल्हाद नहीं मरे। तब दैत्येश्वरने पुरोहितोंको बुलाकर अभिचार क्रियासे प्रल्हादको मारनेका आदेश किया। उन्होंने प्रल्हादको एक बार समझाया, कहा, तुम्हारे पिता जगतके ईश्वर हैं, तुम्हारे अनन्तसे क्या होगा? प्रल्हाद "स्थिर मति" † थे; उन्होंने उन लोगोंकी बात हंसीमें उड़ा दी। तब दैत्य पुरोहितोंने भयानक अभिचार क्रिया की। अग्निमयी मूर्त्तिमती अभिचार क्रियाने प्रल्हादकी छाती पर शूल मारा। शूल टूट गया। तब वह मूर्त्तिमान अभिचार निरपराध प्रल्हाद पर प्रयुक्त होनेके कारण अभिचार कारी पुरोहितोंको ही मारने गया प्रल्हाद 'हे कृष्ण! हे अनन्त! इनकी रक्षा करो" कहकर उन जलते हुए पुरोहितोंकी रक्षाके लिये दौड़े। पुकारा—"हे सर्व्वव्यापिन्, हे जगत् स्वरूप, हे जगतके सृष्टिकर्त्ता, हे जनार्दन! इन ब्राह्मणोंको इस दुःसह मंत्राग्निसे रक्षा करो। जैसे सर्व्वभूतोंमें सर्व्वव्यापी जगद् गुरु

---

* यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।

† अनिकेतः स्थिर मतिर्भक्तिमान् मे प्रियो नरः।

विष्णु तुम हो वैसे ही ये ब्राह्मण जी जायं। विष्णुको सर्व्वगत जानकर जैसे मैंने अग्निको शत्रु नहीं समझा, वैसे ही ये ब्राह्मण भी हैं, ये जी जायं। जो मुझे मारने आये थे, जिन्होंने विष दिया था, जिन्होंने मुझे आगमें जलाया था, हाथीसे मुझे घायल किया था, सांपसे कटवाया था मैंने उन सबको मित्र भावसे अपने समान समझा था, शत्रु नहीं समझा, आज उसी सत्यके लिये ये पुरोहित जी जायं।" जब ईश्वरकी कृपासे पुरोहित जीकर प्रह्लादको आशीर्वाद करते हुए अपने घर गये।

क्या ऐसा फिर कभी सुननेमें आवेगा? तुम इससे उन्नत भक्तिवाद और इससे उन्नत धर्म्म और किसी देशके किसी शास्त्रमें दिखा सकते हो?*

शिष्य। मैं स्वीकार करता हूं कि देशी ग्रन्थोंको छोड़कर केवल अङ्गरेजी पढ़नेमें हम लोगोंकी बड़ी हानि हो रही है।

गुरु। भगवद्गीतामें जो भक्त समाशील और शत्रु मित्रको समान समझनेवाला कहा गया है वह कैसा है अब समझा?†

पीछे हिरण्यकशिपुने पुत्रका प्रभाव देखकर पूछा—"तुम्हारा यह प्रभाव कैसे हुआ?" प्रह्लादने कहा—"अच्युत हरि जिनके हृदयमें विराजमान रहते हैं उनका ऐसा ही प्रभाव हुआ करता है। जो दूसरेकी बुराई नहीं सोचता बिना कारण उसकी भी बुराई नहीं होती। जो काम करके मन वाक्यसे दूस-

* मनस्वी बाबू प्रतापचन्द्र मजुमदारने अपने बनाये Oriental Christ नामक उत्कृष्ट ग्रन्थमें लिखा है—"A suppliant for mercy on behalf of those very men who put him to death, he said—Father! forgive them, for they know not what they do, Can ideal forgiveness go any further? क्यों नहीं Ideal जाता यह प्रह्लाद चरित्र ही देखें न।

† सम शत्रौ च मित्रे च तथा मानाप मानयोः।

रेको सताता है उसके उस बीजसे बहुत अशुभ फल उत्पन्न होते हैं।

केशव मुझमें भी हैं, सब भूतोंमें भी हैं, यह जानकर मैं किसीकी बुराई नहीं चाहता, किसीकी बुराई नहीं करता और किसीको बुरा भी नहीं कहता। मैं सबकी भलाई सोचता हूं, मेरा शारीरिक या मानसिक दैव या भौतिक अनिष्ट क्यों होगा? हरिको सर्व्वमय जानकर सब जीवोंमें ऐसी ही अव्यभिचारिणी भक्ति करना पण्डितोंका कर्त्तव्य है।”

इससे बढ़कर उन्नत धर्म्म और क्या हो सकता है? विद्यालयोंमें यह सब न पढ़ाकर पढ़ाते हैं मेकाले रचित क्लाइव और हेस्टिङ्गस सम्बन्धी पाप भरी कहानी। और उसी उच्च शिक्षाके लिये हमारी शिक्षित मण्डली पागल हो रही है।

पीछे प्रह्लादके वाक्यसे फिर क्रोध करके दैत्यपतिने उनको महलके ऊपरसे गिरा शम्बरासुरकी माया और वायुसे मार डालनेकी चेष्टा की। प्रह्लादको इससे भी मरते न देखकर नीतिशिक्षाके लिये फिर गुरुगृहमें भेजा। वहां भी नीतिशास्त्र समाप्त होने पर आचार्य्य प्रह्लादको साथ लेकर दैत्येस्वरने फिर उनकी परीक्षा लेनेके लिये पूछना आरम्भ किया,—

“हे प्रह्लाद! मित्र और शत्रुसे राजाको कैसा व्यवहार करना चाहिये? तीन समयमें कैसा आचरण करना चाहिये—मन्त्री या अमात्यके साथ बाहर और भीतरसे चर, चोर, शङ्कित और अशङ्कितसे, सन्धि विग्रहमें, दुर्ग या आटविक साधनमें ये कण्टक शोधनमें क्या करना चाहिये बताओ?”

प्रह्लादने पिताके पैरोंमें प्रणाम करके कहा,—“अवश्य ही गुरूने ये सब बातें सिखायी हैं और मैंने सीखी भी हैं। किन्तु वे सब नीतियां मुझे पसन्द नहीं हैं। शत्रु मित्रको वशमें करनेके लिये सामदान भेद और दण्ड इत्यादि उपाय कहे गये हैं किन्तु हे पिता! क्रोध न कीजियेगा। मैं उस प्रकार शत्रु मित्रको नहीं देखता। जहां साध्य नहीं है (अर्थात् जब पृथिवीमें किसीको

शत्रु समझना उचित नहीं है) वहां उपायकी क्या दरकार है? जब जगन्मय जगन्नाथ परमात्मा गोविन्द सर्वभूतात्मा हैं तब फिर शत्रु मित्र कौन है? तुममें भगवान हैं, मुझमें भगवान हैं और सबमें हैं तब यह मनुष्य मित्र है और यह शत्रु ऐसा क्यों सोचूं? अतएव बुरी चेष्टाओंसे परिपूर्ण इस नीतिशास्त्रकी क्या दरकार है?

हिरण्यकशिपुने क्रोध करके प्रल्हादकी छातीमें लात मारी। और उनको नागपाशमें बांधकर समुद्रमें फेंक आनेकी आज्ञा असुरोंको दी। असुरोंने प्रल्हादको नागपाशमें बांधकर समुद्रमें फेंक दिया और ऊपरसे पहाड़ गिरा दिया। प्रल्हाद उस समय जगदीश्वरकी स्तुति करने लगे। क्योंकि अन्तिम कालमें ईश्वरचिन्तन उचित है; किन्तु ईश्वरसे आत्मरक्षाकी प्रार्थना नहीं की क्योंकि प्रल्हाद निष्काम थे। प्रल्हाद ईश्वरमें तन्मय होकर उनका ध्यान करते करते तल्लीन हो गये। प्रल्हाद योगी थे।* तब उनका नागपाश खुल गया, समुद्रका जल अलग हो गया; पहाड़को अलग करके प्रह्लाद उठ खड़े हुए। तब वे फिर विष्णुका स्तव करने लगे—आत्मरक्षाके लिये नहीं निष्काम होकर स्तव करने लगे। तब विष्णुने उनको दर्शन दिया। और भक्तपर प्रसन्न होकर उनको वर मांगनेकी आज्ञा दी। प्रह्लाद "सन्तुष्टःसततं" थे इससे उन्हें जगत्‌की किसी वस्तुकी चाह नहीं थी। सो उन्होंने केवल यही मांगा कि—"जिन हजारों योनियोंमें मैं भ्रमण करूं उन सब जन्मोंमें ही तुम पर मेरी अचल भक्ति रहे।" भक्त भक्ति ही मांगता है, भक्तिके लिये भक्ति मांगता है, मुक्तिके लिये या और किसी मतलबसे नहीं। भगवानने कहा—"वह है और रहेगी। और वर मांगो दूंगा।" प्रह्लादने दूसरी बार प्रार्थना की—"तुम्हारी स्तुति करनेसे पिताने तुमसे जो द्वेष किया था उनका वह पाप दूर हो जाय।" भगवानने उसे भी स्वीकार करके तीसरा वर मांगनेका आदेश किया। किन्तु निष्काम प्रह्लादके लिये जगतमें तीसरी प्रार्थना ही नहीं थी क्योंकि वे "सर्वारम्भपरित्यागी—हर्ष, द्वेष शोक और आकांक्षा शून्य

* सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़ निश्चयः।

तथा शुभाशुभ परित्यागी है।" * उन्होंने फिर कहा—"तुम पर मेरी भक्ति निश्चल रहे।"

वर देकर विष्णु अन्तर्हित हो गये। उसके बाद हिरण्यकशिपुने प्रह्लादपर फिर कोई अत्याचार नहीं किया।

शिष्य। तराजूपर एक ओर वेद, निखिल धर्मशास्त्र, बाइबिल, और कुरान और एक ओर प्रह्लाद चरित्र रखनेसे प्रह्लाद चरित्रही भारी होता है।

गुरु। और प्रह्लाद कथित यह वैष्णव धर्म सब धर्मोंसे श्रेष्ठ है। यह धर्मका सार है इसलिये सब विशुद्ध धर्मोंमें ही यह श्रेष्ठ है। जो धर्म जितनाही अधिक विशुद्ध है उसमें यह उतनाही अधिक है। इसाई धर्म कहें ब्राह्म धर्म कहें ये वैष्णव धर्मके ही अन्तर्गत हैं। गाड कहें चाहे अल्ला कहें, या ब्रह्म कहें उसी एक जगन्नाथ विष्णुको ही कहते हैं। सर्व भूतोंके अन्तरात्मा स्वरूप ज्ञान और आनन्दमय चैतन्यको जिसने जान लिया है, सब भूतोंमें जिसका आत्मज्ञान है, जो अभेदी है अथवा वैसे ज्ञान और चित्तकी अवस्था पानेमें जिसकी चेष्टा है वे ही वैष्णव हैं वही हिन्दू है। इसके सिवा जो केवल लोगोंसे द्वेष करता है, लोगोंकी बुराई करता है, दूसरोंसे विवाद करता है, लोगोंका केवल जातिच्युत करनेमें लगा रहता है उसके गलेमें मोटा जनेऊ, ललाट पर लम्बा तिलक, सिरमें चुटिया, बदन पर रामनामी चादर और मुंहमें राम नाम रहने पर भी उसे हिन्दू नहीं कहूंगा। वह म्लेच्छसे भी अधम म्लेच्छ है, उसको छूनेसे भी हिन्दुओंकी हिन्दुआनी नष्ट होती है।

---

* सर्वारम्भ परित्यागी योमद्भक्तः समेप्रियः।
यो हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति।
शुभाशुभ-परित्यागी भक्तिमान यः समेप्रियः॥

पादौ नृणां तौ द्रुम जन्मभाजौ क्षेत्राणि नानुव्रजतो हरेर्यौ ॥
जीवञ्छवो भागवतांघ्रि रेणून् न जातु मर्त्यो भिलभेत यस्तु ।
श्री विष्णुपद्या मनुजस्तुलस्याः श्वसञ्छवो यस्तु न वेद गन्धम् ॥
तद श्मसारं हृदयं वतेदं यद् गृह्यमाणै र्हरिनाम धेयैः ।
न विक्रियेताथ यदा विकारो नेत्रे जलं गात्र रुहेषु हर्षः ॥

भागवत, २ स्क० ३ यध्र, २०-२४ ।

जो मनुष्य कानोंसे भगवानका गुणानुवाद नहीं सुनता, हाय ! उसके दोनों कान व्यर्थके गड्ढेही है । हे सूत ! जो हरिगाथा नहीं गाता उसको असती जीभ मेंडककी जीभके समान है । जिसका मस्तक मुकुन्दको नमस्कार नहीं करता वह क्रीट मुकुटसे शोभित होनेपर केवल बोझ है । जिसके दोनो हाथ हरिकी टहल नहीं करते वे सोनेके कर्णोंसे शोभित होनेपर भी मुर्देके हाथ समान हैं । मनुष्यकी दोनों आंखें अगर विष्णुमूर्त्ति * न देखें तो वे मोरके पंख तुल्य ही हैं । और जिनके दोनों चरण हरि तीर्थोंमें पर्यटन नहीं करते उनका केवल वृथा जन्म हुआ है । और जो भगवत पदरज नहीं धारण करता वह जीतेही मृतवत् है । विष्णु चरणार्पित तुलसीका सुवास जिस मनुष्यने नहीं जाना है वह सांस रहते भी मृतक है । हाय ! हरिनाम भजनेमें जिनका हृदय विकार प्राप्त नहीं होता और विकारमें भी जिसके नेत्रोंमें जल और गातमें रोमाञ्च नहीं होता उसका हृदय लोहेका है ।"

इस श्रेणीके भक्त उसी प्रकार ईश्वरमें बाहरी इन्द्रियोंको समर्पण करना चाहते हैं । किन्तु यह सकारोपासना पर निर्भर है निराकारमें आंख, हाथ, पैर आदिको इस प्रकार लगाना असम्भव है ।

शिष्य । किन्तु मेरे प्रश्नका उत्तर अभी तक नहीं मिला । भक्तिका असली साधन क्या है ?

गुरु । यह बात भगवान गीताके इसी बारहवें अध्यायमें कहते हैं—

ये तु सर्व्वाणि कर्म्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः;
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते॥
तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्यु संसार सागरात्।
भवामि न चिरात् पार्थ मय्यावेशित चेतसाम्॥
मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्द्धं न संशयः॥ १२। ६-८

"हे अर्जुन! जो लोग सब कर्म्म मुझमें रख कर मत्परायण होते हैं और अन्य भजना रहित भक्तियोगसे मेरा ध्यान और उपासना करते हैं, मृत्युयुक्त संसारसे उन मुझमें चित्त लगानेवालोंका मैं तुरन्तही उद्धारकर्त्ता होता हूं। मुझमें तुम मनको स्थिर करो, मुझमें बुद्धिको लगाओ तो तुम शरीर छूटनेपर मुझमें ही निवास करोगे।"

शिष्य। बड़ी कठिन बात है। कितने आदमी इस प्रकार ईश्वरमें चित्त लगा सकते हैं?

गुरु। सभी लगा सकते हैं। चेष्टा करनेसे ही लगा सकते हैं।

शिष्य। किस तरह चेष्टा करनी होगी?

गुरु। भगवान वह भी अर्जुनको बता देते हैं;—

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयिस्थिरम्।
अभ्यास योगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय॥ १२। ९

"हे अर्ज्जुन! यदि मुझमें चित्तको स्थिर न रख सको तो अभ्यास योगसे मुझे पानेकी इच्छा करो।" अर्थात् यदि ईश्वरमें चित्त स्थिर न रख सको तो बार बार चेष्टा करके उसका अभ्यास करो।

शिष्य। सब अभ्यास ही कठिन है और यह बड़ा अभ्यास और भी कठिन है। सब कोई नहीं कर सकते। जो लोग नहीं कर सकते वे क्या करेंगे?

गुरु। जो लोग कार्य्य कर सकते हैं, वे जो कार्य्य ईश्वरके नामपर हैं या ईश्वरके अनुमोदन किये हुए हैं उन्हीं सब कार्य्योंको सदा करनेसे धीरे धीरे ईश्वरमें मनको स्थिर कर सकेंगे। इसीसे भगवान कहते हैं—

अभ्यासेऽप्य समर्थोऽसि मत्कर्म्मपरमोभव।
मदर्थ मपि कर्म्माणि कुर्व्वन् सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ १२ । १०

"अगर अभ्यासमें भी असमर्थ हो तो मत्कर्म्म परायण बनो। मेरे लिये सब कार्य्य करनेसे सिद्धि पाओगे।"

शिष्य। किन्तु बहुतेरे कार्य्य करनेके भी योग्य नहीं हैं या निकम्मे हैं। उनके लिये क्या उपाय है?

गुरु। इसी प्रश्नकी आशङ्कासे भगवान कहते हैं—

अथैत दप्य शक्तोऽसि कर्त्तुं मद्योग माश्रितः।
सर्व्व कर्म्म फल त्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥ १२ । १२

"अगर मदाश्रित कार्य्यमें भी अशक्त हो तो यतात्मा होकर सब कर्म्म फल त्याग करो।"

शिष्य। यह कैसे? जो काम करने लायक ही नहीं है, जिसका कोई काम ही नहीं है वह कर्म्म फल कैसे त्याग करेगा?

गुरु। कोई भी जीव एकदम कार्य्यशून्य-निठल्ला नहीं हो सकता। अगर वह अपनी इच्छासे काम न करे तो भूतोंके दबावसे करेगा। इस विषयमें भगवानकी उक्ति पहले बता चुका हूं। जिससे चाहे जो हो काम बन पड़े वह अगर उसके फलकी चाह न करे तो दूसरी चाह न होनेसे ईश्वर ही एक मात्र उसकी चाह हो जायंगे। तब आपसे आप चित्त ईश्वरमें स्थिर होगा।

शिष्य। ये चारों प्रकारके साधन ही बहुत कठिन हैं। और इनमेंसे किसीमें उपासनाकी कोई दरकार नहीं जान पड़ती।

गुरु। ये चारों प्रकारके साधन हो उपायही श्रेष्ठ उपासना हैं। ऐसे साधकोंके लिये और तरहकी उपासनाकी दरकार नहीं है।

शिष्य। किन्तु अज्ञ, नीच वृत्त, कलुषित, बालक इत्यादिके लिये ये सब साधन सरल नहीं हैं। वे क्या भक्तिके अधिकारी नहीं हैं?

गुरु। ऐसे स्थानोंमें उपासनात्मिका गौण भक्तिकी दरकार है। गीतामें भगवदुक्ति है कि,-

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

"जो जिस प्रकारसे मेरा आश्रय लेता है मैं उसको उसी प्रकारसे भजता हूं।"

और दूसरे स्थानपर कहा है—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

"जो भक्तिपूर्व्वक मुझे पत्र, पुष्प, फल, जल देता है उसे प्रयतात्माकी भक्ति उपहार समझ कर मैं ग्रहण करता हूं।"

शिष्य। तो क्या गीतामें साकार मूर्त्तिकी उपासना विहित बतायी गयी है?

गुरु। फल फूल आदि प्रतिमापर ही चढ़ाना होगा यह कोई बात नहीं है। ईश्वर सर्व्वत्र हैं, जहां दोगे वहीं वे पावेंगे।

शिष्य! प्रतिमादिकी पूजा विशुद्ध हिन्दू धर्म्ममें निषिद्ध है या विहित?

गुरु। अधिकारी भेदसे निषिद्ध और विहित है। इस विषयमें भागवतपुराणसे कपिलकी भक्ति उद्धृत करता हूं। भागवत पुराणमें कपिलको ईश्वरका अवतार माना है। वे अपनी माता देवहूतीको निर्गुण भक्तियोगका साधन बताते हैं। इस साधनमें एकओर सब भूतोंमें ईश्वर चिन्ता, दया, मैत्र, यम नियमादिको रखा है और एक ओर प्रतिमा दर्शन, स्पर्शन, पूजादिको। किन्तु विशेष यही कहते हैं कि,—

अहं सर्व्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थितः सदा।
तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्च्चा विडम्बनम्॥
यो मां सर्व्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरं।
हित्वार्च्चां भजते मौढ्याद्भस्मन्येव जुहोति सः॥

३ य स्क। २९ अ; १७। १८॥

"मैं सब भूतोंमें भूतात्मा स्वरूप विद्यमान हूं। उस मुझको अवज्ञा करके (अर्थात् सब भूतोंको न मानकर) मनुष्य प्रतिमा पूजाका ढकोसला करता है। सब भूतोंमें आत्मा रूपी अनीश्वर मुझको त्यागकर जो प्रतिमाको भजता है वह राखमें घी डालता है।

पुनश्च,

अर्च्चादावर्च्चयेत्ताव दीश्वरं मां स्वकर्म्मकृत् ।
यावन्नवेद स्वहृदि सर्व्वभूतेष्ववस्थितम् ॥ १८अ २० ॥

जो व्यक्ति अपने कार्य्यमें लगा हुआ है वह जितने दिन अपने हृदयमें सब भूतोंमें विद्यमान ईश्वरको न जान सके उतने दिन तक प्रतिमादिकी पूजा करे।

विधि भी रही और निषेध भी। जिसकी सब लोगोंमें प्रीति नहीं है, जिसको ईश्वरका ज्ञान नहीं है; उसकी प्रतिमादिकी पूजा ढकोसला है। और जिसमें सब लोगोंके प्रति प्रीति उत्पन्न हुई है, जिसे ईश्वरका ज्ञान हुआ है उसके लिये भी प्रतिमादि पूजा अनावश्यक है। परन्तु जितने दिन यह ज्ञान न हो उतने दिन विषयी लोगोंके लिये प्रतिमादि पूजा अविहित नहीं है; क्योंकि उससे क्रमशः चित्तशुद्धि हो सकती है। प्रतिमा पूजा गौण भक्तिमें है।

शिष्य। गौणभक्ति आप किसे कह रहे हैं सो ठीक समझता नहीं।

गुरु। गौणभक्तिमें बहुत विघ्न हैं। जिससे वे विघ्न दूर होते है, शाण्डिल्यसूत्र प्रणेताने उसीका नाम गौणभक्ति रखा है। ईश्वरका नाम लेना फलफूलादिसे उनकी अर्च्चना, वन्दना और प्रतिमादिकी पूजा गौणभक्तिके लक्षण है। सूत्रके टीकाकारने मानो स्वीकार किया है कि ये सब अनुष्ठान भक्ति उत्पन्न करनेमात्र हैं, इनका और कोई फल नहीं है। *

शिष्य। तो आपका मत यही समझा कि पूजा, होम, यज्ञ, नाम जपना, सन्ध्यावन्दनादि विशुद्ध हिन्दूधर्म्मके विरोधी नहीं हैं। अलबत्ते उसमें किसी प्रकारका ऐहिक या पारलौकिक फल नहीं है, ये सब केवल भक्तिके साधनमात्र—भक्ति पानेके उपाय मात्र हैं।

गुरु। सो भी निकृष्ट साधन हैं—नीचे दर्जेके उपाय हैं। जो उत्कृष्ट साधन है—उत्तम उपाय है वह तुम्हें क्रमोन्नति बहुत कामें

* भक्त्या कीर्त्तनेन भक्त्या दानेन पराभक्ति साध्यते इति * * न पराभक्तत्वं गौणत्वादिति।

सुनाया है। जो उसके करनेमें अयोग्य हो वह पूजादि करे। मगर स्तुति वन्दना आदिके बारेमें एक विशेष बात है। जब केवल ईश्वर चिन्तन ही उसका उद्देश्य है तब वह मुख्य भक्तिका लक्षण है। जैसे विपदसे मुक्त प्रह्लाद की हुई विष्णु स्तुति मुख्य भक्ति है। और "मेरा पाप कटे" "मैं सुखसे रहूं" इत्यादि प्रकारा सन्ध्यावन्दना, स्तुति या Prayer गौण भक्तिकी गिन्तीमें है। मैं तुम्हें परामर्श देता हूं कि कृष्णोक्तिके अनुवर्त्ती होकर ईश्वरके काममें लगो।

शिष्य। वह भी तो पूजा, होम, याग यज्ञ—

गुरु। यह और एक भ्रम है। ये सब ईश्वरके लिये कार्य्य नहीं हैं; ये सब साधकके अपने कल्याण निमित्त कार्य्य है।— साधकके अपने कार्य्य हैं, भक्ति बढ़ानेके लिये भी यदि इन सबको करो तो भी तुम्हारे निजके लिये ही हुए। ईश्वर जगत्मय है; जगत्के कामही उनके काम हैं। अतएव जिनसे जगत्का हित हो वेही कार्य्य कृष्णोक्त "सत्कर्म्म" हैं; उनके करनेमें तत्पर हो और सब वृत्तियोंको भलीभांति अनुशीलन करके उनके कामके योग्य बनो। तब जिनके उद्देश्यसे वे सब कार्य्य हैं उनमें मन स्थिर होगा। तभी क्रमशः जीवन्मुक्त होगे।

जो यह न कर सके वह गौण उपासना अर्थात् पूजा, नाम जपकर सन्ध्या वन्दनादिसे भक्तिका निकृष्ट अनुशीलन करें। किन्तु इस दशामें अन्तःकरणसे उन सबका अनुष्ठान करे। नहीं तो भक्तिका कुछ भी अनुशीलन नहीं हो सकता। केवल बाहरी आडम्बरसे बहुत हानि होती है। उस समय वह उपासना भक्तिका साधन न होकर शठताका साधन हो जाती है। उससे तो किसी प्रकारका साधन न करना ही अच्छा है। किन्तु जो किसीप्रकारका साधन नहीं करता उसके शठ और पाखण्डीसे श्रेष्ठ होनेपर भी उसमें और पशुओंमें बहुत थोड़ा अन्तर है।

* केवल बङ्गाली ही नहीं भारतवर्ष भरके अधिकांश निवासी।

(अनुवादक)

शिष्य। तब आजकलके बङ्गाली अधिकांश या तो पाखण्डी और शठ हैं नहीं पशु तुल्य हैं।

गुरु। हिन्दुओंकी अवनतिका यही एक कारण है। किन्तु तुम देखोगे कि शीघ्रही विशुद्ध भक्तिके प्रचारसे हिन्दू नया जीवन पाकर क्रमवेलके समयके अंगरेजोंकी तरह या मुहम्मदके समयके अरबोंकी तरह बड़े ही प्रतापी हो जायंगे।

शिष्य। मन वच कर्मसे जगदीश्वरसे यही प्रार्थना करता हूं।

इक्कीसवां अध्याय।—प्रीति।

——:o——

शिष्य। अब दूसरे हिन्दू ग्रन्थोंकी भक्ति व्याख्या सुननेकी इच्छा है।

गुरु। इन अनुशीलनधर्मकी व्याख्यामें उनकी दरकार नहीं है। भागवत पुराणमें भी भक्ति तत्त्वकी बहुतसी बातें हैं। किन्तु भगवद्गीतामें ही उन सबका मूल है। ऐसेही दूसरे ग्रन्थोंमें भी जो कुछ है वह भी गीता मूलक है। इसलिये उन सबकी पर्या-लोचनामें समय बितानेकी दरकार नहीं है। केवल चैतन्यका भक्तिवाद और तरहका है। किन्तु अनुशीलन धर्मसे उस भक्ति वादका वैसा गहरा सम्बन्ध नहीं है, बल्कि कुछ विरोध है। इस-लिये मैं उस भक्तिवादकी आलोचना नहीं करूंगा।

शिष्य। तब प्रीति वृत्तिके अनुशीलनके विषयमें उपदेश दीजिये।

गुरु। भक्तिवृत्तिका वर्णन करते समय प्रीतिकी भी बहुतसी बात कही है। मनुष्यमें प्रीति हुए बिना ईश्वरमें भक्ति नहीं हो सकती। प्रह्लादचरित्रमें प्रह्लादोक्तिसे यह बात खूब समझ गये हो। दूसरे धर्मोंमें यह मत हो चाहे न हो हिन्दूधर्मका यही मत है। प्रीतिके अनुशीलनकी दो प्रणाली हैं; एक प्राकृतिक या इन्द्रियज और दूसरी आध्यात्मिक या आत्मदर्शीय। इनमें

त्मिक प्रणालीकी बात अभी रहे। पहले प्राकृतिक प्रणालीको मैं जैसा समझता हूं वही समझाता हूं। प्रीति दो प्रकारकी है—सहज और संसर्गज। कुछ मनुष्योंके प्रति प्रीति होना हमारे लिये स्वाभाविक है; जैसे सन्तान पर माता पिताकी, या माता पिता पर सन्तानकी प्रीति। यही सहज प्रीति है। और कुछ लोगोंके प्रीति संसर्गज प्रीति है, जैसे स्त्री पर स्वामीकी, स्वामी पर स्त्रीकी, मित्र पर मित्रकी, मालिक पर नौकरकी या नौकर पर मालिककी, यह सहज और संसर्गज प्रीति ही पारिवारिक बन्धन है और इसीसे पारिवारिक जीवनकी सृष्टि हुई है। परिवार ही प्रीति सीखनेका पहला स्थान है। क्योंकि जिस भावके वश होकर हम आत्मत्याग करनेको उद्यत होते हैं वही प्रीति है। पुत्रादिके लिये हम आत्मत्याग करनेको आपसे आप उद्यत रहते हैं। इसीलिये परिवारसे प्रीतिवृत्तिका अनुशीलन आरम्भ करते हैं सो पारिवारिक जीवन धार्म्मिकोंके लिये बहुत जरूरी है। इसीसे हिन्दूशास्त्रकारोंने शिक्षा समाप्त करनेके बाद ही गार्हस्थ्य आश्रमको अवश्य ग्रहण करनेका आदेश किया था।

पारिवारिक अनुशीलनमें प्रीतिवृत्ति कुछ पुसकने पर परिवारके बाहर भी फैलना चाहती है। कह चुका हूं कि प्रीतिवृत्ति दूसरी श्रेष्ठ वृत्तियोंकी भांति फैलनेमें बहुत ही तेज है; इसलिये अनुशीलित होते रहनेसे यह घरकी छोटीसी सीमा लांघकर बाहर आना चाहेगी। सो यह क्रमश: कुटुम्ब, मित्रवर्ग, अनुगत और आश्रितमें तथा गोतियोंमें फैलती है। फिर भी अनुशीलन जारी रहे तो इसकी फैलनेकी शक्ति सीमा नहीं पाती। क्रमसे अपने गांवके प्रान्तके देशके मनुष्यमात्र पर फैल जाती है। जब निखिल जन्मभूमि पर यह प्रीति विस्तारित होती है तब साधारणत: देश प्रेम कहलाती है। उस दशामें यह वृत्ति बड़ी बलवती हो सकती है और होती भी है। होनेसे यह जाति विशेषके विशेष कल्याणका कारण होती है। युरोपियनोंमें प्रीतिवृत्तिकी यह अवस्था साधारणत: प्रबल देखी जाती है। युरोपियनोंकी जातीय उन्नति जो इतनी अधिक हुई है उसका एक कारण यही है।

शिष्य। युरोपमें स्वदेशप्रेमका इतना जोर है और हमारे देशमें नहीं, इसका कारण क्या आप कुछ समझा सकते हैं?

गुरु। अच्छी तरह समझा समझा सकता हूं। युरोपका धर्म्म विशेषकर पुराने युरोपका धर्म्म हिन्दूधर्म्मकी तरह उन्नतधर्म्म नहीं है; यही वह कारण है। जरा खोलकर समझाता हूं, सुनो।

देशप्रेम प्रीतिवृत्तिके फैलावकी चरम सीमा नहीं है। उसके ऊपर और एक सीढ़ी है। सारे जगत पर जो प्रीति है वही प्रीतिवृत्तिकी चरम सीमा है। वही यथार्थ धर्म्म है। जबतक प्रीतिका विस्तार सारे जगत् पर न हो जाय तबतक प्रीति भी अधूरी है और धर्म्म भी अधूरा है।

आज कल देखा जाता है कि युरोपियनोंकी प्रीति अपने स्वदेशमें ही रह जाती है, अक्सर समस्त मनुष्यलोकमें फैल नहीं सकती। अपनी जातिको प्यार करते हैं दूसरी जातिवालेको देख नहीं सकते, यही उनका स्वभाव है। दूसरी जातिवालोंमें देखा जाता है कि वे स्वधर्म्मीको प्यार करते हैं, विधर्म्मीको नहीं देख सकते। मुसलमान इसके उदाहरण हैं। किन्तु धर्म्म एक होनेसे जातिके लिये वे फिर उतना द्वेष नहीं करते। मुसलमानोंकी दृष्टिमें सब मुसलमान प्रायः समान हैं; किन्तु अंगरेज कृस्तान और रूसी कृस्तानमें बड़ा झगड़ा है।

शिष्य। यहां मुसलमानकी प्रीति भी जागतिक नहीं है और युरोपकी प्रीति भी जागतिक नहीं है।

गुरु। मुसलमानके प्रीतिविस्तारका बाधक उसका धर्म्म है। सारा जगत् मुसलमान हो जाय तो वह सारे जगत्को प्यार कर सकता है, किन्तु सारे संसारके कृस्तान हो जाने पर यूरोप अपनेसे [illegible], यूरोपकी फरासीसीके सिवा और किसीको प्यार नहीं कर सकता। अब प्रश्न यह है कि युरोपियन प्रीति देशव्यापी होकर भी आगे क्यों नहीं बढ़ती है?

इस प्रश्नके उत्तरमें समझना होगा कि प्रीतिवृत्तिका प्रधान विरोधी कौन है? [illegible] विरोधी आत्मप्रीति है। [illegible] प्रीति मनुष्यों आत्मप्रीति भी बड़ी [illegible]। पर प्रीतिकी

अपेक्षा आत्मप्रीति जबरदस्त है । इसीसे उन्नत धर्मके द्वारा चित्त शासित न होनेसे आत्म प्रीतिके कारण प्रीतिके विस्तारकी सीमा बंध जाती है । अर्थात् दूसरे पर प्रीति उतनी ही दूर तक बढ़ती है जितनी दूर तक उसका आत्मप्रीतिसे मेल खाता है उससे अधिक नहीं होती । पारीवारिक प्रीतिका आत्मप्रीतिसे मेल है; यह पुत्र मेरा है, यह स्त्री मेरी है, ये मेरे सुखकी सामग्री हैं, इसलिये मैं उनको प्यार करता हूं । इसके बाद कुटुम्ब, मित्र, स्वजन, जातिवाले भी मेरे हैं आश्रित अनुगत भी मेरे हैं, वेभी मेरे सुखके उपादान हैं इसीसे मैं उनको प्यार करता हूं । उसी तरह मैं अपने ग्रामको, अपने नगरको, अपने देशको प्यार करता हूं । किन्तु जगत् मेरा नहीं है, मैं जगत्को प्यार नहीं करूंगा । पृथिवीपर ऐसे करोड़ों मनुष्य हैं जिनका देश मेरे देशसे अलग है, किन्तु ऐसा कोई नहीं है जिसकी पृथिवी मेरी पृथिवीसे अलग है । इसलिये पृथिवी मेरी नहीं है मैं पृथिवीको क्यों प्यार करने लगा ?

गुरु । क्यों, क्या इसका उत्तर नहीं है ?

गुरु । युरोपमें तरह तरहके उत्तर हैं और भारत वर्षमें एक उत्तर है । युरोपमें हितवादियोंका Greatest good of the greatest numbe* है, कोम्तका Humanity पूजा है, सबसे बढ़ कर इसका जागतिक प्रीतिवाद है, सब मनुष्य एक ईश्वरकी सन्तान हैं इसलिये सब भाई भाई हैं येही सब उत्तर हैं ।

शिष्य । इन सब उत्तरोंके रहते विशेषकर ईसाई धर्मको इस उन्नत नीतिके रहते भी युरोपमें प्रीति देशसे आगे क्यों नहीं बढ़ती ?

गुरु । उसका कारण खोजनेके लिये प्राचीन ग्रीस और रोममें जाना होगा । प्राचीन ग्रीस और रोममें कोई उन्नत धर्म नहीं था, जो पौत्तलिकता सुन्दरकी और शक्तिमानकी पूजा मात्र है उससे बढ़कर और कोई उच्च धर्म नहीं था । संसारभरके लोगोंको क्यों प्यार करूंगा इसका कोई उत्तर नहीं था । इसीसे वहांवालोंकी प्रीति कभी देशसे बाहर नहीं हुई । किन्तु ये दोनों जातियां बहुत उन्नत स्वभाव धार्म्यदर्शीय थीं; उनके स्वभावसिद्ध बड़प्पनके गुणसे

उनकी प्रीति देशतक फैलकर बहुत तेज और मनोहर हुई थी। देश प्रेममें ये दोनों जातियां पृथिवी पर विख्यात हैं।

आजकलका युरोप कृस्तान हो चाहे जो हो उसकी शिक्षा मुख्यतः प्राचीन ग्रीस और रोमसे हुई है। ग्रीस और रोम उसके चरित्रके आदर्श हैं। उस आदर्शने युरोपपर जितना अधिकार जमाया है उतना हजरत ईसाने नहीं। और एक जातिने वर्त्तमान युरोपियनोंकी शिक्षा और चरित्र पर कुछ प्रभाव डाला है। मैं यहूदी जातिकी बात कहता हूं। यहूदी जाति भी विशेषकर देशानुरागी है, लोकानुरागी नहीं। इन तीन ओरकी त्रिवेनीमें पड़कर युरोप देशानुरागी हो गया है लोकानुरागी नहीं हो सका। अथच ईसाका धर्म्म (सब आदमी भाई भाई हैं) युरोपका धर्म्म है। वह भी वर्त्तमान है। किन्तु इसाई धर्म्म इन तीनोंके सामने दुर्बल होनेसे केवल मुंहपर ही रह गया है। युरोपियन मुंहसे तो लोकानुरागी हैं और भीतरसे तथा काममें केवल देशानुरागी हैं। यह बात समझी?

शिष्य। यह समझ गया कि प्राकृतिक या युरोपियन अनुशीलन क्या है। समझा कि इससे प्रीतिकी पूरी उन्नति नहीं होती। देश प्रेममें ही अटक जाती है क्योंकि उसकी आत्मप्रीति आकर उज्र उठाती है कि मैं दुनियाको क्यों प्यार करूंगी दुनियासे मेरा विशेष क्या सम्बन्ध है? अब प्रीतिके पारमार्थिक या भारतवर्षीय अनुशीलनका मर्म्म समझाइये।

गुरु। उसको समझानेसे पहले भारतवासियोंकी दृष्टिमें ईश्वर क्या है यह विचारकर देखो। इसाइयोंके ईश्वर जगत्‌से अलग हैं। यद्यपि वे जगत्‌के ईश्वर हैं किन्तु जैसे जर्मनी या रूसके राजा सब जर्मन या सब रूससे एक अलग आदमी हैं, वैसे ही इसाइयोंके ईश्वर हैं। वे पार्थिव राजाकी भांति अलग रहकर राज्यपालन और राज्यशासन करते हैं—शिष्टोंका पालन और दुष्टोंका दमन करते हैं और लोग क्या करते हैं इसकी खबर पुलिसकी तरह रखते हैं। इसलिए प्रेम करनेकी इच्छा होने पर पार्थिव राजा पर प्रेम करनेके

लिये जैसे प्रीतिवृत्तिका विशेष विस्तार करना होता है, वैसा ही करना पड़ता है।

हिन्दुओंके ईश्वर वैसे नहीं हैं। वे सर्वभूतमय हैं। वे ही सब जीवोंकी अन्तरात्मा हैं। वे जड़ जगत् नहीं हैं, जगत्से अलग हैं किन्तु जगत् उन्हींमें है। जैसे सूतमें मणिहार है, जैसे आकाशमें वायु है, वैसेही उनमें जगत् है। मुझमें वे विद्यमान हैं। मुझपर प्रेम करनेसे उनपर प्रेम होता है। उनपर प्रेम न होनेसे मुझपर भी प्रेम नहीं होता। उनपर प्रेम करनेसे सब मनुष्यों पर प्रेम हो जाता है। सब मनुष्यों पर प्रेम न करनेसे उनपर प्रेम नहीं होता, अपने पर प्रेम नहीं होता अर्थात् सारा जगत् प्रीतिके भीतर न आ जानेसे प्रीतिका अस्तित्वही नहीं रहता। जबतक नहीं समझ सकूंगा कि सब जगत् ही मैं हूं, जबतक नहीं समझूंगा कि सब लोगोंमें और मुझमें कुछ भी भेद नहीं है, तबतक मुझमें ज्ञान नहीं होगा, धर्म नहीं होगा, भक्ति नहीं होगी, प्रीति नहीं होगी। इसलिये जागतिक प्रीति हिन्दू धर्मके मूलमें ही है, अटूट, अभिन्न, जागतिक प्रीतिके बिना हिन्दुत्व नहीं है। भगवानका वह महावाक्य फिर उद्धृत करता हूं—

सर्व्वभूतस्थमात्मानं सर्व्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्व्वत्र समदर्शनः॥
यो मां पश्यति सर्व्वत्र सर्व्वञ्च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥*
यस्तु सर्व्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्व्वभूतेषु चात्मानन्ततो न विजुगुप्सते॥
यस्मिन सर्व्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥

जो योग युक्तात्मा होकर सब जीवोंमें अपनेको देखता है और अपनेमें सब जीवोंको देखता है तथा सर्व्वत्र समान देखता है, जो मुझको सर्वत्र देखता है, मुझमें सबको देखता है मैं उससे अदृश्य नहीं होता, वह भी मुझसे अदृश्य नहीं होता।

* यह धर्म वैदिक में। वाजसनेय संहितोपनिषद्में है

सारांश यह कि मनुष्य पर प्रीति करना हिन्दूशास्त्रके मतसे ईश्वरभक्तिके अन्तर्गत है ; मनुष्य पर प्रीति हुए बिना ईश्वरमें भक्ति नहीं होती ; भक्ति और प्रीति हिन्दूधर्म्ममें अभिन्न है और अभेद्य है. भक्तितत्वकी व्याख्या करते समय यह बात दिखायी है .

भगवद्गीता और विष्णुपुराणोक्त प्रह्लाद चरित्रसे जो जो वाक्य उद्धृत किये हैं उनमें उसे तुमने देखा है। प्रह्लादको जब हिरण्यकशिपु ने पूछा कि शत्रुसे राजा को कैसा व्यवहार करना चाहिये तब प्रह्लाद ने उत्तर दिया। "शत्रु कौन है ? सभी विष्णु (ईश्वर) मय हैं. शत्रु मित्र किस प्रकार विलगाये जा सकते हैं ? यहां प्रीति-तत्व की हद हो गयी। और मैं समझता हूं इस एक बातसे ही सब धर्म्मोंसे हिन्दूधर्म्मकी श्रेष्ठता प्रमाणित हो गयी। प्रह्लादको उन सब उक्तियोंको और गीतासे जो जो बात उद्धृत किये हैं उनको फिर स्मरण करो। याद न हो तो ग्रंथमें फिर पढ़ो। इसके बिना हिन्दूधर्म्ममें कहा हुआ प्रीतितत्व नहीं समझ सकोगे। यह प्रीति जगत्का बन्धन है, इस प्रीतिके बिना जगत् बन्धन शून्य बिखरे हुए जड़पिण्डोंकी ढेरी मात्र है। प्रीति न होनेसे परस्पर विद्वेषपरायण मनुष्य जगत्में वास करनेके अयोग्य होते, बहुत समय तक पृथिवी या तो मनुष्य शून्य या मनुष्य लोगोंके लिये रौरव नरक बन जाती। भक्तिके बाद प्रीतिसे ऊंची वृत्ति दूसरी नहीं है। इसीसे यह जगत् ईश्वरमें गुंथा हुआ है। ईश्वर ही प्रीति है, ईश्वरही भक्ति है,—वृत्तिरूपी जगदाधार होकर वे लोगोंके हृदयमें रहते हैं। अज्ञान हमें ईश्वरको नहीं जानने देता और अज्ञानही हमको भक्ति प्रीतिसे भुलवा रखता है। इस-लिये भक्ति प्रीतिके पूरे अनुशीलनके लिये ज्ञानार्जनी वृत्तियोंका पूरा अनुशीलन दरकार है। तात्पर्य यह है कि सब वृत्तियोंके यथायथ अनुशीलन और सामञ्जस्यके बिना पूरा धर्म्म नहीं प्राप्त होता, इसका प्रमाण तुम्हें बार बार मिला है।

शिष्य। अब प्रीतिवृत्तिके भारतवर्षीय या सामाजिक अनुशीलन पद्धति समझी। ज्ञानके द्वारा ईश्वरका स्वरूप समझ-कर जगत्के साथ उनकी और अपनी अभिन्नता धीरे धीरे हृदयङ्गम

करनी होगी। धीरे धीरे सब लोगोंको अपने समान देखना सीखनेसे, प्रीति प्रवृत्तिकी पूरी उन्नति होगी। इसका फल भी समझा। आत्मप्रीतिके इसका विरोधी होनेकी सम्भावना नहीं है क्योंकि समस्त जगत् आत्ममय हो जाता है! इसलिये इसका फल केवल देश प्रेमही नहीं हो सकता, सब लोगों पर प्रेमही इसका फल है। प्राकृतिक अनुशीलनका फल: युरोप केवल देश प्रेम मात्र हुआ है किन्तु क्या भारतमें लोकप्रेम उत्पन्न हुआ है?

गुरु। आजकलकी बात छोड़ दो। आजकल पश्चिमी शिक्षाका जोर बहुत बढ़ जानेसे हम लोग देशप्रेमी हो रहे हैं, अब लोक प्रेमी नहीं हैं। अब दूसरी जाति पर हममें द्वेष उत्पन्न हो रहा है। किन्तु पहले यह नहीं था; देशप्रेमकी नामकी चीज इस देशमें नहीं थी। यह बात भी नहीं थी। दूसरी जातिपर दूसरा भाव नहीं था। हिन्दू राजा थे, उसके बाद मुसलमान राजा हुए, हिन्दू प्रजाने इसपर कुछ नहीं कहा। हिन्दुओंके सामने हिन्दू और मुसलमान समान थे। मुसलमानके बाद अङ्गरेज राजा हुए, हिन्दू प्रजा कुछ नहीं बोली। बल्कि हिन्दुओंने ही अङ्गरेजोंको बुलाकर राज्य पर बिठाया। हिन्दू सिपाहियोंने अङ्गरेजोंकी ओरसे लड़कर हिन्दुओंका राज्य जीतकर अङ्गरेजोंको दिया। क्योंकि हिन्दुओंको अङ्गरेजों पर दूसरी जाति होनेसे कुछ द्वेष नहीं था। आज भी अङ्गरेजोंके अधीन भारतवर्ष बड़ा ही प्रभुभक्त है। अङ्गरेज इसका कारण न समझकर सोचते हैं कि हिन्दू दुर्बल होनेके कारण बनावटी प्रभुभक्त हैं।

शिष्य। मगर साधारण हिन्दू प्रजा या अङ्गरेजोंके सिपाहियोंने यह समझा था कि ईश्वर सब जीवोंमें हैं, सभी मैं हूं इसपर तो विश्वास नहीं होता।

गुरु। यह नहीं समझा था। किन्तु जातीय धर्म्मसे जातीय चरित्र गठित होता है। जो जातीय धर्म्म नहीं समझता वह भी जातीय धर्म्मके आधीन होता है, जातीय धर्म्मका प्रभाव उसपर पड़ता है। धर्म्मका गूढ़ मर्म्म बहुत थोड़े आदमी सम-

भते हैं। जो थोड़ेसे समझते हैं उन्हींके अनुकरण और प्रभावसे जातीय चरित्र सुधरता और बनता है। यह जो अनुशीलन धर्म्म तुमको समझाता हूं उसको साधारण हिन्दू सहजमें समझ लेंगे ऐसा भरोसा मुझे इस समय नहीं है। किन्तु यह भरोसा है कि विद्वान इसे ग्रहण करेंगे तो इससे जातीय चरित्र गठित हो सकेगा। जातीय धर्म्मका मुख्य फल बहुत थोड़े आदमी पाते हैं किन्तु गौणफल सभी पा सकते हैं।

शिष्य। इसके सिवा एक और बात है। आपने प्रीतिकी जो पारमार्थिक अनुशीलन पद्धति समझायी उसके फलसे लोकप्रेममें देशप्रेम डूब जाता है। किन्तु देशप्रेमके अभावसे भारतवर्ष सात सौ वर्षसे पराधीन होकर अवनतिमें आ गया है। इस पारमार्थिक प्रीतिसे जातीय उन्नतिका सामञ्जस्य कैसे हो सकता है?

गुरु। यह निष्काम कर्म्मयोगके द्वारा ही होगा। जो अनुष्ठेय कर्म्म है उसको निष्काम होकर करना। जो कर्म्म ईश्वरानुमोदित है वही अनुष्ठेय है। आत्मरक्षा, देशरक्षा, दूसरेके हाथसे पीड़ितोंकी रक्षा, जनताकी उन्नति करना—ये सभी ईश्वरानुमोदित कर्म्म हैं इसलिये अनुष्ठेय हैं—करने योग्य हैं। जो निष्काम होकर आत्मरक्षा, देशरक्षा, पीड़ित दुखियोंकी रक्षा, और देशी लोगोंकी उन्नति करना।

शिष्य। निष्काम आत्मरक्षा कैसी? आत्मरक्षा तो सकाम ही है।

गुरु। इसका उत्तर आगे दूंगा।

बाईसवां अध्याय।—आत्मप्रीति।

शिष्य। आपसे पूछा था कि निष्काम आत्मरक्षा कैसी है? आपने कहा था कि “इसका उत्तर आगे दूंगा।” अब वह उत्तर सुनना चाहता हूं।

गुरु। तुम यह आशा मत करना कि अपने इस भक्तिवादके समर्थनमें मैं किसी जड़वादीकी सहायता लूंगा। तथापि हरबर्ट-स्पेन्सरकी एक बात तुम्हें पढ़कर सुनाता हूं।

A creature must live before it can act. From this it is a corollary that the acts by which each maintains his own life must, *speaking generally*,* precede in imperativeness all other acts of which he is capable. For if it be asserted that these other acts must precede in imperativeness the acts of which maintain life; and if this, acceqted as a general law of canduct, is conformed to by all, then by postponing the acts which maintain life to the other acts which life makes possible, all must lose their lives. The acts required for continued self-preservation in cluding the enjoy ment of benefits achieved by such acts, are the first requisites to universal welfare. Unless each duly cares for himself his care for others is ended by death; and if each thus dies there remain no others to be cared for †.....

इसलिये जगदीश्वरकी सृष्टिरक्षाके लिये आत्मरक्षा बहुत ही जरूरी है। जगदीश्वरकी सृष्टिरक्षाके लिये दरकारी होनेसे यह ईश्वरोद्दिष्ट कार्य्य है। ईश्वरोद्दिष्ट कर्म्म है, इसलिये आत्मरक्षा भी निष्काम कर्म्म बनायी जा सकती है और बनाना ही कर्त्तव्य है।

अब परहित और पररक्षासे आत्मरक्षाको मिलाकर देखो। परहित धर्म्मसे आत्मरक्षा धर्म्मका गौरव अधिक है। यदि संसारमें आदमी एक दूसरेकी भलाई न करें, एक दूसरेकी रक्षा न करें तो संसार मनुष्यशून्य नहीं होगा। असभ्य समाज इसका उदाहरण है। किन्तु सब आत्मरक्षासे मुंह मोड़

* Italics मेरे किये हुए हैं।

† Data of Ethics, Chap 1

से तो सभ्य या असभ्य कोई समाज, किसी प्रकारका मनुष्य या जीव संसारमें नहीं रहेगा। इसलिये परहितसे पहले अपनी प्राणरक्षा है।

शिष्य। ये बातें मुझे श्रद्धाके योग्य मालूम पड़ती हैं। भला बताइये तो कि दूसरेको न देकर मैं खाऊं ?

गुरु। तुम जो कुछ भोजन करते हो अगर वह सब दूसरेको दे दो तो पांच ही सात दिनमें तुम्हारे दानधर्मकी इतिश्री हो जायगी। क्योंकि तुम स्वयं न खानेसे मर जाओगे। दूसरेको देना मगर दूसरेको देकर आप खाना। अगर दूसरेको देनेके लिये न घटे तो लाचार दूसरेको न देकर आप ही खाना। यह "न घटे" ही सब अधर्मोंकी जड़ है। जिसको अपने आहारके लिये सेरभर मलाई और डेढ़ सेर हलवा चाहिये उसे दूसरेको देनेके लिये सभी घट सकता है। जो सब जीवोंको समान समझता है, अपनेको और दूसरेको एक भावसे देखता है वह दूसरेको जैसे दे सकता है वैसे ही आप खाता है। यही धर्म है—स्वयं उपवास करके दूसरेको देना धर्म नहीं है। क्योंकि अपनेको और दूसरेको समान करना होगा।

शिष्य। अच्छा मान लिया कि मेरा उदाहरण ठीक नहीं है। किन्तु क्या कभी परोपकारके लिये अपना प्राण देना कर्त्तव्य नहीं है ?

गुरु। अनेक समय अवश्य कर्त्तव्य है। उस समय ऐसा न करना ही अधर्म है।

शिष्य। इसके दो एक उदाहरण सुनना चाहता हूं।

गुरु। जिन माता पितासे तुमने प्राण पाया है, जिनसे तुम सब धर्म कर्म करनेके योग्य हुए हो उनकी रक्षाके लिये दरकार पड़ने पर अपना प्राण देना ही धर्म है, न देना अधर्म है।

इसी तरह प्राणदानादि उपकार अगर तुमने दूसरेसे पाया हो तो उसके लिये भी अपना प्राण देना कर्त्तव्य है।

जिनके तुम रक्षक हो, उनके लिये भी अपना प्राण देना कर्त्तव्य है। अब विचार करके देखो कि तुम किसके किसके रक्षक हो।

सुम रक्षक हो (१) स्त्री पुत्रादि परिवारके, (२) स्वदेशके, (३) मालिकके अर्थात् जिसने वेतन देकर नियुक्त कर रक्खा है, उसके और (४) शरणागतके। इसलिये स्त्री पुत्रादि, स्वदेश, मालिक और शरणागतकी रक्षाके लिये अपना प्राण देना धर्म्म है।

जो अपनी रक्षा करनेमें असमर्थ हैं, मनुष्य मात्र ही उनके रक्षक हैं। स्त्री, बालक, बूढ़े, बीमार और अन्धे, लूले लंगड़े आदि अङ्गहीन आत्मरक्षा करनेमें असमर्थ हैं। उनकी रक्षाके लिये प्राण परित्याग करना धर्म्म है। ऐसे ही और भी बहुतसे स्थान हैं। सबकी गिनती नहीं की जा सकती। दरकार भी नहीं है। जिसकी ज्ञानार्ज्जनी और कार्य्यकारिणी वृत्तियां अनुशीलित और सामञ्जस्यको प्राप्त हुई हैं वह सब दशामें समझ सकेगा कि इस स्थान पर प्राण देना धर्म्म है और ऐसे स्थान पर अधर्म्म है।

शिष्य। आपके कहनेका तात्पर्य्य यह समझा कि आत्मप्रीति प्रीतिवृत्तिकी विरोधी होने पर भी घृणाके योग्य नहीं है। उपयुक्त नियमसे उसकी सीमा बांधकर उसका भी सम्यक् अनुशीलन कर्त्तव्य है। यही न?

गुरु। वास्तवमें जब अपना पराया समान हो गया तब आत्मप्रीति और जागतिक प्रीतिको अलग अलग समझना भी उचित नहीं है। ठीक तौरसे दोनोंका अनुशीलन और सामञ्जस्य होनेसे आत्मप्रीति जागतिकप्रीति अन्तर्गत हो जाती है। क्योंकि मैं तो जगतसे बाहर नहीं हूं। धर्म्मका, विशेषकर हिन्दूधर्म्मका मूल स्वतन्त्र ईश्वर है। ईश्वर सब जीवोंमें हैं; इसलिये सब जीवोंका हित करना हमारा धर्म्म है, क्योंकि, कहा है कि सब वृत्तियोंको ईश्वरमुखी करना ही मनुष्य जन्मका परम उद्देश्य है। जब सब जीवोंका हित करना धर्म्म है तब दूसरेका हित करना मेरा धर्म्म है, वैसे ही अपना हित करना भी मेरा धर्म्म है। क्योंकि मैं भी तो सब जीवोंमें हूं; ईश्वर जैसे दूसरे जीवोंमें हैं वैसे ही मुझमें भी है। इसलिये दूसरेकी रक्षादि भी मेरा धर्म्म

है और अपनी रक्षादि भी मेरा धर्म्म है। आत्मप्रीति और जागतिकप्रीति एक है।

शिष्य। मगर इसमें झगड़ा यह है कि जहां आत्महित और परहितमें विरोध है। वहां अपना हित करूंगा या दूसरेका? पहलेके धर्म्मवेत्ताओंका तो यही मत है कि आत्महित और परहितमें परस्पर विरोध हो तब परहित करना ही धर्म्म है।

गुरु। ठीक ऐसी बात किसी धर्म्ममें है, सो मैं नहीं जानता हूं। ईसाई धर्म्मकी यह उक्ति है कि अपने साथ दूसरेका जैसा व्यवहार करानेकी इच्छा रखते हो, वैसा ही व्यवहार तुम दूसरोंके साथ करो। इस उक्तिसे परहितको प्रधानता नहीं दी गयी है। किन्तु यह बात रहने दो, क्योंकि, मुझे इस अनुशीलन तत्त्वमें परहितको एक स्थान या प्रधान मानना पड़ेगा। किन्तु तुमने जो विषय उठाया है उसकी अच्छी तरहसे मीमांसा हो सकती है। इस मीमांसाका प्रथम और प्रधान नियम यही है कि दूसरेका अनिष्ट करना ही अधर्म्म है। दूसरेका अनिष्ट करके अपना हित साधन करनेका किसीको अधिकार नहीं है। यही हिन्दू धर्म्ममें कहा है, ईसाई, बौद्ध आदि अन्य धर्म्मावलम्बी, या पुलिस दार्शनिक और नीतिवेत्ताओंका भी यही मत है। अनुशीलन तत्त्व यदि समझ सको, तब यह समझ गये होगे कि दूसरेका अनिष्ट, भक्ति, प्रीति प्रभृति सब श्रेष्ठ वृत्तियां समुचित अनुशीलनके विरोधी और विघ्नकारी हैं और वह आत्मज्ञान, भक्ति और प्रीतिका स्वरूप, उसके उच्छेदक हैं। दूसरेका अनिष्ट, भक्ति, प्रीति, दया आदि अनुशीलनके विरोधी हैं, इसलिये जहां दूसरेका अनिष्ट होवे वहां उसके द्वारा अपना हितसाधन नहीं करना चाहिये। यही अनुशीलन धर्म्म है और हिन्दूधर्म्मकी आज्ञा है। आत्मप्रीति तत्त्वका यही पहिला नियम है।

शिष्य। यह नियम कौन मानेगा, जरा देखना चाहिये। एक आदमी चोर है, उसका प्रतिकार करे बिना मरता है। [illegible] तरह उसका ऐसी ही [illegible] है। इसी तरहसे [illegible] अदालतमें [illegible] जाते हैं, इसका यह है कि कुछ चोरी उनके [illegible] और [illegible]

परिवारके लिये आहार जुटावे। इसको पकड़ कर मैं उचित दण्ड दूंग। या भेटके तौर पर कुछ धन देकर विदा करूंगा?

गुरु। उसको पकड़कर उचित दण्ड देना।

शिष्य। तब मेरी सम्पत्ति रक्षारूपी इष्टसाधन तो हुआ किन्तु चोर और उसके निरपराधी स्त्री पुत्रादिकी बड़ी बुराई हुई। यहां आपका नियम लगता है?

गुरु। चोरके निरपराधी स्त्री पुत्रादि अगर भूखों मरें तो तुम उनके खानेके लिये कुछ दे सकते हो। चोर भी अगर खाने बिना मरे तो उसको भी खानेको दे सकते हो। किन्तु चोरको दण्ड देना होगा। क्योंकि दण्ड न देनेमें केवल तुम्हारी ही बुराई नहीं है सब लोगोंकी बुराई है। चोरको दण्ड न देनेसे चोरी बढ़ती है और चोरी बढ़नेसे समाजकी बुराई है।

शिष्य। यह तो विलायती हितवादीकी बात है आपके मनसे Greatest good of greatest number का यहां अवलम्ब लेना पड़ेगा।

गुरु। हितवाद मत हंसीमें उड़ा देनेकी चीज नहीं है। हितवादियोंका भ्रम यही है, वे समझते हैं कि सब धर्म्मतत्त्व इस हितवाद मतके ही भीतर हैं। मगर ऐसा नहीं है यह धर्म्म तत्त्वका एक मामूली अंशमात्र है। मैंने उसे जिस स्थानपर रखा है वह मेरे विख्यात "अनुशीलन तत्त्व" के एक कोनेका नाममात्र है। वह तत्त्व सत्य मूलक है परन्तु धर्म्म तत्त्वके समूचे क्षेत्रको नहीं घेर सकता। धर्म्म भक्तिमें, सब जीवों पर सम दृष्टि रखनेमें उस महाशिखरसे जो सहस्रों धाराएं निकली हैं हितवाद उसको एक छोटीसे भी छोटी धारा है। छोटा चाहे हो इसका जल पवित्र है। हितवाद धर्म्म है अधर्म्म नहीं।

सारांश यह कि, अनुशीलन धर्म्ममें greatest good of the greatest number गणित तत्त्वके सिवा और कुछ नहीं है। अगर जीवमात्रका हित करना धर्म्म है तब एक आदमीकी भलाई करना धर्म्म है और एककी भलाईकी अपेक्षा दस आदमियोंकी करनी ही भलाई अवश्य ही दसगुना धर्म्म है। अगर एक ओर

जितनी भलाई हो सकती है और दूसरी ओर सौ आदमियोंमेंसे हरेकका चौथाई अंश हो सकता है। यहां उन सौ आदमियोंकी भलाईका मज़ु १०० ÷ ४ = २५ है। यहां एककी अधिक भलाई छोड़कर सौकी थोड़ी भलाई करना ही धर्म्म है। अगर उन सौमेंसे हरेककी भलाईका अंश चौथाई न होकर हजारवां होता तो उनकी भलाईके परिमाणका मीजान एक आदमीका दशांश होगा। उस दशामें सौ आदमियोंकी भलाई छोड़कर एककी भलाई करना ही धर्म्म है।

शिष्य। उपकारका इस तरह हिसाब होता है? पैमानेसे नापा जाता है कि इतना गज इतना इञ्च हुआ?

गुरु। इसका अच्छा उत्तर अनुशीलनवादी ही दे सकते हैं। जिनकी सब वृत्तियां, विशेषकर ज्ञानार्ज्जनी वृत्तियां भलीभांति अनुशीलित और स्फूर्त्तिप्राप्त हुई हैं। वे हित अधिकका परिमाण ठीक ठीक समझनेके योग्य है। जिनका वैसा अनुशीलन नहीं हुआ है उनके लिये यह बहुत कठिन है, किन्तु उनके लिये सब प्रकारका ही धर्म्म कठिन है यह बात शायद तुम समझ गये हो, तो भी तुम देखोगे कि साधारणतः मनुष्य कितने ही स्थानोंमें ऐसा कार्य्य कर सकते हैं। युरोपियन हितवादी इस बातको अच्छी तरह समझाते हैं इसलिये मुझे वह सब कहनेकी दरकार नहीं है। हितवादका इतना समझानेका मेरा उद्देश्य यही है कि तुम समझ जाओगे कि अनुशीलन और हितवादका स्थान कहां है।

शिष्य। कहां है?

गुरु। प्रीतिवृत्तिके सामञ्जस्यमें। सब जीव समान हैं किन्तु व्यक्ति विशेषके हितमें परस्पर विरोध पड़ने पर नापकर या हिसाब लगा कर देखना। अर्थात् Greatest good of the greatest number मैंने जिस अर्थमें समझाया है उसीका अवलम्बन करना, जब परोपकारमें ऐसा विरोध हो तब किस तरह यह विचारना चाहिये यह समझाया है। किन्तु दूसरोंकी भलाईमें परस्पर विरोधकी अपेक्षा अपनी और दूसरेकी भलाईका झगड़ा और भी अधिक और कठिन होता है। यहां भी सामञ्जस्यका वही नियम है। अर्थात्—

(१) जहां एक ओर तुम्हारी और दूसरी ओर एकसे अधिक आदमियोंकी समान भलाई हो वहां अपनी भलाई छोड़ना और दूसरोंकी भलाई करना ही कर्त्तव्य है।

(२) जहां एक ओर आत्महित और दूसरी ओर दूसरे किसी आदमीकी अधिक भलाई हो वहां भी दूसरेकी भलाई कर्त्तव्य है।

(३) जहां एक ओर तुम्हारी अधिक भलाई हो और दूसरी ओर दूसरोंकी थोड़ी थोड़ी भलाई हो वहां देखना कि मीजान किधर अधिक है। अगर तुम्हारी ओर अधिक हो तो अपनी भलाई करना; और दूसरी ओर अधिक हो तो दूसरोंकी भलाई करना।

शिष्य। (४) और जहां दोनों ओर समान हो?

गुरु। वहां दूसरेकी भलाई करना उचित है।

शिष्य। क्यों? जब सब जीव समान हैं तब अपना पराया तो समान है।

गुरु। अनुशीलनतत्त्वमें इसका उत्तर मिलता है। प्रीतिवृत्ति परानुरागिनी है, केवल आत्मानुरागिनी प्रीति प्रीति नहीं है। अपनी भलाई करनेमें प्रीतिका अनुशीलन, स्फुरण या चरितार्थता नहीं होती। दूसरेकी भलाई करनेमें होगी। इसलिये यहां दूसरेका पक्ष लेना योग्य है। क्योंकि उसमें परोपकार भी होता है और प्रीतिवृत्तिका अनुशीलन वा चरितार्थता होनेसे तुम्हारी जो अपनी भलाई है वह भी होती है। सो ये हिसाब लगानेसे दूसरे पक्षमें ही अधिक भलाई होती है।

इसलिये आत्मप्रीति सामञ्जस्यके सम्बन्धमें मैंने जो पहला नियम कहा है। अर्थात् दूसरेकी बुराई होती हो वहां अपनी भलाई त्याग देने योग्य है उसके फैलाव और सीमाबन्धन स्वरूप हितवादियोंका यह नियम दूसरे नियमके तौरपर ग्रहण कर सकते हो।

और एक तीसरा नियम है। बहुधा मेरी अपनी भलाई जितनी मेरे हाथमें है दूसरेकी उतनी भलाई मेरे हाथमें नहीं है। उदाहरणसे समझो कि हम जितनी सुगमतासे अपनी मानसिक

उन्नति कर सकते हैं दूसरेकी उतनी सुगमतासे नहीं कर सकते। यहां पर पहले अपनी मानसिक उन्नति करना ही कर्त्तव्य है। क्योंकि सिद्धिकी सम्भावना अधिक है। फिर कितने ही स्थानोंमें पहले अपनी भलाई कर लेनेसे दूसरेकी भलाई नहीं की जा सकती। यहां पर भी दूसरे पक्षकी अपेक्षा अपना पक्ष ही अवलम्बनीय है। अपनी मानसिक उन्नति न होनेसे मैं तुम्हारी मानसिक उन्नति नहीं कर सकूंगा; इसलिये यहां पहले अपनी भलाई करना योग्य है। अगर तुम पर और मुझ पर एक ही समय शत्रु धावा करे तो पहले अपनी रक्षा न करनेसे मैं तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकूंगा। वैद्य स्वयं ही बीमार हो तो पहले आप आराम न हो लेनेसे दूसरेको आराम नहीं कर सकता। इन सब स्थानोंमें भी अपनी ही भलाई पहले कर्त्तव्य है।

अब, तुमको जो समझाया था उसे फिर स्मरण करो।

प्रथम, अपने परायेमें अभेद ज्ञान ही सच्ची प्रीतिका अनुशीलन है।

द्वितीय, इससे आत्मप्रीतिके समुचित और सीमाबद्ध अनुशीलनका निषेध नहीं होता, क्योंकि मैं भी सब जीवोंके अन्तर्गत हूं।

तृतीय, वृत्तियोंके अनुशीलनका परम उद्देश्य सब वृत्तियोंको ईश्वरमुखी करना है। इसलिये जो ईश्वरोद्दिष्ट कर्म्म है वह अनुष्ठेय है। ऐसे कार्य्योंके करनेमें कभी अवस्था विशेषमें आत्महित और कभी अवस्था विशेषमें परहितको प्रधानता देनी पड़ती है।

इससे हिन्दूधर्मोक्त साम्य ज्ञानमें बाधा नहीं पड़ती। तुम जहां पर आत्मरक्षाके अधिकारी हो, दूसरा भी वहां पर वैसे ही आत्मरक्षाका अधिकारी है। जहां पर तुम दूसरेके लिये आत्मत्याग करनेको बाध्य हो, दूसरा भी वहां तुम्हारे लिये आत्मत्याग करनेको बाध्य है। यही ज्ञान साम्यज्ञान है। इसलिये मैंने जो सब फालतू बातें कहीं उनसे गीतोक्त साम्यज्ञानकी कुछ हानि नहीं होती।

शिष्य! मैंने जो प्रश्न किया था उसका कुछ समुचित उ...

नहीं हुआ। मैंने पूछा था कि हिन्दुओंकी पारमार्थिक प्रीतिके साथ जातीय उन्नतिका सामञ्जस्य कैसे हो सकता है?

गुरु। उत्तरका पहला सूत्र बन गया। अब क्रमशः उत्तर देता हूं।

तेईसवां अध्याय—स्वजन प्रीति।

—:o:—

गुरु। अब, हरबर्ट स्पेंसरकी उक्ति तुम्हें सुनायी है उसे स्मरण करो।

"Unless each duly cares for himself, his care for all others in ended by death, and if each thus dies, there remain no others to be cared for"

जगदीश्वरकी सृष्टिरक्षा जगदीश्वरका अभिप्राय है, यह अगर मान लिया जाय तब आत्मरक्षा ईश्वरोद्दिष्ट कर्म्म है, क्योंकि इसके बिना सृष्टि रक्षा नहीं होती। किन्तु यह बात केवल आत्म रक्षाके लिये ही नहीं है। जो लोग आत्मरक्षा करनेमें असमर्थ हैं और जिनकी रक्षाका भार तुमपर है उनकी रक्षा भी आत्म-रक्षाकी भांति जगत रक्षाके लिये उतनी ही जरूरी है।

शिष्य। आप बाल बच्चोंकी बात कहते हैं?

गुरु। पहले अपत्य प्रीतिकी बात ही कहता हूं। बालक अपने पालन पोषणमें समर्थ नहीं होते। दूसरा कोई यदि उनका पालन पोषण न करे तो वे नहीं बचेंगे। यदि सब बालक अपा-लित और अरक्षित होकर प्राणत्याग करने लगें तो जगत भी जीव शून्य हो जायगा। इस लिये आत्मरक्षा भी जैसा गुरुतर धर्म्म है, सन्तानादिका पालन भी वैसा ही गुरुतर धर्म्म है। आत्मर-क्षाकी तरह यह भी ईश्वरोद्दिष्ट कर्म्म है, इस लिये इसको भी निष्काम कर्म्ममें गिन सकते हैं। बल्कि आत्मरक्षाकी अपेक्षा भी

सन्तानादिका पालन पोषण गुरुतर धर्म्म है। क्योंकि अगर सारा संसार आत्मरक्षासे मुंह मोड़कर भी सन्तानादिकी रक्षामें नियुक्त और सफल होकर सन्तानादिको रख जा सकें तो सृष्टि रक्षा हो। किन्तु सब जीव सन्तानादिकी रक्षासे मुंह मोड़कर केवल आत्म रक्षामें नियुक्त हों तो सन्तानादिके अभावसे जीव सृष्टि विलुप्त हो जायगी। इसलिये आत्मरक्षाकी अपेक्षा सन्तानादिकी रक्षा बड़ा धर्म्म है।

इससे एक बड़ा तत्त्व निकलता है। सन्तानादिकी रक्षाके लिये अपना प्राण देना धर्म्म सङ्गत है। पहले जो बात कही थी वह अब साबित हुई।

ऐसा पशु पक्षी भी करते हैं। यह नहीं कह सकते कि धर्म्म होनेसे वे ऐसा करते हैं ; सन्तान प्रीति स्वाभाविक वृत्ति है, इसीसे करते हैं। सन्तान स्नेह यदि स्वतंत्र स्वाभाविक वृत्ति हो तो उसके साधारण प्रीति वृत्तिसे विरोधी होनेकी सम्भावना है। बहुधा ऐसा होता भी है। अक्सर देखते हैं कि कितने ही लोग सन्तान स्नेहके वशीभूत होकर दूसरेकी बुराई करने जाते हैं। जैसे जागतिक प्रीतिके साथ आत्मप्रीतिके विरोधकी सम्भावनाकी बात पहले कही थी, वैसे ही जागतिक प्रीतिसे सन्तान प्रीतिके विरोधकी शंका होती है।

केवल यही नहीं है ; यह नहीं कह सकते कि यहां आत्मप्रीति आकर शामिल नहीं हो जाती। लड़का मेरा है इसलिये दूसरेकी चीज छीनकर उसे देनी होगी। लड़केकी भलाईसे मेरी भलाई है इसलिये चाहे जैसे बने लड़केकी भलाई करनी होगी। ऐसी बुद्धिके वशीभूत होकर बहुतेरे लोग कारवाई करते हैं।

इसलिये सन्तानप्रीतिके सामञ्जस्यके लिये बड़ी सावधानी दरकार है।

शिष्य। इस सामञ्जस्यका उपाय है?

गुरु। उपाय है हिन्दूधर्म्मका और प्रीतितत्त्वका ; वही मूलसूत्र—सब जीवोंमें समदर्शन। अपत्यप्रीतिको उसी जागतिक प्रीतिमें रखकर अपत्यपालन और रक्षण ईश्वरोद्दिष्ट है, इसलिये

अनुष्ठेय कर्म्म समझकर "जगदीश्वरका काम करता हूं मेरी इससे कुछ बुराई भलाई नहीं है" यह सोचकर उस अनुष्ठेय कर्म्मको करना। तब यह अपत्यपालन और रक्षणधर्म्म निष्कामधर्म्म बन जायगा। उस दशामें तुम्हारा अनुष्ठेय कर्म्म भी मजेमें होगा और तुम स्वयं एक ओर शोक मोहादिसे और दूसरी ओर पाप और दुर्वासनासे बचोगे।

शिष्य। क्या आप अपत्यस्नेह-वृत्तिकी जड़ उखाड़कर उसके स्थानमें जागतिक प्रीति लानेको कहते हैं?

गुरु। मैं किसी वृत्तिकी जड़ उखाड़नेको नहीं कहता, यह बात बार बार कह चुका हूं। हां पाशव वृत्तियोंके सम्बन्धमें जो कहा है उसे स्मरण करो। पाशव वृत्तियां स्वयं बढ़ती हैं। जो स्वतः स्फूर्त्त हैं उनका दमन ही अनुशीलन है। अपत्यस्नेह परम रमणीय और पवित्र वृत्ति है। पाशव वृत्तियोंसे इसकी यही एकता है कि यह जैसा मनुष्यमें है वैसी पशुओंमें भी है। इसलिये अपत्यस्नेह भी स्वतः स्फूर्त्त यानी बढ़नेवाला है। बल्कि सब मानसिक वृत्तियोंकी अपेक्षा इसके बलको दुर्द्दमनीय कह सकते हैं। अब अपत्यप्रीति चाहे जितनी ही रमणीय और पवित्र क्यों न हो उसकी अनुचित स्फूर्त्ति असामञ्जस्यका कारण है। जो स्वतः स्फूर्त्त है उसका संयम न करनेसे अनुचित स्फूर्त्ति हो जाती है। इसके लिये इसका संयम दरकार है। उसका संयम न करनेसे जागतिक प्रीति और ईश्वरभक्ति उसकी धारामें बह जाती है। मैंने कहा है कि ईश्वरमें भक्ति और मनुष्य पर प्रीति ही धर्म्मका सार, अनुशीलनका मुख्य उद्देश्य, सुखका मूल कारण और मनुष्यत्वका चरम है इसलिये अपत्यस्नेहके अनुचित फैलावसे वह धर्म्म सुख और मनुष्यत्व नष्ट हो सकते हैं। लोग इसके अनुचित वशीभूत होकर ईश्वरको भूल जाते हैं; धर्म्माधर्म्म भूलकर सन्तानके सिवा और सब मनुष्योंको भूल जाते हैं। अपने अपत्यके सिवा और किसीके लिये कुछ नहीं करना चाहते। यही अनुचित स्फूर्त्ति है। अपत्यके विशेष अवस्थामें इसका दमन न करके बढ़ाना ही उचित है। दूसरी पाशव वृत्तियोंसे इसका यही अन्तर है कि यह काम

आदि नीच वृत्तियोंकी तरह सदा और सर्वत्र स्वतः स्फूर्त्त नहीं होती। ऐसे नर पिशाच और और पिशाची भी देखी जाती हैं जिनकी यह परम रमणीय, पवित्र और सुखदायी स्वाभाविक वृत्ति लुप्त हो गयी है। बहुधा सामाजिक पाप बढ़नेसे इस वृत्तिका लोप होता है। धनके लोभसे पिशाच पिशाची पुत्र कन्या बेचती हैं; लोक लज्जाके भयसे कुल कलङ्किनियां उनको मार डालती हैं; कुल कलङ्कके भयसे कुलाभिमानी लड़कियोंको मार डालते हैं; कितने ही कामी कामातुर होकर सन्तानको त्याग देते हैं। इस-लिये उस वृत्तिका अभाव या लोप भी बड़े भयङ्कर अधर्म्मका कारण है। जहां यह उचित रूपसे स्वतः स्फूर्त्त न हो आपसे आप न चमके—वहां अनुशीलन द्वारा इसको चमकाना चाहिये। उचित रूपसे चमकने और चरितार्थ होनेपर ईश्वरभक्तिके सिवा और कोई वृत्ति उसके समान सुख देनेवाली नहीं होती। सुख देनेमें अपत्य-प्रीति ईश्वर भक्तिके सिवा और सब वृत्तियोंसे श्रेष्ठ है।

अपत्यप्रीतिके विषयमें जो कहा वह दम्पति प्रीतिके सम्बन्धमें भी कहा जा सकता है। अर्थात् (१) स्त्रीके प्रतिपालन और रक्षणका भार तुम पर है। स्त्री स्वयं आत्मरक्षा और प्रतिपाल-नमें असमर्थ है। इसलिये वह तुमारा अनुष्ठेय कर्म्म है। स्त्रीके पालन और रक्षा बिना प्रजाके विलोप होनेकी सम्भावना है। इसलिये उसके पालन और रक्षाके लिये स्वामीको प्राण देना भी धर्म्म संगत है।

(२) स्वामीका पालन और रक्षण स्त्रीसे होने योग्य नहीं है किन्तु उसकी सेवा और सुखसाधन उससे होने योग्य है। वही उसका धर्म्म है। दूसरे धर्म्म असम्पूर्ण हैं, हिन्दूधर्म्म सर्वश्रेष्ठ और सम्पूर्ण है; हिन्दूधर्म्ममें स्त्रीको सहधर्म्मिणी कहा है। यदि दम्पतिप्रीतिको पाशववृत्ति न बना लें तो यही स्त्रीका योग्य नाम है; वह स्वामीके धर्म्मकी सहाय है। इसलिये स्वामीकी सेवा, सुखसाधन और धर्म्मकी सहायता ही स्त्रीका धर्म्म है।

(३) जगत्की रक्षा और धर्म्माचरणके लिये दम्पति प्रीति है।

यह स्मरण रखकर इस प्रीतिका अनुशीलन करनेसे यह भी निष्काम धर्म्म बनायी जा सकती है और बनाना ही उचित है। नहीं तो यह निष्काम धर्म्म नहीं है।

शिष्य। मैं इस दम्पति प्रीतिको ही पाशव वृत्ति कहता हूं; अपत्य प्रीतिको पाशव वृत्ति कहनेके लिये उतना राजी नहीं हूं। क्योंकि पशुओंमें भी दाम्पत्य अनुराग है। वह अनुराग भी बड़ा जबरदस्त है।

गुरु। पशुओंमें दम्पति प्रीति नहीं है।

शिष्य। मधु द्विरेफः कुसुमैक पात्रे
पपौ प्रियां स्वामनुवर्त्तमानः।
शृङ्गेण च स्पर्शनि मीलताक्षीं
मृगी मकण्डूयत कृष्णसारः॥
ददौ रसात् पङ्कज रेणुगन्धि
गजाय गण्डूष जलं करेणुः।
अर्द्धेन भुक्तेन विसेन जायां
सम्भावया मास रथाङ्ग नामा॥

गुरु। अहा! मगर असल बात तो छोड़ ही दी।

तं देशमारोपित पुष्पचापे
रति द्वितीये मदने प्रपन्ने॥ इत्यादि।

रति सहित मन्मथ वहां उपस्थित हैं इसीसे इस पाशव अनु-रागका विकाश है। कविने स्वयं कह दिया है कि यह अनुराग कामसे उत्पन्न हुआ है। यह पशुओंमें भी है मनुष्योंमें भी है। इसको कामवृत्ति कहकर पहले बता चुका हूं। इसको दम्पतिप्रीति नहीं कहता। यह पाशव वृत्ति है। स्वतः स्फूर्त्त है और इसका दमन ही अनुशीलन है। काम स्वाभाविक है। दम्पति प्रीति संसर्गज है। कामसे उत्पन्न अनुराग क्षण भरके लिये है और दम्पतिप्रीति स्थायी है। अन्तको यह मानना पड़ता है कि कितने ही समय यह काम वृत्ति आकर दम्पतिप्रीतिका स्थान दखल कर लेती है। कितने ही समय इसका स्थान न देने से तो उसके शामिल जाती है। इस दशामें जितनी इन्द्रियकी तृप्ति और वासनाकी

प्रबलता होती है उतनी ही दम्पति प्रीति भी पाशवताको प्राप्त होती है। इन अवस्थाओंमें दम्पति प्रीति बड़ी बलवती वृत्ति हो जाती है। उस समय उसका सामञ्जस्य दरकार है। जो जो नियम पहले बताये गये हैं वे ही सामञ्जस्यके उत्तम उपाय हैं।

शिष्य। मैं जहां तक समझता हूं, यह काम वृत्ति ही सृष्टि रक्षाका उपाय है। दम्पति प्रीतिके बिना इसके द्वारा ही जगतकी रक्षा हो सकती है तब, इसीको निष्काम धर्म्म बना सकते है। ऐसी विचारप्रणाली नहीं देखता कि दम्पति प्रीति निष्काम धर्म्म बनाया जा सके।

गुरु। कामज वृत्ति भी निष्काम कर्म्मका कारण हो सकती है यह मैं मानता हूं किन्तु तुम्हारी असली बातमें ही भूल है। दम्पति प्रीतिके बिना केवल पाशव वृत्तिसे जगत रक्षा नहीं हो सकती।

शिष्य। पशु सृष्टि तो केवल उसीसे रक्षित होती है?

गुरु। पशुसृष्टि रक्षित हो सकती है परन्तु मनुष्य सृष्टिकी रक्षा नहीं हो सकती। क्योंकि पशुओंको स्त्रियोंमें आत्मरक्षा और आत्मपालनकी शक्ति है। मनुष्य स्त्रीमें यह नहीं है। इसलिये मनुष्य जातिमें पुरुषद्वारा स्त्री जातिका पालन और रक्षण न होनेसे स्त्रीजातिके विलोपकी सम्भावना है।

शिष्य। मनुष्य जातिकी असभ्य अवस्था में?

गुरु। जैसी असभ्यावस्थामें मनुष्य पशुतुल्य है, अर्थात् विवाहप्रथा नहीं है, उस अवस्थामें स्त्रियां आत्मरक्षा और आत्मपालनमें समर्थ हैं या नहीं, यह विचारनेकी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि वैसी असभ्यावस्थासे धर्म्मका कुछ सम्बन्ध नहीं है। मनुष्य जितने दिन समाजमें शामिल नहीं होते उतने दिन उनके शारीरिकधर्म्मके सिवा और कोई धर्म्म नहींके बराबर है। धर्म्माचरणके लिये समाज दरकार है। समाजके बिना ज्ञानोन्नति नहीं होती; ज्ञानोन्नतिके बिना धर्म्माधर्म्मका ज्ञान असम्भव है। धर्म्मज्ञानके बिना भक्ति असम्भव है; और जहां दूसरे मनुष्यसे सम्बन्ध नहीं है वहां मनुष्य पर प्रीति आदि धर्म्म भी असम्भव है।

अर्थात् असभ्य अवस्थामें शारीरिक धर्म्मके सिवा और कोई धर्म्म सम्भव नहीं है।

धर्म्मके लिये समाज दरकार है। समाजगठनके लिये पहली आवश्यकता विवाहप्रथा है। विवाहप्रथाका स्थूल तात्पर्य्य यही है कि स्त्री पुरुष एक होकर सांसारिक कामोंको बांटकर करेंगे। जो जिसके योग्य है वही भाग उसके जिम्मे होता है। पुरुषका भाग पालन और रक्षण है। स्त्री पर दूसरा भार है वह पालन और रक्षणमें समर्थ होनेपर उससे अलग रहती है। पीढ़ी दरपीढ़ीसे अलग रहने और अभ्यास न होनेके कारण सामाजिक नारी आत्मपालन और रक्षणमें अयोग्य हो गयी हैं। इस दशामें पुरुषके स्त्रीका पालन और रक्षण न करनेसे अवश्य स्त्रीजातिका विलोप हो जायगा; और अगर यह कहो कि फिर अभ्यास करनेसे उनमें यह शक्ति आ सकती है तो इसका यह उत्तर है कि विवाहप्रथाका विलोप और समाज तथा धर्म्मके नष्ट हुए बिना उसकी सम्भावना नहीं है।

शिष्य। तो पाश्चात्य लोग जो स्त्री पुरुषमें समानता लाना चाहते हैं वह क्या सामाजिक विडम्बना मात्र है?

गुरु। क्या समानता सम्भव है? पुरुष क्या लड़का लड़की जन सकता है? या शिशुको छातीका दूध पिला सकता है? और क्या स्त्रियोंकी पलटन लेकर लड़ाई कर सकते हैं?

शिष्य। तब आपने शारीरिक वृत्तियोंके अनुशीलनकी जो बात पहले कही थी वह स्त्रियोंके लिये नहीं है?

गुरु। क्यों नहीं? जिसकी जो शक्ति है वह उसका अनुशीलन करे। स्त्रियोंमें लड़नेकी शक्ति हो तो उसका अनुशीलन करें; पुरुषमें छातीका दूध पिलानेकी शक्ति हो तो वह उसका अनुशीलन करे।

शिष्य। किन्तु देखनेमें आता है कि पाश्चात्य स्त्रियां घोड़ेपर चढ़ने बन्दूक चलाने आदि पुरुषोचित कार्य्योंमें विलक्षण दक्षता प्राप्त करती हैं।

गुरु। अभ्याससे उत्पन्न विपरीत उदाहरणोंकी कमी नहीं है। उनपर विचार न करके उन्हें दिल्लगीमें उड़ा देना ही अच्छा है।

खैर। यह तत्त्व जितना दरकार है उतना कहा गया। अब अपत्य प्रीति और दम्पतिप्रीतिके सम्बन्धमें कुछ विशेष जरूरी बातें दुहराकर यह प्रसङ्ग समाप्त करता हूं।

प्रथम, कहा है कि अपत्य प्रीति स्वतःस्फूर्त है। दम्पतिप्रीति स्वतःस्फूर्त नहीं है, किन्तु स्वतःस्फूर्त इन्द्रियतृप्तिकी लालसाके, इसके शामिल हो जानेसे यह भी स्वतःस्फूर्तकी भांति बलवती होती है। इन सब कारणोंसे ये दोनों ही वृत्तियां बड़ी जबरदस्त और तेज होती हैं। अपत्यप्रीतिके समान जबरदस्त और तेजवृत्ति मनुष्यमें और कोई है कि नहीं इसमें सन्देह है। नहीं कहनेसे अत्युक्ति न होगी।

दूसरे, ये दोनों ही वृत्तियां बड़ी रमणीय हैं। इनके तुल्य बल और किसी वृत्तिमें चाहे हो किन्तु ऐसी परम रमणीय वृत्तियां मनुष्यमें और कोई नहीं हैं। रमणीयतामें इन दोनों वृत्तियोंने सब मनुष्यवृत्तियोंको यहां तक हरा दिया है कि इन दोनोंने विशेषकर दम्पतिप्रीतिने सब जातियोंके काव्यसाहित्य पर अधिकार जमा रखा है। कह सकते हैं कि समूचे जगत्में यही काव्यकी एक मात्र सामग्री है।

तीसरे, साधारण मनुष्यके लिये इन दोनोंके समान सुख देनेवाली भी और कोई नहीं है। भक्ति और जागतिकप्रीतिका सुख उच्चतर और तीव्रतर है किन्तु वह अनुशीलनके बिना नहीं मिलता, वह अनुशीलन भी कठिन और ज्ञानपर निर्भर है। परन्तु अपत्यप्रीतिके सुखके लिये अनुशीलन दरकार नहीं है और दम्पतिप्रीतिके सुखमें थोड़ासा अनुशीलन दरकार होनेपर भी वह अनुशीलन बहुत सरल और सुखदायी है।

इन सब कारणोंसे ये दोनों वृत्तियां बहुधा मनुष्यके धर्ममें बड़ी भारी बाधा हो जाती हैं। ये परम रमणीय और बड़ी ही सुखद हैं इसलिये इनके असीम अनुशीलनमें मनुष्यकी बड़ी रुचि है। और इसका वेग दुर्दमनीय है इसलिये इनके अनुशीलनका फल इनकी सर्वग्रासी वृद्धि है। उस समय भक्ति प्रीति और सब धर्म इसकी धारामें बह जाते हैं। इसीसे इधरउधर देखनेमें

आता है कि मनुष्य स्त्री पुत्रादिके स्नेहमें पड़कर और सब धर्म्म छोड़ देता है भारतवासियोंका यह कलङ्क बड़ा जबरदस्त है।

इसीसे जो लोग सन्यास धर्म्मावलम्बी हैं उनके लिये अपत्य प्रीति और दम्पतिप्रीति बड़ी घृणित हैं। वे स्त्री मात्रको ही चुड़ैल समझते हैं। मैंने तुम्हें समझाया है कि अपत्यप्रीति और दम्पति-प्रीति उचित मात्रामें परम धर्म्म है। उनका त्यागना घोरतर अधर्म्म है। इसलिये तुम्हें बताना नहीं होगा कि सन्यास धर्म्मा-वलम्बियोंका यह आचरण बड़ा भारी पापाचरण है। और जाग-तिक प्रीतितत्त्व समझाते समय तुम्हें बताया है कि यह पारवारिक प्रीति जागतिक प्रीतिमें पहुंचनेकी पहली सीढ़ी है। जो लोग इस सीढ़ी पर पैर नहीं रखते वे जागतिक प्रीतिमें नहीं पहुंच सकते।

शिष्य। हजरत ईसा?

गुरु। हजरत ईसा या शाक्यसिंह (बुद्ध) की तरह जो लोग कर सकते हैं उनको लोग ईश्वरका अंश मानते हैं। यही प्रमाण है कि यह विधि ईसा या शाक्यसिंहकेसे मनुष्योंके सिवा और कोई नहीं तोड़ सकता और ईसा या शाक्यसिंह यदि गृही होकर जगत्के धर्म्म प्रवर्त्तक हो सकते तो उनकी धार्म्मिकता निःसन्देह सम्पूर्ण-ताको प्राप्त होती।* आदर्श पुरुष श्रीकृष्ण गृही हैं। ईसा या शाक्यसिंह सन्यासी थे—आदर्श पुरुष नहीं। अपत्यप्रीति और दम्पतिप्रीतिके सिवा स्वजनप्रीतिके भीतर और भी कुछ है। (१) जो लोग अपत्य स्थानीय हैं वे भी अपत्यप्रीतिके भागी हैं। (२) जिनसे हमारा रक्तका सम्बन्ध है, जैसे भाई बहन इत्यादि, वे भी हमारी प्रीतिके पात्र हैं। संसर्ग ही चाहे आत्मप्रीतिके फैलाव होसे हो उनपर प्रीति स्वभावतः होती है। (३) इसप्रकार प्रीतिका वि-स्तार होते रहनेसे कुटुम्बी आदि और अड़ोस पड़ोसी प्रीतिके पात्र होते हैं। यह बात प्रीतिके विस्तारका उल्लेख करते समय कहा

* इस ग्रन्थके लेखकने अपने "कृष्ण चरित्र" में इसकी विस्तृत आलोचना की है।

है। (४) ऐसे बहुतसे आदमियोंसे हमारा साथ हो जाता है जिनके हमारे स्वजनमें शामिल होने योग्य न होने पर भी उनके गुणसे मुग्ध होकर हम उन पर विशेष प्रीति करते हैं। यह मित्रप्रीति बहुधा बड़ी बलवती होती है।

ऐसी प्रीति भी अनुशीलनके योग्य और उत्तम धर्म्म है। सामञ्जस्यके साधारण नियमके सहारे इसका अनुशीलन करना।

चौबीसवां अध्याय।—स्वदेशप्रीति।

——:०:——

गुरु। अनुशीलनका उद्देश्य सब वृत्तियोंको स्फुरित और पूर्ण करके ईश्वरमुखी बनाना है। इनका उपाय कर्मोंके लिये ईश्वरोद्दिष्ट कर्म्म है। ईश्वर सब जीवोंमें है, इसलिये सारा संसार अपने समान प्रीतिका आधार होना चाहिये। जागतिक प्रीतिका यही मूल है। ईश्वरोद्दिष्ट कर्म्ममें यह मौलिकता देख रहे हो। सारे संसारको अपने समान क्यों प्यार करना होगा? इसलिये कि यह ईश्वरोद्दिष्ट कर्म्म है। अगर ऐसा काम हो जो ईश्वरोद्दिष्ट है किन्तु इस जागतिक प्रीतिका विरोधी है तब हमें क्या करना चाहिये? अगर दोनो पक्ष बनाये रखनेका सुबीता न हो तब कौनसा पक्ष लेना चाहिये?

शिष्य। वहां पर विचार करना चाहिये। विचारसे जिधर भारी मालूम हो उधर ही जाना चाहिये।

गुरु। अच्छा जो मैं कहता हूं उसे सुनकर विचार करो। दम्पतिप्रीति तत्त्व समझाते समय बताया है कि समाजके बाहर मनुष्यका केवल पशु जीवनमात्र है। समाजमें रहे बिना मनुष्यका धर्म्म जीवन नहीं हो सकता। यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि समाजमें रहे बिना किसी तरहका मङ्गल नहीं है। समाज नष्ट होनेसे मनुष्यका धर्म्म नष्ट हो जाता है। और सब मनुष्योंका सब

प्रकारका मङ्गल नष्ट हो जाता है। तुम्हारे जैसे सुशिक्षितको शायद यह बात कष्ट करके समझानी नहीं पड़ेगी।

शिष्य। जरूरत नहीं है। वाचस्पतिजी अगर यहां होते तो इस विषयमें तर्क उठानेका भार मैं उन्हींको देता।

गुरु। जब यह बात है, जब समाज नष्ट होनेसे धर्म्म और मनुष्यका सब मङ्गल नष्ट होता है तब सबको छोड़कर पहले समाजकी रक्षा करना होता है। इसीसे Harbert Spencer ने कहा है कि The life of the social organism must as an end, rank above the lives of its units," अर्थात् आत्मरक्षाकी अपेक्षा भी देशरक्षा श्रेष्ठ धर्म्म है। और इसीसे हजारों आदमियोंने अपने प्राण देकर भी देशरक्षाकी चेष्टा की है।

जिस कारणसे आत्मरक्षाकी अपेक्षा देशरक्षा श्रेष्ठ धर्म्म है, उसी कारणसे यह स्वजनरक्षाकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ धर्म्म है। क्योंकि तुम्हारा परिवार समाजका एक मामूली अंशमात्र है, सम्पूर्णके लिये सबको अंशमात्रको त्यागना उचित है।

आत्मरक्षा और स्वजन रक्षाकी भांति स्वदेश रक्षा भी ईश्वरोद्दिष्ट कर्म्म है क्योंकि यह सारे संसारके हितका उपाय है। परस्परके आक्रमणसे सब विनष्ट या अधःपतित होकर किसी परधन लोलुप पापी जातिके अधिकारमें चले जानेसे पृथिवी परसे धर्म्म और उन्नति लुप्त हो जायगी। इसलिये सब जीवोंके हितके लिये स्वदेश रक्षण कर्त्तव्य है।

यदि स्वदेशरक्षा भी आत्मरक्षा और स्वजनरक्षाकी भांति ईश्वरोद्दिष्ट कर्म्म हो तो यह भी निष्काम कर्म्ममें शामिल हो सकता है। यह आत्मरक्षा और स्वजनरक्षाको अपेक्षा आसानीसे निष्काम कर्म्म बनाया जा सकता है यह बात शायद तुम्हें कष्टसे समझानी नहीं पड़ेगी।

शिष्य। प्रसङ्गको उठाकर आपने कहा था—"विचार करो।" अब विचारसे क्या सिद्ध हुआ।

गुरु। विचारसे यही सिद्ध होता है कि सब जीवों पर समदृष्टि जैसे हमारा अनुष्ठेय कर्म्म है वैसेही आत्मरक्षा, स्वजनरक्षा

और स्वदेशरक्षा हमारा अनुष्ठेय कर्म्म है। दोनोंका ही अनुष्ठान करना होगा। जब दोनों परस्पर विरोधी हों तब देखना होगा कि किधरका वजन अधिक है। आत्मरक्षा, स्वजनरक्षा और स्वदेशरक्षा जगतरक्षाके लिये प्रयोजनीय हैं इसलिये उधरका ही पक्ष लेने योग्य है।

किन्तु वास्तवमें जागतिकप्रीतिसे आत्मप्रीति या स्वजनप्रीति या देशप्रीतिका कुछ विरोध नहीं है। जो आक्रमणकारी उससे आत्मरक्षा करूंगा परन्तु उसके प्रति प्रीतिशून्य क्यों हूंगा? भूखे चोरका उदाहरण देकर यह बात तुम्हें समझा चुका हूं। और यह भी समझाया है कि जागतिकप्रीति और सर्व्वत्र समदर्शनका यह तात्पर्य नहीं है कि चुपचाप रहकर मार खानी होगी। इसका तात्पर्य यही है कि जब सभी मेरे समान हैं तब मैं कभी किसीकी बुराई नहीं करूंगा; किसी मनुष्यकी भी नहीं करूंगा और किसी समाजकी भी नहीं करूंगा। जैसे अपने समाजकी यथासाध्य भलाई करूंगा वैसे यथा साध्य दूसरे समाजकी भी करूंगा। यथासाध्यसे मतलब यह है कि किसी एक समाजकी बुराई करके दूसरे समाजकी भलाई नहीं करूंगा। दूसरे समाजकी बुराई करके अपने समाजकी भलाई नहीं करूंगा और मैं किसीको ऐसा भी नहीं करने दूंगा कि वह हमारे समाजकी बुराई करके अपने समाजकी भलाई करे। यही यथार्थ समदर्शन है और यही जागतिकप्रीति तथा देशप्रीतिका सामञ्जस्य है। कई दिन पहले तुमने जो प्रश्न किया था आज उसका उत्तर पाया। शायद तुम्हारे मनमें युरोपियन Patriotism धर्म्मकी बात उठती थी, इससे तमने यह प्रश्न किया था। मैंने तुम्हें जो देशप्रीति समझायी वह युरोपियन Patriotism नहीं है। युरोपियन Patriotism एक घोरतर पैशाचिक पाप है। युरोपियन Patriotism धर्म्मका तात्पर्य्य यह है कि दूसरे समाजसे छीनकर अपने समाजके लिये लाओ। स्वदेशको श्री बढ़ाओ किन्तु दूसरी सब जातियोंका सत्यानाश करके। इस दुष्ट Patriotism के प्रभावसे अमेरिकाके असली निवासि-

योंका पृथिवी परसे नाम मिट गया। भगवान भारतवर्षमें भारतवासियोंके भाग्यमें ऐसा देशप्रेम न लिखें। अब कहो प्रीतितत्त्वका स्थूलतत्त्व क्या समझा?

शिष्य। समझा कि मनुष्यकी सब वृत्तियां अनुशीलित होकर जब ईश्वरानुवर्त्तिनी हों तभी उनकी वही अवस्था भक्ति है।

इस भक्तिका फल जागतिकप्रीति है। क्योंकि ईश्वर सब जीवोंमें हैं।

इस जागतिकप्रीतिसे आत्मप्रीति, स्वजनप्रीति और स्वदेशप्रीतिका असलमें कुछ विरोध नहीं है। आजकल हम लोग जिस विरोधका अनुभव करते हैं उसका कारण यह है कि इन सब वृत्तियोंको निष्कामतामें ले जानेके लिये हम चेष्टा नहीं करते। अर्थात् समुचित अनुशीलनके अभावसे ऐसा होता है।

यह भी समझा है कि आत्मरक्षासे स्वजनरक्षा गुरुतर धर्म्म है और स्वजनरक्षासे स्वदेशरक्षा गुरुतर धर्म्म है। जब ईश्वरमें भक्ति और सब लोगोंमें प्रीति एक ही है तब कह सकते हैं कि ईश्वरभक्तिके सिवा देशप्रीति सबसे बड़ा धर्म्म है।

गुरु। इससे भारतवासियोंकी सामाजिक और धर्म्म सम्बन्धी अवनतिका कारण समझ गये। भारतवासियोंकी ईश्वरमें भक्ति और सब लोगों पर समदृष्टि थी। किन्तु उन्होंने देशप्रीतिको उसी सार्वलौकिक प्रीतिमें डुबा दिया था। यह प्रीति वृत्तिका सामञ्जस्य युक्त अनुशीलन नहीं है। देशप्रीति और सार्वलौकिक प्रीति दोनोंका अनुशीलन और परस्पर सामञ्जस्य होना चाहिये। ऐसा होनेसे भविष्यत्में भारतवर्ष पृथिवीकी श्रेष्ठ जातिका आसन पा सकेगा।

शिष्य। भारतवर्ष आपके कहे हुए अनुशीलनतत्त्वको समझने और उसके अनुसार कार्य्य करने पर पृथिवीकी सर्व्व श्रेष्ठ जातिका आसन ग्रहण करेगा, इसमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है।

पचीसवां अध्याय—पशुप्रीति।

—:o:—

गुरु। प्रीतितत्त्व सम्बन्धी और एक बात बाकी है। हिन्दू-धर्म्मके और सब धर्म्मोंसे श्रेष्ठ होनेके हजारों उदाहरण दिये जा सकते हैं। यह जो प्रीतितत्त्व तुम्हें समझाया है उसके भीतर ही कितने उदाहरण मिल सकते हैं। हिन्दुओंकी जो जागतिकप्रीति तुम्हें बतायी है उसमें इसका चमकीला उदाहरण पा गये हो। बेशक दूसरे धर्म्मोंमें भी सब लोगोंसे प्रीति करनेको कहते हैं परन्तु उसका कोई उपयुक्त मूल नहीं बता सकते (जड़ नहीं बता सकते जिसका अवलम्बन किया जा सके) हिन्दूधर्म्मकी यह जागतिकप्रीति जगत्तत्त्वमें दृढ़बद्ध मूल है। ईश्वरकी सर्व्वव्यापकतामें इसकी नींव है। हिन्दुओंकी दम्पतिप्रीतिकी समालोचनासे और एक इस श्रेष्ठताका प्रमाण मिलता है; हिन्दुओंकी दम्पतिप्रीति दूसरी जातियोंके लिये आदर्श है; हिन्दूधर्म्मकी विवाहप्रथा इसका कारण है। मैं यहां प्रीतितत्त्वसे उत्पन्न और प्रमाण देता हूं।

ईश्वर सब जीवोंमें हैं। इसलिये सब जीवों पर समदृष्टि रखनी होगी। किन्तु सब जीवके माने केवल मनुष्य ही नहीं है। सब जानदार उसके भीतर आ जाते हैं। इसलिये पशु भी मनुष्यकी प्रीतिके पात्र हैं। जैसे मनुष्य प्रीतिके पात्र हैं वैसेही पशु भी प्रीतिके पात्र हैं। ऐसा अभेद ज्ञान और किसी धर्म्ममें नहीं है; केवल हिन्दूधर्म्म और हिन्दूधर्म्मसे उत्पन्न बौद्ध धर्म्ममें है।

शिष्य। इसे बौद्धधर्म्मने हिन्दूधर्म्मसे पाया है या हिन्दूधर्म्मने बौद्ध धर्म्मसे पाया है?

गुरु। अर्थात् तुम पूछते हो कि लड़केने बापकी सम्पत्ति पायी है या बापने लड़केकी सम्पत्ति पायी है?

शिष्य। बाप कभी कभी लड़केकी सम्पत्ति पाता है।

गुरु। जो प्रकृतिकी उलटी गतिका समर्थन करता है, प्रमाणका भार उसी पर रहता है। बौद्धके पक्षमें क्या प्रमाण है?

शिष्य। कुछ नहीं जान पड़ता। हिन्दूपक्षमें क्या प्रमाण है?

गुरु। लड़का बापकी सम्पत्ति पाता है यही बात यथेष्ट है।

इसके सिवा वाजसनेय उपनिषदकी श्रुति उद्धृत करके प्रमाण दिया है कि सब जीवोंका साम्य प्राचीन वेदोक्त धर्म्म है ।

शिष्य । मगर वेदमें तो अश्वमेधादिकी विधि है ।

गुरु । वेद अगर किसी व्यक्तिविशेषका बनाया हुआ ग्रंथ होता तो उसपर परस्पर विरोधी बातें होनेका दोष लगा भी सकते थे । Thomas Acquinas से हर्बर्ट स्पेंसरका मेल मिलाना जितना उचित है, वेदके भिन्न भिन्न अंशोंमें परस्पर मिलान ढूंढना भी उतना ही उचित है । हिंसाकी अपेक्षा अहिंसामें धर्म्मकी उन्नति है । अस्तु । हिन्दूधर्म्म विहित "पशुओंकी अहिंसा" परम रमणीय धर्म्म में है । यत्न पूर्व्वक इसका अनुशीलन करना । अहिन्दू यत्नपूर्व्वक इसका अनुशीलन करते हैं । खानेके लिये या खेतीके लिये या सवारीके लिये जो लोग भेड़ बकरी गाय बैल घोड़े आदिका पालन करते हैं, मैं केवल उन्हींकी बात नहीं कहता हूं । कुत्तेका मांस नहीं खाया जाता तो भी कितने प्रेमसे कुत्तानकुत्तोंको पोसते हैं । उसमें उनको कितना आनन्द मिलता है । बङ्गालमें कितनी ही स्त्रियां बिल्ली पोसकर अपत्यहीनताका दुःख मिटाती हैं । तोता या और कोई चिड़िया पालकर कौन नहीं सुखी होता ? मैंने एक बार एक अङ्गरेजी पुस्तकमें पढ़ा था कि जिस मकानमें देखना कि पींजरेमें पक्षी हैं, समझ जाना कि उसमें कोई विज्ञमनुष्य है । पुस्तकका नाम याद नहीं मगर बात विज्ञताकी है ।

पशुओंमें गौ हिन्दुओंकी विशेष प्रीतिके पात्र हैं । गाय बैलके समान हिन्दुओंका परम उपकारी और कोई नहीं है । गायका दूध हिन्दुओंके दूसरे जीवनके तुल्य है । हिन्दू मांस नहीं खाते । जो अन्न हम लोग खाते हैं उनमें पुष्टिकर Nitrogenous पदार्थ बहुत कम होता है, गायका दूध न मिलनेसे वह अभाव पूरा नहीं होता । हम केवल गायका दूध पीकर ही नहीं पलते हैं ; जिस अन्न पर हमारा जीवन है उसकी खेती बैलसे होती है — बैल ही हमारे अन्नदाता हैं । बैलके बल अन्न उपजाकर ही अलग नहीं हो जाते ; वे उसे खलिहानसे घर और बाजार तक

पहुंचा देते हैं। भारतवर्षके लदुएका सब काम बैल ही करते हैं गाय बैल मरने पर भी दधीचिकी तरह हड्डी, सींग और चमड़ेसे उपकार करते हैं। मूर्ख लोग कहते हैं कि गाय बैल हिन्दुओंके देवता हैं; देवता नहीं हैं किन्तु देवताके समान उपकार करते हैं। वृष्टिदेवता इन्द्र हमारा जितना उपकार करदे हैं, गाय बैल उससे अधिक उपकार करते हैं। यदि इन्द्र पूजने योग्य हैं तो गाय बैल भी पूजने योग्य हैं। यदि किसी कारणवश भारतवर्षसे अचानक गोवंशका लोप हो जाय तो निःसन्देह हिन्दूजातिका भी लोप हो जायगा। यदि हिन्दू, मुसलमानोंकी देखादेखी गोमांस खाना सीखते तो या तो इतने दिनमें हिन्दूनामका लोप हो गया होता या हिन्दू बड़ी ही दुर्द्दशामें होते। हिन्दुओंके अहिंसा धर्म्मने ही इसमें हिन्दुओंकी रक्षा की है। अनुशीलनका फल प्रत्यक्ष देखो। पशुप्रीतिका अनुशीलन होनेसे ही हिन्दुओंका यह उपकार हुआ है।

शिष्य। बङ्गालके आधे किसान मुसलमान हैं।

गुरु। वे,—चाहे हिन्दूजातिसे उत्पन्न होनेके कारण हों चाहे हिन्दुओंमें रहनेके कारण, आचारमें तो हिन्दू हैं। वे गोमांस नहीं खाते।* हिन्दू वंशमेंजन्म लेकर जो गोमांस खाता है वह कुलाङ्गार और नराधम है।

शिष्य। कितने ही पाश्चात्य पण्डित कहते हैं, कि हिन्दू पुनर्जन्म माननेवाले हैं; वे इस डरसे पशुओंपर दया करते हैं, कि शायद हमारे कोई पुरखा मरनेके बाद पशु योनिमें आ गये हों।

गुरु। तुम पश्चिमी पण्डितों और पश्चिमी गधोंको एकमें शामिल कर रहे हो। अब तुम हिन्दू धर्म्मका कुछ कुछ मर्म्म जान गये हो, अब आवाज सुनकर गधोंको पहचान सकोगे।

---

* केवल बङ्गालके मुसलमान ही क्यों, शहरोंमें रहनेवालोंके सिवा भारतके प्रायः सभी मुसलमान गोमांस नहीं खाते। अनुवादक।

छबीसवां अध्याय—दया।

——:o:——

गुरु। भक्ति और प्रीतिके बाद दया है। आर्त्तपर जो विशेष प्रीति भाव है वही दया है। प्रीति जैसे भक्तिके अन्तर्गत है वैसे ही दया प्रीतिके अन्तर्गत है। जो अपनेको सब जीवोंमें और सब जीवोंको अपनेमें देखता है वह सब जीवोंमें दयामय है। इसलिये भक्तिका अनुशीलन ही, जैसे प्रीतिका अनुशीलन है, वैसे ही प्रीतिका अनुशीलन ही दयाका अनुशीलन है। भक्ति, प्रीति और दया हिन्दू धर्म्ममें एक सूतमें गुथी हुई हैं,—अलग नहीं की जा सकतीं। हिन्दू धर्म्मके ऐसा सर्वाङ्ग सम्पन्न धर्म्म और कोई नहीं दिखाई देता।

शिष्य। तो भी दयाका अलग अनुशीलन हिन्दू धर्म्ममें बताया है।

गुरु। ढेरका ढेर, बार बार। दयाका अनुशीलन जिस तरह बार बार कहा है उस तरह और कुछ नहीं। जिसमें दया नहीं है वह हिन्दू ही नहीं है। किन्तु हिन्दूधर्म्मके इन सब उपदेशोंमें दया-शब्दका उतना व्यवहार नहीं हुआ है जितना दान-शब्दका व्यवहार हुआ है। दयाका अनुशीलन दानमें है, किन्तु दान-शब्दको लेकर एक बड़ी गड़बड़ पड़ गयी है। दान कहनेसे साधारणतः हम अन्न दान, वस्त्र दान, धन दान इत्यादिको ही समझते हैं। किन्तु दानका यह अर्थ बड़ा संकीर्ण है। दानका असली अर्थ त्याग है। त्याग और दान पर्याय वाची शब्द हैं। दयाके अनुशीलनके लिये कितने ही स्थानोंमें त्यागशब्दका भी व्यवहार हुआ है। इस त्यागका अर्थ केवल धन त्याग नहीं समझना चाहिये; सब प्रकारका त्याग—आत्म त्यागतक समझना होगा। ऐसा दान ही असली दयाका अनुशीलन मार्ग है। नहीं तो तुम्हारे पास बहुत धन है, उसमेंसे दो चार पैसे किसी गरीबको दे देनेसे उसपर दया करना नहीं कहलावेगा। क्योंकि जैसे तालाबमें एक बूंद जल निकालनेपर तालाब कुछ घट नहीं जाता, उसी तरह ऐसे दानसे तुम्हें भी कष्ट नहीं होगा, किसी प्रकारका आत्मोत्सर्ग नहीं होगा।

जो ऐसा दान नहीं करता वह बड़ा भारी नराधम है, किन्तु जो करता है वह कोई बहादुर नहीं है। इसमें दया वृत्तिका असली अनुशीलन ही है। आप कष्ट सहकर दूसरेका उपकार करना ही दान है।

शिष्य। जब स्वयं कष्ट भोगा तब वृत्तिके अनुशीलनका सुख क्या मिला? और आप कह चुके हैं, कि सुखका उपाय धर्म्म है।

गुरु। जो, वृत्तिका अनुशीलन करता है उसका वह कष्ट ही परम पवित्र सुख बन जाता है। श्रेष्ठ वृत्तियोंका भक्ति प्रीति और दयाका एक यह लक्षण है, कि इनके अनुशीलनसे उत्पन्न दुःख सुख बन जाता है। ये वृत्तियां सब दुःखोंको सुख बना देती हैं। सुखका उपाय धर्म्म ही है और वह जो कष्ट है, उसे भी जितने दिन अपने परायेका भेदज्ञान रहता है उतने ही दिन लोग कष्ट कहते हैं। वास्तवमें धर्म्मानुमोदित जो आत्म प्रीति है, उससे सामंजस्य रखता हुआ दूसरेके लिये आत्मत्याग ईश्वरानुमोदित है; इस लिये निष्काम होकर उसका अनुष्ठान करना। सामंजस्यकी विधि पहले बता चुका हूं।

अब, दानधर्म्म जिस भावसे साधारण हिन्दू शास्त्रकारों द्वारा स्थापित हुआ है, उसके विषयमें मुझे कुछ कहना है। हिन्दू धर्म्मके साधारण शास्त्रकार (सब नहीं) कहते हैं, कि दान करनेसे पुण्य होता है, इस लिये दान करो। यहां "पुण्य" स्वर्ग आदि काम्य वस्तु प्राप्त करनेका उपाय है। दान करनेसे अक्षय स्वर्ग मिलता है, इसलिये दान करो, यही साधारण हिन्दू शास्त्रकारोंकी व्यवस्था है। ऐसे दानको धर्म्म नहीं कह सकते स्वर्ग प्राप्तिके लिये धन दान करनेका अर्थ मूल्य देकर स्वर्गमें थोड़ी जमीन खरीदना, स्वर्गके लिये दादनी देना मात्र है। यह धर्म्म नहीं, बदलौअल या वाणिज्य है। ऐसे दानको धर्म्म कहना धर्म्मका अपमान करना है।

दान करना होगा मगर निष्काम होकर। दया वृत्तिके अनुशीलनके लिये दान करना; दया वृत्तिसे प्रीति वृत्तिका अनुशीलन है और प्रीति भक्तिका ही अनुशीलन है, इसलिये भक्ति, प्रीति और दयाके अनुशीलनके लिये दान करना। वृत्तिके अनु

और स्फूर्त्ति में धर्म्म है, इसलिये धर्म्मके लिये ही दान करना, पुण्य या स्वर्गके लिये नहीं। ईश्वर सब जीवोंमें हैं इसलिये सब जीवोंको दान करना; जो ईश्वरका है वह ईश्वरको देने योग्य है, ईश्वरको सर्व्वस्व दान ही मनुष्यत्वका चरम है। सब जीवोंमें और तुममें अभेद है इसलिये तुम्हारे सर्व्वस्वमें तुम्हारा और सब लोगोंका अधिकार है; जो सब लोगोंका है उनसे सब लोगोंको दो। यही यथार्थ हिन्दू धर्म्मका अनुमोदित, गीतोक्त धर्म्मका अनुमोदित दान है। यही यथार्थ दान धर्म्म है। नहीं तो तुम्हारे पास बहुत है तुमने कुछ भिखमंगेको दे दिया तो वह दान नहीं है। आश्चर्य्यकी बात है, कि कितने ही ऐसे आदमी हैं जो वह भी नहीं देते।

शिष्य। क्या सबको दान देना होगा? दानके पात्रापात्र नहीं हैं? आकाशका सूर्य्य सर्व्वत्र किरणें बरसाता है परन्तु कितने ही प्रदेश उससे दग्ध हो जाते हैं। आकाशका मेघ सर्व्वत्र जल बरसाता है किन्तु उससे कितने ही स्थान बहजाते हैं। क्या विचार शून्य दानसे वैसी आशङ्का नहींहै?

गुरु। दान दया वृत्तिके अनुशीलनके लिये है। जो दयाका पात्र है उसीको दान देना। जो आर्त्त है वही दयाका पात्र है दूसरा नहीं। इसलिये आर्त्तको ही दान देना दूसरेको नहीं। सब जीवों पर दया करनेके लिये कहनेसे यह नहीं साबित होता कि जिसे किसी प्रकारका दुःख नहीं है उसका दुःख दूर करनेके लिये आत्मोत्सर्ग करना होगा। अलबत्ते संसारमें ऐसा कोई आदमी नहीं मिलता जिसे किसी प्रकारका दुःख न हो। जिसे दरिद्रताका दुःख नहीं है उसे धन देना विधेय नहीं है, जिसे रोगका दुःख नहीं है उसकी चिकित्सा विधेय नहीं है। यह कह देना कर्त्तव्य है कि अनुचित दानसे अनेक समय पृथिवीका पाप बढ़ता है। बहुत लोगोंके अनुचित दान करनेसे ही, पृथिवी पर जो लोग सत्कार्य्यमें दिन बिता सकते हैं वे भी भिखारी या धूर्त्त बन जाते हैं। अनुचित दानसे संसारमें आलस्य, धूर्त्तता और पाप कर्म्म बढ़ते हैं। इधर कितने ही यही सोचकर किसीको दान ही नहीं देते। उनकी समझमें सभी भिक्षुक आलस्यके कारण भिखारी या धूर्त्त हैं। ये

दोनों पक्ष यथाक्रम दान देना, जिन्होंने ज्ञानार्ज्जनी और कार्य्य-कारिणी वृत्तियोंका विधिपूर्वक अनुशीलन किया है उनके लिये यह कठिन नहीं है। क्योंकि वे विचारवान और दयालु हैं। इसलिये सब वृत्तियोंका अनुशीलन किये विना मनुष्यकी कोई वृत्ति सम्पूर्ण नहीं होती।

गीताके सत्रहवें अध्यायमें दानके विषयमें जो, भगवदुक्ति है उसका तात्पर्य्य भी ऐसा ही है।

दातव्य मिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतं॥
यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतं॥
अदेश काले य द्दान मपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत् कृतमवज्ञातं तत्तामस मुदाहृतं॥

अर्थात् "देना उचित है यह विचारकर जो दान दिया जाता है, जिससे प्रत्युपकार पानेकी सम्भावना नहीं है उसको जो दान दिया जाता है और देश काल तथा पात्रका विचारकर जो दान दिया जाता है वही सात्त्विक दान है। प्रत्युपकार पानेकी आशासे, फलके लिये और अप्रसन्न होकर जो दान दिया जाता है वह राजस दान है। देश काल और पात्रका विचार विना किये, अनादर और अपमानसे जो दान दिया जाता है वह तामस दान है।"

शिष्य। दानके देश काल पात्रका विचार कैसे करना होगा, गीतामें इसका कुछ उपदेश है?

गुरु। गीतामें नहीं है किन्तु भाष्यकारोंने उसे बतया है। भाष्यकारोंका रहस्य देखो। देश काल और पात्रके विचारकी कोई विशेष व्याख्या दरकार नहीं है सभी काम देशकाल और पात्रका विचार करके किये जाते हैं। दान भी वैसाही है। देश काल और पात्रका विचार न कर दान देनेसे वह सात्त्विक नहीं रहता, तामसिक हो जाता है। इसका खुलासा समझनेके लिये

हिन्दू धर्म्मकी कोई विशेष विधि दरकार नहीं है। बङ्गाल दुर्भिक्षसे चौपट हो रहा है, मान लो कि उसी समय मंचेस्टरकी कपड़ेकी कलें बन्द हैं और मजदूरोंको बड़ा कष्ट है, ऐसी दशामें मेरे पास कुछ देनेके लिये होनेपर दोनों जगह कुछ कुछ दे सकूं तो अच्छा है नहीं तो जितनी सामर्थ्य हो केवल बङ्गालको दूंगा। ऐसा न करके अगर मैं सब कुछ मंचेस्टर भेज दूं तो देशविचार नहीं होगा। क्योंकि मंचेस्टरको देनेके लिये बहुत आदमी हैं और बङ्गालको देनेके लिये बहुत कम हैं। काल विचार भी ऐसा ही है। आज तुमने प्राणकी परवा न करके जिसकी रक्षा की है, सम्भव है कि कल उसे तुम राजदण्ड देनेको लाचार हो, उस समय उसके प्राणदान मांगनेसे तुम नहीं दे सकते। पात्र विचार बहुत सहज है, प्रायः सभी कर सकते हैं। दुखियाको सभी देते हैं, धूर्त्तको कोई नहीं देना चाहता। इसलिये "देशेकालेच पात्रेच" की कोई सूक्ष्म व्याख्या दरकार नहीं है, जो उदार जागतिक महानीति सबके हृदयमें है वह उसीके अन्तर्गत है। अब भाष्यकारोंका कथन सुनो। "देशे" क्या? "पुण्ये कुरुक्षेत्रादौ" शङ्कराचार्य्य और श्रीधर स्वामी दोनों ऐसा कहते हैं। इसके बाद "काले" क्या? शङ्कर कहते हैं—"संक्रान्त्यादौ"; श्रीधर कहते हैं—"ग्रहणादौ," "पात्रे" क्या? शङ्कर कहते हैं—"षडङ्गविद्वेद पारग इत्यादौ आचार निष्ठाय" श्रीधर कहते हैं,—"पात्र भूताय तपः श्रुतादि सम्पन्नाय ब्राह्मणाय।" हरे हरे! मैं अगर स्वदेशमें बैठकर संक्रान्ति या ग्रहण छोड़कर और किसी समय अति दीन दुःखी पीड़ित दरिद्र एक डोम या चमारको कुछ दान दूं तो वह भगवदभिप्रेत दान नहीं होगा! इसी तरह कभी कभी भाष्यकारोंके विचारसे अति उन्नति, उदार और सार्व्वलौकिक हिन्दू धर्म्म अति सङ्कीर्ण और अनुदार उपधर्म्म बन गया है। यहां शङ्कराचार्य्य और श्रीधर स्वामीने जो कुछ कहा है वह भगवद्वाक्य नहीं है। किन्तु वह स्मृत शास्त्रमें है। भगवद्वाक्यको स्मृतिका अनुमोदित बनानेके लिये इस उदार धर्म्मको अनुदार और सङ्कीर्ण बनाडाला। इन सब महाभिमानी सर्व शास्त्र विद् महामहोपाध्यायोंके आगे

हमारे जैसे क्षुद्र मनुष्य पर्वतके आगे बालूकणके समान हैं, किन्तु यह भी कहा है कि—

केवल शास्त्र माश्रित्य न कर्त्तव्यो विनिर्णयः।

युक्तिहीन विचारेतु धार्म्महानिः प्रजायते॥*

बिना विचारे ऋषियोंके वाक्य इतने दिन शिरोधार्य्य करके हम इस गड़बड़ाध्याय, अधर्म्म और दुर्द्दशामें आ गिरे हैं। अब आगे बिना विचारे शिरोधार्य्य करना कर्त्तव्य नहीं है। अपनी बुद्धिके अनुसार सबको विचार करना उचित है। नहीं तो धीरे धीरे हमारी दशा चन्दन ढोनेवाली गधेकीसी हो जायगी। केवल बोझसे मरते रहेंगे चन्दनकी कुछ भी महिमा नहीं समझेंगे।

शिष्य। तो अब भाष्यकारोंके हाथसे हिन्दूधर्म्मका उद्धार करना हम लोगोंका बड़ा भारी कर्त्तव्य है।

गुरु। प्राचीन ऋषि और पण्डित लोग बड़े ही प्रतिभाशाली और महाज्ञानी थे। उनपर विशेष भक्ति रखना, कभी अमर्य्यादा या अनादर मत करना। मगर जहां यह समझमें आवे कि उन लोगोंकी उक्तियां ईश्वरके अभिप्रायके विरुद्ध हैं वहां उनको छोड़कर ईश्वरके अभिप्रायका ही अनुसरण करना।

सत्ताईसवां अध्याय—चित्तरञ्जिनीवृत्ति।

—:o:—

शिष्य। अब दूसरी कार्य्यकारिणी वृत्तियोंकी अनुशीलन पद्धति सुननेकी इच्छा है।

गुरु। वे सब विस्तृत बातें शिक्षातत्त्व अन्तर्गत हैं। मुझसे विशेष सुननेकी आवश्यकता नहीं है। शारीरिकवृत्ति या ज्ञाना-

---

*मनु १२ वें अध्यायके ११३ वें श्लोककी टीकामें कुल्लुक भट्ट-कृत वृहस्पति वचन।

ञ्जनी वृत्तिके विषयमें भी मैंने केवल साधारण अनुशीलन पद्धति बता दी है, वृत्ति विशेषके विषयमें कुछ अनुशीलन पद्धति नहीं सिखायी। किस प्रकार शरीरमें बल लाना होगा, किस प्रकार अस्त्र शिक्षा या घुड़सवारी करनी होगी, किस प्रकार मेधाको तेज बनाना होगा, या किसप्रकार बुद्धिको गणित शास्त्रके उपयोगी करना होगा, यह सब नहीं बताया है। क्योंकि यह सब शिक्षा तत्त्वके अन्तर्गत है। अनुशीलन तत्त्वका खुलासा समझनेके लिये केवल साधारण विधि जान लेना ही यथेष्ट है। मैंने शारीरिकी और ज्ञानार्ज्जनी वृत्तिके विषयमें उतनी ही बात बतायी है। कार्य्यकारिणी वृत्तिके विषयमें भी उतना ही बताना मेरा उद्देश्य है। किन्तु कार्य्यकारिणी वृत्तिके अनुशीलन सम्बन्धमें जो साधारण विधि है वह भक्ति तत्त्वके अन्तर्गत है। प्रीति भक्तिके अन्तर्गत है और दया प्रीतिके अन्तर्गत। असूले धर्म्मका दारमदार इन तीन वृत्तियोंपर ही विशेष कर है। इसीसे मैंने भक्ति, प्रीति और दयाको विशेष प्रकारसे समझाया है। नहीं तो सब वृत्तियोंको गिनना या उनकी अनुशीलन पद्धति ठीक करना मेरा उद्देश्य नहीं है और मेरी सामर्थ्य भी नहीं है। शारीरिक, ज्ञानार्ज्जनी या कार्य्यकारिणी वृत्तियोंके सम्बन्धमें मैं अपना वक्तव्य कह चुका हूं। यहां चित्तरञ्जिनी वृत्तिके सम्बन्धमें संक्षेपसे कुछ कहूंगा।

जगतके सब धर्म्मोंकी एक यह असम्पूर्णता है, कि उनमें चित्तरञ्जिनी वृत्तियोंके अनुशीलनका उपदेश विशेष रूपसे नहीं दिया गया है। मगर इससे कोई यह सिद्धान्त नहीं निकाल सकता कि प्राचीन धर्म्मवेत्ता लोग उसकी आवश्यकता नहीं जानते थे या उन वृत्तियोंके अनुशीलनका कोई उपाय नहीं बता गये। हिन्दुओंकी पूजाके पुष्प, चन्दन, माला, धूप, दीप, धूना, गुग्गुल, नाच, गीत, बाजे आदि सबका उद्देश्य भक्तिके अनुशीलनके साथ चित्तरञ्जिनी वृत्तियोंके अनुशीलनका सम्मिलन या इन सबके द्वारा भक्तिका उद्दीपन है। प्राचीन यूनानियोंके धर्म्ममें और मध्यकालके युरोपमें रोमन कृस्तानी धर्म्ममें उपासनाके साथ चित्तरञ्जिनी वृत्तियोंकी स्फूर्त्ति और परितृप्तिकी बड़ी भारी चेष्टा की। आपिस्ताम या

राफेलका चित्र, माइकेल एंजिलो या फिदियसका भास्कर्य्य (महलादि बनानेकी विद्या) और जर्मनीके विख्यात सङ्गीतप्रणेताओंके संगीत उपासनाके सहाय हुए थे। चित्रकर भास्कर, स्थपति और सङ्गीतकारकोंकी सब विद्या धर्म्मके चरणोंमें न्योछावर कर दी जाती थी। भारतवर्षमें भी स्थापत्य, भास्कर्य्य, चित्रविद्या और सङ्गीत उपासनाके सहाय हैं।

शिष्य। तब जान पड़ता है कि प्रतिमागठन उपासनाके साथ ऐसी ही चित्तरञ्जिनी वृत्तिकी तृप्तिकी आकांक्षाका फल है।

गुरु। यह बात उचित जंचती है* किन्तु यह नहीं कह सकते कि प्रतिमागठनका और कोई मूल कारण नहीं है। प्रतिमा पूजाकी उत्पत्ति विचारनेका स्थान यह नहीं है। चित्तविद्या, भास्कर्य्य स्थापत्य और सङ्गीत चित्तरञ्जिनी वृत्तिको स्फूर्त्त और तृप्त करने-

---

* इस विषयमें पहले मैंने स्टेट्समैन पत्रके २८ सितम्बर सन् १८८२ ईस्वीवाले अङ्कमें एक लेख लिखा था उसका कुछ अंश यों है—

"The true explanation consists in the ever true relations of the Subjective ideal to its objective Reality. Man is by instinct a hoet and an artist. The passionate yearnings of the heart for the ideal in beauty, in power and in purity must find an expression in the world of the Real. Hence proceed all poetry and all art. Exactly in the same way the ideal of the Divine in man receives a form from him and the form an image. The existence of idols is as justifiable as that of the tragedy of Hamlet or that of pormetheus. The religious worship of idols is as justifiable as the intellectual worship of Hamlet or Prometheus. The homage we owe to the ideal of the Human realized in art is admiration. The homage we owe to the ideal of the Divine realized in Idolatry is worship."

Statesman, Sept 28, 1882.

वाले हैं ; किन्तु काव्य ही चित्तरञ्जिनी वृत्तिके अनुशीलनका श्रेष्ठ उपाय है। यही काव्य ग्रीक और रोमक धर्म्मका सहाय है किन्तु हिन्दू धर्म्ममें ही काव्यकी विशेष सहायता ली गयी है। रामायण और महाभारतके समान और कोई काव्य ग्रन्थ नहीं है अथच यही इस समय हिन्दुओंके प्रधान धर्म्म ग्रन्थ हैं। विष्णु और भागवत पुराणमें ऐसा काव्य है जो अन्य देशोंमें अतुलनीय है। इसलिये यह बात नहीं है कि हिन्दू धर्म्ममें चित्तरञ्जिनीके अनुशीलनकी ओर कम ध्यान दिया गया था। हां जो पहले विधिवद्ध न होकर केवल लोकाचारमें ही था उसे अब धर्म्मका अंश कहकर विधिवद्ध करना होगा। और ज्ञानार्ज्जनी तथा कार्य्यकारिणी वृत्तियों अनुशीलन जैसा अवश्य कर्त्तव्य है, वैसा ही चित्तरञ्जिनी वृत्तिके अनुशीलनको भी धर्म्म शास्त्रमें विहित बताना होगा।

शिष्य। अर्थात् जैसे धर्म्मशास्त्रमें विधान है कि गुरुजनोंपर भक्ति करना, किसीसे द्वाह मत रखना, दान करना और शास्त्रोंका अध्ययन तथा ज्ञानका उपार्ज्जन करना वैसे ही आपकी व्याख्याके अनुसार चित्रविद्या, भास्कर्य्य, नाच, गान, वाद्य और काव्यके अनुशीलन करनेका विधान करना होगा?

गुरु। हां। नहीं तो मनुष्यकी धर्म्महानि होगी।

शिष्य। समझा नहीं।

गुरु। समझो। जगत्‌में क्या है?

शिष्य। जो है वही है।

गुरु। उसको क्या कहते हैं?

शिष्य। सत्।

गुरु। या सत्य। यह जगत् तो जड़पिण्डका ढेर है। जगत्‌की वस्तुएं अनेक प्रकार की, भिन्न भिन्न प्रकृति और विविध गुणवाली हैं। इनमें कुछ एकता देखते हो? वे मिलजुलेमें कुछ मिलजुला देखते हो?

शिष्य। देखता हूं।

गुरु। कैसे?

शिष्य। एक अनन्त अनिर्व्वचनीय शक्ति है जिसे सोचनेसे

Inscrutable Powar in Nature कहा है, उसीसे सब जन्म लेते हैं, चलते हैं सदा उत्पन्न होते हैं और उसीमें सब मिल जाते हैं।

गुरु। उसको विश्वव्यापी चैतन्य कहो। उस चैतन्यरूपी शक्तिको चित् शक्ति कहो। अब बताओ, कि सत्में इस चित्के रहनेका क्या फल है?

शिष्य। फल तो अभी आप हीने बता दिया है। वह है जगत्का सिलसिला, अनिर्व्वचनीय एदा है।

गुरु। खूब विचार कर कहो जीवके लिये इस अनिर्व्वचनीय शृङ्खलाका (सिलसिलेका) क्या फल है?

शिष्य। जीवनकी उपयोगिता या जीवका सुख।

गुरु। उसका नाम रखो आनन्द। इस सच्चिदानन्दको जानने ही जगत्को जान जाओगे। किन्तु कैसे जानोगे? एक एक करके विचार देखो, पहले सत् अर्थात् जो है उसका अस्तित्व कैसे जानोगे?

शिष्य। इस "सत्"का अर्थ सत्यका गुण भी तो है?

गुरु। हां। क्योंकि वे सब गुण भी हैं। वही सत्य है।

शिष्य। तो सत्यासत्यको प्रमाणसे जानना होगा।

गुरु। प्रमाण क्या है?

शिष्य। प्रत्यक्ष और अनुमान। दूसरे प्रमाणोंको मैं अनुमानमें गिनता हूं।

गुरु। ठीक है। किन्तु अनुमानकी बुनियादभी प्रत्यक्ष है। इसलिये सत्यज्ञान प्रत्यक्ष मूलक है। * प्रत्यक्ष ज्ञानेन्द्रियोंसे होता है। इसलिये यथार्थ प्रत्यक्षके लिये सब इन्द्रियोंकी अर्थात् कुछ शारीरिक वृत्तियोंकी स्वच्छन्दता ही यथेष्ठ है। ' इसके बाद अनुमानके लिये सब ज्ञानार्ज्जनी वृत्तियोंकी उचित स्फूर्त्ति और पूर्णता आवश्यक है। ज्ञानार्ज्जनी वृत्तियोंमेंसे कुछका नाम हिन्दुओंके दर्शन शास्त्रमें मान रखा है और कुछका बुद्धिला। इस मन और

* यह ज्ञान प्रत्यक्ष मूलक नहीं है। यह बात भगवद्गीताकी टीकामें बतायी गयी है पुनरुक्ति अनावश्य है।

बुद्धि भेद, किसी किसी युरोपियन दार्शनिक कृत ज्ञापिका और विचारिका वृत्तियोंमें जो प्रभेद है, उससे कुछ कुछ मिलता है। अनुमानके लिये मन नामावली वृत्तियोंकी स्फूर्त्ति ही विशेष दरकार है। अच्छा अब इस सद्व्यापी चित्को कैसे जानोगे?

शिष्य। उसको भी अनुमानसे जानेंगे।

गुरु। यह ठीक नहीं है। जिसको बुद्धि या विचारकी वृत्ति कहा है। उसके अनुशीलनसे जानोगे। अर्थात् सत्को जानना होगा ज्ञानसे और चित्को ध्यानसे। इसके पश्चात् आनन्दको कैसे जानोगे?

शिष्य। यह अनुमानका विषय नहीं है, अनुभवका विषय है। हम आनन्द अनुमान नहीं करते अनुभव करते हैं। भोग करते हैं। इसलिये आनन्द ज्ञानार्ज्जनी वृत्तियोंको अप्राप्य है। इस कारण इसके लिये और तरहकी वृत्तियां चाहिये।

गुरु। येही चित्तरञ्जिनी वृत्तियां हैं। उनके समुचित अनुशीलनसे हम सच्चिदानन्दमय जगत् और जगन्मय सच्चिदानन्दकी सम्पूर्ण स्वरूपानुभूति हो सकती है। इनके बिना धर्म अधूरा है। इसीसे कहता था कि चित्तरञ्जिनी वृत्तियोंका अनुशीलन न करनेसे धर्मकी हानि होती है। हमारे सर्वाङ्ग सम्पन्न हिन्दू धर्मके इतिहासकी आलोचना करनेसे देखोगे कि इसमें जो कुछ परिवर्त्तन हुआ है वह सिर्फ इसको सर्वाङ्ग सम्पन्न करनेकी चेष्टाका फल है। इसकी पहली अवस्था ऋग्वेदसंहिताके धर्मकी आलोचना करनेसे पाई जाती है; जो शक्तिमान या उपकारी या सुन्दर है उसीकी उपासना यह मूल वैदिक धर्म है। इसमें आनन्द भाग यथेष्ट था किन्तु सत् और चित्की उपासनाका, अर्थात् ज्ञान और ध्यानका अभाव था। इसलिये समयानुसार यह उपनिषदों द्वारा सुधारा गया। उपनिषदोंका धर्म चिन्मय परब्रह्मकी उपासना है। इसमें ज्ञान और ध्यानका अभाव नहीं है। किन्तु आनन्दांशका अभाव है। ब्रह्मानन्द प्राप्ति ही उपनिषदोंका उद्देश्य है किन्तु चित्तरञ्जिनी वृत्तियोंके अनुशीलन और स्फूर्त्तिके लिये इस ज्ञान और ध्यान मय धर्ममें कोई व्यवस्था नहीं है। बौद्ध धर्ममें उपासना नहीं है।

बौद्ध लोग सत्को नहीं मानते थे। और उनके धर्म्ममें आनन्द नहीं था। इन तीन धर्म्मोंमेंसे एक भी सच्चिदानन्द प्रयासी हिन्दू जातिमें अधिक दिन नहीं टिका। इन तीन धर्म्मोंका सार भाग लेकर पौराणिक हिन्दू धर्म्म संगठित हुआ। उसमें सत्की उपासना, चित्तकी उपासना और आनन्दकी उपासना अधिकतासे है। विशेष आनन्द भाग विशेष रूपसे स्फूर्त्ति प्राप्त हुआ है। यही जातीय धर्म्म होनेके उपयुक्त है और इसी कारणसे सर्वाङ्ग सम्पन्न हिन्दूधर्म्म और किसी अधूरे विजातीय धर्म्मसे च्युत या वञ्चित नहीं हो सकता। आज कल जो लोग धर्म्म सुधारमें लगे हुए हैं उन्हें स्मरण रखना चाहिये कि ईश्वर जैसे सत् स्वरूप हैं वैसे ही आनन्दस्वरूप हैं; इसलिये चित्तरञ्जिनी वृत्तियोंके अनुशीलनकी विधि और उपाय न रहनेसे सुधारा हुआ धर्म्म कभी स्थायी न होगा।

शिष्य। किन्तु पौराणिक हिन्दू धर्म्ममें आनन्दका ठेलमठेला है और सामञ्जस्य नहीं है यह बात माननी पड़ेगी।

गुरु। अवश्य। हिन्दू धर्म्ममें बहुतसा कूड़ा कर्कट जमा हो गया है, झाड़ पोंछकर साफ करना होगा। जो आदमी हिन्दू धर्म्मका मर्म्म समझ सकेगा वह अनायास ही आवश्यक और अनावश्यक अंशको समझ सकेगा और त्याग सकेगा। ऐसा किये विना हिन्दूधर्म्मकी उन्नति नहीं होगी। इस समय हमारा यही विवेच्य है कि ईश्वर अनन्त सौन्दर्य्यमय है वे यदि सगुण हों तो उनमें सभी गुण हैं; क्योंकि वे सर्व्वमय हैं और उनके सभी गुण अनन्त हैं अनन्तका गुण सान्त (ससीम) या परिमाण विशिष्ट नहीं हो सकता। इसलिये ईश्वर अनन्त सौन्दर्य्य विशिष्ट हैं। वे महत्, शुचि, प्रेममय, विचित्र अथच एक सर्वाङ्गसम्पन्न और निर्व्विकार हैं। ये सभी गुण अपरिसीम हैं। इसलिये इन सब गुणोंका समवाय स्वरूप जो सौन्दर्य्य है वह भी उनमें अनन्त है। जिन सब वृत्तियोंसे सौन्दर्य्यका अनुभव किया जाता है उनका पूरा अनुशीलन किये विना उनको कैसे पावेंगे? इसलिये बुद्धि आदि ज्ञानार्ज्जनी वृत्ति-

यों का और भक्ति आदि कार्य्यकारिणी वृत्तियोंका अनुशीलन धर्म्मके लिये जितना दरकार है चित्तरञ्जिनी वृत्तियोंका अनुशीलन भी उतना ही दरकार है। उनके सौन्दर्य्यका समुचित अनुभव हुए बिना हमारे हृदयमें कभी उनपर समुचित प्रेम या भक्ति पैदा नहीं होगी। वर्त्तमान वैष्णवधर्म्ममें इसीसे कृष्णोपासनाके साथ कृष्णकी व्रजलीलाका संयोग हुआ है।

शिष्य। उसका फल क्या अच्छा हुआ है?

गुरु। जिसने इस व्रजलीलाका असली तात्पर्य समझा है और जिसका चित्त शुद्ध है उसके लिये इसका फल अच्छा हुआ है। जो अज्ञान है, इस व्रजलीलाका असली अर्थ नहीं समझता, जिसका अथवा चित्त कलुषित है उसके लिये इसका फल बुरा हुआ है। चित्त शुद्धि अर्थात् ज्ञानार्ज्जनी, कार्य्यकारिणी आदि वृत्तियोंके समुचित अनुशीलन बिना कोई वैष्णव नहीं हो सकता। यह वैष्णव धर्म्म अज्ञान वा पापात्माके लिये नहीं है। जो लोग राधाकृष्ण को इन्द्रिय सुखमग्न समझते हैं वे वैष्णव नहीं पिशाच हैं।

प्रवाह परिपूर्णाम्भोय सलिला यमुना और प्रस्फुटित कुसुम सुवासित कुञ्ज विहंगमकूजित वृन्दावन वनस्पती जड़ प्रकृतमें अनन्त सुन्दरका शरीर विकाश है। उसका सहाय विश्व विमोहिनी वंशी है। यों सब प्रकारके चित्तरञ्जनसे स्त्री जातिकी भक्ति जगने पर वे कृष्णानुरागिनी होकर कृष्णमें तन्मयता प्राप्त होती हैं; अपनेको ही कृष्ण समझने लगती हैं।

"कृष्णे निरुद्ध हृदया इद मूचुः परस्परम् ।
कृष्णोऽहमेतल्ललितं व्रजा म्यालोक्यतां गतिम् ॥
अन्या ब्रवीति कृष्णस्य ममगीतिर्निशाम्यताम् ।
दुष्टकालिय । तिष्ठात्र कृष्णोऽहमिति चापरा ॥
बाहुमा स्फोट्य कृष्णस्य लीला सर्वं स्वमा ददे ।
अन्या ब्रवीति भो गोपा निःशङ्कैः स्थीयतामिह ॥
अलं वृष्टि भयेनात्रधृतो गोवर्द्धनोमया ॥" इत्यादि,

जीवात्मा और परमात्माका जो अभेद ज्ञान है, ज्ञानका वही चिर उद्देश्य है। महा ज्ञानी भी सारा जीवन इसकी खोजमें बिता कर भी इसे नहीं पाते। किन्तु वे ज्ञानहीना गोप कन्याएं केवल जगदीश्वरके सौन्दर्य्यकी अनुरागिनी हो (अर्थात् मैं जिसको चित्तरञ्जिनी वृत्तिका अनुशीलन कहता हूं उसकी सर्वोच्च सीढ़ीपर पहुंच कर) उस अभेद ज्ञानको पाकर ईश्वरमें मिल गयीं। रास-लीला रूपकका यही स्थूल तात्पर्य्य है और आजकलका वैष्णव धर्म्म भी उसी पथका पथिक है। इसलिये मनुष्यत्वमें, मनुष्य जीवनमें और हिन्दू धर्म्ममें चित्तरञ्जिनी वृत्तियोंका कितना जोर है सो विचारो।

शिष्य। अब इन चित्तरञ्जिनी वृत्तियोंके अनुशीलनके सम्बन्धमें कुछ उपदेश दीजिये।

गुरु जागतिक सौन्दर्य्यमें चित्तको लगाना ही इसके अनुशीलनका प्रधान उपाय है। जगत् सौन्दर्य्यमय है। बाहरी प्रकृति भी सौन्दर्य्यमय है और भीतरी प्रकृति भी। बाहरी प्रकृतिका सौन्दर्य्य सबको चित्तको चुराता है। उसी आकर्षणके वशी होकर

सौन्दर्य ग्रहण करनेवाली वृत्तियोंका अनुशीलन करना होगा। वृत्तियां स्फुरित होते रहनेसे धीरे धीरे भीतरी प्रकृतिका सौन्दर्य अनुभव करनेमें समर्थ होनेसे जगदीश्वरके अनन्त सौन्दर्यका आभास पाती रहेंगी। सौन्दर्यग्राहिणी वृत्तियोंका यह एक स्वभाव है कि उनसे प्रीति, दया, भक्ति आदि श्रेष्ठकार्यकारिणी वृत्तियां स्फुरित और परिपुष्ट होती रहती हैं। अलबत्ते एक बातमें सावधान रहना चाहिये। चित्तरञ्जिनी वृत्तियोंके अनुचित अनुशीलन और स्फूर्त्तिसे दूसरी कुछ कारिणी वृत्तियां दुर्बल पड़ जाती हैं। इसीसे अनेक लोगोंका विश्वास है कि कवि लोग काव्यके सिवा दूसरे विषयमें निकम्मे होते हैं। इस बातकी सच्चाई इतनी ही दूरतक है कि जो लोग चित्तरञ्जिनी वृत्तियोंका अनुचित अनुशीलन करते हैं, दूसरी वृत्तियोंसे उसका सामञ्जस्य रखनेकी चेष्टा नहीं करते या यह सोचकर कि "मैं प्रतिभाशाली हूं, मुझे काव्य रचनाके सिवा और कुछ नहीं करना चाहिये" जो फूल बैठते हैं वेही निकम्मे हो जाते हैं। नहीं तो जो श्रेष्ठ कवि दूसरी वृत्तियोंको उचित रूपसे काममें लाकर सामञ्जस्य रखते हैं वे निकम्मे न बन कर बरञ्च सांसारिक कर्म्मोंमें बड़ी दक्षता दिखाते हैं। युरोपमें शेक्सपियर, मिल्टन, दान्ते, गेटे आदि श्रेष्ठ कवि सांसारिक कार्य्योंमें बड़े चतुर थे। कालिदास, सुनते हैं कि काश्मीरके राजा हुए थे। लार्ड टेनिसनका कामकाजीपन प्रसिद्ध है। ग्लाडस्टोनकी आदिकी बात भी जानते ही हो।

शिष्य। क्या केवल नैसर्गिक सौन्दर्य पर चित्त स्थापन करनेसे ही चित्तरञ्जिनी वृत्तियोंकी उचित स्फूर्त्ति होगी?

प्रधान सहाय है। विज्ञान या धर्म्मोपदेश मनुष्यत्वके लिये जैसा दरकारी है वैसाही काव्य भी है। जो तीनोंमेंसे एकको प्रधानता देना चाहते हैं उन्होंने मनुष्यत्व या धर्म्मका असली मर्म नहीं समझा है।

शिष्य। किन्तु कुकाव्य भी तो है?

गुरु। उस विषयमें विशेष सावधान रहना उचित है। जो लोग कुकाव्य रचकर दूसरोंका चित्त कलुषित करना चाहते हैं वे चोरोंके समान मनुष्य जातिके शत्रु हैं और उनको चोरोंकी तरह शारीरिक दण्ड देना चाहिये।

अट्ठाईसवां अध्याय—उपसंहार।

गुरु। अनुशीलन तत्व समाप्त किया। यह न समझना कि जो कहनेको था वह सब कह दिया है। सब बातें कहनेसे कभी समाप्त नहीं हो सकती। यह बात नहीं है कि सब शङ्काओंकी मीमांसा कर दी है क्योंकि वैसा करनेसे भी बात कभी समाप्त नहीं होगी। बहुत बातें अस्पष्ट या अधूरी हैं। और बहुत सी भूल भी हो सकती है यह स्वीकार करनेमें मुझे उज्र नहीं है। मैं यह भी आशा करता हूं कि मैंने जो कुछ कहा है वह सभी तुमने समझा है। अलबत्ते उसकी बार बार आलोचना करनेसे भविष्यतमें समझ सकोगे यह भरोसा करूंगा। हां यह आशा कर सकता हूं कि स्थूल मर्म्म समझ गये हो।

शिष्य। जो कुछ समझा है वह मैं आपसे कहता हूं, सुनिये।

१। मनुष्यमें कुछ शक्तियां हैं। आपने उनका नाम वृत्ति रखा था। उनके अनुशीलन, प्रस्फुरण और चरितार्थमें मनुष्यत्व है।

२। यही मनुष्यका धर्म्म है।

३। उस अनुशीलनकी सीमा वृत्तियोंका परस्पर सामञ्जस्य है।

४। यही सुख है।

५। इन सब वृत्तियोंका उपयुक्त अनुशीलन होनेसे ये सब ईश्वरमुखी होती हैं। ईश्वरमुखी होना ही उपयुक्त अनुशीलन है। यही अवस्था भक्ति है।

६। ईश्वर सब जीवोंमें है; इसलिये सब जीवोंपर प्रीति भक्तिके अन्तर्गत है और बहुत जरूरी अंश है। सब जीवों पर प्रीति हुए बिना ईश्वरभक्ति नहीं होती, मनुष्यत्व नहीं आता, धर्म्म नहीं होता।

७। आत्मप्रीति, स्वजनप्रीति, स्वदेशप्रीति, पशुप्रीति और दया इस प्रीतिके अन्तर्गत हैं। इनमेंसे मनुष्यकी अवस्था विचार कर स्वदेशप्रीतिको ही सर्वश्रेष्ठ धर्म्म कहना उचित है। ये ही सब स्थूल बातें हैं।

गुरु। अरे! शारीरिक वृत्ति, ज्ञानार्जनी वृत्ति, कार्यकारिणी वृत्ति और चित्तरंजिनी वृत्तियोंका नाम तक भी तुमने नहीं लिया?

शिष्य। अनावश्यक है। अनुशीलन तत्वके स्थूल मर्म्ममें यह सब विभाग नहीं है। अब समझ गया हूं कि मुझे अनुशीलन तत्व समझनेके लिये आपने ये सब नाम बताये हैं।

गुरु। तब तुमने अनुशीलन तत्व समझा है। अब आशीर्वाद करता हूं कि तुम्हारी ईश्वर भक्ति दृढ़ हो। सब धर्म्मोंके ऊपर स्वदेशप्रीति है यह न भूलना।*

---

* अनुशीलन तत्वमें जाति भेद और श्रम जीवनका सम्बन्ध है यह इस ग्रन्थमें नहीं बताया। क्योंकि उसे श्रीमद्भगवद्गीताकी टीकामें स्वधर्म्म बतलाते समय समझाया है। ग्रन्थकी सम्पूर्णताके लिये 'ख' नामक क्रोड़पत्रमें यह अंश गीताकी टीकासे उद्धृत कर दिया है।

क्रोड़पत्र—क।

—:o:—

(मेरे लिखे हुये "धर्म्म जिज्ञासा" नामक प्रबन्धसे कुछ अंश उद्धृत।)

धर्म्म शब्दके आजकल व्यवहारमें आनेवाले कुछ भिन्न भिन्न अर्थ उनके अंगरेजी प्रतिशब्दों द्वारा पहले बताता हूं। तुम समझ कर देखो। प्रथम अंगरेजी जिसको Raligion कहते हैं हम उसको धर्म्म कहते हैं। जैसे हिन्दू धर्म्म, बौद्ध धर्म्म, इसाई धर्म्म दूसरे अङ्गरेज जिसको Morality कहते हैं। हमलोग उसको भी धर्म्म कहते हैं। जैसे अमुक कार्य्य धर्म्म विरुद्ध है, "मानव धर्म्म शास्त्र", धर्म्मसूत्र इत्यादि। आजकल इसका एक और नाम प्रचलित हुआ है। वह है नीति। नये शिक्षित और कुछ कर सकें या न कर सकें "नीति विरुद्ध" शब्द झट कह दे सकते हैं। तीसरे धर्म्म शब्दसे Virtue समझा जाता है। Virtue धर्म्मात्मा मनुष्यके अभ्यस्त गुणका बोधक है। नीतिके वशवर्त्ती अभ्यासका वह फल है। इस अर्थसे हम लोग कहा करते हैं कि अमुक आदमी धार्म्मिक है और अमुक अधार्म्मिक। यहां अधर्म्मको अङ्गरेजीमें Vice कहते हैं। चौथे रिलीजन यानी नीतिके अनुमोदित कार्य्यको भी धर्म्म कहते हैं और उसके विपरीतको अधर्म्म। जैसे "दान परमधर्म्म" "अहिंसा परम धर्म्म" "गुरु निन्दा परम अधर्म्म" है। इसको बहुधा पाप पुण्य भी कहते हैं। अङ्गरेजीमें इस अधर्म्मका नाम "Sin" है और पुण्यका कोई एक शब्द नहीं है—"Good deed" या ऐसे दो शब्दोंसे उसका काम निकालते हैं। पांचवें धर्म्म शब्दसे गुण मालूम होता है। यथा—"चुम्बकका धर्म्म लौहाकर्षण है।" यहां इसके विपरीत जो अधर्म्म है उसको भी धर्म्म कहते हैं। जैसे—"परनिन्दा क्षुद्रोंका धर्म्म है।" इस अर्थमें मनुने स्वयं पापरूप धर्म्मकी" बात लिखी है;—

हिंस्रा हिंस्रे मृदुक्रूरे, धर्म्माधर्म्मा वृतानृते।
यदस्य सोऽदधात् सर्गे तत्तस्य स्वयमाविशत्॥

पुनश्च—"पाषण्डगण धर्म्मांश्च शास्त्रे ह्यस्मिन्नुक्तवान्। मनु॥
और छठा धर्म्म शब्द कभी कभी आचार या व्यवहारके लिये बरता जाता है। मनु इसी अर्थमें कहते हैं—

"देश धर्म्मान् जाति धर्म्मान् कुल धर्म्मांश्च शाश्वतान्।"

ये छ: अर्थ लेकर इस देशके आदमी बड़ी गड़बड़ मचाया करते हैं। अभी एक अर्थमें धर्म्मशब्द व्यवहार करके क्षणभर बादही दूसरे अर्थमें व्यवहार करते हैं; इसका परिणाम यह होता है कि बुरे सिद्धान्तमें फसना पड़ता है इस अनियम प्रयोगके कारण धर्म्म-सम्बन्धमें किसी तत्त्वकी अच्छी मीमांसा नहीं होती यह गड़बड़ा-ध्याय आजका नहीं है। जिन ग्रन्थोंको हम लोग हिन्दू शास्त्र बताते हैं उनमें भी गड़बड़ाध्याय भयानक रूपसे है। मनु संहिताके पहले अध्यायके पहले छ: श्लोक इसके सारे उदाहरण हैं। धर्म्म कभी रिलीजनके लिये, कभी नीतिके लिये; कभी आत्मा धर्म्मा-त्मताके लिये और कभी पुण्यकर्म्मके लिये व्यवहृत होनेसे नीतिकी प्रकृति रिलीजनमें और रिलीजनकी प्रकृति नीतिमें आत्मका गुणका लक्षण कर्म्ममें और कर्म्मका अभ्यासमें लगा देनेसे बड़ा ही गड़बड़ हो गया है। इसका फल यह हुआ है कि धर्म्म (रिलीजन) उपधर्म्म संकुल, नीति भ्रान्त, अभ्यास कठिन और पुण्य दुःखजनक बन गया है। हिन्दू धर्म्म और हिन्दू नीतिकी वर्त्तमान अवनति और उस पर वर्त्तमान अश्रद्धाका एक बड़ा भारी कारण यह गड़-बड़ाध्याय है।

छोड़पत्र—ख।

—:०:—

गुरु। रिलीजन क्या है।

शिष्य। वह मालूम है?

गुरु। ज़रा कहो तो सही देखें क्या मालूम है?

शिष्य। अगर कहूं कि रिलीजन पारलौकिक बातों पर विश्वास है।

गुरु। प्राचीन यहूदी परलोकको नहीं मानते थे। तो क्या यहूदियोंका प्राचीन धर्म्म धर्म्म नहीं था?

शिष्य। अगर कहूं कि देव देवियों पर विश्वास?

गुरु। इसलाम, इसाई, यहूद आदि धर्म्मोंमें देवी नहीं हैं। उनमें देव भी एक ही ईश्वर है। ये क्या धर्म्म नहीं हैं?

शिष्य। ईश्वरमें विश्वास ही धर्म्म है।

गुरु। ऐसे अनेक परम रमणीय धर्म्म हैं जिनमें ईश्वर नहीं हैं। ऋग्वेदसंहिताके पुरानेसे पुराने मन्त्रोंकी आलोचना करनेसे विदित होता है कि उनके रचनाकालके आर्य्योंके देव देवी तो थे परन्तु ईश्वर नहीं थे। विश्वकर्म्मा, प्रजापति, ब्रह्म इत्यादि ईश्वरवाचक शब्द ऋग्वेदके प्राचीनतम मंत्रोंमें नहीं हैं—जो उनसे नये हैं उन्हींमें हैं, प्राचीन सांख्यलोग भी अनीश्वरवादी थे। अथच वे धर्म्महीन नहीं थे; क्योंकि वे कर्म्म फल मानते थे और और मुक्तियां निःश्रेय कामना करते थे। बौद्ध धर्म्म भी निरीश्वर है। तब ईश्वरवादको धर्म्मका लक्षण कैसे कहें? देखो कुछ भी स्पष्ट नहीं हुआ।

गुरु। तब विदेशी तार्किकोंकी भाषाकी शरण लेनी पड़ी—अलौकिक चैतन्यमें विश्वास ही धर्म्म है।

गुरु। अर्थात् Supernatur alism किन्तु देखो इसमें तुम कहां आ पड़े। प्रेततत्व वेत्ताओंके दलके सिवा वर्त्तमान वैज्ञानिकोंके मतसे अलौकिक चैतन्यका कुछ प्रमाण नहीं है। इसलिये धर्म्म भी नहीं है, धर्म्मका प्रयोजन भी नहीं है। याद रहे रिलीजनको धर्म्म कहता हूं।

शिष्य। परन्तु उस अर्थमें प्रचण्ड वैज्ञानिकोंमें भी धर्म्म है। यथा Religion of Humanity

गुरु। इसलिये अलौकिक चैतन्यमें विश्वास धर्म्म नहीं है।

शिष्य। अब आप ही बताइये कि धर्म्म किसे कहा जाय?

गुरु। यह प्रश्न बहुत प्राचीन है। "अथातो धर्म्म जिज्ञासा" मीमांसा दर्शनका प्रथम सूत्र है। इस प्रश्नका उत्तर देना ही मीमांसा दर्शनका उद्देश्य है। सहज मानने योग्य उत्तर

पुनश्च—"पाषण्डगण धर्म्मांश्च शास्त्रे ह्स्मिन्नुक्तवान्। मनु'॥
और छठा धर्म्म शब्द कभी कभी आचार या व्यवहारके लिये वरता जाता है। मनु इसी अर्थमें कहते हैं—

"देश धर्म्मान् जाति धर्म्मान् कुल धर्म्मांश्च शाश्वतान्।"

ये छः अर्थ लेकर इस देशके आदमी बड़ी गड़बड़ मचाया करते हैं। अभी एक अर्थमें धर्म्मशब्द व्यवहार करके क्षणभर बादही दूसरे अर्थमें व्यवहार करते हैं; इसका परिणाम यह होता है कि बुरे सिद्धान्तमें फसना पड़ता है इस अनियम प्रयोगके कारण धर्म्म-सम्बन्धमें किसी तत्त्वकी अच्छी मीमांसा नहीं होती यह गड़बड़ा-ध्याय आजका नहीं है। जिन ग्रन्थोंको हम लोग हिन्दू शास्त्र बताते हैं उनमें भी गड़बड़ाध्याय भयानक रूपसे है। मनु संहिताके पहले अध्यायके पहले छः श्लोक इसके खासे उदाहरण हैं। धर्म्म कभी रिलीजनके लिये, कभी नीतिके लिये; कभी अभ्यस्त धर्म्मा-त्मताके लिये और कभी पुण्यकर्म्मके लिये व्यवहृत होनेसे नीतिकी प्रकृति रिलीजनमें और रिलीजनकी प्रकृति नीतिमें अभ्यस्त गुणका लक्षण कर्म्ममें और कर्म्मका अभ्यासमें लगा देनेसे बड़ा ही गड़बड़ हो गया है। उसका फल यह हुआ है कि धर्म्म (रिलीजन) उपधर्म्म संकुल, नीति भ्रान्त, अभ्यास कठिन और पुण्य दुःखजनक बन गया है। हिन्दू धर्म्म और हिन्दू नीतिकी वर्त्तमान अवनति और उस पर वर्त्तमान अश्रद्धाका एक बड़ा भारी कारण यह गड़-बड़ाध्याय है।

छोड़पन—ख।

—:o:—

गुरु। रिलीजन क्या है।

शिष्य। वह मालूम है?

गुरु। जरा कहो तो सही देखें क्या मालूम है?

शिष्य। अगर कहूं कि रिलीजन पारलौकिक बातों पर विश्वास है।

गुरु। प्राचीन यहूदी परलोकको नहीं मानते थे। तो क्या यहूदियोंका प्राचीन धर्म्म धर्म्म नहीं था?

शिष्य। अगर कहूं कि देव देवियों पर विश्वास?

गुरु। इसलाम, इसाई, यहूद आदि धर्म्मोंमें देवी नहीं है। उनमें देव भी एक ही ईश्वर है। ये क्या धर्म्म नहीं हैं?

शिष्य। ईश्वरमें विश्वास ही धर्म्म है।

गुरु। ऐसे अनेक परम रमणीय धर्म्म हैं जिनमें ईश्वर नहीं हैं। ऋग्वेदसंहिताके पुरानेसे पुराने मन्त्रोंकी आलोचना करनेसे विदित होता है कि उनके रचनाकालके आर्य्योंके देव देवी तो थे परन्तु ईश्वर नहीं थे। विश्वकर्म्मा, प्रजापति, ब्रह्म इत्यादि ईश्वरवाचक शब्द ऋग्वेदके प्राचीनतम मंत्रोंमें नहीं हैं—जो उनसे नये हैं उन्हींमें हैं, प्राचीन सांख्यलोग भी अनीश्वरवादी थे। अथच वे धर्म्महीन नहीं थे; क्योंकि वे कर्म्म फल मानते थे और और मुक्तियां निःश्रेय कामना करते थे। बौद्ध धर्म्म भी निरीश्वर है। तब ईश्वरवादको धर्म्मका लक्षण कैसे कहें? देखो कुछ भी स्पष्ट नहीं हुआ।

गुरु। तब विदेशी तार्किकोंकी भाषाकी शरण लेनी पड़ी—अलौकिक चैतन्यमें विश्वास ही धर्म्म है।

गुरु। अर्थात् Supernatur alism किन्तु देखो इसमें तुम कहां आ पड़े। प्रेततत्व वेत्ताओंके दलके सिवा वर्त्तमान वैज्ञानिकोंके मतसे अलौकिक चैतन्यका कुछ प्रमाण नहीं है। इसलिये धर्म्म भी नहीं है, धर्म्मका प्रयोजन भी नहीं है। याद रहे रिलीजनको धर्म्म कहता हूं।

शिष्य। एवम्‌ उस अर्थमें प्रवरड वैज्ञानिकोंमें भी धर्म्म है। यथा Religion of Humanity

गुरु। इसलिये अलौकिक चैतन्यमें विश्वास धर्म्म नहीं है।

शिष्य। अब आप ही बताइये कि धर्म्म किसे कहा जाय?

गुरु। यह प्रश्न बहुत प्राचीन है। "अथातो धर्म्म जिज्ञासा" मीमांसा दर्शनका प्रथम सूत्र है। इस प्रश्नका उत्तर देना ही मीमांसा दर्शनका उद्देश्य है। सर्व्वत्र मानने योग्य उत्तर

आजतक नहीं मिला है। यह सम्भावना नहीं है कि मैं इसका सदुत्तर दे सकूंगा। अलबत्ते पूर्व पण्डितोंका मत तुम्हें सुना सकता हूं। पहले मीमांसाकारका उत्तर सुनो। वे कहते हैं—"चोदना लक्षणो धर्म्मः।" चोदना क्रियाका प्रवर्त्तक वाक्य है। अगर इतना ही होता तो कहते कि यह बुरा नहीं जान पड़ता; किन्तु जब उसके ऊपर बात उठी कि "चोदना प्रवर्त्तकको वेद विधि रूपः" तब मुझे बड़ा सन्देह होता है कि तुम उसको धर्म्म मानोगे या नहीं।

शिष्य। कभी नहीं। तब तो जितने पृथक पृथक धर्म्म-ग्रंथ हैं उतने पृथक प्रकृतिके धर्म्म मानने पड़ेंगे। ईसाई कह सकते हैं कि बाइबिल विधि ही धर्म्म है; मुसलमान भी कुरानके विषयमें यही कहेंगे। धर्म्म पद्धति भिन्न हो' मगर क्या धर्म्म नामकी कोई साधारण सामग्री नहीं है? Religion है इसलिये Religion नामकी क्या कोई साधारण सामग्री नहीं है।

गुरु। यह एक सम्प्रदायका मत है। लोगाक्षि भास्कर इत्यादिने इस प्रकार कहा है कि "वेद प्रतिपाद्य प्रयोजन वदर्थो-धर्म्मः।" इन सब बातोंका यह परिणाम हुआ है कि यागादि ही धर्म्म और सदाचार ही धर्म्म शब्दवाच्य हो गया है; जैसे महा-भारतमें है—

"श्रद्धा कर्म्म तपश्चैव सत्यमक्रोध एवच।
स्वेषु दारेषु सन्तोषः शौचं विद्या न सूयिता॥
आत्मज्ञानं तितिक्षा च धर्म्मः साधारणो नृप।"

कोई कहता है—"द्रव्य क्रिया गुणा दीनां धर्म्मत्वं" और कोई कहता है कि धर्म्म भाग्य विशेष है। तात्पर्य्य यह कि आर्य्योंका साधारण अभिप्राय यह है कि वेद या लोकाचार सम्मत कार्य्य ही धर्म्म है, यथा विश्वामित्र कहते हैं—

"यमार्य्याः क्रियमाणं हि शंसन्त्यागम वेदिनः।
स धर्म्मो यं विगर्हन्ति तमधर्म्मं प्रचक्षते॥"

किन्तु यह बात नहीं है कि हिन्दू शास्त्रमें भिन्न मत नहीं है। "द्विविधे वेदितव्ये इतिहस्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरान"

इत्यादि श्रुतिसे सूचित होता है कि वैदिक ज्ञान और उसके अनुवर्ती यागादि निकृष्ट धर्म्म है, ब्रह्मज्ञान ही परम धर्म्म है। भगवद्गीताका स्थूल तात्पर्य्य ही कर्म्मात्मक वैदिकादि अनुष्ठानकी निकृष्टता और गीतोक्त धर्म्मका उत्कर्ष प्रतिपादन है। विशेषकर हिन्दू धर्म्मके भीतर एक परम रमणीय धर्म्म मिलता है जो इस मीमांसा और उससे निकले हुए हिन्दू धर्म्मवादका साधारणतः विरोधी है। जहां जहां यह धर्म्म देखता हूं (अर्थात् गीतामें, महाभारतमें अन्यत्र भागवतमें) उन सब स्थानोंमें देखता हूं कि श्रीकृष्ण ही इसके वक्ता हैं। इसलिये मैं हिन्दू शास्त्रमें इस उत्कृष्टतर धर्म्मको मैं श्रीकृष्णका प्रचार किया हुआ समझता हूं और कृष्णोक्त धर्म्म कहना चाहता हूं। महाभारतके कर्ण पर्व्वसे कुछ बात उद्धृत करके इसका उदाहरण देता हूं।

"बहुतेरे श्रुतिको धर्म्म प्रमाण मानते हैं। मैं इसपर दोष नहीं लगाता। किन्तु श्रुतिमें समस्त धर्म्मतत्त्व नहीं बताया है।

इसलिये अनुमानसे अनेक स्थानोंमें धर्म्म निर्दिष्ट करना पड़ता है। प्राणियोंकी उत्पत्तिके निमित्त ही धर्म्म निर्द्देश किया जाता है। अहिंसायुक्त कार्य्य करनेसे ही धर्म्मानुष्ठान होता है। हिंसकोंके हिंसा निवारणार्थ ही धर्म्मकी सृष्टि हुई है। वह प्राणियोंको धारण करता है इसीसे धर्म्म कहलाता है। इसलिये जिससे प्राणियोंकी रक्षा होती है वही धर्म्म है। यह कृष्णोक्ति है। इसके बाद वन पर्व्वसे धर्म्म व्याधोक्त धर्म्म व्याख्या उद्धृत करता हूं :—" जो साधारणका बड़ा ही हितजनक है वही सत्य है। सत्य ही श्रेयलाभका अद्वितीय उपाय है। सत्यके प्रभावसे ही ज्ञान और हितसाधन होता है।" यहां धर्म्मके अर्थमें ही सत्य शब्द व्यवहृत होता है।

शिष्य। इस देशवालोंने धर्म्मकी जो व्याख्या की है वह नीतिकी या पुण्यकी व्याख्या है। रिलीजनकी व्याख्या कहां है।

गुरु। रिलीजन शब्दसे जिस विषयका बोध होता है उस विषयकी स्वतन्त्रता हमारे देशके लोगोंने कभी उपलब्धि नहीं

की। जिस विषयकी प्रज्ञा मेरे मनमें नहीं है उसको नामकरण में अपने परिचित शब्दसे क्यों कर सकता हूं।

शिष्य। ठीक समझमें नहीं आया।

गुरु। तो मेरे पास एक प्रबन्ध है उसमेंसे कुछ पढ़कर सुनाता हूं।

"For Religion, the ancient Hindu had no name, because his conception of it was so broad as to dispense with the necessity of a name. With other peoples, religion is only a part of life; there are things religions, and there are things lay and secular. To the Hindu his whole life was religion. To other peoples, their relations to God and to the spiritual world are things sharply distinguished from their relations to man and to the temporal world. To the Hindu, his relations to God and his relations to man, his spiritual life and his temporal life, are incapble of being so distinguished. They from one compact and harmonious whole to separate which in to its Component parts is to break the entire fabric. All life to him was religion, and religion never received a name from him. because it never had for him an existance apart from all that had received a name. A department of thought which the people in whom it had its existence had thus failed to diffeiatrente has necessarily mixed itself inextricably wiht every other department of thought. and this is what makes it so difficult at the present day to erect it into a separate entity,"*

*लेखक प्रणीत एक अंगरेजी प्रबन्धसे यह उद्धृत किया गया है, यह अभीतक प्रकाशित नहीं हुआ है। इसका अनुवाद यहां दिया जा सकता है परन्तु उसको हमारे कितने ही पाठक नहीं समझेंगे। जिनके लिये लिखता हूं वे न समझें तो लिखना वृथा है। इसलिये इसकाल विरुद्ध कार्य्यको पाठक क्षमा करें। जो अंगरेजी नहीं जानते वे इसे छोड़ देंगे तो कुछ हानि नहीं होगी।

शिष्य। तब रिलीजन क्या है, इस विषयमें पाश्चात्य आचार्य्योंका ही मत सुनाइये।

गुरु। उसमें भी गड़बड़ है। पहले रिलीजन शब्दका यौगिक अर्थ देखा जाय। प्रचलित मत यह है कि re-ligere से यह शब्द बना है इसलिये इसका असली बन्धन है यह समाजका बन्धन है। किन्तु बड़े बड़े पण्डितोंका यह मत नहीं है। रोमक पण्डितशिशिर (याकिकिरो) कहते हैं कि यह ri-ligere से बना है। उसका अर्थ पुनराहरण, संग्रह और चिन्ता है मोक्षमूलर इत्यादि इसी मतके अनुयायी हैं। असली चाहे जो हो, यह देखा जाता है कि इस शब्दका आदि अर्थ अब व्यवहृत नहीं होता। जैसे आदमियोंकी धर्म्म बुद्धिको स्फूर्त्ति प्राप्त हुई है, इस शब्दका अर्थ भी स्फुरित और परिवर्त्तित हुआ है।

शिष्य। पुराने अर्थसे हमें कुछ मतलब नहीं है, अब धर्म्म अर्थात् रिलीजन किसको कहूं यही बताइये।

गुरु। केवल एक बात कह देता हूं। धर्म्म शब्दका यौगिक अर्थ बहुत कुछ religio शब्दके ऐसा है। धर्म्म =धृ+मन् अर्थ (ध्रियते लोको अनेन, धरति लोकंवा) है, इसीसे मैंने धर्म्मको Religio शब्दका असली प्रति शब्दमाना है।

शिष्य। अच्छी बात है—अब रिलीजनकी आधुनिक व्याख्या कहिये।

गुरु। आधुनिक विद्वानोंमें जर्मन ही सर्वाग्रगण्य हैं। दुर्भाग्यवश मैं स्वयं जर्मन भाषा नहीं जानता। इसलिये पहले मोक्षमूलरकी पुस्तकसे जर्मनोंका मत सुनाऊंगा। अभी काण्टके मतकी पर्य्यालोचना करो।

According to kant, religion is morality. When we look upon all our moral duties as divine Commands that, he thinks constitutes religion, and we must not forget that Cant dose not consider that duties are moral duties because they rest on a divine command (that would be according to Kant merely revealed

Religion) On the contrary, he tells us that because we are directly conscious of them as duties therefore we look upon them as divine commands.

उसके बाद फिक्ते। फिक्तेका मत है—"Religion is knowledge, it gives to a man a clear insight into himself, answers the highest questions, and thus imparts to us a complete harmony with ourselves, and a thorough, sanctification to our mine" सांख्यादिका भी प्रायः यही मत है। केवल शब्द प्रोग भिन्न प्रकार है। उसके बाद स्लियेर मैकर हैं। उनका मत है—Religion consists in our consciousness of absolute dependence on something which though it petermins us. we cannot determine in our turn उनकी दि ल्लगीकरकेही गल कहते हैं Religeon is or ought to be perfect freedom; for it is neither more or less than the divine spirit becoming conscious of himself through the finite spirit.

यह मत कुछ कुछ वेदान्तका अनुगामी है।

शिष्य। चाहे जिसका अनुगामी हो, इन चारोंमेंसे एक भी व्याख्या श्रद्धा योग्य तो नहीं मालूम हुई। पण्डित मोक्षमूलरका खास मत क्या है?

गुरु। वे कहते हैं—"Religion is a subjective eaculty for the apprehension of the intinite.

शिष्य। eaculty! हरे! हरे! रिलीजन तो समझमें भी आ जाता है eaculty कैसे समझूंगा? उसके अस्तित्वका क्या प्रमाण है?

गुरु। अब जर्मनोंकी बात छोड़कर दो एक अंगरेजोंकी व्याख्या मैं स्वयं ग्रहण करके सुनाता हूं। टेलर साहब कहते हैं कि जहां "Spiritnal Beings" सम्बन्धमें विश्वास है वहीं रिलीजन है। यहां Spiritnal Beings का अर्थ केवल भूत प्रेत नहीं है। अलौकिक चैतन्यसे भी अभिप्राय है; देव देवी और ईश्वर भी इसके अन्तर्गत हैं। इसलिये तुम्हारे वाक्यसे इनका ...क्य मिल गया।

शिष्य। वह ज्ञान तो प्रमाणाधीन है।

गुरु। सभी प्रमाज्ञान प्रमाणाधीन है, भ्रम ज्ञान प्रमाणाधीन नहीं है। साहब मौसूककी विवेचनामें रिलीजन भ्रमज्ञान मात्र है अब जान स्टुआर्ट मिलकी व्याख्या सुनो।

शिष्य। वे तो नीतिमात्र वादी थे, धर्म्मके तो विरोधी थे।

गुरु। अन्तिम अवस्थाकी रचना पढ़नेसे ऐसा नहीं मालूम पड़ता। अलबत्ते अनेक स्थानोंमें दुविधा हैं। जो हो उनकी व्याख्या उच्च श्रेणीके धर्म्म सम्बन्धमें खूब घटती है।

वे कहते हैं "The essence of Religion is the strong and earnest direction of the emotions and desires towards an ideal object recognised as of the highest excellence and is rightfully Paramount over all selfish objects of desire."

शिष्य। यह तो बड़ी अच्छी बात है।

गुरु। बुरी नहीं है। अब आचार्य्य सीलीकी बात सुनो। आधुनिक धर्म्मतत्त्व व्याख्याकारोंमें वे एक श्रेष्ठ पुरुष हैं। उनके बनाये Ecce Homo और Natural Religion ग्रन्थोंने बहुतेरोंको मुग्ध किया है। इस विषयमें उनकी एक उक्ति पाठकोंके सामने रखी जा चुकी है।* The Substance of Religion is Culture;" किन्तु एक दल आदमियोंके मतकी आलोचना करते हुए इस उक्तिसे उन लोगोंका मत प्रस्फुटित किया है. यह ठीक उनका अपना मत नहीं है। उनका अपना मत बड़ा सर्व्वव्यापी है उस मतसे रिलीजन "habitual and permanent admiration" है। यह व्याख्या सविस्तर सुनाता हूं।

The words Religion and worship are commonly and conveniently appropraited to the feelings with which we regard God But those feeligns love, awe admiration which together make up worship are felt in various combination for human beings and even for inanimate obje-

* देखो चौधरानीमें जिसका हिन्दी अनुवाद भी हो चुका है।

cts It is not exclusively. but only per excellence that religion is directed towards God when feelings of admiration are.very strong and at the sametime serious and permanent they exprees; themselves in recurring acts and hence arises ritual liturgy and whatever the multitude indentifies with religion may exist in its; elementary—state of Religion is what may be described as *habitual and permanent admiration.*

शिष्य। यह व्याख्या बड़ी ही सुन्दर है और मैं देखता हूं कि मिलने जो बात कही है उससे यह मिलती है। यह "habitual and permanent admiration" जो मानसिक भाव है उसीका फल strong and earnest direction of the emotion and desires towards an ideal object recognised as of the highest excellence,

गुरु। यह भाव धर्म्मका एक अङ्गमात्र है।

जो हो पण्डितोंके पाण्डित्यसे तुमको अधिक त्यक्त न करके अगस्त कोम्तकी धर्म्म व्याख्या सुनाकर समाप्त. करूंगा। इसमें विशेष ध्यान देना जरूरी है। क्योंकि कोम्त स्वयं एक धर्म्मके सृष्टिकर्त्ता हैं और इस व्याख्या पर नीव डालकर ही उस धर्म्मकी सृष्टि की है वे कहते हैं—"Religion in itself expresses the state of perfect nnity which is the distinctive mark of mans existence both as an individual and in society, when all the constituent parts of his nature moral and physical are made habitually to converge towards one common purpose" अर्थात् Religion consists in regulating one's individual nature, and forms the rallying point for all separate individuals."

जितनी व्याख्याएं तुमको सुनायीं उन सबमेंसे यह उत्कृष्ट जान पड़ती है। और अगर यह व्याख्या ठीक हो तो हिन्दू धर्म्म सब धर्म्मोंमें श्रेष्ठ है।

शिष्य। पहले धर्म्म क्या है यह समझ लूं, सब पीछे समझा

जायगा कि हिन्दू धर्म्म क्या है। उन सब पण्डितोंकी धर्म्म व्याख्या सुनकर मुझे अन्धेका हाथी देखनेवाला किस्सा याद पड़ गया।

गुरु। सत्य है। ऐसा कौन मनुष्य पैदा हुआ है जिसने धर्म्मकी पूर्ण प्रकृतिको हृदयङ्गम कर लिया हो? जैसे समग्र विश्वसंसारको कोई आदमी आंखोंसे नहीं देख सकता वैसेही समग्र धर्म्मका ध्यान कोई आदमी नहीं कर सकता। औरोंकी बात तो दूर रहे, शाक्यसिंह, ईसामसीह, मुहम्मद और चैतन्य भी धर्म्मकी समग्र प्रकृति जान सके थे यह मैं नहीं स्वीकार कर सकता। उन लोगोंने दूसरोंकी अपेक्षा अधिक देखा हो, तथापि सब नहीं देख सके। यदि कोई मनुष्य देह धारण करके धर्म्मका सम्पूर्ण अवयव हृदयङ्गम करते हुए मनुष्यलोकमें प्रचारित करनेमें समर्थ हुआ है तो वह श्रीमद्भागवद्गीताका कर्त्ता है। भगवद्गीताकी उक्ति ईश्वरावतार श्री कृष्णकी उक्ति है या किसी मनुष्यकी रची हुई है यह मैं नहीं जानता। किन्तु यदि कहीं भी धर्म्मकी सम्पूर्ण प्रकृति व्यक्त और परिस्फुट हुई है तो श्रीमद्भागवद्गीतामें।

झाड़पत्र—घ।

If as the sequence of a malady contracted in pursuit of illigitimate gratification an attack of firieis injures vision, the mischief is to be counted among those entailed by immoral conduct ; but if regardless of protesting sensations, the eyes are used in study too soon after ophthaimia and there follows blindness for years or for life, entailling not only personal unhappiness but a burden on others moralists are silent. The broken leg which a drunkard's accident causes, counts among those miseries brought on self and family by intemperance which form the ground for reprobating

it. but if anxiety to fulfil duties prompts the continued use of a sprained knee in spite of the pain and brings on a chronic lameness involving lack of exercise, consequent illhealth, inefficiency, anexiety and unhapiness, it is suppsed that ethics has no verdict to give in the matter. A student who is plucked because he has spent in amusement the time and money that should have gone in study, is blamed for thus making parents unhappy and preparing for himself a miserable future ; but another who thinking exclusivly of claims on him reads night after night with hot or aching head and breaking down cannot take his degree but returns home shattered in health and unable to support himself is named with pity only as not subject to any moral judgment, or rather the moral Judgment, passed is wholly favourable.

Thus recognizing the evies caused by some kinds of conduct only men at large and moralists as exponents of their beliefs, ignore the suffering and daeth darly caused around them by disregard of that guidance which has established itself in the course of evolution. Led by the tacit assumption common to Pagan stoics and Ohristian asceties that we are so diabolically organized that pleasures are infurious and pains beneficial people on all sides yield examples to lives blasted by persisting in actions against which their sensations reble. Here is on who, drenched to the skin and sitting in a cold wind poohpoohs his shiverings and gets rheumatic fever with subsequent heart-disease, which makes worthless the short life remaining to him. Here is another who, disregarding painfull feelings illness, and establishes disordered health that ...sts for the rest of his days, and makes him usless to

himself and other. Now the account is of a youth who persisting in gymnastic feasts in spite of scarcely bearable staining bursts a blood vessel, and long laid on the shelf, is permanently damaged; while now it is of a man in middle life who pushing muscular effort to painful excess suddenly brings on hernia. In this familly is a case of aphasia, spreading paralysis, and death, caused by eating too little and doing too much in that, softening of the brain has been broght on by ceaseless mental efforts against which the feelings hourey protested; and in others, less serious brain-affections have been contracted bv over-study continued regardless of discomfort and the craving for fresh air and exercise. * Even without accumulating special examples the truth is forced on us by the visible traits of classes. The care-worn man of business too long at his office, the cadaverous barrister pouring half the night over his briefs, the feeble factory-hands and unhealthy feamstresses passing long hours in bad air, the anoemic, flat-chested school girls bending over many lessons and forbidden boisterous play no less than sheffield grinders who die of suffocating dust and peasants crippiled with heumatism due to exposure, show us the widespread miseries caused by persevering in actions repugnant to the sensations and neglecting actions which the sensations prompt. Nay the evidence is still more extensive and csnspicuous. What are the puny malformed children seen in povertystricken districts, but children whose appetites for food and desires for warmth have not been adequatly satisfied? What are populations stunted in growth and permaturely aged, such as parts of Frane show us, but populations injured by work in excess and

food in defect; the one implying positive pain, the other negative pain. the other negative pain? What is the implication of that greater morality which occurs among people who are weakened by privations, unless it is that bodily miserises conduct to fatal illnesses? Or once more, what must we infer from the frightful amount of disease and death suffered armies in the field fed no scanty and bad provisions, lying an damp ground, exposed to extremes of heat and cold, inabequately sheltered from rain and subject to exhausting efforts; unless it be the tearible mischiefs caused by continuously subjecting the body to treatment which the feelings protest against?

It matters not to the argument whether the actions entailling such effects are voluntary or involuntary. It matters not from the biological point or view, whether the motives prompting them are high or low. The vital functions accept no apologies on the ground that neglect of them was unavoidable, or that the reason-for neglect was noble. The direct and indictr sufferings caused by non-conformity and cannot be omitted in any rationae estimate of conduct if the purpose of ethical inquiry is to establish rules of right-living; and if the rules of right-living are those of which the total results, individual and general, direct and indirect. are most conducive to human happiness then it is absurd to ignore the immediate results,—and recognize only the remote results Herbert Spencer—Data of Ethics, pp.92-95.

मनुष्यीलनतत्त्वसे जातिभेद और श्रमजीवनका सम्बन्ध।

"वृत्तिके सञ्चालनसे हम लोग क्या करते हैं? या तो कुछ कर्म्म करते हैं या कुछ जानते हैं। कर्म्म और ज्ञानके सिवा मनुष्यके जीवनमें और कोई फल नहीं है; *

इसलिये ज्ञान और कर्म्म मनुष्यका स्वधर्म्म है। अगर सब मनुष्य सब वृत्तियोंका अनुशीलनविहित रूपसे करते तो ज्ञान और कर्म्म दोनों ही सब मनुष्योंका स्वधर्म्म होते। किन्तु मनुष्य समाजकी अपरिणत अवस्थामें सचराचर वैसा नहीं होता। कोई केवल ज्ञानको ही प्रधानतः स्वधर्म्म बना लेता है और कोई कर्म्मको ही प्रधानतः स्वधर्म्म समझ लेता है।

ज्ञानका चरमोद्देश्य ब्रह्म है; समस्त जगतमें ब्रह्म है। इसलिये ज्ञानार्ज्जन जिनका धर्म्म है उनको ब्राह्मण कहते हैं। ब्राह्मण शब्द ब्रह्मन् शब्दसे निष्पन्न हुआ है।

कर्म्मको तीन श्रेणीमें बांट सकते हैं। किन्तु उसके समझनेके लिये कर्म्मके विषयको अच्छी तरह समझना होगा। जगत्‌में अन्तर्व्विषय है और वहिर्व्विषय है। अन्तर्व्विषय कर्म्मके विषयीभूत नहीं हो सकता। वहिर्व्विषय ही कर्म्मका विषय है। उस वहिर्व्विषयमेंसे थोड़ा हो चाहे सभी हो मनुष्यके योग्य है। मनुष्यका कर्म्म मनुष्यके भोग्य विषयको ही आश्रय करता है वह आश्रय तीन प्रकारका है, यथा—(१) उत्पादन (२) संयोजन या संग्रह और (३) रक्षा। (१) जो लोग उत्पादन करते हैं वे कृषी धर्म्मी हैं; (२) जो लोग संयोजन संग्रह करते हैं

---

* कोमत प्रभृति पाश्चात्य दार्शनिक गण तीन भागोंमें चित्त-परिणतिको विभक्त करते हैं। Thought feeling Action यह ठीक है किन्तु Feelling अन्तमें Thought या Action हो जाता है इसलिये परिणामका फल ज्ञान और कर्म्म कहना भी ठीक है। मैं उन्नीसवीं सदीके युरोपको भी समाजकी अपरिणत दशा कहता हूं।

वे शिल्प या वाणिज्यधर्म्मी हैं, (३) और जो लोग रक्षा करते हैं वे युद्धधर्म्मी हैं। इसके नाम व्युत् क्रमसे क्षत्रिय वैश्य और शूद्र हैं, क्या यह बात पाठक स्वीकार कर सकते हैं?

स्वीकार करनेमें एक सन्देह है। हिन्दुओंके धर्म्मशास्त्रानुसार और इस गीताके व्यवस्थानुसार कृषि शूद्रका धर्म्म नहीं है, वाणिज्य और कृषि दोनोंही वैश्यका धर्म्म है। अन्य तीन वर्णोंकी परिचर्य्याही शूद्रका धर्म्म है। आजकल देखते हैं कि कृषि प्रधानतः शूद्रका ही कर्म्म है। किन्तु अन्य तीन वर्णोंकी परिचर्य्या भी आजकल प्रधानत; शूद्रका ही धर्म्म है। जब ज्ञानधर्म्मी, युद्धधर्म्मी, वाणिज्यधर्म्मी या कृषिधर्म्मीके कर्म्मका इतना बाहुल्य है कि तद्धर्म्मी अपने वैदिकादि दरकारी कर्म्म करनेका अवसर नहीं पाते तब कुछ लोग उनके परिचर्य्यामें नियुक्त होते हैं। इसलिये (१) ज्ञानार्ज्जन या लोकशिक्षा, (२)युद्ध या समाजरक्षा, (३) शिल्प या वाणिज्य, (४) उत्पादन या कृषि और (५) परिचर्य्या, ये पांच प्रकारके कर्म्म हैं। भगवद्गीताकी टीकामें मैंने जो लिखा है उससे उतना जो उद्धृत कर दिया है। यहां स्मरण रखना चाहिये कि सब तरहके कर्म्मानुष्ठानके लिये अनुशीलन दरकार है। अलबत्ते जिसका जो स्वधर्म्म है अनुशीलन उसके अनुरूप हो तो स्वधर्म्मका सुपालन नहीं होगा। अनुशीलन स्वधर्म्मानुवर्ती होनेका यह अर्थ है कि स्वधर्म्मके प्रयोजन अनुसार वृत्ति विशेषका विशेष अनुशीलन चाहिये।

सामञ्जस्य रखकर वृत्तिविशेषका विशेष अनुशीलन कैसे हो सकता है यह शिक्षा तत्त्वके अन्तर्गत है। इसलिये इस ग्रन्थमें उस विशेष अनुशीलनकी बात नहीं लिखी जाती। मैंने इस ग्रन्थमें साधारण अनुशीलनकी ही बात कही है क्योंकि वही धर्म्म तत्त्वके अन्तर्गत है; विशेष अनुशीलनकी बात नहीं कही क्योंकि वह शिक्षातत्त्व है, दोनोंमें कुछ विरोध नहीं है और हो नहीं सकता, यही कहनेका मेरा प्रयोजन है।

इति।

मार्कण्डेय पुराण ।

श्रीः।

मार्कण्डेय पुराण

का

हिन्दी भाषानुवाद।

श्रीभोजपुर नरेशाश्रित, डुमरावं निवासी, शाकद्वीपीय विप्र
पण्डित श्रीराजेश्वर मिश्रजीके प्रथम पुत्र
पण्डित अक्षयवट मिश्र (विप्रचन्द्र)
लिखित।

कलकत्ता
९७ मुक्तारामबाबू स्ट्रीट, भारतमित्र प्रेससे
पण्डित कृष्णानन्द शर्मा द्वारा मुद्रित और प्रकाशित।

॥ श्रीः ॥

मार्कंडेय पुराण ।

पहला अध्याय ।

मङ्गलाचरण ।

जीवन मरन आदि भवभय जो तुरत नसावैं ।
शुद्ध चित्त योगीगन जिनको निसदिन ध्यावैं ।
जब हरि वामन रूप धारि बलिके घर आये ।
तहं तिनि विस्तृत होय भांति बहु रंग दिखाये ।
जो स्वर्ग मर्त्य पाताल कों पलक मारते वशि करैं ।
सो पादपद्म भगवानके नित तुम्हार मङ्गल करैं ॥

पयसमुद्रके मध्य योगनिद्राकों धारि ।
सोवत जो प्रभु शेषनागकी सेज संवारि ।
निश्वसत जाके भार सेसको सांस भयङ्कर ।
हलत उदधि उत्ताल तरङ्गित करतो हरहर ।
इक ध्यानमात्रसों जासुके दुरितराशि पलमें दुरैं ।
सो सोवनहारे शेषके तुम्हरी नित रक्षा करैं ॥

नर नारायण श्रेष्ठनर विनवौं बारम्बार।
देवि सरस्वति ध्यायके कीजै जयजयकार॥

———०———

जैमिनिका महाभारतके विषयमें प्रश्न करना और मारकण्डेयजीका उत्तर देना।

जिस प्रकार भावोंमें ब्रह्मसद्भाव, गुणोंमें विनय, छूनेसे सुख देने वाले पदार्थोंमें पुत्र, सुखमें ब्रह्मका दर्शन सबसे उत्तम है उसी प्रकार सब आश्रमोंसे उत्तम और पवित्र सारस्वत आश्रम है। जहां क्रौंच हंस आदि पक्षी कलरव करते हैं, नदियोंका जल स्वच्छ है, पशु और पक्षी अपने निर्बल वैरीको नहीं सताते हैं सब शान्तभावसे रहते हैं कोई किसीको कष्ट नहीं देता। सुन्दर सुहावने वृक्ष लह-लहा रहे हैं। मृग तपस्वियोंकी काली जटाओंको हरी घास समझ कर खानेके लोभसे उनके पीछे पीछे इधर उधर घूम रहे हैं, चारों ओर वेदध्वनि होरही है, तपस्वी लोग जहां तहां ध्यान लगाये बैठे हैं और अनेक यज्ञशालाएं शोभित होरही हैं। वह आश्रम बड़ा ही सुन्दर है। वहां न रोग है न भय है न शंका है न मूर्खता है न दुःख है न शोक है न विधि है न निषेध है न मोह है न प्रमाद है न निर्बल करनेवाला बुढ़ापा है, न लालच बढ़ानेवाली जवानी है, न अज्ञतासे भरा हुआ लड़कपन है, न दूसरोंको सतानेवाला सखा है। वहां ज्ञानी मुनियोंके बीच बैठे हुए तथा तप और वेदपाठ करनेमें लवलीन महामुनि मार्कण्डेयसे बड़े तेजस्वी व्यासजीके शिष्य जैमिनि ऋषिने पूछा॥ १॥ हे भगवन्! महात्मा व्यासजीने भारत नामका इतिहास कहा जिसमें नाना शास्त्रोंके सब विचित्र विषय भरे हैं, जातिकी शुद्धताका विधान लिखा है, सुन्दर सुन्दर शब्दोंकी री है, सब शंका और समाधान तथा उनके सिद्धान्त भी इसमें हैं। जिस प्रकार देवताओंमें विष्णु, मनुष्योंमें ब्राह्मण, गहनों

में चूड़ामणि शस्त्रोंमें वज्र और इन्द्रियोंमें मन उत्तम है उसी प्रकार सब शास्त्रोंमें महाभारत उत्तम है ॥ ५ ॥ इसमें अर्थ, धर्म्म, काम और मोक्षका वर्णन है, इन सबका सम्बन्ध और उत्पत्ति भी कही गई है। इसे उत्तम धर्म्मशास्त्र, प्रधान अर्थशास्त्र, बड़ा कामशास्त्र और श्रेष्ठ मोक्षशास्त्र कहना उचित है। इसमें चारों आश्रमों (१ ब्रह्मचर्य्य, २ गार्हस्थ, ३ वानप्रस्थ, ४ सन्यास) के धर्म्म और आचार अच्छी तरह लिखे गये हैं। हे महाभाग! बुद्धिमान व्यासजीने इसमें विधिसे सब बातें कही हैं। हे तात! व्यासजीने इस उदारतासे यह भारत बनाया कि वह चारों तरफ फैल गया। किसीको नापसन्द न हुआ। नीच विचार रूपी पेड़ोंको गिरानेवाली वेदरूपी पर्वतसे झरनेवाली, व्यासकी वाणीकी इस जलधाराने, पृथिवीके पापोंकी धूल दबादी ॥ १० ॥ व्यासका बनाया हुआ भारत एक बड़ा भारी तालाब है, इसमें कोमल कोमल शब्द हंस हैं, बड़ी बड़ी कथाएं कमल हैं और बड़े बड़े इतिहास जल हैं। जिस भारतमें बहुतसे अर्थ और वेदका विस्तार है उसी भारतको भलीभांति जाननेके लिये आपके पास आया हूं। हे मुने! जनार्दन भगवान ने निर्गुण होकर भी क्यों मनुष्य देह धारण की? वासुदेव तो जगतके उत्पन्न पालन और संहार करनेवाले हैं। क्या कारण है कि एकही द्रौपदी पांचों पाण्डवोंकी स्त्री बनी? यह बड़े सन्देह की बात है ॥१४॥ महाबली हलधर बलदेवने तीर्थ यात्रा करके ब्रह्म हत्या क्यों छुड़ाई? ॥१५॥ और विनाव्याहे महारथी पाण्डवोंके पुत्र द्रौपदीके बालक क्यों अनाथकी तरह मारे गये? यह सब बातें आप विस्तारसे समझाकर कहिये। आप मूर्खोंकी मूर्खता सदा दूर करनेवाले हैं ॥१७॥

अठारहों दोषोंसे रहित महामुनि मार्कण्डेय उनकी यह बात सुनकर बोले ॥१८॥ हे मुनिवर! यह मेरे संध्यावन्दनका समय है और यह कथा बहुत बड़ी है इस कारण मैं इसे इस समय नहीं कह सकता ॥१९॥ जो तुम्हारे सन्देहोंको दूर करेंगे उनका नाम बता

देता हूं। पक्षी लोग तुम्हारे सन्देहोंको मिटा देंगे ॥२०॥ उन पक्षियोंके चित्तमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं रहता। पिंगाक्ष विबोध, सुपुत्र और सुमुख यह द्रोणपुत्र पक्षियोंमें प्रधान और सब शास्त्रोंके जाननेवाले हैं ॥२१॥ उन की बुद्धि वेदशास्त्रके अर्थों के जाननेमें बड़ी चतुर है। वह विंध्य पर्वतकी कन्दरामें रहते हैं। उनकी सेवा करके पूछो ॥२२॥ जब बुद्धिमान मार्कण्डेयजीने इस प्रकार समझाया तब जैमिनिके नेत्र आश्चर्य्यसे खुल गये। फिर जैमिनी कहने लगे ॥२३॥ हे ब्रह्मन्! यह तो बड़े अचंभेकी बात है कि उन पक्षियोंकी बोली मनुष्यकीसी है और उन्होंने अत्यन्त दुर्लभ ज्ञान पाया है ॥२४॥ यदि उनका जन्म तिर्यक् योनिमें हुआ तो उन्हें ज्ञान कैसे हुआ? वह पक्षी द्रोणपुत्र किस प्रकार कहलाये ॥ २५ ॥ वह द्रोण कौन हैं जिनके यह चारों लड़के हैं? इन महात्माओंको धर्मज्ञान कैसे हुआ ॥२६॥ मार्कण्डेयजी बोले जैमिनि! तुम सावधान होकर सुनो; जो बातें नन्दनबनमें नारदके संग इन्द्र और अप्सराओंके बीच हुई ॥२७॥ एक समय नारदने देखा कि नन्दन बनमें देवताओंके राजा इन्द्र, स्वर्गकी वेश्याओंके बीच बैठे हैं और टकटकी लगाये उनके मुंहकी ओर देख रहे हैं ॥ २८ ॥ महर्षि नारदको सामने आते देखकर शचीपति इन्द्र उठ खड़े हुए और अपने आसन पर नारदको बड़े आदरसे बिठाया ॥२९॥ वह सब अप्सराएं इन्द्र को खड़ा होते देख उठ खड़ी हुईं और बड़ी नम्रतासे हाथ जोड़ कर प्रणाम करने लगीं ॥ ३० ॥ नारद मुनि उन स्त्रियोंसे आदर पाकर इन्द्रके बैठ जाने पर कुशल पूछकर सुन्दर कथा कहने लगे। इसी बीचमें इन्द्रने नारदसे कहा—हे मुनि! आप जिस अप्सराको पसन्द करें उसे नाचनेकी आज्ञा दें। रम्भा, मिश्रकेशी, उर्वशी, तिलोत्तमा, घृताची, मेनका—इनमें जो भली लगे उसे आज्ञा दीजिये ॥३२॥ द्विजवर नारद, इन्द्रका वचन सुन विनयसे हाथ जोड़ कर खड़ी हुई अप्सराओंसे विचारकर बोले ॥३३॥ तुम सबमें जो अपनेको रूप और गुणमें अधिक समझती हो वह मेरे सामने नाचे

॥३४॥ जो स्त्री रूप और गुणसे विहीन है वह नाचनेमें कभी अच्छी नहीं होसकती। जो सब तरहकी सुन्दरत.से भरा पूरा नाच है वही नाच कहलाता है नहीं तो खेल है ॥ ३५ ॥ नारदजीकी यह बात सुनकर उनमें हरएक सामने आकर हाथ जोड़कर अपनेको रूप और गुणमें अधिक बताने लगी और दूसरीकी निन्दा करने लगी ॥३६॥ उन सबको आपसमें लड़ते देखकर इन्द्रने कहा, तुम सब आपसमें क्यों लड़ती हो इन्हीं मुनिसे पूछ लो कि कौन अच्छी है ? ॥३७॥ इन्द्रकी बात मानकर उन सबने नारदसे पूछा। नारदने जवाब दिया कि हिमालय पर्वतपर मुनिवर दुर्वासा तप करते हैं। जो अपने को रूप और गुणमें अधिक समझती हो वहां जाकर उनको अपने बलसे मोहित करे ॥३८॥ नारदकी बात सुनकर सब सिर हिलाकर नहीं नहीं करके कहने लगीं कि यह हमारी शक्तिसे बाहर है ॥४०॥ उनमें वपु नाम्नी वेश्या मुनिको मोहित करनेके विचारसे घमंड करती हुई बोली कि मैं आजही उस मुनिके पास जाती हूं ॥४१॥ आजही उसकी देहको चलानेवाले इन्द्रिय रूपी घोड़ोंकी लगामको कामदेव रूपी तलवारसे काटकर सारथीको गिरा दूंगी ॥ ४२ ॥ ब्रह्मा, विष्णु अथवा शिव भी यदि मेरे सामने आजायं तो मैं उनके हृदयमें काम-बाणसे छेद करदूंगी ॥ ४३ ॥ ऐसा कहकर वह वपु नाम्नी अप्सरा हिमालय पर चली गई। मुनिके तपके प्रभावसे उस आश्रममें सब जीव जन्तु शान्त भावसे रहते थे ॥४४॥ जहां दुर्वासा मुनि रहते थे वहांसे एक कोस दूर बैठकर वह सुन्दरी अप्सरा कोयलके समान सुरीली तानसे गाने लगी ॥४५॥ उसके गीतकी मीठी तान सुनकर मुनि आश्चर्यमें डूब गये; और जहां वह गारही थी वहां पहुंचे। ४६॥ महातपस्वी दुर्वासा मुनिने उसके सुन्दर अंगोंको देखकर अपने मनको बलसे रोका और यह विचारकर कि यह मुझे मोहित करने आई है अपना क्रोध न सम्हालकर उससे बोले कि अरी अप्सरा! तू यहां दुःखसे इकट्ठे किये हुए तपमें विघ्न करनेके लिये मतवाली बनकर आई है इस कारण मेरे क्रोधसे पापिनी बनकर

पक्षीकी योनिमें जन्म लेकर सोलह वर्ष तक रहेगी ॥४९॥ रे अधम अप्सरा! तू अपना दिव्य रूप छोड़कर पक्षिणीका रूप धारण करेगी और तेरे चार लड़के पैदा होंगे ॥५०॥ वह बच्चे तू सुखसे न जन सकेगी और अस्त्रसे कटकर पापरहित होकर फिर स्वर्गमें निवास करेगी। अब कुछ कहने सुननेका काम नहीं है ॥५१॥ कोप से नेत्र लाल किये ब्राह्मण दुर्वासा उस चंचल मनोरम कङ्कणवाली मानिनी अप्सराको यह बात सुनाकर पृथिवी छोड़कर अत्यन्त चञ्चल तरंगवाली और प्रसिद्ध सब गुणोंसे भरी हुई आकाशगङ्गा मन्दाकिनीके तीर पर चले गये।

दूसरा अध्याय।

चार पक्षियोंके जन्मकी कथा।

अरिष्टनेमिके पुत्र गरुड़ पक्षियोंके राजा हुए। गरुड़के पुत्र सम्पाति हुए ॥१॥ उनके पुत्र वायुके समान बली सुपार्श्व हुए। सुपार्श्वके पुत्र कुम्भि और कुम्भिके पुत्र प्रलोलुप हुए ॥२॥ प्रलोलुपके कंक और कन्धर दो लड़के हुए ॥३॥ कंकने एक दिन कैलास पर्वत की चोटी पर विद्युद्रूपको देखा। उसके नेत्र कमलके समान थे। वह कुबेरका छोटा भाई था और राक्षसी योनिमें उत्पन्न था ॥४॥ वह मद्य पीरहा था। स्वच्छ माला चन्दन और वस्त्र पहने हुए था और स्वच्छ तथा पवित्र एक बड़ी चट्टान पर अपनी स्त्रीके साथ बैठा था ॥५॥ कंकको देखतेही वह राक्षस क्रोध करके बोला—"अरे पक्षियोंमें अधम! तू कहांसे यहां आया? मैं स्त्रीके साथ बैठा हूं तू क्यों मेरे पास आता है? यह भले लोगोंका काम नहीं कि जहां स्त्री पुरुष बैठे हों वहां जायं" ॥६॥ कंक बोला—यह पर्वत साधारण है इस पर जैसा तुम्हारा अधिकार है वैसाही हमारा

है। और दूसरे जन्तुओंका भी उसी तरह इस पर बल है। मैं नहीं जानता कि तुम्हारी ममता इस पर इतनी अधिक क्यों है? ॥८॥ कंकको यह बात सुनकर विद्युद्रूप राक्षसने तलवारसे उसका सिर काट डाला। उसकी देहसे खून बहने लगा। वह पीड़ासे तड़फने लगा और मरगया ॥९॥ कंकका मरना सुनकर कन्धर क्रोध के मारे घबरा उठा और उसने विद्युद्रूपको मारनेका विचार किया। १०॥ वह उस पर्वतकी चोटी पर जापहुंचा जहां कंक मरा पड़ाथा। उसने बड़े भाईका मृतक संस्कार किया। क्रोध और द्वेषसे उसकी आंखें लाल होआईं तब वह गजराजके समान चिक्कार करने लगा। ११॥ फिर कन्धर वहां पहुंचा जहां उसके बड़े भाई कंकका मारने वाला शत्रु बैठा था। कंधर अपने पंखोंकी हवासे पर्वतोंको कंपाने लगा। आंखें लाल लाल करके अपने वेगसे मेघमण्डलोको गिराने लगा। उसने एकही पलमें शत्रुको नष्ट करनेकी इच्छासे पर्वत पर कोलाहल मचादिया ॥१३॥ फिर उसने देखाकि उसका शत्रु विद्युद्रूप बैठकर मद्य पीरहा है उसकी आंखें लाल होरही हैं। वह सुवर्णके पलंग पर बैठा है ॥१४॥ सिर पर फूलकी माला लपेटे है ललाटमें चन्दन लगाये हुए है केतकीके पत्तोंके समान श्वेत दांतोंसे उसका मुंह और भी भयंकर मालूम पड़ता है ॥१५॥ उसकी बाईं जंघा पर बड़े बड़े नेत्रवाली उसकी स्त्री बैठी है जिसका नाम मदनिका है। उसकी बोली कोयलके समान मीठी है ॥१६॥ इस तरह शत्रुको कन्दरामें बैठे हुए देखकर कंधर क्रोध करके बोला—रे दुष्ट! यहां आ, मेरे साथ लड़ ॥१७॥ तूने मेरे बड़े भाईको धोखा देकर मारा है इस कारण मैं भी तुझे इसी मद्यकी बेहोशीमें मारकर यम-पुरी भेज दूंगा ॥१८॥ जिस नरकमें विश्वासघाती और स्त्री तथा बालक मारनेवाले पड़ते हैं उसी नरकमें आज तुझे मारकर भेज दूंगा ॥१९॥ पक्षिराज कंधरकी यह बात सुनकर वह राक्षस क्रोध करके बोला ॥२०॥ अरे नीच पक्षी! जिस तरह मैंने तेरे भाईको मारकर वीरता की है उसी तरह तुझे भी आजही इसी तलवारसे

काट डालूंगा ॥२१॥ रे नीच पक्षी! थोड़ी देर ठहर, अब तू यहांसे जीता हुआ नहीं लौटेगा। यह कहकर उस राक्षसने अंजनसी काली तलवार उठाली ॥२२॥ तब उन दोनोमें गरुड़ और इन्द्रके समान महाभयंकर युद्ध होने लगा ॥२३॥ इसके बाद उस राक्षसने धूमरहित अंगारके समान तलवार उठाकर क्रोधसे उस पक्षिराज पर फेंकी ॥२४॥ कंधरने जमीनसे कुछ ऊपर उछलकर मुंहसे उस तलवारको ऐसे पकड़ लिया जैसे गरुड़ सांपको पकड़ता है ॥२५॥ कंधरने तलवारको चोंच और पैरोंसे तोड़कर टुकड़े टुकड़े कर डाला और बड़ा क्रोध किया। तलवार टूट जाने पर दोनोमें हाथाबाहीं होने लगी ॥२६॥ कंधरने उसकी छातीमें बड़े जोरसे प्रहार किया और उसका सिर, पैर, हाथ तोड़कर उसे मार डाला ॥२७॥ राक्षसके मर जानेके बाद उसकी स्त्री मदनिका कंधरकी शरणमें आकर डरती हुई धीरेसे बोली कि मैं आजसे तुम्हारी स्त्री होती हूं ॥२८॥ कंधर उसे लेकर अपने घर लौट आया। विद्युद्रूपको मारकर उसने अपने बड़े भाईके मारनेका बदला लिया ॥२९॥ वह मेनकाकी लड़की मदनिका कंधरके घर आकर अपनी इच्छासे पक्षिणी बन गई ॥३०॥ कंधर उसके साथ रहने लगा। कुछ दिनोंके बाद उसके एक लड़की हुई। वह मुनिके शापसे दुखी थी और पूर्व जन्मके संस्कारसे अप्सरा की भांति रूपवती थी। कंधरने उसका नाम तार्क्षी रक्खा ॥३१॥ मन्दपालके जरितारि, द्रोण आदि चार पुत्र थे। यह बड़े बुद्धिमान और पक्षियोंमें उत्तम थे ॥३२॥ उनमें छोटा लड़का बड़ा धर्मात्मा और वेद वेदांग जानता था। उसने कंधरकी रायसे सुन्दरी तार्क्षी के संग व्याह किया ॥३३॥ कुछ दिन बीत जाने पर तार्क्षीको गर्भ रहा। वह सात मसाह बीत जाने पर कुरुक्षेत्रमें चली गई ॥३४॥ उस समय कौरव और पाण्डवोंमें घोर युद्ध होरहा था। कुछ विशेष कार्य्यके लिये वह उस युद्धके बीच चली गई ॥३५॥ वहां जाकर उसने भगदत्त और अर्जुनका युद्ध देखा। उस समय टिड्डियोंके समान गलित तारोंसे आकाश छागया था ॥३६॥ अर्जुनके धनुषसे बड़े वेग

से भालेके समान विशाल एक बाण छूटा वह उछलकर ताक्षींके पेटमें लगगया जिससे उसके पेटमें छेद होगया ॥३७॥ पेट फटजानेपर उसमेंसे चन्द्रमाके समान चार अण्डे निकलपड़े। उनकी आयु थी इस कारण वह पृथ्वीपर इसप्रकार गिरे जैसे रूईके गालेपर, उन्हें कुछभी चोट न आई ॥३८॥ उसीसमय सुप्रतीक नामक उत्तम हाथीकी कमर से बंधे हुए घण्टेकी डोरीमें बाण लगा। बाण लगनेसे डोरी कट गई और घण्टा जमीनपर गिरपड़ा ॥३९॥ दैवयोगसे वह घण्टा ठीक उन्हीं अण्डों पर इस तरह चारों ओर घेरकर गिरा कि वह अण्डे दबे नहीं वरञ्च उसमें ढप गये ॥४०॥ भगदत्त राजाके मारेजाने के बाद बहुत दिनोंतक कौरव और पाण्डवोंमें युद्ध होतारहा ॥४१॥ युद्ध समाप्त होजानेपर युधिष्ठिर, शान्तनुके पुत्र महात्मा भीष्म पिता-महसे धर्म्म सुननेके लिये चले गये ॥४२॥ जहां घण्टेके नीचे अण्डे पड़े थे उसीजगह संयमी शमीक आपहुंचे ॥४३॥ उन्होंने वहां आकर पक्षी शवाकोंकी चींचीं सुनी। वह बच्चे बहुतही छोटे थे इससे ठीक ठीक अपनी बोली नहीं बोल सकते थे। यद्यपि वह ऋषि विज्ञानी थे तो भी बोली साफ न होनेसे नहीं समझ सके ॥४४॥ इसके बाद शिष्योंके संग मुनिवर शमीकने वह घण्टा जमीनसे उठा लिया। उसके नीचे बिना माता पिताके बच्चोंको देखकर वह अचंभेमें आ गये ॥४५॥ यह आश्चर्य्यकीबात देखकर भगवान शमीक अपने अनुचर ब्राह्मणोंसे बोले ॥४६॥ हे द्विजगण! देवताओंसे दुखी होकर जब दैत्योंकी सेना भाग चली तब द्विजश्रेष्ठ शुक्राचार्य्यने दैत्योंसे बहुतही सत्य बात कही थी कि हे दैत्यगण! तुम सब मत भागो। लौट आओ। अपनी वीरता और कीर्ति छोड़कर डरसे कहां भागे जाते हो। ठहरो तुम सब नहीं मरोगे ॥४८॥ रोगी हो अथवा युद्ध करता हो उस प्राणीका जीवन उतनेही समय तक रहेगा जितना कि ब्रह्माने पहलेही ठीक करके रख दिया है। इच्छा करनेसे कोई नहीं मर सकता जबतककि काल न आजाय ॥४९॥ देखागया है कि कितने अपने घरमें रहकर मरे हैं, कितने भागते हुए मरे हैं,

कितने अन्न खाते मरे हैं, और कितनेही पानी पीते हुए मरे हैं ॥५०॥ कितने विलास करते हुए मरे हैं, कितने सवारी पर चढ़े हुए मरे हैं, कितने विना रोगके मरे हैं, कितने विना हथियारके लगेही मरकर यमपुर चलेगये ॥५१॥ तपस्या करतेहुए कितने तपस्वी मर गये, कितने योग करते हुए योगी मर गये हैं उनके प्राण भी नहीं बचे ॥५२॥ एकसमय इन्द्रने शंबरासुरपर वज्र चलाया। वज्र जाकर उसकी छातीमें लगा पर वह असुर मरा नहीं ॥५३॥ उसी इन्द्रने वही वज्र अनेक दैत्य दानवों पर चलाया, उनकी मृत्यु आचुकी थी इससे वह उसके लगतेही मर गये ॥५४॥ ऐसा समझकर तुम लोग डर छोड़कर लौट आओ।' तब वह सब मरने का डर छोड़कर लौट आये ॥५५॥ शुक्राचार्य्यके इस वचनको इन पक्षीके बच्चोंने सत्य कर दिखाया। अगणित मनुष्योंसे भरे हुए महायुद्धमें भी यह जीतेही रहे ॥५६॥ कहां तो अण्डोंका गिरना और कहां साथही साथ घण्टेका ठीक ठीक उसीपर पड़ना। मांस चर्बी आदिसे बने हुए कोमल शरीरकी पृथिवीमें रक्षा होना। यह सब भाग्यकी बातेंहैं ॥५७॥ यह कोई विचित्र जीव हैं, साधारण पक्षी नहीं हैं। दैवकी प्रसन्नता बड़े बड़े भाग्योंको दिखलाती है ॥५८॥ ऐसा समझकर शमीक फिर अपने शिष्योंसे बोले, हे विप्रगण! इन पक्षीके बच्चोंको लेकर आश्रममें चलो ॥५९॥ जहां बिल्ली, चूहे, बाज, नेवले आदिका डर न हो उस जगह इन बच्चोंको रक्खो ॥६०॥ अथवा किसीकी रक्षा करनेमें क्या? यत्न करनेसे क्या? सब अपने कर्मसे मरते हैं और अपनेही कर्मसे जीते हैं। इन पक्षियोंकोही देखो ॥६१॥ तौभी उचित है कि मनुष्य सब कामोंमें अच्छीतरह उपाय करे, जो मनुष्य उपाय करते रहतेहैं सज्जन उनको आलसी कहकर उनकी निन्दा नहीं करते ॥६२॥ मुनिवर शमीककी आज्ञापाकर सब मुनि बालक उन पक्षीको लेकर अपने आश्रमको लौटआये। वह आश्रम बड़ा मनोहर था। जहां वृक्षकी डालियोंमें नवीन नवीन पुष्पों पर भौंरे गूंज रहे थे और तपस्वी लोग बैठकर सुन्दर सामगान करते थे

॥६३॥ शमीकमुनिने भी अत्यन्त मनोहर वनके फल फूल मूल कुश ले कर विष्णु, शिव, ब्रह्मा, इन्द्र, पवन, अग्नि, वरुण, बृहस्पति, कुवेर, यम आदि सब देवताओंकी विधिपूर्वक पूजा करके सत्कार किया ॥६४॥

तीसरा अध्याय।

पक्षियोंकी आत्मकथा।

फिर मार्कण्डेयजी कहने लगे—हे विप्र! वह मुनिवर नित्य उन बच्चोंको दूध पिलाकर और अनेक दूसरे उपायोंसे उनका पालन पोषण करने लगे ॥१॥ एकही महीनेमें वह बच्चे उड़नेके लायक होगये। उड़कर सूर्य्यके रथके पास पहुंच गये। मुनियोंके बालक उन्हें बड़ी चाहसे टकटकी लगाकर देखने लगे ॥२॥ वह बच्चे आकाशमें जाकर समूची पृथिवीके समुद्र, नदी, नगर, पर्वत आदि देखकर थककर फिर आश्रममें लौट आये। उसी समय पूर्व जन्मकेसंस्कारसे उनके हृदयमें ज्ञानउत्पन्नहोगया ॥४॥ मुनिवरशमीक अपने शिष्यों पर दया करके धर्मोपदेश कर रहे थे उसी समय वह बच्चे उनकी प्रदक्षिणा कर चरणों पर गिरकर हाथ जोड़कर बोले। हे मुने! आपने घोर मृत्युसे बचाकर हम लोगोंकी रक्षा की है। अपने घरमें रखकर फल दूध आदि खिलाकर हमारा पालन किया है। आपही हमारे माता पिता और गुरु हैं। ॥६॥ जब हम गर्भमें थे तभी माता मर गई, पिताने पालन नहीं किया। आपहीने हमें जिलाया और पाला पोसा है ॥७॥ आपका तेज पृथिवी पर फैल रहा है ॥८॥ जिस समय हम पड़े पड़े कीड़ेकी तरह सूख रहे थे उस समय आपने गजघण्टा उठाकर हमारा दुःख छुड़ाया। "यह छोटे बच्चे कैसे बढ़ेंगे, कैसे इन

को सुखी देखूँगा, कब वह दिन आवेगा कि यह जमीनसे उड़कर पेड़ों पर बैठेंगे और इस पेड़ परसे उस पेड़ पर जाकर विहार करेंगे कब यह मेरे समीप उड़कर अपने पंखोंसे धूल उड़ाकर मेरे शरीरकी स्वाभाविक छवि मैली करेंगे"॥१०॥ इस प्रकारकी बातें सोचकर हे पिता! आपने हमारी रक्षा की है। हम लोग बढ़े और हृष्ट पुष्ट हुए। अब जो आज्ञा दीजिये हम करें। ११॥ उनकी यह विचित्र बात सुनकर मुनि आश्चर्य्यमें आगये। उनके शरीरके रोएं खड़े होगये। उनके शिष्य और शृङ्गी नामक पुत्र भी आश्चर्य्यमें डूब गये। शमीक मुनि उन पक्षियोंसे पूछने लगे—ऐ पक्षी! तुम लोग किस तरह मनुष्यकी बोली बोलते हो। किसके शापने तुम लोगोंका पक्षिकुलमें जन्म हुआ। क्या कारण है कि तुम्हारा रूप पक्षियोंकासा और बोली मनुष्यके समान है? यह सब भेद हमसे कहो ॥१४॥ पक्षियोंने कहा—पहले समयमें विपुलस्वान् नामके एक मुनि थे उनके सुकृष और तुम्बुरु दो पुत्र थे ॥१५॥ सुकृषके हम चारों पुत्र थे। हम लोग सदा तपमें लगे रहते थे और अपने पिताकी बड़ी भक्ति तथा नम्रतासे सेवा करते थे ॥१६॥ हमारे पिता सदा तपमें लवलीन रहते थे। अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखते थे और अपनी इच्छासे फल मूल लानेके लिये हम लोगोंसे कह दिया करते थे। हम उनको प्रसन्न करनेके लिये उत्तम कुश, पुष्प और भोजनके लिये फल मूल ला दिया करते थे। इस प्रकार वनमें रहते हमें बहुत दिन बीत गये ॥१८॥ एक दिन इन्द्र एक बड़े भारी पक्षीका रूप धरकर जिसके पंख टूट गये थे बुढ़ापेसे देह ढीली होगई थी, आंखें लाल होगई थीं और प्राण डरसे कांप रहे थे उस आश्रममें आये। उनकी इच्छा थी कि हमारे सत्य, पवित्रता, क्षमा, आचार, उदारता आदिकी परीक्षा करें और कुछ भेद हो तो शापसे दग्ध दें ॥२०॥ वह पक्षी आकर बोला कि हे द्विजेन्द्र! बड़े ज़ोरसे मुझे भूख लगी है मैं भोजन मांगनेके लिये आपकी शरणमें आया हूं आप भोजन देकर

मेरी रक्षा कीजिये ॥२१॥ मैं विंध्यपर्वतके शिखर पर रहता था वहां गरुड़की पंखोंकी हवा और उनके मुंहके श्वासके झोंकेसे गिरकर बेहोश होगया था। मैं सात दिन तक एकदम बेहोश जमीनमें पड़ा था तनकी कुछ भी सुध न थी। आठवें दिन मुझे होश हुआ। तब भूख लगी, कुछ भी भला न लगा चित्त बहुतही घबराया। अब आपकी शरणमें आया हूं। कुछ भोजन दीजिये। हे पवित्र बुद्धिवाले मुनि! मेरी रक्षा के लिये स्थिर विचार कीजिये। जिससे मेरा प्राण बचे—ऐसा भोजन दीजिये ॥२५॥

यह बात सुनकर वह ऋषि, पक्षी बनेहुए इन्द्रसे बोले कि तुम्हारी प्राण रक्षाके लिये मैं तुम्हें मनमाना भोजन दूंगा ॥२६॥ यह बात कहकर फिर ऋषिने पूछा कि तुम्हारे लिये कौनसी चीज खाने को दूं जिससे तुम्हारी तृप्ति हो। उसने जवाब दिया कि यदि मुझे मनुष्यका मांस खानेको मिले तो मेरी पूरी तृप्ति हो ॥२७॥ ऋषिने कहा हे पक्षी! तुम्हारा लड़कपन बीत गया जवानी ढल गई अब बुढ़ापा आपहुंचा ॥२८॥ इसमें सब प्राणियोंकी इच्छा सब चीजोंसे हट जाती है। क्या कारण है कि बुढ़ापेमें भी तुम्हारी इच्छा जीव-हिंसासे नहीं हटती ॥२९॥ कहां तो मनुष्यका मांस और कहां तुम्हारा बुढ़ापा। मैं जान गया कि दुष्टोंके चित्तमें शान्ति कभी नहीं होती ॥३०॥ अथवा हमको यह बात कहने सुननेसे क्या प्रयो-जन, अब तो तुम्हें मांस देनाही पड़ेगा। क्योंकि मैंने देनेकी प्रतिज्ञा करली है ॥३१॥ उस पक्षीसे यह बात कहकर उसी समय हम सब को बुलाकर और हमारे गुणकी प्रशंसाकरके मुनिवरने दुःखित हृदयसे हमसे यह कठोर वचन कहा। हम बड़ी नम्रतासे भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर उनके सामने खड़े थे ॥३३॥ ऋषि बोले कि हे विप्रगण! तुम अपना चित्त वशमें रखते हो ब्राह्मणोंके उत्तम गुण अपने पास रखते हो। तुम हमारी उत्तम सन्तान हो, आज हमारी बात मानकर हमसे उऋण हो

जाओ ॥२४॥ यदि तुम गुरुको पूज्य समझते हो और पिताको बहुत बड़ा जानते हो तो प्रसन्न चित्तसे हमारी बात मान लो ॥२५॥ यह बात उनके मुंहसे निकलतेही हम सबने झट से जवाब दिया कि हे भगवन् जो बात आप कहेंगे उसे हुआ ही समझिये ॥२६॥ ऋषि बोले—यह भूखा प्यासा पक्षी मेरी शरण में आगया है तुम बहुतही शीघ्र ऐसा करो कि तुम्हारेही मांससे इसकी भूख मिटे और रक्तसे प्यास जाय ॥२७॥ यह सुनकर हम बहुत दुखी हुए, डरसे कांपने लगे और हाय हाय करके कहने लगे कि यह बात हम से न होगी ॥२८॥ बुद्धिमान पुरुष दूसरेके लिये क्यों अपना शरीर नष्ट करेगा या अपना प्राण देगा ? जैसा अपना प्राण वैसाही लड़केका प्राण ॥२९॥ पुत्र, देवऋण, पितृ-ऋण और मनुष्यऋण चुकाता है पर अपना प्राण नहीं देता ॥४०॥ जो काम आजतक किसीने नहीं किया वह काम हम नहीं करेंगे। जो जीता है वह अनेक प्रकारका कल्याण देखता है और वही अनेक पुण्य करता है ॥४१॥ जो आदमी मर जाता है उसकी देह नष्ट होजाती है, और धर्म करना भी उसी दिनमें रुक जाता है इससे धर्म जाननेवाले पण्डित कहते हैं कि सब तरह अपना प्राण बचाओ ॥ ४२ ॥ हमारी ऐसी बात सुनकर मुनि क्रोध से जलने लगे। फिर मानो अपनी आंखोंसे हम सबको जलाते हुए बोले ॥ ४३ ॥ तुम सबने हमारी आज्ञा पालन करनेकी प्रतिज्ञा की है। अब अपनी प्रतिज्ञा छोड़ते हो। इस कारण मेरे शापसे भस्म होकर तिर्यक योनिमें जन्म पाओगे ॥४४ ॥ इस प्रकार हमसे कहकर अपने शरीरका मंत्रसे दाहसंस्कार और पिंडदान, दशगात्र आदि दैहिक कृत्य करके, उस पक्षीसे बोले कि हे पक्षी ! अब तुम निश्चिंत होकर मुझे खाओ "मैंने अपनी देहको तुम्हारे भोजनके लिये तैयार की है ॥ ४६ ॥ ब्राह्मणका इतनाही ब्राह्मणत्व है कि वह अपने सत्यका पालन करे। ॥ ४७ ॥ जो यज्ञ क्रिया सहित यज्ञ करनेसे अथवा दूसरे बड़े पवित्र कामोंसे नहीं

होता वह महान् धर्म्म, केवल सत्यकी रक्षा करनेसे होजाता है ॥४८॥ ऋषिका यह वचन सुनकर पक्षी बनेहुए इन्द्र मनमें आश्चर्य करने लगे। और उस मुनिसे कहने लगे ॥४९॥ हे विप्रेन्द्र! आप योग करके अपना शरीर छोड़ दीजिये तब मैं खाऊंगा। मैं जीते हुए जीवको कभी नहीं खा सकता ॥५०॥ उसकी यह बात सुनते ही मुनि योगासन पर जाबैठे। मुनिका दृढ़ विचार देख कर इन्द्र प्रगट होकर बोले ॥५१॥ हे पाप शून्य! विद्वान! विप्रेन्द्र! आप योगासनसे उठिये मैंने आपकी परीक्षा लेनेके लिये यह अपराध किया है ॥५२॥ हे पवित्रमते! यह मेरा अपराध क्षमा कीजिये और आज्ञा दीजिये कौनसा आपका काम करूं? आपकी सत्यता देखकर आपके ऊपर मेरा बड़ा प्रेम होगया है ॥५३॥ आजसे आपको ऐन्द्र ज्ञान(१) उत्पन्न होगा। आप तप कीजिये। आपके धर्म्ममें किसी प्रकारका विघ्न न होगा ॥५४॥ ऐसा कहकर इन्द्र चला गया। पिताजी क्रोधमें बैठे थे। उस समय हम लोगोंने उनके पैरोंपर गिर कर कहा। हे तात! हमने मृत्युसे डरकर ऐसा कहा। हम लोगोंको प्राण बहुत प्यारे हैं। अब हमारी की दीनता पर दया करके क्षमा कीजिये ॥५६॥ चमड़े, हड्डी, मांस, पीब और खूनसे बनीहुई देहमें प्रीति नहीं करनी चाहिये पर हम लोगोंकी इसमें बड़ी प्रीतिहै ॥४७॥ हेमहाभाग! मनुष्यको जिस तरह मोह होता है वह हम आपसे कहते हैं सुनिये। यह मनुष्य काम क्रोध आदि दोष रूपी प्रबल शत्रुओंसे अपने वशमें नहीं रहने पाता ॥५८॥ अनेक प्रकारका विचारहीतो एक किला है, बड़ी बड़ी हड्डियां खंभे हैं चमड़ा दीवार है मांस ईंटें हैं रक्त गिलावा है, चरबीसे मढ़े हुए इसमें नौ फाटक हैं, ज्ञानी आत्मा इसका राजा है, और सदा इसी किलेमें रहता है। मन और बुद्धि दो मन्त्री हैं और आपसमें प्रेम रख कर शत्रुओंको जीतनेकी इच्छा रखते हैं। इस राजाके काम, क्रोध, लोभ, और मोह चार शत्रु हैं।

(१) इन्द्रके समान ज्ञान।

और सदा राजाका नाश करनेकी इच्छासे घात लगाये रहते हैं। ६२॥ जब राजा अपने नवों फाटकोंको बंद करके बैठा रहता है तब सुखी और निर्भय रहता है। तब वह किसी प्रकार शत्रुओंसे नहीं जीता जा सकता। उसके पास राग (प्रेम) नामक शत्रुभी कभी नहीं आने पाता ॥ ६४ ॥ जब राजा दरवाजोंको खुला ही छोड़ देता है तब राग नामक शत्रु नेत्र आदि नवों दरवाजों में घुस जाता है ॥६५॥ उसके बाद सबमें सदा रहनेवाले, जादू जाननेवाले, और पांचों द्वारोंमें घुसनेवाले, काम, क्रोध, लोभ यह तीनों बली शत्रु भी घुस जाते हैं ॥६६॥ राग नामक शत्रु इन्द्रिय नामक दरवाजोंसे भीतर घुसकर मनसे मेल करलेता है॥ ६७ ॥ वह दुष्ट, इन्द्रिय और मनको वशमें करके दरवाजों पर अपना कब्जा जमाकर किलेको तोड़ देता है। मनको रागके वशमें देखकर बिचारी बुद्धि उसी समय नष्ट होजाती है ॥६८॥ मंत्री दूसरे के वशमें होजाते हैं, नगरके लोग भी संग छोड़ देते हैं और शत्रु घरमें आकर सब भेद जान जाता है तब वह राजा नष्ट हो जाता है ॥७८॥ इस तरह राग, मोह, लोभ, और क्रोध प्रबल होकर मनुष्यके विचारको नष्ट करदेते हैं ॥७०॥ रागसे क्रोध, होता है, क्रोधसे लोभ होता है, लोभसे मोह होता है, मोहसे विचार नष्ट होता है, विचारके नष्ट होनेसे बुद्धि नष्ट होती है बुद्धिके नष्ट होनेसे मनुष्यका नाश होजाता है ॥७१॥ इस प्रकार नष्ट बुद्धिवाले, राग लोभके वशमें रहनेवाले, और अपने जीवनमें प्रेम रखनेवाले हमलोगों पर कृपा कीजिये ॥ ७२ ॥ हे मुनि सत्तम! आपका दिया हुआ शाप हमलोगों पर न पड़े और दुःख देनेवाली तामसी गति हम न पावें क्षमा कीजिये ॥७३॥ ऋषि बोले वत्स! जो बात मैंने कही है वह कभी झूठी नहीं हो सकती। कारण यह कि मैं कभी झूठ नहीं बोलता ॥७४॥ मैं अच्छी तरह जानता हूं कि भाग्य ही बड़ा है यत्न और पौरुषको धिक्कार है वह भी कामके नहीं। उसी भाग्यने मुझसे बल पूर्वक यह अनुचित

काम करा दिया ॥७५॥ तुमने पैरों पर गिरकर मुझे प्रसन्न कर दिया इससे मैं आशीर्वाद देता हूं कि तुम पक्षी होकर भी उत्तम ज्ञान पाओगे ॥७६॥ तुम ज्ञानसे सब पदार्थोंको देखोगे क्लेश और पापोंसे अलग रहोगे। और मेरी कृपासे सन्देह रहित होकर पूरी सिद्धि पाओगे ॥७७॥ पुत्रो! जब तुम जैमिनिके सन्देहोंका जवाब दोगे तब हमारे शापसे छूटोगे। यह मैंने तुम लोगों पर कृपाकरके आशीर्वाद दिया है ॥७८॥ हे भगवन्! पूर्व जन्ममें इस प्रकार हमारे पिताने हम को शाप दिया। फिर बहुत दिनोंके बाद दूसरी योनिमें गये ॥७९॥ हमारा जन्म लड़ाईके बीच हुआ, और आपने हमें पाला॥ हे द्विजवर! इस प्रकार हम पक्षी हुए हैं ॥८०॥ संसारमें कोई ऐसा नहीं है जो भाग्यके फेरमें न पड़े जीवमात्रके सब काम भाग्यहीके अधीन हैं ॥८१॥ पक्षियोंकी यह बात सुनकर भगवान् शमीक मुनि अपने पास बैठे हुए ब्राह्मणोंसे बोले कि मैंने तो पहले ही तुमसे कहा था कि यह पक्षी साधारण जीव नहीं है कोई विचित्र जीव हैं जो ऐसे घमसान युद्धमें भी नहीं मरे ॥८३॥ फिर शमीकने उन पक्षियोंको प्रसन्न होकर जानेकी आज्ञादी। वह अनेक वृक्ष और लताओंसे सुशोभित तथा संपूर्ण पर्वतोंमें प्रधान हिमालय पर्वतपर चलेगये ॥८४॥ तबसे आजतक वह धर्मात्मा पक्षी उस विंध्य पर्वतपर तप तथा वेदपाठ करते और समाधि लगाए रहते हैं ॥८५॥ इस तरह उन मुनिवर शमीकसे आदर पाकर पक्षीरूपधारी मुनिके लड़के विंध्य पर्वतके वनमें पवित्र नदीके तीर पर तप करते हुए निवास करते हैं ॥८६॥

चौथा अध्याय ।

जैमिनिके चार प्रश्न और पक्षियोंके उत्तर ।

फिर मार्कण्डेय मुनि बोले कि वह द्रोणतनय पक्षी ज्ञानी हुए हैं और इस समय विंध्य पर्वत पर रहते हैं। उनकी सेवा करके उनसे पूछो ॥१॥ मार्कण्डेयकी यह बात सुनकर जैमिनि मुनि जहां वह धर्मात्मापक्षी रहते थे वहां चलेगये ॥२॥ उस पर्वतके पास पहुंच वेद पाठकी ध्वनि सुनकर जैमिनि आश्चर्यमें पड़कर सोचने लगे ॥३॥ यह मुनिकुमार यद्यपि तिर्यक् योनि पक्षीके कुलमें उत्पन्न हैं तो भी सरस्वती इन्हें नहीं छोड़ती यह बड़े आश्चर्यकी बात है। वत्स ! देखो यह पक्षी कैसा वेदपाठ करते हैं जिसमें कण्ठ तालु आदि स्थानोंके उच्चारणकी सुन्दरता प्रगट होती है। उचित स्थानमें विश्राम होता है। स्वरमें टूटता नहीं होती, साफ साफ शब्द सुन पड़ते हैं, और किसी प्रकारका दोष नहीं जान पड़ता ॥५॥ इससे स्पष्ट है कि बन्धु मित्र तथा घरकी सब प्यारी चीजें साथ छोड़ देती हैं पर सरस्वती नहीं छोड़ती ॥६॥ इसतरह सोचते हुए जैमिनि पहाड़की गुफामें घुसे। वहां जाकर पत्थरकी चट्टान पर बैठे हुए पक्षियोंको देखा ॥७॥ उनको शुद्ध मुखसे पाठ करतेहुए देखकर शोक और आनन्दमें डूबकर वह उन सबसे बोले ॥८॥ हे पक्षीवर ! आप का कल्याण हो। मैं व्यासका शिष्य जैमिनि हूं और आप का दर्शन करनेके लिये आया हूं ॥९॥ आपके पिताने आप को शाप दिया यह विचार कर कभी क्षोभ न करना चाहिये, यद्यपि आप उन्हींके शापसे पक्षी हुए हैं तो भी सर्वथा भाग्यहीको प्रधान समझना चाहिये ॥१०॥ ऐसा देखा गया है कि कितने अच्छे धनीके कुलमें पैदा हुए फिर जब धन नष्ट होगया तब वह [illegible] भीख [illegible]

[illegible] ॥११॥ कितने लोग ऐसे देखे गये हैं कि

पहले उनके दरवाजे पर याचकोंकी भीड़ लगी रहती थी फिर कुछ दिनोंके बाद वही दूसरेके दरवाजे भीख मांगनेके लिये याचक बन कर गये। कितने अपनी वीरतासे दूसरोंको मारते थे वही समयके फेरसे दूसरोंके हाथसे मरे। कितने दूसरोंको ऊंचे आसनसे गिराते थे वही तपके नष्ट होजानेसे दूसरोंके हाथसे गिरे ॥१२॥ मैंने ऐसा उलट फेर बहुत देखा। यह समूचा जगत भाव अभाव(१)से सदा भरा हुआ है ॥१३॥ यह बात सोचकर आपलोग मनमें शोक न करें। ज्ञानका यही फल है कि शोक और आनंदको बराबर समझे पीछे वह पक्षी पाद्य अर्घ्यसे जैमिनिकी पूजाकर प्रणाम करके कुशल मंगल पूछने लगे ॥१५॥ फिर अपने पंखोंकी हवासे उनकी थकावट मिटाकर सुखसे आसनपर बिठलाकर सुखी करके व्यासके शिष्य तपोनिधि जैमिनिसे हाथ जोड़कर वह पक्षी बोले ॥१६॥ आज हमलोगोंका जन्म सफल होगया प्राण पवित्र होगया। कारण यह कि जिन चरणारविन्दोंकी वन्दना देवता लोग करते हैं उन्हें हमलोग आज अपनी आंखों देख रहे हैं ॥१७॥ हे विप्र! पिताके क्रोधरूपी जो आग हम लोगोंकी देहमें धधक रही थी वह आज आपके दर्शनरूपी जलसे बुझाकर ठंढी होगई ॥१८॥ हे ब्रह्मन्! आपके आश्रममें रहनेवाले मृग पक्षी वृक्ष लता फूल फल कुश घास आदि कुशलसे हैं तो? ॥१९॥ अथवा आपसे बड़े आदरसे यह पूछना ही व्यर्थ है। जो आपके संगमें रहते हैं क्या वह कभी दुखी होसकते हैं? क्या उनका कभी अमंगल हो सकता है? ॥२०॥ आप प्रसन्न होकर अपने आनेका कारण हमसे कहें। आपका संग देवताओंके संगसे कहीं बढ़कर है। आज हमलोगोंका कौनसा भाग्योदय हुआ कि आपका दर्शन हमने अपनी आंखोंसे पाया ॥२१॥ जैमिनि बोले हे पक्षीवर! सुनिये जिस कारणसे मैं नर्मदा नदीके जलसे सींची हुई अति मनोहर विंध्यकी इस गुफामें आया हूं ॥२२॥ मैं

(१) भाव—किसी चीजका रहना। अभाव—किसी चीजका न रहना।

महा भारतके संदेहोंको छुड़ानेके लिये भृगुकुलभूषण महात्मा मार्कण्डेय मुनिके पास गया था ॥२३॥ उनकी शरणमें जाकर मैंने महाभारतके अनेक सन्देह पूछे। पूछने पर उन्होंने कहा कि विंध्यपर्वत पर द्रोणपुत्र महात्मा पक्षी लोग रहते हैं वह तुम्हारे सब सन्देहोंको अच्छी तरह दूर करदेंगे ॥२४॥ उनकी आज्ञा पाकर मैं इस पर्वत पर आयाहूं। आप मेरी सब बातें सुनकर उत्तर दें ॥२५॥ पक्षियोंने कहा जो हम को मालूम है वह अच्छी तरह कहेंगे। आप निश्चिन्त होकर सुनें। जो बात हम जानते हैं वह आपसे क्यों न कहेंगे ॥ २६ ॥ हे विप्रवर! यद्यपि चारों वेद, सब धर्म्म शास्त्र, छओं अङ्ग, और दूसरे वेद सम्मत ग्रन्थोंकी बातें हम जानते हैं वह कहेंगे तौभी प्रतिज्ञा नहीं कर सकते ॥२८॥ इस कारण आप निडर होकर जो सन्देह भारतमें हैं वह कहिये, हम आपको उचित उत्तर देंगे ॥ २९ ॥ जैमिनने कहा भारतमें जिन जिन बातोंमें मुझे सन्देह हुए हैं उन्हें आपसे कहता हूं सुनिये और उनके सन्तोषदायक उत्तर दीजिये ॥ ३० ॥ जनार्दन भगवान् वासुदेव तो संपूर्ण जगत्के आधार हैं पृथिवी, जल, तेज, आदि कारणोंके उत्पन्न करनेवाले हैं और रजोगुण, तमोगुण, तथा सत्वगुणसे रहित हैं। फिर वह क्यों मनुष्य हुए!॥ ३१ ॥ और द्रुपदकी पुत्री कृष्णा द्रौपदी पांचों पाण्डवोंकी रानी कैसे हुई? इसमें बड़ा सन्देह है ॥३२॥ फिर महाबली बलदेवने तीर्थयात्रा करके अपनी ब्रह्महत्या छुड़ाई इसका क्या कारण? ॥३३॥ द्रौपदीके बिना व्याहे बालक महारथी, महाबली, पाण्डवोंसे रक्षित होकर भी अनाथकी तरह क्यों मारे गये? ॥ ३४ ॥ भारतके इन सब सन्देहोंको दूर कीजिये जिससे मैं कृतार्थ होकर सुखसे अपने घर लौट जाऊं ॥ ३५ ॥ पक्षियोंने कहा देवताओंके स्वामी, प्रभु, अप्रमेय पुरुष, सदा रहने वाले, नाशरहित, चार शरीर धारण करनेवाले, तीनों गुणोंसे भरे तीनों गुणोंसे रहित, बड़े, ऊंचे, मोक्षके स्वरूप, यज्ञके अङ्ग, ऋक्के अङ्ग, और वेदान्तोंमें वर्णित हैं। जिनसे छोटा

दूसरा नहीं है तथा जिनसे बड़ा दूसरा नहीं है, जो इस जगतमें व्यापक हैं, जिनका जन्म नहीं हुआ, जो जगतको पैदा करते हैं प्रगटहोना, गुप्तहोना, देख पड़ना, न देख पड़ना इन सबसे विचित्र हैं जिन्होंने इस संसारको बनाया और अन्तमें संहार कर दिया ऐसे भगवान विष्णुको नमस्कार। जो आदिदेव हैं जो निज मुखसे ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेदको प्रगट करके जगतको पवित्र करते हैं उन ब्रह्माको ध्यानसे नमस्कार। जिनके एक बाणसे जीते हुए, राक्षस लोग भयके मारे यजमानोंके यज्ञ नहीं बिगाड़ सकते ऐसे भगवान शिवको प्रणाम करके विचित्र काम करनेवाले व्यासका संपूर्ण मत हम कहेंगे। श्रीव्यासजीने महाभारतकी कथा कहनेके बहाने सब धर्मोंको भलीभांति कहा ॥ ४२ ॥ तत्वोंके जाननेवाले मुनिलोग कहते हैं कि "नारा" नाम है जलका वह जल जिनका "अयन" अर्थात् मकान है वह "नारायण" हैं ॥ ४३ ॥ वह भगवान देव नारायण प्रभु सब जगत व्यापक होकर सगुण तथा, निर्गुण रूपसे चार होकर रहते हैं ॥ ४४ ॥ एक रूप अवर्णनीय है, पण्डित लोग उसे श्वेत रङ्ग कहते हैं उसके चारोंओर धधकती हुई ज्वाला घिरी रहती है वह योगियोंका परम निष्ठारूप है, वह दूर तथा समीप रहनेवाला है, सब गुणोंसे रहित है उसका नाम वासुदेव है, वह अहङ्कार रहित देख पड़ता है, उसमें रूप है नरङ्ग वह केवल भावसे रूपवान मालूम पड़ता है। वह सदा शुद्ध स्वरूप है, और एकही रूपमें रहता है ॥४७॥ दूसरे रूपका नाम "शेष" है वह नीचे रह कर अपने सिर पर पृथिवी धारण करता है। वह तामसी कहलाता है और तिर्यक् योनि अर्थात् कीटके कुलमें है (सर्प है) ॥ ४८ ॥ तीसरा रूप प्रजा पालनमें तत्पर रह कर सब काम करता है वह सत्वसे भरा पूरा है और धर्मकी स्थिति करने वाला है ॥ ४९ ॥ चौथा रूप जलके बीच सांपके बिछौने पर सो रहा है वह रजोगुणसे भरा रहता है और सदा संसार बनाता रहता है ॥ ५० ॥ वह तीसरा रूप हरिका है, प्रजापालनमें तत्पर

रहता है, और सदा पृथिवीतलमें धर्मको स्थिर करता है ॥ ५१ ॥ धर्मके नाश करने वाले अभिमानी राक्षसोंको मारता है, और देवता तथा धर्मकी रक्षा करनेवाले और दूसरे सन्त, पुरुषोंको पालता है ॥ ५२ ॥ हे जैमिनि! जब जब धर्म निर्बल होने लगता है और अधर्म बढ़ने लगता है तब तब वह अपना रूप प्रगट करता है ॥ ५३ प्रथम बराह बनकर पानी फाड़कर, एकही दांत पर कमलके समान पृथिवीको लेकर पतालसे निकले ॥ ५४ ॥ नरसिंह रूप बनाकर हिरण्यकशिपुको मारा और विप्रचित्ति आदि दूसरे दैत्योंका भी नाश किया ॥ ५५ ॥ उसने वामन आदि अनेक अवतार धारण किये जिनकी गिनती नहीं होसकती। इस समय उसका एक अवतार मथुरामें है वह सात्विकी मूर्त्तिसे अवतीर्ण हुआ है, उसका नाम प्रद्युम्न है वह प्रजाओंकी रक्षा करनेके लिये ठहरा है ॥ ५७ ॥ वह भगवान वासुदेवकी इच्छासे देवयोनि, मनुष्य योनि और तिर्यक् योनि में रह कर उनका स्वभाव ग्रहण करता है ॥५८॥ यह तो मैंने तुमसे कहा। अब सब काम करनेवाले प्रभु विष्णु जिस प्रकार मनुष्य हुए वह बात तुम्हें समझाता हूं ॥ ५९ ॥

पांचवां अध्याय।

द्रौपदीके पांच पति क्यों थे ?

प्रजापति ब्रह्माका बेटा त्रिशिरा नीचे सिर लटकाकर उग्र तप करता था। इन्द्रने उसे इन्द्रासन लेनेके डरसे मार डाला ॥१॥ त्रिशिराके मारे जानेके बाद ब्रह्महत्याके दोषसे इन्द्रका सब तेज एक दम नष्ट होगया ॥२॥ वह तेज इन्द्रसे छूटकर धर्ममें चला गया, तब इन्द्र एकदम तेजसे खाली होगये ॥३॥ इसके बाद ब्रह्मा अपने पुत्र का मरना सुनकर बड़े क्रोधसे अपनी एक जटा तोड़कर यह वचन

बोले कि आज तीनों लोकके जीव तथा सब देवता और ब्रह्म-हत्या करनेवाला इन्द्र हमारा बल देखे जिसने तप करते हुए मेरे पुत्रको मारा। ऐसा कहकर क्रोधसे आंखें लाल करके वह जटाको आगमें डाल दिया ॥६॥ उस आगसे बड़ा भारी शरीर धारण करनेवाला, बड़े बड़े दांतोंसे डरावना, चिकने काजलके समान काला, धधकती हुई लहरसे लिपटा हुआ वृत्र नामका महा असुर निकला ॥७॥ वह महाबली, ब्रह्माके तेजसे भरा हुआ इन्द्रका वैरी हुआ। वाणके वेगके समान शीघ्रतासे दिन दिन बढ़ने लगा, और बड़ाही बली हुआ ॥८॥ इन्द्रने समझ लिया कि यह महादैत्य मुझे मारनेको तय्यार है इससे डरकर उससे मित्रता करनेके लिये सातों ऋषियोंको भेजा ॥९॥ सब जीवोंकी भलाई चाहनेवाले सातों ऋषियोंने प्रसन्न होकर इन्द्र और वृत्रासुरमें मेल करा दिया और दोनोंको अपने अपने वचन पर दृढ़ रहनेके लिये प्रतिज्ञा कराली ॥१०॥ जब इन्द्रने धोखा देकर वृत्रासुरको मार डाला तब इन्द्रकी देहसे बल निकलकर वायुमें चला गया। कारण यह कि वायु सब बलोंके स्वामी हैं और सबमें गुप्त रूपसे रहनेवाले हैं। अब इन्द्र एकदम निर्बल होगये ॥१२॥ जब इन्द्रने गौतमका रूप धरकर अहल्याका धर्म्म बिगाड़ा तब इन्द्रका रूप नष्ट होगया ॥१३॥ इन्द्र के सब अंगोंकी परम सुन्दरता दुष्ट इन्द्रको छोड़कर अश्विनीकुमार में चली गई ॥१४॥ धर्म्मसे विहीन, तेजरहित, निर्बल तथा कुरूप इन्द्रको हीन समझकर दैत्य उसे जीतनेका उपाय करने लगे ॥१५॥ वह दैत्य इन्द्रको जीतनेकी इच्छासे बड़े बड़े बली राजाओंके कुलमें उत्पन्न होने लगे ॥१६॥

कुछदिनों बाद उनके बोझसे दुःखित होकर पृथ्वी सुमेरुकी चोटी पर देवताओंकी सभामें गई ॥१७॥ उनके बड़े बोझसे दबी हुई पृथ्वी दैत्य दानवोंसे पाये हुए दुःखकी सब बातें कहने लगी। बोली, हे देवगण! तुम लोगोंने जो बड़े बड़े बली असुरोंको मारा वह सब मनुष्य लोकमें राजाओंके घर पैदा हुए हैं ॥१८॥ उनके पास कई

अक्षौहिणी सेना है जिनके बोझसे दबकर मैं पातालमें चली जारही हूं। तुम ऐसा उपाय करो जिससे मेरा दुःख छूटे ॥२०॥ यह सुनकर देवतागण प्रजाके उपकार और पृथ्वीका भार उतारनेके लिये स्वर्गलोकसे पृथिवी पर अपने अपने तेजसे उतरने लगे ॥२१॥ तब धर्मने इन्द्र देहजात अपना तेज स्वर्गसे गिराया उसीसे कुन्तीके गर्भसे महातेजस्वी राजा युधिष्ठिर हुए ॥२२॥ जो इन्द्रसम्बन्धीय तेज पवनने स्वर्गसे गिराया उससे भीम पैदा हुए। इन्द्रके आधे तेजसे अर्जुन हुए और माद्रीके गर्भसे इन्द्रका लावण्य धारण करनेवाले अश्विनी कुमारों द्वारा महातेजस्वी यमज नकुल और सहदेव उत्पन्न हुए। इस तरह इन्द्र अपने पांच रूप बनाकर पृथिवी पर उतरे ॥२४॥ उन पांचोंकी स्त्री महासौभाग्यवती कृष्णा (द्रौपदी) अग्निसे उत्पन्न हुई ॥२५॥ एकही इन्द्रकी स्त्री द्रौपदी है दूसरे किसीकी नहीं, योगीश्वर लोग अपने योगबलसे बहुत शरीर धारण करते हैं ॥२६॥ पांचोंकी एक स्त्री हुई यह बात हमने तुमसे कही अब मुनो बलदेव जिस तरह सरस्वतीके समीप गये ॥२७॥

छठा अध्याय।

बलदेवजीकी तीर्थयात्रा।

पक्षियोंने कहा कि हलधर बलराम अर्जुनसे श्रीकृष्णकी बड़ी प्रीति देख सोचने लगे कि कौन काम करें जो भला हो ॥१॥ कृष्णके बिना मैं अकेला दुर्योधनके पास नहीं जासकता। पाण्डवोंके पास रहकर कैसे राजा दुर्योधनको मारूंगा जो कि मेरा दामाद और शिष्य है। इस कारण मैं अर्जुन या दुर्योधन किसीके पास न जाऊंगा ॥३॥ जबतक पाण्डव और कौरवोंका नाश न होजायगा तबतक मैं तीर्थोंमें घूमता आत्माको पवित्र करूंगा ॥४॥ श्रीकृष्ण

अर्जुन और दुर्योधनको सामने बुलाकर अपनेमनमें यहबातें सोचतेहुए बलदेवजीअपनी सेनाके साथ द्वारकामें चले आये ॥५॥ हृष्टपुष्ट जनोंसे भरीपूरी द्वारकामें आकर तीर्थयात्राको जानेके पहले दिन बलरामने खूब मद्य पी और रैवत पर्व्वतके समीप लगे हुए पुष्पोद्यानकी ओर अप्सराके समान सुन्दरी गर्बीली रेवतीका हाथ पकड़कर चले ॥७॥ स्त्रियोंके झुण्डके बीच होकर लटपटे पैर जमीन पर रखते हुए मत-वाले बने वीर बलदेव उस अत्यन्त रमणीय बनमें जापहुंचे ॥८॥ जहां सब ऋतुओंमें होनेवाले फल और फूलोंसे लदे वृक्ष खड़े थे जिन पर वन्दर खेल कूद मचा रहे थे। जहां छोटे छोटे तालाब जलसे भरे थे जिनमें कमलोंके वन शोभा देरहे थे ॥९॥ जहां अनेक प्रकार के पक्षी प्रीति पैदा करनेवाले मदसे कोमल और सुननेमें सुन्दर मीठी बोली बोल रहे थे वह बलदेवजीने बड़ी चाहसे सुनी ॥१०॥ सब ऋतुओंके फूल और फलोंसे लदकर शोभायमान पेड़ लगे थे उन पर पक्षीगण कलरव कर रहे थे। वह उन्होंने अच्छी तरह देखे ॥११॥ आम, अमरुद, नारियल, तिन्दुक, बेल, अंजीर, अनार, बीजौरा, कटहल, बड़हर, केला, कदम्ब, पारावत, कंकोल, नलिन, अमल बेंत, भिलावा, आमला, तेंदुआर, इंगुदी, करमर्द, हर्रे, बहेड़ा, अशोक, पुन्नाग, केतकी, मौलिसरी, चम्पा, सतीवन, कनैल, मालती, पारिजात, कोविदार, मन्दार, बैर, पाटल, देवदारु, सखुआ, ताड़, तमाल, ढाक, वंजुल आदि वृक्षोंको देख बलदेव प्रसन्न हुए ॥१७॥ चकोर, शतपत्र, भृङ्गराज, तोता, कोयल, चिड़िया, हारीत, जीव-जीवक, प्रियपुत्र, चातक आदि अनेक प्रकारके पक्षियोंकी सुहावनी बोली सुनकर सुखी हुए ॥१९॥ अत्यन्त मनोहर तालाब देखकर आनन्दित हुए। जिनके जल अत्यन्त स्वच्छ थे उनमें कुमुद श्वेतकमल नीलकमल, लालकमल खिले थे। उनके तीर पर कलहंस, चकवा, दकई, जलकुक्कुट, वतक, हंस आदि पक्षी शोर मचा रहे थे। जलके बीच अनेक प्रकारकी मछलियां तथा कछुए तैर रहे थे ॥२२॥इसप्रकार मनोहर वन देखतेभालते स्त्रियोंके संग चलतेफिरते

सुन्दर लतामण्डपमें जा पहुंचे ॥२३॥ उसके आगे जाकर विश्वामित्र भार्गव, भारद्वाज, गौतम तथा और पवित्र ब्राह्मणवंशमें उत्पन्न होने वाले ब्राह्मणोंका दर्शन किया। वह बैठकर आपसमें कथा वार्ता कर रहे थे। कोई काले हरिनका चमड़ा ओढ़े थे, कोई कुशके आसन पर बैठे थे। उनके बीचमें आसन पर बैठकर सूत जी सुन्दर कथा कह रहे थे। उसमें पुराने देवर्षिजनोंके चरितोंका वर्णन था ॥२६॥ बलदेवकी मदसे लाल लाल आंखें देख सब समझ गये कि इस समय यह मतवाले होरहे हैं इससे वह झटपट उठ खड़े हुए ॥२७॥ और बलदेवजीका आगत स्वागत करनेलगे। किन्तु सूत उन्हें देख न उठे न उनका आगत स्वागत किया ॥२८॥ इस कारण सम्पूर्ण दानवोंको डरानेवाले, हल धारण करनेवाले महाबली बलदेवने क्रोधसे आंखें लाललालकरके सूतको मारडाला ॥२९॥ पुराणतत्वज्ञ सूतके मर कर ब्रह्मपद पाने पर काले मृगका चर्म धारण करनेवाले ब्राह्मण उस बनसे भाग निकले ॥३०॥ तब हलधर अपनेको यह समझकर सोचने लगे कि मैंने यह बड़ा भारी पाप किया ॥३१॥ सूतको मैंने मारा। उसने ब्रह्मपद पाया। और ब्राह्मण मुझे देखतेही इस बनसे भाग निकले ॥३२॥ मेरे शरीरका लोहेके समान कठिन अहंकार दुःखदायी है। मैं अपनेको ब्रह्मघातीके समान पापी समझता हूं ॥३३॥ दारु, मद, अभिमान, ढिठाई—इन सबको अनेक धिक्कार है जिनके होनेसे मैंने यह बड़ा भारी पाप किया है ॥३४॥ इस ब्रह्महत्याको छुड़ानेके लिये बारह वर्षका व्रत करूंगा। अपने क्षत्रिय धर्मको प्रगट करता हुआ इस पापका प्रायश्चित्त करूंगा ॥३५॥ इस समय मैंने जो तीर्थयात्रा प्रारम्भ की है उसी यात्रामें लौटकर सरस्वती नदीमें स्नान करनेको चला जाऊंगा ॥३६॥ इसी कारण बलराम सरस्वती चले गये। अब पाण्डवोंकी कथा कहता हूं सो सुनो ॥३७॥

सातवां अध्याय।

द्रौपदीके पांचों पुत्रोंके विनब्याहे मरनेका कारण।

पहले त्रेतायुगमें राजर्षि राजा हरिश्चन्द्र हुए। वह बड़े धर्मात्मा, पृथिवीके पालनेवाले राजाओंमें प्रधान थे ॥१॥ उसके राज्य में अन्नका अकाल नहीं पड़ता था, किसीको रोग न होता था; प्रजामें अकालमृत्यु नहीं होती थी, पाप कोई न करता था ॥२०॥ कोई धन, बल वा तपका अभिमान नहीं करता था। स्त्रियां सदा युवतीही रहती थीं ॥३॥ उस राजाने किसी समय हरिणके शिकारकेलिये दौड़तेहुए "रक्षाकरो, बचाओ" आदि स्त्रियोंके मुंहसे निकले हुए शब्द सुने ॥४॥ वह महाबाहु राजा उस हरिणको छोड़कर "मत डरो, मत डरो" कहते हुए लौटे और बोले कि कौन ऐसा दुष्ट है जो मेरे रहते ऐसी अनीति कर रहा है ॥५॥ यह चिल्लाहट मिटानेके लिये राजा उसी ओर पलटे जिधरसे वह रोने की आवाज आरही थी। इसी बीचमें शिवके प्रियपुत्र गणेश सोचने लगे कि वीर्य्यवान और व्रती विश्वामित्र बड़े भारी तप करते हुए उन विद्याओंका साधन करते हैं जिन्हें शिव आदि योगी न साध सके ॥७॥ क्षमा, मौन, चित्त आदिको अपने वशमें रखकर यह उन्हें साधन करते हैं और वह चिल्ला चिल्लाकर रोरही हैं तो मैं इस समय कौन उपाय करूं जिससे यह सिद्ध न हों ॥८॥ यह कुशवंशोत्पन्न विश्वामित्र बड़े तेजस्वी हैं, हम निर्बल हैं, और यह डरसे चिल्ला रही हैं। इसका उपाय कठिन जान पड़ता है ॥९॥ अथवा 'मत डरो, मत डरो' कहता हुआ यह राजा चला आता है तो इसीके शरीरमें घुसकर तुरत अपना कार्य्य साधन कर लूं ॥१०॥ ऐसा सोचकर विघ्नराज गणेश राजाके शरीरमें घुस गये। उनके प्रभावसे राजा हरिश्चन्द्र क्रोधकर बोले ॥११॥ बल और प्रतापसे

तपते हुए मेरे ऐसे राजाके रहते कौन ऐसा पापी है जो धधकती हुई आग कपड़ेमें बांध रहा है कौन ऐसा है जो मेरे धनुषसे निकल कर चारों दिशाओंको प्रकाशित करनेवाले बाणोंसे अंग अंग बिधकर महानिद्रामें सोना चाहताहै ॥१३॥ राजाकी यहबात सुनकर विश्वामित्रने क्रोध किया। उनके क्रोध करतेही सब विद्याएं एक पलमें नष्ट होगईं ॥१४॥ राजा तपोनिधि विश्वामित्रको देखकर डरसे पीपलके पत्तेकी तरह कांपने लगे ॥१४॥ जब मुनिने पुकारा "रे दुष्ट खड़ा रह!" तब राजा तुरत हाथ जोड़ उनके पांवों पर पड़कर बड़ी विनतीसे बोले ॥१६॥ हे भगवन्! यह मेरा धर्म्म है मैंने कुछ अपराध नहीं किया है। मैं अपने धर्म्म पर हूं इस कारण मुझपर क्रोध करना उचित नहीं ॥१७॥ राजाओंको उचित है कि धर्म्म-शास्त्रके अनुसार दानदें, रक्षा करें, और धनुष उठाकर युद्ध करें ॥१८॥ विश्वामित्रने कहा, हे राजा! यदि तुम्हें पापका भय है तो तुम बताओ किसे देना चाहिये, किसकी रक्षा करनी चाहिये और किसके संग लड़ना चाहिये ॥१९॥ हरिश्चन्द्रने उत्तर दिया अच्छे ब्राह्मणोंको दान देना चाहिये, डरेहुएकी रक्षा करनी चाहिये और शत्रुओंसे लड़ना चाहिये ॥२०॥ विश्वामित्रने कहा—हे राजन्, यदि आप राजधर्म्म अच्छी तरह जानते हैं तो मैं यज्ञ करना चाहता हूं आप मुझे ब्राह्मण समझकर मनमानी दक्षिणा दीजिये ॥२१॥ राजा यह सुनकर मनमें बहुत प्रसन्नहुए और ऐसा समझनेलगे मानो उनका फिरसे जन्म हुआहै। वह विश्वामित्रसे बोले ॥२२॥ हेभगवन्! क्या आपको दें, आप भय छोड़कर मांगिये। यदि दुर्लभ वस्तु भी आप मांगेंगे तो वह दी हुई समझिये ॥२३॥ सोना, चांदी, पुत्र, स्त्री, शरीर, प्राण, राज्य, पुर अथवा लक्ष्मी जो इच्छा हो मांगिये ॥२४॥ विश्वामित्रने कहा हे राजा! यदि आप देनेके लिये प्रतिज्ञा करते हैं तो मैं मांगता हूं। आप पहले मुझे जो राजसूय यज्ञकी दक्षिणा (सर्वस्व) है वह दीजिये ॥२५॥ राजाने कहा हे ब्रह्मन्! मैं राजसूयकी दक्षिणा आपको दूंगा, कहिये कितनी और क्या

पुत्र धन तथा घरसे क्या ? यह सब छोड़कर हम लोग तुम्हारे पीछे छायाकी तरह चलेंगे ॥५३॥ हा नाथ ! हा महाराज ! हा स्वामिन् ! क्यों हम लोगोंको छोड़कर चले जाते हो। जहां तुम रहोगे वहीं हम रहेंगे। जहां तुम रहोगे वहीं हम लोगोंको सुख मिलेगा। जहां तुम रहो वही नगर है। जहां तुम रहो वही स्वर्ग है ॥५४॥ नगर निवासियोंकी ऐसी शोकभरी वाणी सुनकर राजा शोकाकुल होकर प्रजा पर दया करके मार्गमें कुछ काल तक ठहर गये ॥५५॥ विश्वामित्र भी नगर निवासियोंकी बातोंसे राजाको घबराया देखकर क्रोध और दाहसे आंखें लाल करके राजासे बोले ॥५६॥ रे नीच-चरित्रवाले ! टेढ़ी बात बोलनेवाले ! झूठे ! तुझे धिक्कार। मुझे राज्य देकर तू फिर लौटालेना चाहता है ॥५७॥ विश्वामित्रकी यह कठोर बात सुनकर राजा कांप उठे और 'मैं जाता हूं" कहकर अपनी प्यारी रानीका हाथ पकड़कर खींचते हुए चले गये ॥५८॥ परिश्रमसे थकी हुई सुकुमारी प्यारी रानीको राजा खींचही रहे थे कि विश्वामित्रने झट लाठी उठाकर रानीको मारा। राजा यह देखकर बहुत दुखी हुए पर शान्त रहे। केवल यह कहा "मैं तो जाही रहा हूं" ॥६०॥ राजा हरिश्चन्द्रकी यह दुर्दशा देखकर परम दयालु विश्वेदेवा बोल उठे ॥६१॥ यह पापी विश्वामित्र न जाने किस लोकमें जायगा ! इस ने यज्ञ करनेवाले राजाओंमें प्रधान राजा हरिश्चन्द्रको इस प्रकार राज्यसे उतारा ॥६२॥ अब हम लोग किसके महायज्ञमें श्रद्धासे पवित्र मन्त्रसे दिया हुआ और विधिसे बनाहुआ सोम पीकर तृप्त होंगे ॥६३॥ उनकी यह बात सुनकर विश्वामित्रने बड़े क्रोधसे शाप दिया कि तुम सब मनुष्य होजाओ ॥६४॥ जब उन्होंने बहुत विनती की तब विश्वामित्रने प्रसन्न होकर कहा कि मनुष्य होने पर भी तुम्हारे लड़के लड़कियां न होंगी। व्याह न होगा, अभिमान न होगा, काम क्रोध न होगा और फिर तुम देवता होजाओगे ॥५६॥ पक्षियोंने कहा हे जैमिनि ! वही देवता अपने अपने अंशोंसे कुरुके

घरमें पाण्डवोंकी स्त्री द्रौपदीके गर्भसे पांच पुत्र हुए ॥६७॥ यही कारण है कि पांचों महारथी पाण्डवपुत्रोंका उस शापके वश व्याह न हुआ ॥६८॥ पाण्डवपुत्रोंकी यह कथा मैंने कही। तुम्हारे चारों प्रश्नोंका उत्तर होगया। अब तुम क्या सुनना चाहते हो, कहो ॥६९॥

—o—

आठवां अध्याय।

राजा हरिश्चन्द्रकी कथा।

जैमिनि बोले, आपने मेरे सबप्रश्नोंका उत्तर अच्छी तरह दिया। किन्तु हरिश्चन्द्रकी कथा सुननेका मुझे बड़ा चाव है ॥१॥ हे पक्षियों के राजा! महात्मा राजा हरिश्चन्द्रने बड़ा दुःख पाया! क्या कभी उन्हें फिर सुख भी मिला? ॥२॥पक्षियोंने कहा—राजा विश्वामित्रकी बात सुनकर बहुत दुखी हुए और अपनी रानी तथा छोटे बालकको लेकर धीरेसे चले ॥३॥ काशी शिवपुरी है इस पर मनुष्यका कुछ भी अधिकार नहीं है ऐसा जानकर परमपवित्र काशीपुरीमें पहुंचे ॥४॥ अपनी स्त्री तथा पुत्रको लिये काशीमें घुसतेही राजाने विश्वामित्रको आगे खड़ा देखा ॥५॥ राजा विश्वामित्रको देखतेही प्रणाम कर हाथ जोड़कर बोले ॥६॥ हे मुने! यह मेरे प्राण, यह मेरी स्त्री और यह मेरा लड़का तैयार है इनमें जिससे आपका कुछ काम हो उसे लेलीजिये ॥७॥ अथवा और कोई आपके मनके योग्य काम हो वह कहिये ॥८॥ विश्वामित्रने कहा हे राजर्षि! एक महीना पूरा होगया। यदि तुम्हें अपनी बात याद हो तो मुझे राजसूय वाली दक्षिणा दे दे ॥९॥ हरिश्चन्द्रने कहा हे तपपोधन विप्र! महीना आज पूरा होता है। अभी आधा दिन बाकी है संध्या तक ठहरिये दक्षिणा चुका देता हूं ॥१०॥ विश्वामित्रने कहा अच्छा महाराज, ... लौटकर फिर आता हूं। यदि आज दक्षिणा न दोगे तो

दक्षिणा आप चाहते हैं? ॥२६॥ विश्वामित्रने जवाब दिया हे सब धर्मों के जाननेवाले राजा! सागर, पर्वत, गांव, नगरसे परिपूर्ण समूची पृथिवी, रथ, घोड़े, हाथियोंसे भराहुआ समूचा राज्य, अन्नों से भरे हुए कोठे और खजाने अथवा जो कुछ तुम्हारा है सब मुझे दे दीजिये। अपना धर्म भी दे दीजिये जो मरनेके पीछे भी संग ही रहता है। अधिक कहां तक कहें स्त्री पुत्र और शरीर छोड़ कर अपनी सब चीजें देदीजिये ॥२९॥ राजा मुनिका बचन सुनकर कुछ भी उदास न हुए वरञ्च प्रसन्न मनसे हाथ जोड़कर बोले "अच्छा" ॥३०॥ विश्वामित्रने कहा यदि आपने अपना राज्य, पृथिवी, सेना और धन आदि सब पदार्थ दे दिये और मैं तपस्वी इस राज्यका मालिक बन गया तो अब आज्ञा किसकी चलेगी ॥३१॥ हरिश्चन्द्रने कहा भगवन्! जिस समय मैंने संपूर्ण सम्पत्तिसे भरीहुई पृथिवी आपको नहीं दी थी उस समय भी आपही स्वामी थे अब तो आपही राजा हुए तब पूछनाही क्या है? ॥३२॥ विश्वामित्रने कहा हे राजा! यदि तुमने मुझे समूची पृथिवी देदी तो अब कर-धनी कुण्डल आदि गहने उतारकर पेड़की छाल पहनो और स्त्री पुत्र लेकर जहांतक मेरा राज्य है उसके बाहर निकलजाओ ॥३४॥ राजा अच्छा कहकर अपनी रानी शैव्या और छोटे बालक पुत्रको लेकर चलने लगे। तब विश्वामित्रने उनको राह रोककर कहा कि इस महायज्ञकी दक्षिणा दिये बिना कहां चले जाते हो ॥३६॥ हरि-श्चन्द्रने कहा भगवन्! मैंने निष्कण्टक सारा राज्य आपको देदिया अब यह तीन शरीर बच गये हैं ॥३७॥ विश्वामित्रने कहा कुछ हो मेरी यज्ञकी दक्षिणा अवश्य देनी पड़ेगी। जो कही हुई दक्षिणा ब्राह्मणको नहीं देता उसका नाश होजाता है ॥३८॥ राजसूय यज्ञ में तो उचित है कि जबतक ब्राह्मण दक्षिणासे तृप्त न होजाय तब तक उसे देताही जाय ॥३९॥ देनेकी प्रतिज्ञा करके देना उचित है जो अपनेको मारनेके लिये आवे उससे युद्ध करना चाहिये और भयभीतकी रक्षा करना चाहिये यह बातें तुम्हींने

तो कहो है। राजाने कहा भगवन् ! इस समय मेरे पास कुछ नहीं है मैं समय पाकर आपको देदूंगा। आप दया कर इस समय प्रसन्न होकर चला कीजिये ॥४१॥ मुनिने कहा हे राजा ! तुम बता दो कितने दिनोंमें दोगे मैं उतने दिनोंतक तुम्हारी बाट देखूंगा यदि उस समय तुम न दोगे तो शापकी आगसे तुम्हें जला कर भस्म कर दूंगा ॥४२॥ राजाने कहा हे विप्र ! मैं एक महीने के भीतर आपकी दक्षिणा देदूंगा। आप इस समय मुझे उसका उपाय करनेके लिये जानेकी आज्ञा दीजिये ॥४३॥ मुनिने कहा हे राजा ! तुम जाओ और अपने धर्मका पालन करो। मार्गमें तुम्हारा कल्याण हो किसी प्रकारका विघ्न न हो ॥४४॥

विश्वामित्रके मुंहसे "जाओ" सुनकर राजा अचंभेमें डूबे हुए तुरतही महलसे चल निकले ॥४५॥ उनकी प्यारी रानी जो कभी पैदल न चली थी पैदलही उनके पीछे चली। राजाको पुत्र और स्त्रीके साथ नगरसे निकलते देख उनके दास दासी तथा नगरके लोग रोने लगे ॥४६॥ हा नाथ ! दुःखसे पीड़ित हमलोगोंको छोड़कर कहां चले जाते हो। तुम बड़े धर्मात्मा राजा हो अपनी प्रजा पर बड़ी कृपा रखते हो। हे राजा यदि धर्मकी ओर तुम्हारा ध्यान है तो हम लोगोंको अपने साथ लेते चलो ॥४७॥ हे राजेन्द्र ! थोड़ी देर ठहरो हम अपने नेत्ररूपी भौंरोंसे तुम्हारे मुखकमलका मधुपान करें न जाने फिर कब तुम्हारा मुख देखनेको मिलेगा ॥४८॥ जिस की सवारीके साथ बड़े बड़े राजा चलते थे वह अब केवल स्त्री और पुत्रको लेकर चला जाता है ॥४९॥ जिसकी यात्राके समय दास लोग हाथियों पर चढ़कर आगे चलते थे वह महाराज हरिश्चन्द्र आज पैदल चले जाते हैं ॥५०॥ हा राजा ! यह तुम्हारा सुकुमार बालक जिसकी भौंहें टेढ़ी और काली हैं और शरीर बहुत कोमल है सड़ककी धूलमें लिपटकर कैसा दुःखी होगा इसका मुंह कैसा हो जायगा ॥५१॥ हे महाराज ! ठहरो ठहरो, अपने धर्मका पालन करो। [illegible] हमारा धर्म यही है कि सब पर दया करें ॥५२॥ तो

मैं तुम्हें शाप दूंगा ॥११॥ विश्वामित्रके चले जानेके बाद राजा अपने मनमें सोचने लगे कि कैसे कही हुई दक्षिणा इस ब्राह्मणको दूं ॥१२॥ मेरे पाले हुए मित्र कहां गये, मेरा धन इस समय कहां चला गया? ऐसा न हो कि इस कठिन दक्षिणाके लिये मुझे नरक में जाना पड़े ॥१३॥ मैं इस समय महादरिद्र होकर क्या प्राण छोड़ दूं? अथवा कहां जाऊं? यदि मैं ब्राह्मणको दक्षिणा बिना दिये ही मर जाऊंगा तो अधमसे भी अधम पापी होकर ब्राह्मणका धन लेनेवाला कीड़ा बनूंगा ॥१४॥ अपनी देह बेचकर दास होना अच्छा है ॥१५॥ राजा सिर झुकाये कातर होकर यह बात सोचही रहे थे कि रानी रोती हुई लड़खड़ाती आवाजसे बोली ॥१६॥ हेमहाराज! चिन्ता छोड़कर अपने सत्यका पालन कीजिये। झूठे आदमीको श्मशानके समान छोड़ देना चाहिये ॥१७॥ हे पुरुषसिंह! पुरुषके लिये सत्य पालनके समान दूसरा कोई धर्म नहीं है ॥१८॥ उसका अग्निहोत्र, वेदपाठ, दान, तथा और दूसरी पवित्र क्रियायें व्यर्थ हो जाती हैं जिसका वचन झूठा होजाता है ॥१९॥ धर्मशास्त्रोंमें पण्डितोंने कहा है कि सत्य वाक्य जिस प्रकार तारनेके लिये है मिथ्यावाक्य उसी प्रकार डबोता है। हे महाराजा! आपने सात अश्वमेध यज्ञ करके राजसूय यज्ञका अनुष्ठान किया। अब क्या एक छोटेसे असत्य वाक्यके लिये स्वर्गभ्रष्ट होंगे? ॥२१॥ हे राजा! "अब तो मेरे पुत्र होगयाहै"—कहकर रानी रोनेलगी। राजा हरिश्चन्द्रने डबडबाई आंखोंसे रानीसे कहा—हे सौभाग्यवती! गजगामिनी! देखो यह लड़का तुम्हारी ओर देख रहा है। जो तुम्हें कहनेकी इच्छा हो कहो ॥२३॥ रानीने कहा नाथ! मेरे पुत्र होही गया है। अच्छे लोगोंका मत है कि स्त्री पुत्र पैदा करनेके लिये है। इससे आप मुझे बेचकर ब्राह्मणको दक्षिणा देसकते हैं ॥२४॥ यह बात सुनतेही राजा मूर्च्छित होगये। फिर होशमें आकर बहुत दुखी होकर विलाप करने लगे ॥२५॥ प्यारी! यह बड़े दुःख की बात है कि तुम्ही ऐसी बात मुझसे कहती हो। क्या तुम्हारी

तो कहो है। राजाने कहा भगवन्! इस समय मेरे पास कुछ नहीं है मैं समय पाकर आपको देदूंगा। आप दया कर इस समय प्रसन्न होकर क्षमा कीजिये ॥४१॥ मुनिने कहा हे राजा! तुम बता दो कितने दिनोंमें दोगे मैं उतने दिनोंतक तुम्हारी बाट देखूंगा यदि उस समय तुम न दोगे तो शापकी आगसे तुम्हें जला कर भस्म कर दूंगा ॥४२॥ राजाने कहा हे विप्र! मैं एक महीने के भीतर आपकी दक्षिणा देदूंगा। आप इस समय मुझे उसका उपाय करनेके लिये जानेकी आज्ञा दीजिये ॥४३॥ मुनिने कहा हे राजा! तुम जाओ और अपने धर्मका पालन करो। मार्गमें तुम्हारा कल्याण हो किसी प्रकारका विघ्न न हो ॥४४॥

विश्वामित्रके मुंहसे "जाओ" सुनकर राजा अचंभेमें डूबे हुए तुरतही वहांसे चल निकले ॥४५॥ उनकी प्यारी रानी जो कभी पैदल न चली थी पैदलही उनके पीछे चली। राजाको पुत्र और स्त्रीके साथ नगरसे निकलते देख उसके दास दासी तथा नगरके लोग रोने लगे ॥४६॥ हा नाथ! दुःखसे पीड़ित हमलोगोंको छोड़कर कहां चले जाते हो। तुम बड़े धर्मात्मा राजा हो अपनी प्रजा पर बड़ी कृपा रखते हो। हे राजा यदि धर्मकी और तुम्हारा ध्यान है तो हम लोगोंको अपने साथ लेते चलो ॥४७॥ हे राजेन्द्र! थोड़ी देर ठहरो हम अपने नेत्ररूपी भौंरोंसे तुम्हारे मुखकमलका मधुपान करें न जाने फिर कब तुम्हारा मुख देखनेको मिलेगा ॥४८॥ जिस की सवारीके साथ बड़े बड़े राजा चलते थे वह अब केवल स्त्री और पुत्रको लेकर चला जाता है ॥४९॥ जिसकी यात्राके समय दास लोग हाथियों पर चढ़कर आगे चलते थे वह महाराज हरिश्चन्द्र आज पैदल चले जाते हैं ॥५०॥ हा राजा! यह तुम्हारा सुकुमार बालक जिसकी भौंहें टेढ़ी और काली हैं और शरीर बहुत कोमल है मार्गकी धूलमें लिपटकर कैसा दुखी होगा इसका मुंह कैसा हो जायगा ॥५१॥ हे नृपवर! ठहरो ठहरो, अपने धर्मका पालन करो। क्षत्रियोंका प्रधान धर्म यही है कि सब पर दया करें ॥५२॥ स्त्री

मैं तुम्हें शाप दूंगा ॥११॥ विश्वामित्रके चले जानेके बाद राजा अपने मनमें सोचने लगे कि कैसे कही हुई दक्षिणा इस ब्राह्मणको दूं ॥१२॥ मेरे पाले हुए मित्र कहां गये, मेरा धन इस समय कहां चला गया? ऐसा न हो कि इस कठिन दक्षिणाके लिये मुझे नरक में जाना पड़े ॥१३॥ मैं इस समय महादरिद्र होकर क्या प्राण छोड़ दूं? अथवा कहां जाऊं? यदि मैं ब्राह्मणको दक्षिणा बिना दिये ही मर जाऊंगा तो अधमसे भी अधम पापी होकर ब्राह्मणका धन लेनेवाला कीड़ा बनूँगा ॥१४॥ अपनी देह बेचकर दास होना अच्छा है ॥१५॥ राजा सिर झुकाये कातर होकर यह बात सोचही रहे थे कि रानी रोती हुई लड़खड़ाती आवाजसे बोली ॥१६॥ हेमहाराज! चिन्ता छोड़कर अपने सत्यका पालन कीजिये। झूठे आदमीको श्मशानके समान छोड़ देना चाहिये ॥१७॥ हे पुरुषसिंह! पुरुषके लिये सत्य पालनके समान दूसरा कोई धर्म नहीं है ॥१८॥ उसकी अग्निहोत्र, वेदपाठ, दान, तथा और दूसरी पवित्र क्रियायें व्यर्थ हो जाती हैं जिसका वचन झूठा होजाता है ॥१९॥ धर्मशास्त्रके पण्डितोंने कहा है कि सत्य वाक्य जिस प्रकार तारनेके लिये

मुसकान भरी प्यारी बातें मुझ पापीको भूल गई हैं ॥२६॥ हे मन्द-मुसकान करनेवाली प्यारी ! हा ! क्या तुम्हें यह बात कहनी उचित थी ? ऐसी बात मुंहसे कभी न निकालो। मैं यह बात कभी नहीं कर सकता ॥२७॥ यह कहकर राजा "मुझे धिक्कार है मुझे धिक्कार है" कहते मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़े ॥२८॥ राजा हरिश्चन्द्रको पृथिवीमें मूर्छित पड़ा देखकर विलाप करती हुई रानी बोली ॥२९॥ हाय ! महाराजा ! यह मूर्च्छा तुम्हें क्यों आई। तुम रेशमी बिछौने पर सोनेवाले हो इस समय पृथिवीमें क्यों गिर गये ? ॥३०॥ हा ! जिसने करोड़ों गायें और करोड़ों रुपये ब्राह्मणोंको दान दिये वही मेरे पति पृथिवीनाथ आज भूमि पर सोरहे हैं ॥३१॥ हा भाग्य ! इसने क्या तुम्हारा अपराध किया था कि तुमने इस विष्णु तथा इन्द्रके समान राजाको इस दशामें पहुंचा दिया ॥३२॥ ऐसा कहकर वह सुन्दर नितम्बोंसे शोभा पानेवाली महारानी भी पतिके असह्य महादुःखके बोझसे दबकर मूर्च्छित होगई ॥३३॥ पिता माता दोनोंको अनाथकी तरह जमीन पर पड़े हुए देखकर वह बालक भूखसे घबराकर बोला ॥३४॥ हे पिता ! हे तात ! अन्न दो। अरी माता ! अरी अम्बा ! मुझे भोजन दे। मुझे बड़े जोरसे भूख लग रही है। जीभ सूख रही है ॥३५॥ इसी बीचमें महातपस्वी विश्वामित्र आपहुंचे। राजा हरिश्चन्द्रको मूर्च्छित होकर पृथिवी में पड़ा देखकर उनपर जल छिड़ककर राजाको होशमें लाकर बोले हे राजा ! उठो उठो वह मेरी दक्षिणा दो। जो दूसरेका ऋण अपने ऊपर रखता है उसका दुःख दिनदिन बढ़ताही जाताहै ॥३७॥ ठंडे जलके पड़नेसे राजा होशमें आये। पर सामने विश्वामित्रको देखकर फिर मूर्च्छित होगये। विश्वामित्रने क्रोध करके फिर राजाकी मूर्च्छा छुड़ाई और राजासे बोले कि यदि तुम्हें धर्मका कुछ भी ध्यान है तो मेरी दक्षिणा देदो ॥३९॥ सत्यहीसे सूर्य तपता है सत्यहीसे पृथिवी ठहरी है। सत्यही परम धर्म है सत्य हीसे स्वर्ग मिलता है ॥४०॥ हजार अश्वमेध यज्ञ, एक सत्यके साथ

तुला पर रखकर तौला गया तब हजार अश्वमेधसे एक सतयही भारी हुआ ॥४१॥ अथवा हमें इस धर्मोपदेश करनेसे क्या मतलब। रे अनार्य्य! पापी! क्रूर! झूठे राजा! तेरे सामने मैं कहता हूं, यदि तू आज मेरी दक्षिणा न देगा तो मैं सूर्य्यके अस्त होजाने पर तुझे अवश्य शाप दूंगा ॥४३॥ यह कहकर विश्वामित्र चले गये। उनके ऐसे कठोर बचनोंसे दुःखित होकर गरीब और अधम बनेहुए राजा बहुतही डर गये ॥४४॥ रानीने फिर कहा, महाराज! मेरा कहना करो नहीं तो ब्राह्मणके शापकी आगसे जलकर मर जाओगे ॥४५॥ जब रानीने राजासे बारबार कहकर बहुत आग्रह किया तो उसने कहा—प्यारी! तुम्हारे कहनेसे मैं निर्दय होकर यह काम करूंगा ॥४६॥ बड़े बड़े निर्दय भी यह काम नहीं कर सकते। देखूं ऐसे बचन मेरे मुंहसे निकल सकेंगे या नहीं ॥४७॥ राजा अपनी रानीसे ऐसा कहकर घबराये हुए नगरमें चले गये। आंखें भर आई थीं। गला रुक गया था। जो रोकाकर राजा ऊंचे स्वरसे कहने लगे ॥४८॥ हे नगरनिवासियो! मेरी बात सुनो। मुझे क्या पूछते हो कि कौन हो? सुनो। मैं कसाई निर्दय राक्षस हूं बड़ा कठोर हूं बड़ा पापी हूं और स्त्रीको बेचनेके लिये यहां आया हूं पर निर्लज्जतासे मर नहीं जाता हूं। यदि किसीको उसे दासी बनानेकी इच्छा हो तो मेरे प्राण रहते रहते बोलो ॥५१॥ इतनेमें एक बूढ़ा ब्राह्मण आकर राजासे बोला अपनी स्त्री मुझे दो मैं दासी बनाऊंगा और तुम्हें रुपये दूंगा ॥५२॥ मेरे पास बहुत धन है। मेरी स्त्री बहुतही सुकुमार है घरका कोई काम नहीं कर सकती इससे इसे मुझे देदो ॥५३॥ अपनी स्त्रीके काम करने की योग्यता उमर रूप और स्वभावके अनुसार यह द्रव्य लेकर अपनी स्त्री मुझे देदो ॥५४॥ ब्राह्मणकी ऐसी बात सुन कर राजा हरिश्चन्द्रकी छाती दुःखसे फटने लगी पर वह ब्राह्मणसे कुछ न बोल सके ॥५५॥ वह ब्राह्मण राजाके वल्कलकी छोरमें रुपयेकी गठड़ी बांधकर रानीकी चोटी पकड़ खींचकर लेचला ॥५६॥ अपनी

माताको जाते देखकर बालक रोहिताश्व अपनी माका आंचल पकड़कर रोने लगा। दोनो ओरकी खेंचाखेंचीसे उसके सिरके बाल बिखर गये ॥५७॥ रानीने ब्राह्मणसे कहा हे भगवन्! मेरी चोटी छोड़ दीजिये एक बार मैं अपने बच्चेको देखलूं फिर इसका दर्शन दुर्लभ होजायगा ॥५८॥ ऐ बच्चा! आ, इधर देख तुम्हारी माता मैं दासी बन गई। ऐ राजपुत्र! मुझे मत छू मैं अब छूने लायक नहीं हूं ॥५९॥ वह बालक अपनी माको जाते देखकर मा मा कहता पीछे दौड़ा ॥६०॥ उसको आता देखकर ब्राह्मणने उसे लातसे मारा तो भी उस बालकने पीछा न छोड़ा ॥६१॥ रानीने ब्राह्मणसेकहा हेनाथ! आप कृपाकर इस बालककोभी खरीदलीजिये मैं बिक चुकी हूं तो भी इसके बिना कोई काम नहीं कर सकती॥ मुझसी अभागिनी दासी पर कृपा कर इस लड़केको मेरे साथ कर दीजिये। जिस प्रकार गायको अपना बछड़ा प्यारा है उसी प्रकार मुझ अभागिनीको यह प्यारा है ॥६३॥ "यह धन लो मुझे बालक देदो" धर्मशास्त्र जाननेवाले मनुष्योंने स्त्री पुरुषका दाम सौ हजार लाख वा करोड़ तक ठहराया है" ॥६४॥ ऐसा कहकर यह धन राजा के वल्कलकी छोरमें बांधकर रानी और बालक दोनोको लेकर वह ब्राह्मण चल दिया ॥६५॥ अपनी स्त्री और पुत्रको जाते देखकर राजा बड़े दुःखसे विलाप करने लगे ॥६६॥ जिसे वायु सूर्य्य चंद्रमा तथा और कोई बाहरके मनुष्य न देख पाते थे वही आज दूसरे की दासी बन गई ॥६७॥ सूर्य्यवंशमें उत्पन्न और अत्यन्त सुकुमार मेरा बालक आज बिक गया। मेरे जैसे नीचको धिक्कार है ॥६८॥ हा प्यारी! हा पुत्र! मेरी नीचतासे तुम दोनो इस दशाको पहुंच गये और मैं मर नहीं गया। इससे मुझे धिक्कार है ॥६९॥ राजा इस तरह विलाप कर रहे थे कि वह ब्राह्मण दोनोंको लेकर शीघ्र बड़े बड़े पेड़ घर आदिकी ओटमें होकर राजाकी दृष्टिसे ओझल हो गया ॥७०॥ पीछे विश्वामित्र आकर राजासे रुपये मांगने लगे। हरिश्चन्द्रने वह धन उन्हें दे दिया ॥७१॥ स्त्रीको बेचकर पायाहुआ

धन विश्वामित्रकी समझमें बहुत थोड़ा था इस कारण वह क्रोधकर के शोकाकुल राजासे बोले ॥७२॥ हे क्षत्रिय! यदि तू इतनी ही दक्षिणाको हमारी पूरी दक्षिणा समझता है तो तुरतही तू हमारा बल देख ॥७३॥ मेरे किये हुए तप, अमलब्राह्मणत्व, उग्र प्रभाव और शुद्ध वेदपाठका तेज देख ॥७४॥ हरिश्चन्द्रने कहा— भगवन्! मैं और भी दक्षिणा दूंगा, कुछ समय तक धैर्य्य रखिये। इस समय मेरे पास धन नहीं है यह रुपये तो स्त्री और पुत्र बेचकर मैंने आपको दिये हैं ॥७५॥ देखो एक पहर रह गया है उतनीही देर तेरी बाट देखूंगा फिर कुछ न सुनूंगा ॥७६॥ ऐसी कठोर बातें राजासे कहकर विश्वामित्र वह धन लेकर तुरतही वहांसे चले गये ॥७७॥ उनके चले जाने पर राजा भय तथा शोकके समुद्रमें डूब गये। फिर सबकी ओर देखकर गर्दन नीची करके बड़ेजोरसे चिल्ला कर कहने लगे ॥७८॥ जो मुझे खरीदकर दास बनाना चाहे वह सूर्य्यके रहते रहते कहे ॥७९॥ इतनेमें धर्म्म, चाण्डालका रूप धरकर आया, उसकी देहसे दुर्गंधि निकल रही थी, अंग अंगमें विकार था, देहका चमड़ा बहुत रूखा था, दाढ़ी मोंछ बहुत बढ़ गई थी, बड़े बड़े दांत मुंहसे बाहर निकल आये थे। उसे देख घृणा होती थी। वह काला था, उसका पेट लम्बा था, पीली और डरा-वनी आंखें थीं, उसकी बोली बड़ी कठोर थी। बहुतसे पक्षी मार कर एक हाथमें लटकाये हुए था, उसके गलेमें मुंडोंकी माला लटक रही थी, दूसरे हाथमें आदमीकी खोपड़ी थी, उसका मुंह बहुत बड़ा था, सूरत डरावनी थी, वह बहुत जोर जोरसे बोलता था। साथमें बहुतसे कुत्ते थे, हाथमें बड़ी भारी लाठी थी, वह बहुत ही लम्बा था ॥८२॥ वह चाण्डाल राजाके पास आकर बोला मैं तुम्हें खरीदना चाहता हूं तुम तुरतही अपना दाम बताओ, थोड़ा या बहुत कितना देनेसे तुम मिलोगे ॥८३॥ उस डरावनी मूर्ति और कठोर वचनवाले चांडालको देखकर राजाने पूछा तुम कौन हो? ॥८४॥ चाण्डालने जवाब दिया मैं चाण्डाल हूं मुझे काशीके

लोग 'प्रवीर' कहते हैं। मैं वध्यका वध करनेवाला और मरे हुए आदमियोंका कफन लेनेवाला हूं ॥८५॥ हरिश्चन्द्रने कहा मैं चाण्डालका दास नहीं बनूँगा यह बात बड़ी निन्दाकी है, शापकी आगसे जल जाना अच्छा पर चाण्डालके बशमें रहना अच्छा नहीं। ॥८६॥ इस प्रकार दोनोमें बातचीत होही रही थी विश्वामित्र आ पहुंचे। वह क्रोध तथा दाहसे आंखें लाल करके राजासे बोले ॥८७॥ यह चाण्डाल यदि तुम्हें खरीदनेके लिये पूरा धन देता है तो क्यों नहीं इसके हाथ बिककर मेरी सारी दक्षिणा चुकाता ? ॥८८॥ हरिश्चन्द्रने कहा—भगवन्! मैं अपनेको सूर्य्यवंशमें उत्पन्न समझता हूं कैसे धनके लालचसे चाण्डालकी नौकरी करूं ? विश्वामित्रने कहा कि यदि तू इसी समय चाण्डालके हाथ बिककर मेरी दक्षिणा नहीं चुका देगा तो मैं तुरतही अवश्य शाप देदूंगा ॥९०॥ यह बात सुन कर राजा चिन्तामें डूब गये और घबराकर प्रसन्न हूजिये प्रसन्न हूजिये कहते हुए विश्वामित्रके पैरों पर गिर पड़े ॥९१॥ और बोले कि हे विप्रर्षि! मैं आपका दास हूं, आर्त हूं, भयसे कातर हूं और विशेषकर आपका सब काम करनेवाला सेवक हूं। आप मुझ पर प्रसन्न हों, चाण्डालके संग रहना मुझे बड़ा दुःखदायी मालूम पड़ता है ॥९२॥ शेष रुपयोंके लिये मैं आपका दास बनूंगा, आपकी आज्ञा में रहूंगा और आपका सब काम करूंगा ॥९३॥ विश्वामित्रने कहा यदि तू मेरा दास बन गया तो मैं तुझे इसी चाण्डालके हाथ एक अरब रुपये लेकर बेच देता हूं ॥९४॥ उस डोमने बहुतही प्रसन्न मनसे रुपये विश्वामित्रको देकर राजाको बांध लिया ॥९५॥ और अपने घरको चला, राजा स्त्री पुत्रके वियोगसे बहुतही कातर था। ऊपरसे उस चाण्डालने उसके एक लकड़ी मारी इससे वह और भी व्याकुल होगया। पीछे हरिश्चन्द्र चाण्डालके घर रहने लगे। वह सवेरे दोपहर और संध्याको सोचते—"मेरी दीन रानी अपने दीन पुत्रके सामने बैठकर सोचती होगी कि राजा धन उपार्जन करके ब्राह्मणको उससे अधिक धन देकर हम दोनोको छुड़ा लेंगे। पर

हाय! वह मृगनैनी नहीं जानती कि मैं भी चाण्डालका दास हो कर पापदशामें पड़ गया हूं। राज्य नाश हुआ, मित्र छूटे, स्त्री पुत्र बिक गये और अन्तको मैं चाण्डाल हुआ। हाय! दुःख पर दुःख पड़ते हैं।" राजा दरिद्र होकर इस तरह नित्यही अपने प्रिय पुत्र तथा प्राणप्यारी स्त्रीको याद करतेरहे॥१०१॥ पीछे राजा हरिश्चन्द्र श्मशानमें मुर्दोंका कफन लेनेके लिये रखे गये। चाण्डालने उन्हें आज्ञा दी कि तुम कफन लेनेके लिये उस मरघटमें सदा रह कर मुर्दोंकी ओर देखते रहो॥१०३॥ मुर्दोंके कफन आदिसे जो धन मिले उसका छठा हिस्सा राजाको देना होगा तीन हिस्से मुझे। शेष दो भाग तुम्हारे वेतनमें तुम्हें मिलेंगे॥१०४॥ इस प्रकार समझाकर राजाको काशीके दक्षिण दिशाके मरघटमें भेज दिया। वहां हजारों गीदड़ डरावनी चिल्लाहट मचा रहे थे। मुरदोंकी खोपड़ियां पड़ी थीं, बहुत दुर्गन्ध फैल रही थी, चारोंओर धुआं छारहा था॥१०६॥ पिशाच, भूत, वेताल, डाकिनी और यक्ष नाच रहे थे, गिद्ध, गोमायु और कुत्ते इधर उधर घूमरहे थे॥१०७॥ हड्डियोंकी ढेरी लगी थी, जहां जातेही भय, शोक, महामोह और कई तरहकी शंकाएं होने लगती थीं। चारों ओर हाहाकार मच रहा था, जिसके सुनतेही करुणा होआती थी। विरागका क्षय, और ज्ञानका नाश होजाता था। ब्रह्माने पापियोंके लिये प्रगट दण्डका स्थानही मानो बना रखा था। लोक गुरु, विधाताने लोकको शिक्षाके लिये यह कराल-कालका क्रीड़ावन बनाया था। जहां मूर्खोंको डर होता था ज्ञानियोंको शान्ति मिलती थी। वहां शोक दुःख और सुख सबका नाश होजाता था। मरे हुए आदमियोंके परिवारके लोगोंकी रुलाई सुन पड़ती थी॥१०८॥ हा बेटा! हा मित्र! हा भाई! हा प्यारे! हा प्रिय! हा पति! हा प्यारी! हा बहिन! हा माता! हा मामा! हा दादा! हा नाना! हा पिता! हा प्रीते! तुम कहां चले गये—इस प्रकार रोने की ध्वनि कानोंमें पड़ती थी॥१११॥ कहीं चितामें मांस मेद मज्जा

जलकर सिमसिम कररही थी, कहीं चितामेंमुर्दे आधे जलकर काले होगये थे उनके दांत बिखर गये थे मानो वह अपनी देहकी दशा देखकर चितामें पड़े हंस रहे थे ॥११२॥ आगकी चरचराहट, गिद्धों की चीख, कुटुम्बियोंकी रुलाई और शृगालोंका आनन्द बढ़ रहा था ॥११३॥ भूत वेताल पिशाच और राक्षसोंके गानेका शब्द प्रलयकी भांति घोरगर्जन करता था ॥११४॥ भैंस गायोंके गोबरकी ढेरी लगी थी, कहीं चिताकी राखकी ढेरीमें आग धुक्धुक् कर रही थी ॥११५॥ अनेक प्रकारके बलिदान, माला, दीप आदि खाने को घिरे हुए कव्वोंके डरावने कोलाहलसे वह श्मशान ठीक नरक ही बन रहा था ॥११६॥ आगकी चरचराहट, गीदड़ोंका अमङ्गल शब्द और अनेक प्रकारके अशुभ कोलाहलसे वहां भयको भी भय होता था ॥११७॥

राजा हरिश्चन्द्र वहां रहकर दुखी मनसे सोचने लगे—हा मेरे दासो! मेरे मन्त्रियो! मेरे ब्राह्मणो! वह मेरा राज्य कहां चला गया ॥११८॥ हा प्यारी शैव्या! हा पुत्र रोहिताश्व! विश्वामित्रके दोषसे मुझ मन्दभागीको छोड़कर कहां चलेगये ॥११९॥ इस तरह सोचते और चाण्डालकी बात याद रखतेहुए रहनेलगे। उनका रूप मलिन होगया समूची देह रूखी होगई, बाल बढ़ गये, दुर्गन्ध आने लगी। हड्डियां निकल आईं ॥१२०॥ हाथमें लाठी लेकर कालकी मूर्त्ति बनकर मरघटमें इधर उधर दौड़ने और कहने लगे कि इस मुर्देसे इतने रुपये मिले, इस मुर्देसे इतने मिलते हैं और इस मुर्देसे इतने मिलेंगे ॥१२१॥ इसमें इतना मेरा भाग है इतना राजा को देना होगा और इतना मेरे स्वामी चाण्डालका है। इस तरह मुर्दोंका करलेते देते उनका जीवन बीतने लगा। कुछ दिनोंमें राजा चाण्डालही बन गये ॥१२२॥ पुराने कपड़ोंकी गुदड़ी बनाकर ओढ़े रहते थे और अपने सब शरीरमें चिताकी राख लपेटते थे ॥१२३॥ अनेक तरहकी चर्बी, मेद, मज्जा आदिका लेप हाथ पैरोंमें लगाते थे। मुर्दोंके साथ आये हुए चावलोंका भात बनाकर पेट भरते थे

मुर्दोंके शरीरसे मालाएं लेकर अपने सिर पर लपेटते थे। रात दिन जागते थे और हाय हाय करते इधर उधर दौड़े फिरते थे ॥१२५॥ यों बारह महीने बीत गये जो सौ वर्षके समान कटे। महाराज एक दिन अपने घरके लोगोंके लिये शोक करते हुए रूच शरीर लिये दुःखसे सोगये। पड़े पड़े स्वप्न देखने लगे ॥१२७॥

(हरिश्चंद्रका स्वप्न।)

चाहे श्मशानमें सोनेका अभ्यास होनेके कारण चाहे दैवबलसे उन्होंने देखा कि अन्य देह धारण करके गुरूको दक्षिणा देके बारह वर्ष दुःख भोगके मुक्ति होगी। पीछे उन्होंने देखा कि मानो स्वयं चाण्डालीके गर्भमें हैं। गर्भमें सोचने लगे कि इस चाण्डालीके गर्भसे निकलकर मैं दानधर्म करूंगा। पीछे वह चाण्डालीके गर्भसे जन्मे तब श्मशानके मुर्दोंको जलानेमें निरन्तर रत हुए। जब वह चाण्डाल बालकके वेशमें सात वर्षके हुए तो एक गुणवान ब्राह्मणका शव उसके कुटुम्बी श्मशानमें लाये। उस ७ सालके चाण्डाल बालकने मुर्दा जलानेका कर न देनेके कारण उन ब्राह्मणोंका बड़ा अपमान किया। उन्होंने कहा कि हाय विश्वामित्रने कैसा अशुभ पापभरा काम किया! रे पापी! तू इसी प्रकारके अशुभ काम किया कर। तू पूर्वजन्ममें राजा हरिश्चन्द्र था, ब्राह्मणका ऋण न देनेसे तेरा पुण्य नाश हुआ और विश्वामित्रके शापसे तूने चाण्डालके घर जन्म लिया। जब वह ब्राह्मण मुर्देका कर देनेमें असमर्थ होकर शव-दाह न कर सके तो उन्होंने बिगड़कर शाप दिया कि रे नराधम! तू अभी घोर नर्कमें चला जा। ब्राह्मणके मुंहसे यह वाक्य निकलतेही राजाने देखा कि अत्यन्त भयङ्कर यमदूत हाथमें पाश लिये आते हैं। और भी देखा कि उन यमदूतोंने राजाको पकड़ लिया। तब वह बहुत दुःखसे पुकारने लगा कि हा माता! हा पिता! आज मेरी यह दशा हुई—इस प्रकार विलाप करने लगा। राजा इस प्रकार पुकारथेही थे कि यमदूतोंने उन्हें पकड़कर गर्म्म तेलके कड़ाहेमें डाल दिया फिर तीखे कुल्हाड़ेसे मारने लगे। घोर अन्धेरेमें दुःखित

चित्तसे पीप और लहूका भोजन करनापड़ा। अपने चाण्डालीके गर्भ से उत्पन्न हुए सातवर्षके वालकरूपी मृतशरीरकी यह दशा राजा स्वप्न में देखने लगे। मानो दिन दिन नर्कमें कहीं जलना पड़ता है कभी पकना पड़ता है कभी खिन्न और कभी क्षुब्ध रहना पड़ता है। कभी मारे जाते हैं कभी काटे जाते हैं कभी छांटे जाते हैं। कहीं गर्मी कहीं शीत और कहीं वायुसे आहत होते हैं। वहां एक एक दिन सौ सौ वर्षके बराबर बीतने लगा। इस प्रकार कष्ट भोगते भोगते नर्कके रक्षकोंके मुंहसे राजाने सुना कि उसेके सौ वर्ष पूरे हो गये। तब यमदूतोंने उन्हें पृथ्वी पर पटक दिया और वहां बिष्ठा-भोजी कुत्ता बने। अन्तमें विष्ठा और वमी खाते खाते शीतसे अत्यन्त क्लान्त होकर एक महीनेमें प्राणत्याग दिया।

तब राजाने देखा कि उन्हें गधे कि योनि मिली है। पीछे क्रम से हाथी बन्दर बकरी बिल्ली कङ्क गाय भेड़ पक्षी कीड़े मछली कछुए मुर्ग शुक सारिका और अजगर आदि नानाप्रकारके जीवोंकी योनि में जन्म लिया। इस प्रकार क्लेश भोगते हुए एक एक दिन सौ सौ वर्षकी भांति बीतने लगा। यों नाना प्रकारकी इतर योनियोंमें जन्म लेकर क्लेश भोगते हुए पूरे सौ वर्ष बीतगये। तब राजाने देखा कि फिर अपने कुलमें जन्म लिया है और फिर राजा हुए हैं। वहां एक बार जुआ खेला उसमें स्त्री पुत्र सब हारकर अकेले बन को जाना पड़ा। वहां देखा कि एक सिंह मुंह फैलाये उन्हें खाने को आता है। पीछे उस सिंहने राजाको पकड़ लिया और फाड़ कर खाने लगा। राजा पुकारने लगे—हा रानी शैव्या! मुझ दुःखितको छोड़कर तुम कहां जाती हो। जब राजा इस प्रकार विलाप करने लगे तो देखा कि रानी शैव्या कहती है—हा महा-राज हरिश्चन्द्र! हमारी रक्षा कीजिये। प्रभो! आपका जुएमें क्या प्रयोजन? देखिये आपकी रानी शैव्या पुत्र सहित कैसी शोच-नीय दशामें पड़ी है। यह सुनकर राजा इधर उधर दौड़ने लगे और उन्हें कुछ दिखाई न दिया।

राजा हरिश्चन्द्रने और देखा कि मानो वह स्वर्गमें हैं। वहां रहते रहते देखा कि दीन हीन वस्त्रहीन बिखरे हुए बालोंवाली शैव्या रानीको कोई बलपूर्वक छीने लिये जाता है और रानी शैव्या "हा महाराज रक्षा करो ! हा महाराज रक्षा करो !" कहती हुई पुकारती है। राजाने और देखा कि यमदूत यमराजके शासनसे आकाशमें स्थित होकर कह रहे हैं कि हे राजा ! विश्वामित्रने यम-राजको कह दिया है कि आपको नर्कमें बुलावें सो आपको बुला रहे हैं। चलिये। राजा इस पर रोने लगे और फिर देखा कि यह बात कहकर यमदूतोंने सर्पपाशसे राजाको बांध लिया और घसीटकर लेचले। यमराज कहता है कि यह विश्वामित्रका चरित्र है ॥१५६॥ स्वप्नमें महाराज हरिश्चन्द्र इस प्रकार बहुतसे कष्ट भोगते हैं तथापि उनके मनमें किसी प्रकारका अधर्म भरा विकार नहीं उठता है। इस प्रकारके क्लेश भोगते भोगते स्वप्नमें बारह वर्ष बीत गये। तब यमके दूत उन्हें बलपूर्वक बांधकर यमराजके पास खैंच लेगये। यमराजने उन्हें देखकर कहा—हे महाराज ! यह महात्मा विश्वामित्रके दुर्निवार्य्य कोपका फल है। अधिक क्या वही कौशिक मुनि आपके पुत्रको भी मरवा देंगे। इससे आप मनुष्य लोकमें जा कर शेष दुःख भोगिये। वहां बारह वर्ष बीतने पर आपके दुःखों की समाप्ति होगी और तुम्हारा मङ्गल होगा। यमकी यह बात सुनकर दूतोंने राजाको नीचे गिरा दिया। वहांसे गिरकर राजा भय और घबराहटसे जागे। मनमें विचारने लगे कि काटे पर नमक लगानेकी भांति यह और क्या हुआ ! स्वप्नमें जो दुःख देखे उनकी तो सीमा नहीं। मैंने जो स्वप्नमें बारह वर्ष बीते देखे तो क्या सच-मुचबारह वर्ष बीत गये ?

राजाने घबराकर पासके चाण्डालोंसे पूछा—क्या मेरे बारह वर्ष बीत गये ? किसीने कहा नहीं अभी बारह वर्ष नहीं बीते। किसी ने कहा बीत गये होंगे। राजा उनके ऐसे कठोर वाक्य सुनकर बहुत दुःखित हुए। देवताओंकी शरण जाकर कहने लगे—हेदेव

गण! आप मेरी रानी शैव्या और मेरे पुत्रकी रक्षा करें। सर्व प्रकार धर्मको नमस्कार। विधाता स्वरूप कृष्णको नमस्कार। जो सबसे श्रेष्ठ पवित्र और अव्यय हैं उन पुराणपुरुषको नमस्कार। ॥१६६॥ हे वृहस्पति! तुम्हें नमस्कार इन्द्र तुम्हें नमस्कार। इतना कहकर राज हरिश्चन्द्र फिर नष्टस्मृति होकर चाण्डालका काम करने लगे और मुर्दोंका कर लेने लगे। फिर वैसेही मलिन-वेशी, जटाधारी, कृष्णवर्ण, हाथमें लाठी लिये विह्वल होगये। स्त्री पुत्र किसीकी सुध न रही। क्योंकि वह उस समय राजनष्ट होनेसे हतोत्साह होकर श्मशानमें रहते थे ॥१६८॥

पीछे हरिश्चन्द्रकी रानी शैव्या सांपके काटनेसे मरे हुए अपने पुत्र रोहिताश्वको लेकर रोती हुई उस मरघटमें आई ॥ १७० ॥ वह हा बच्चा! हा बेटा! हा पुत्र! इत्यादि कहकर चिल्लाती थी, उसका शरीर सूखा हुआ, मुंह बिगड़ा हुआ, मन बहुत घबराया हुआ था और सिरके बाल धूलिसे भरे हुए थे॥ १७१ ॥ रानी विलाप करती हुई बोली, हे राजा! आज तुम आकर देखो जो बालक तुमने सदा चन्द्रमासा चमकता और खेलता देखा था वह काल विषधर सांपके काटनेसे मरकर भूमिमें पड़ा है॥ १७२ ॥ राजा उसकी रुलाई सुनकर दौड़े कि इससे कफन मिलेगा॥ १७३ ॥ वह रोती हुई रानीको न पहचान सके। क्योंकि वह बहुत दिनोंके वियोगसे इतनी दुबली होगई थी मानो उसका दूसरा जन्म हुआ था॥ १७४ ॥ रानी भी राजाको न पहचान सकी क्योंकि पहले रानीने भी राजाको लटकते हुए घुंघराले बालों तथा सुन्दर मुखसे देखा था। अब राजा सूखे पेड़के समान नीरस होकर कुरूप हो गये थे॥ १७५ ॥ राजा उस सर्प दंशित बालकको काले कपड़ेमें ढका देखकर और राजाओंके लक्षण उसके शरीरमें पहचान कर सोचने लगे॥ १७६ ॥ जिस राजाके कुलमें यह लड़का पैदा हुआ होगा वह राजा आज बहुतही कष्टमें पड़ा होगा। हा! कालने इसे मारकर उसकी सब आशा नष्ट कर दी॥ १७७॥ इसे देख

अपनी माकी गोदमें पड़ा हुआ, कमलके समान आंख वाला, मेरा बालक रोहिताश्व याद आता है ॥ १७८ ॥ यदि वह जीता है तो वह मेरा प्रियपुत्र भी इतनीही उमरका हुआ होगा ॥ १७९ ॥ रानी विलाप करके कहने लगी—हा बेटा! किस पापसे यह महा भयानक दुःख आकर पड़ा जिसका अन्त नहीं मिलता है ॥ १८० ॥ हा नाथ! हा राजा! मुझ दुखियाको बिना सुध लियेही कहां चले गये हो? ॥ १८१ ॥ हा दैव! राज्यका नाश हुआ, मित्रोंका सङ्ग छूटा, स्त्री पुत्र बिक गये, राजर्षि हरिश्चन्द्रके नाशमें तुमने क्या कसर छोड़ी? ॥ १८२ ॥ रानीके यह वचन सुनकर राजा उठ खड़े हुए। वह समझ गये कि मेरा लड़का मर गया और मेरी स्त्री रोरही है ॥ १८३ ॥ निश्चय यह मेरी रानी शैव्या है और यह मेरा लड़का रोहिताश्वही मरा है—ऐसा कहते हुए वहां पहुंच कर दुःखित चित्तसे रोने लगे और मूर्च्छित होगये ॥ १८४ ॥ वह रानी भी अपने प्राणप्यारे पतिको पहचान गई और उनकी वह दुर्दशा देख विलाप करती हुई मूर्च्छित होगई ॥ १८५ ॥ थोड़ी देर पीछे दोनोंको सुध हुई। वह मारे शोकके विलाप करने लगे ॥ १८६ ॥ राजा बोले—हा बेटा! तुम्हारे सुन्दर नेत्र भौंहें नासिका अलकोंसे विभूषित सुकुमार मुख इस प्रकार मलिन देखकर मेरी छाती फटती है ॥ १८७ ॥ हा बेटा! अब मधुर स्वरसे पिता पिता कहता कौन मेरे पास आवेगा और मैं किसे गोदीमें लेकर बेटा! बेटा! कहकर पुकारूंगा ॥ १८८ ॥ कौन अपनी देहमें धूलि लपेटे खेलता हुआ मेरी गोदमें आकर मेरी चादर देह तथा कपड़े मैले करेगा ॥ १८९ ॥ हा! अङ्ग अङ्गसे उत्पन्न और मन तथा हृदयको आनन्दित करने वाले लड़केको मैंने कुवस्तुकी भांति बेच दिया। हा बेटा! मैं तुम्हारा पिता बड़ाही नीच हूं ॥ १९० ॥ हा! दैवरूपी दुष्ट सांपने धन धान्य सहित मेरा बड़ा भारी संपूर्ण राज्य नष्ट करके अन्तमें मेरे प्यारे लड़केको भी खालिया ॥ १९१ ॥ प्रतिकूल भाग्यरूपी सांपके काटे हुए इस लड़केका मुख देख देखकर मैं भी घोर हला-

डरसे अन्धा होगया हूं ॥ १९२ ॥ ऐसा कहकर उस बालकको गोद में लेकर लड़खड़ाते स्वरसे रोने लगी और मूर्च्छित होकर गिर पड़े ॥ १९३ ॥ रानीने कहा—बोलीसे जान पड़ता है कि यही वह पुरुषसिंह विद्वानोंके चित्तको आनन्द देनेवाले हरिश्चन्द्र हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ १९४ ॥ इस पवित्रकीर्ति राजाकी नाक ऊंची और आगेको कुछ झुकी हुई सी है। दांत फूलकी कलियोंके समान सुन्दर हैं ॥ १९५ ॥ आज यह राजा मरघटमें क्यों आया है। रानी पुत्रशोक भूलकर अपने मूर्च्छित पतिको देखने लगी ॥ १९६ ॥ अत्यन्त आश्चर्यमें पड़ी हुई दीन और पति तथा पुत्रके शोकसे दुःखिनी विशालनैनी रानी अपने पतिके हाथमें चाण्डालकी छड़ी देखकर "मैं चाण्डालिनी होगई" कहकर बेसुध होगई। फिर धीरे धीरे होशमें आकर गद्गद स्वरसे कहने लगी ॥ १९८ ॥ अरे मर्यादा रहित नीच निर्दय दैव तुझको धिक्कार है! तूने देवता समान राजाको चाण्डाल बना दिया ॥ १९९ ॥ तू राज्यका नाश कराके मित्रोंका सङ्ग छुड़ाकर स्त्री पुत्रको बिकवाकर भी प्रसन्न न हुआ तूने राजाको चाण्डाल बनाकर छोड़ा ॥ २०० ॥ हे राजा! मैं क्या कहूं मैं दुःखसे विकल भूमिमें पड़ी हूं मुझे उठाकर पलंग पर बिठाओ। २०१ ॥ हे राजा! आज यह क्या भाग्य बदल गया! आज तुम्हारा छत्र चामर कहां है? व्यजन कहां है? ॥ २०२ ॥ जिनके चलते समय बड़े बड़े राजा दास बनकर अपनी चादरसे मार्गकी धूलि हटाते ॥ २०३ ॥ वही हरिश्चन्द्र आज श्मशानमें पड़े हैं। जहां आदमियोंकी छोटी बड़ी खोपड़ियोंके ढेर पड़े हैं मुर्दोंके सिरमें लिपटी हुई मालाओंमेंसे केश बिखरकर लटकते हैं। मुर्दोंकी चरबी पिघलकर भूमि पर चमड़ेकी चादरसी बन गई है। अधजली हुई हड्डियां जगह जगह पड़ी हैं। गिद्ध सियारोंकी डरावनी चिल्लाहटसे छोटी छोटी चिड़ियें उड़ गई हैं। चिताके धूएंसे चारों ओर कालिमा छागई है। खून और मेद मज्जा पीकर निशाचर आनन्दसे नाच रहे हैं। ऐसी अगम्य भूमिमें राजा अकेले

भटके फिरते हैं ॥ २०७ ॥ ऐसा कहकर सैकड़ों शोकोंसे भरी हुई रानी राजाकी गरदनसे लगकर बड़ी करुणासे रोने लगी ॥ २०८ ॥ हे राजा! यह मैं स्वप्न देखती हूं या सत्य! आप कृपाकर ठीक ठीक बताइये मेरी तो बुद्धि ठिकाने नहीं ॥ २०९ ॥ यदि यह सत्य है तो हे धर्मज्ञ! मैं जान गई कि धर्म्म कुछ सहायता नहीं करता। और देवता तथा ब्राह्मणोंकी पूजा एवं धर्मपूर्वक पृथिवीका पालन करना व्यर्थ ही है ॥ २१० ॥ न धर्म्म है, न सत्य है, न दया है और न क्षमा है, कुछ भी काम नहीं आता। हा! तुमसे धर्म्मात्माका राज्य गया! ॥ २११ ॥ रानीकी यह बात सुनकर राजाने तप्त सांस लेकर अपने चाण्डाल होनेकी सब बातें सुनाई ॥ २१२ ॥ पुत्र शोक विह्वला रानीने भी उत्तप्त सांसें लेकर दुःख भरी दीन वाणीसे पुत्र मरणकी बात कही ॥ २१३ ॥ राजाने कहा हे प्यारी! अब यह कठिन दुःख सहा नहीं जाता। हा कष्ट, मैं कैसा अभागा हूं कि मेरी देह भी अपने वश नहीं है ॥ २१४ ॥ यदि मैं चाण्डालकी आज्ञा लिये बिना चितामें जल जाऊं तो फिर चाण्डालके घरमें पैदा होकर चाण्डालका दास बनना पड़ेगा ॥ २१५ ॥ अथवा नरक में पड़कर कीड़े खानेवाला जीव बनूंगा। पीव मज्जा चर्बी मेद आदिसे भरे नरक या वैतरणीमें डूब जाऊंगा ॥ २१६ ॥ या असि-पत्र वनमें जाकर बड़ी कठोरतासे काटा जाऊंगा। या महा रौरव में डालकर तपाया जाऊंगा ॥ २१७ ॥ ऐसे दुःख समुद्रमें पड़कर मरजानाही पार होना है। यह एक लड़का हम लोगोंका वंश चलानेवाला था वह भी मेरे अभाग्यरूपी जलके वेगसे इसी दुःख समुद्रमें डूब गया। मैं ऐसा दुःख पाकर भी पराधीन होनेके कारण प्राण भी नहीं त्याग सकता ॥ २१८ ॥ अथवा जब आदमी बड़ा दुःखित होजाता है तब पापको कुछ भी नहीं गिनता। पशु होने में वह दुःख नहीं है और असिपत्र वनमें भी वह कष्ट नहीं है, वैतरणीमें भी वह दुःख नहीं है, जो दुःख पुत्रके मरनेमें है ॥२२०॥ मैं अवश्य अपने पुत्रकी धधकती हुई चितामें जलकर मर जाऊंगा।

प्यारी मेरे अपराध क्षमा करना ॥ २२१ ॥ हे मन्द मुसुकानेवाली प्यारी, मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं "तुम ब्राह्मणके घर लौट जाओ मेरा वचन मानो ॥२२२॥ यदि मैंने दान हवन किया हो और अपने बड़ोंको प्रसन्न किया हो तो अवश्यही स्वर्गमें तुमसे और पुत्रसे मिलूँगा ॥२४३॥ इस जन्ममें इस अभिप्रायकी सिद्धिकी सम्भावना नहीं रही। अथवा तुम भी मेरे साथ उसी मार्गको चलो जिससे पुत्र गया ॥२२४॥ हे पवित्र हास करनेवाली! मैंने यदि कभी हंसी ठट्ठेमें भी तुम्हें अनुचित बात कही हो तो उसे क्षमा करना यही प्रार्थना है ॥२२५॥ ऐ कल्याणी! अपनेको रानी समझकर उस ब्राह्मणका कभी अनादर मत करना। सब तरह देवताकी भांति उसकी सेवा करना ॥२२६॥ रानीने कहा महाराज मुझसे भी अब दुःख सहा नहीं जाता इससे मैं भी तुम्हारेही साथ अपने पुत्रकी चितामें जल जाऊंगी। दोनों एकही साथ रहकर स्वर्ग और नरक भोगेंगे। राजाने कहा अच्छा ॥२२७॥ पीछे राजाने चिता बना कर उस पर अपने लड़केको रखा और रानी सहित हाथ जोड़कर परमात्मा, ईश्वर, वासुदेव, पुरेश्वर, परब्रह्म, कृष्णवर्ण पीताम्बरधारी शुभप्रद हरि हृदयरूपी गुफामें रहनेवाले अनादिनिधन नारायण भगवानको स्मरण किया। उस समय इन्द्र आदि देव धर्मको आगे करके वहां झटपट आपहुंचे ॥२३०॥ वह सब बोले—हे राजेन्द्र! सुनो, यह साक्षात् पितामह हैं, यह भगवान धर्म हैं, यह साध्यगण हैं, यह विश्वेदेव हैं, यह मरुतगण हैं, यह लोकपाल हैं, यह नाग हैं, यह सिद्ध हैं, यह गन्धर्व हैं, यह रुद्र हैं, यह अश्विनीकुमार हैं ॥२३२॥ और अनेक देवताओं सहित वह विश्वामित्रजी भी पधारे हैं जिनका तीनों लोकोंमें कोई मित्र नहीं है। आज वह सब तुमसे मित्रता करने और तुम्हारा मनोरथ पूरा करने आये हैं। पीछे धर्म, इन्द्र और विश्वामित्र राजाके समीप आये ॥२३४॥ धर्मने कहा—राजन्! ऐसा साहस मत करो। मैं धर्म हूं, तुम्हारी सहनशीलता इन्द्रियदमन, सत्य आदि गुणोंसे प्रसन्न होकर तुम्हारे पास आया हूं

॥२३५॥ इन्द्रने कहा हे महाभाग राजा हरिश्चन्द्र! मैं इन्द्र हूं, तुम्हारे पास आया हूं, तुम और तुम्हारी स्त्री पुत्रने तीनों लोक जीत लिये ॥२३६॥ हेराजा! अपनी स्त्री और पुत्रके संग अपने कामसे जीते हुए उस स्वर्गमें चलो जो दूसरोंके लिये दुर्लभ है ॥२३७॥ फिर इन्द्रदेवने चिताके पास खड़े होकर अपमृत्युका नाश करनेवाले अमृतकी वर्षा की ॥२३८॥ फूलोंकी वर्षा होने लगी देवता दुन्दुभी बजाने लगे। तब सबके देखते देखते सुकुमार रोहिताश्व सुस्थ होकर चितासे उठ खड़ा हुआ, उसका शरीर खिला हुआ था सब इन्द्रियां तथा मन प्रसन्न था। राजा रानीने हर्षसे पुत्रको उठाकर गले लगाया और दिव्य वस्त्र और मालाएं धारण करके पत्नी सहित शोभा पाने लगे और सुस्थ होकर अत्यन्त आनन्दित हुए। फिर इन्द्रने कहा हे महाभाग हरिश्चन्द्र! आप स्त्री पुत्र सहित परम सद्गति लाभ करेंगे इससे अपने कर्मोंसे जीते हुए स्वर्गमें स्त्री पुत्र सहित चलो ॥२४३॥

हरिश्चन्द्रने कहा—हे देवराज! मैं अपने स्वामी चाण्डालकी आज्ञा विना स्वर्गमें नहीं जासकता ॥२४४॥ धर्मराजने कहा—हे राजा! तुम्हारा भावी क्लेश जानकर मैं अपनी मायासे चाण्डाल बन गया था और मैंने यह चञ्चलता की थी ॥२४५॥ इन्द्रने कहा हे हरिश्चन्द्र! इस पृथिवीके संपूर्ण मनुष्य जिस स्थानकी बड़ी चाह करते हैं वह पवित्र स्थान तुम लो ॥२४६॥ हरिश्चन्द्रने कहा हे देवराज! आपको नमस्कार करता हूं, आप कृपाकर मेरी बात सुनिये आप अनुग्रह करके कहते हैं कि स्वर्गमें चलो। पर कोशला नगरके लोग मेरे वियोगसे दुःखित वहां निवास करते हैं उन्हें छोड़कर कैसे स्वर्गमें जाऊं ॥२४८॥ ब्रह्महत्या, गुरुघात, गोवध और स्त्रीवधके समान अपने भक्तोंको त्याग देनेमें पाप होता है ॥२४९॥ अपनी सेवा करनेवाले सच्चे सेवकको छोड़नेवालेको इस लोक और परलोकमें कहींसुख नहीं होता इससे आप जाइये। यदि मेरी प्रजाकेलोग मेरे साथ स्वर्गमें चलसकें तो मैं स्वर्गमें चलूंगा नहीं तो उनके साथ नरक

मेंरहना भला ॥२५१॥ इन्द्रने कहा हे राजा तुम्हारी प्रजामेंसे किसी ने पुण्य किया है किसीने पाप उनकी गति उनके कर्मानुसार होगी वह सब तुम्हारे साथ स्वर्ग में कैसे जासकते हैं? ॥२५२॥ हरिश्चन्द्रने जवाब दिया, भगवन्! राजा अपने परिवार तथा प्रजाके सहारे राज भोगता है, बड़े बड़े यज्ञ करता है और अनेक भवन बनाता है ॥२५३॥ मैंने सब काम उन्हींके सहारे किये हैं, इस कारण मैं स्वर्ग के लोभसे उन्हें छोड़ कैसे सकता हूं ॥२५४॥ हे देवेन्द्र! जो कुछ मेरा किया पुण्य हो उसका फल सबको बराबर हो ॥२५५॥ जो मेरे पुण्यका फल बहुत दिनों तक होनेवाला हो वह एकही दिन उन सबके साथ मुझे हो ॥२५६॥ इन्द्रने कहा कि ऐसाही होगा। फिर इन्द्र धर्म्म और विश्वामित्रने प्रसन्न होकर स्वर्ग मे करोड़ों विमान मंगाकर अयोध्यामें भेजी और वहां जाकर वहांकी प्रजासे बोले कि तुम सब इस पर चढ़कर स्वर्ग को चलो ॥२५८॥ इन्द्रके कहनेसे राजाको प्रसन्न करनेकेलिये विश्वामित्रने भी अयोध्या पुरीके राजसिंहासन पर हरिश्चन्द्रके पुत्र रोहिताश्वको बिठाया और देवता और मुनियोंके संग मिलकर उसका अभिषेक किया ॥२६०॥ तब सब अयोध्यावासी प्रसन्न होकर अपने अपने पुत्र स्त्री तथा दासों को लेकर राजा रानीके संग स्वर्ग चले गये ॥२६१॥ लोग जहां तहां एक विमानसे दूसरे पर जाते हैं और सब प्रसन्न हैं यह देखकर राजा हरिश्चन्द्र बहुतही प्रसन्न हुए ॥२६२॥ वह राजा अनेक विमानों के बीच अतुल विभूति पाकर नगरके समान सुन्दर तथा कोठे अटारोंसे शोभित विमान पर निवास करने लगे ॥२६३॥ राजाकी यह सम्पत्ति देखकर सब शास्त्रोंके तत्व जाननेवाले दैत्यगुरु महाभाग शुक्राचार्य्य उनकी कीर्ति गाने लगे ॥२६४॥ हरिश्चन्द्रके समान राजा कोई हुआ न होगा। जो हरिश्चन्द्रका चरित्र सुनता है वह बहुत सुख पाता है ॥२६५॥ स्वर्ग चाहनेवाला स्वर्ग पाता है पुत्र चाहनेवाला पुत्र पाता है स्त्री चाहनेवाला स्त्री पाता है और राज्य चाहनेवाला राज्य पाता है ॥२६६॥ धन्य है क्षमाका महात्मा, धन्य

है दानका फल जिसके प्रभावसे हरिश्चन्द्रने अपनी पुरीके साथ इन्द्र का पद पाया ॥२६७॥ पक्षियोंने कहा—हे मुनिवर! हरिश्चन्द्रकी यह कथा हमने आपसे कही। अब इसका शेष भाग सुनिये ॥२६८॥ इस राजसूय यज्ञके फलस्वरूप आड़ी बकका युद्ध जिस प्रकार हुआ ॥२६९॥

नवां अध्याय।

आड़ी बककी लड़ाई।

पक्षियोंने कहा—राज्यच्युत होने पर जब हरिश्चंद्र स्वर्ग में चले गये तब महातेजा गङ्गावासी वसिष्ठजी बारह वर्षके जलवाससे निकले ॥१॥ और उन्होंने विश्वामित्रकी सब बातें सुनीं ॥२॥ उदार चरित हरिश्चंद्रका नाश, स्त्री पुत्रका विकना तथा चाण्डालके घर राजाका दास होना ॥३॥ राजामें परम प्रेम रखनेवाले महाभाग तेजस्वी वशिष्टने यह सब बातें सुनकर विश्वामित्र पर बड़ा क्रोध किया ॥४॥ वशिष्ठने कहा—विश्वामित्रने मेरे सौ लड़कोंको मार डाला तो भी इतना क्रोध नहीं हुआ जैसा आज होता है ॥५॥ देवता तथा ब्राह्मणोंकी पूजा करनेवाले महात्मा महाभाग हरिश्चंद राजाको विश्वामित्रने राज्यसे अलग किया। वह बड़ा सत्यवादी राजा था शत्रु पर भी दया करता था उसे किसी बातका अभिमान न था आज तक उसने किसी तरहका अपराध नहीं किया था। वह बड़ा भारी धर्मात्मा था, उसे कभी प्रमाद नहीं होता था और मेरा तो बड़ाही भक्त था ॥७॥ उसके पुत्र स्त्री तथा भृत्योंकी दुर्गति हुई। वह राज्यसे अलग कर अनेक प्रकार दुखी किया गया यह बातें सुनकर मुझे बड़ा दुःख होता है ॥८॥ इस कारण यह दुरात्मा तथा ब्राह्मणोंसे द्वेष रखनेवाला मूर्ख विश्वामित्र मेरे शापसे 'बगुला'

होगा ॥९॥ विश्वामित्रने भी वशिष्ठका शाप सुनकर उसके बदलेमें वशिष्ठको "तुम 'आड़ी' नामक पक्षी होजाओ" ऐसा शाप दिया ॥ १०॥ वह महात्मा, परम तेजस्वी वशिष्ठ तथा विश्वामित्र परस्पर शापके कारण पक्षी कुलमें उत्पन्न हुए ॥११॥ वह अमित-बल वाले दोनों एक दिन संयोग वश एकत्र होकर बड़े पराक्रमसे आपसमें लड़ने लगे ॥१२॥ दो हजार योजन ऊंचा आड़ी उड़ा, और तीन हजार छानवे योजन बक उड़ा ॥१३॥ वह दोनों आपस में अपने पङ्खोंसे प्रहार करने लगे। यह घोरयुद्ध देखकर समूची प्रजा डर गई ॥ १४ ॥ बकने क्रोधसे आंखें लालकर अपने दोनों पङ्ख खूब झाड़कर आड़ीको मारा। आड़ीने अपनी गरदन ऊंची करके अपने दोनों पङ्खोंसे बकको घायल किया ॥ १५ ॥ उन दोनों के पंखोंकी हवाके वेगसे अनेक पहाड़ पृथिवी पर गिर पड़े और उन पहाड़ोंकी धमकसे पृथिवी हिलने लगी ॥ १६ ॥ पृथिवीके हिलनेसे समुद्रका जल ऊपरको उछलने लगा और पृथिवी एक कोने से दबकर पातालमें जाने लगी ॥ १७ ॥ कितनेही जीव पहाड़ों से गिरकर कितने समुद्रके जलके धक्के से कितने पृथिवीके हिलनेमें मर गये ॥ १८ ॥ इस तरह सम्पूर्ण जगत व्याकुल होगया, चारों ओर हाहाकार मच गया और समूची पृथिवी उथल पुथल सी होने लगी ॥ १९ ॥ हा बेटा ! हा पिता ! तुम कहां भागे चले जाते हो मैं यहां हूं। हा प्यारी ! हा नाथ ! देखो यह पहाड़ गिर रहा है चलो जल्दी भागो ॥ २० ॥ इस प्रकार सब जगत जब घबरा उठा तब सम्पूर्ण देवताओंके सङ्ग ब्रह्मा आपहुंचे ॥ २१ ॥ और उन दोनों क्रोधियोंसे बोले कि अब तुम लोग अपना युद्ध बन्द करो जिससे यह जगत सुखी हो ॥ २२ ॥ अनादि देव ब्रह्माकी यह बात सुनकर भी क्रोध और डाहसे दोनों पक्षी लड़तेही रह गये थोड़ी देर भी न ठहरे ॥ २३ ॥ तब पितामह ब्रह्माने लोकक्षय देख कर दोनोंकी भलाईके लिये उन लोगोंको पक्षीके शरीरसे छुड़ाया ॥ २४ ॥ जब वह दोनों अपने शरीरमें आकर सात्विकभावको प्राप्त

होगये तब उनसे प्रजापति ब्रह्माने कहा—हे वशिष्ठ! हे विश्वामित्र! वत्स! तुम दोनों अपना अपना तामसभाव त्याग कर ऐसा युद्ध करना छोड़दो ॥ २६ ॥ क्योंकि पृथिवीका क्षय करने वाला जो युद्ध तुम करते हो वह महाराज हरिश्चन्द्रके राजसूय यज्ञ का विपाक था ॥ २७ ॥ कौशिक श्रेष्ठ विश्वामित्रने राजाका कुछ भी नहीं बिगाड़ा है उलटा उनके द्वारा उपकार हुआ कि राजा हरिश्चंद्रको स्वर्ग मिला ॥२८॥ काम क्रोधके वश होकर तुम दोनोंने अपने तपमें विघ्न डाला था। अब दोनो अपना अपना क्रोध छोड़ो। और तपहीको अपना बल समझो ॥२९॥ ब्रह्माकी बात सुनकर दोनो लज्जित हुए और उन्होंने आपसमें मिलकर एक दूसरेसे क्षमा मांगी ॥६०॥ पीछे देवताओंसे पूजित होकर ब्रह्मा ब्रह्मलोकमें चले गये। वशिष्ठ अपने स्थान पर चले गये और विश्वामित्र भी अपने आश्रमको लौट गये ॥ ३१ ॥ यह आड़ी बकका युद्ध तथा हरिश्चंद्र की कथा जो मनुष्य कहेंगे और सुनेंगे उनका पाप छूट जायगा। उनके किसी काममें कभी विघ्न न होगा ॥ ३२ ॥

दसवां अध्याय।

पिता-पुत्र सम्वाद—जीवनके कष्ट।

जैमिनिने पूछा—हे प्रधान पक्षिगण! मेरे हृदयमें एक बड़ा सन्देह है आप कृपाकर उसे दूर कीजिये। जीव क्योंकर उदरमें जाता है और बढ़ता है? और क्योंकर सुकड़ा हुआ वहां रहता है? ॥२॥ पेटसे बाहर निकलकर क्योंकर बढ़ता है? मरनेके समय क्योंकर उसका चैतन्य नाश होता है? ॥३॥ सब जीव मरकर कैसे पाप पुण्य भोगते हैं अथवा किये हुए पाप पुण्यका फल कैसे उत्पन्न होता है ॥४॥ क्या कारण है कि माताके उदरमें भारी और

कठोर वस्तु भी खाई जायें तो पच जाती है पर यह छोटासा पिण्ड पेटहीमें रहता है पचता नहीं ? ॥५॥ यह सब कठिन और छिपी हुई बातें हमसे कृपाकर कहिये क्योंकि यह बड़ी गूढ़ बातें हैं और लोग इनसे मोहित होते हैं ॥६॥ पक्षियोंने कहा हे जैमिनि! इस बड़े भारी प्रश्नका बोझ आपने हम पर डाल दिया। यह बात बड़ी कठिन है इसका ठीक हाल बहुत लोग नहीं जानते ॥७॥ आप मन लगाकर सुनिये। मैं वह कथा आपसे कहता हूं जो परम धर्मात्मा सुमतिने अपने पितासे कही थी ॥८॥ एक भृगुवंशीय ब्राह्मण था उसका नाम महामति था। उसके एक लड़का सुमति नामका था। वह बड़ा शान्त स्वभाव था। देखनेसे जड़सा मालूम पड़ता था और उसका यज्ञोपवीत संस्कार होचुका था ॥९॥ पिताने कहा हे सुमति! तुम आदिसे अन्त तक क्रमसे चारों वेद पढ़ जाओ। सावधान होकर गुरुकी सेवा करो और भिक्षा द्वारा जीवन धारण करो ॥१०॥ पीछे गृहस्थ बनकर यज्ञ करो। उत्तम सन्तान उत्पन्न करो। तब वनमें जाकर तप करो। हे वत्स! पीछे सब छोड़कर सन्यासी बन जाओ। इस प्रकार तुम उस ब्रह्मको लाभ करो जिसके पानेसे किसी तरहकी चिन्ता नहीं होती ॥१२॥ इस प्रकार पिताने बहुतसी बातें कहीं पर उस लड़केने जड़ताके कारण कुछ भी उत्तर न दिया। पिता स्नेहवश बारबार उससे कहताही रहा ॥१३॥ जब पिता पुत्र-प्रेमकेवशसे बड़े कोमल मधुर वचनोंसे समझा कर उसे पढ़नेकेलिये आग्रह करनेलगा तब वह लड़का हंसकर बोला ॥१४॥ हे पिता! आप जो उपदेश करते हैं उसका मैंने अच्छीतरह अभ्यास किया है। मैंने अनेक शास्त्र और शिल्पशास्त्र अच्छी तरह सीखे हैं ॥१५॥ अपने पिछले दस हजारसे अधिक जन्म मुझे याद हैं। ज्ञान, विराग, सन्तोष, क्षय, वृद्धि मैं सब जानता हूं ॥१६॥ मैंने शत्रु, मित्र, कलत्र (स्त्री) का संयोग और वियोग बारबार देखा है, अनेक प्रकारके माता और पिता देखे हैं ॥१७॥ अनेक प्रकारके भाई बन्धु परिवारके संग रहकर अनेक प्रकारके सुख दुःख भोगे हैं

॥१८॥ विष्ठा और मूत्रसे भरे हुए स्त्रियोंके पेटमें मैं बहुत दिनों तक रह चुका हूं, सहस्रों रोग और क्लेश सह चुका हूं ॥१९॥ अनेक प्रकारके गर्भ-दुःख, लड़कपन, जवानी और बुढ़ापेमें होनेवाले सब दुःख मुझे याद हैं ॥२०॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, पशु, कीट, मृग, पक्षी आदि जीवोंकी योनिमें जन्म पाचुका हूं। राजाओं के बड़े बड़े कर्म्मचारियों तथा वीर योद्धाओंके घर जन्म चुकाहूं, अब आपके घर पैदा हुआ हूं ॥२२॥ बड़े बड़े राजाओंकी नौकरी करके बहुत दिनों तक दास होचुका हूं। मालिक बना हूं, राजा बना हूं और दरिद्र भी बन चुका हूं ॥२३॥ दूसरोंको मैंने मारा है मुझे दूसरोंने मारा है। दूसरेसे दूसरेको मरवाया है। दूसरे लोगोंने मुझे दानदिया, मैंने दूसरोंको दिया ॥२४॥ पिता माता मित्र भाई, बन्धु स्त्री आदि परिवारका सुख पाचुका हूं, दुःख भी पाचुका हूं और गरीबी भी ऐसी भोगी है जिससे रोते रोते मेरा मुंह तथा शरीर भीग गया है ॥२५॥

तात! दुःखदायी संसारचक्रमें घूमकर मैंने यह ज्ञान पाया है जिससे मनुष्यको मोक्ष मिल जाती है ॥२६॥ इसी प्रकार ऋक्, यजु, साम आदि वेद मुझे असम्यक जान पड़ते हैं ॥२७॥ अब जो मुझे पूर्ण ज्ञान होगया और गुरुविज्ञानसे परितृप्त होकर निश्चेष्ट और सदात्मा होगया हूं तो वेदज्ञानसे क्या प्रयोजन है? ॥२८॥ अतएव छओं प्रकारकी क्रिया दुःख, सुख, हर्ष, रस, गुण इत्यादिसे रहित जो ब्रह्मपद है उसे मैं अवश्य पाऊंगा ॥२९॥ रस, हर्ष, भय, उद्वेग, क्रोध, डाह, बुढ़ापा, रोग आदि अनेक पांशोंसे जीवनरूपी हिरनको फंसानेवाली मायाको मैं अच्छी तरह जान गया हूं ॥३०॥ मैंने दुःखराशिको त्याग दिया है। तीनों वेदका कहा धर्म्म भी अधर्म्म स्वरूपही है। 'कैंथ' के फलके समान हृदयशून्य है ॥३१॥ उस लड़केकी यह बात सुनकर महाभाग पिताने हर्ष और आश्चर्य्यसे गद्गद होकर प्रसन्नमनसे उस अपने लड़केसे कहा ॥३२॥ हे बच्चा! तू क्या कहता है? तुझे ऐसा ज्ञान कहांसे हुआ? क्या कारण है

कि पहले तुम जड़ थे अब ज्ञानी होगये ? ॥३३॥ क्या किसी देवता या मुनिके शापसे तुम जड़ थे और अब शाप मिटनेसे तुम्हें फिर ज्ञान होगया ॥३४॥ मैं यह सभी बातें सुनना चाहताहूं मुझे बड़ाही आश्चर्य होगया है। इस कारण हे बच्चा ! अपनी सब पुरानी कथा मुझसे कहो ॥३५॥ लड़केने कहा हे पिता ! मैं अपने सुख दुःख की पुरानी कहानी आपसे कहता हूं। पहले जन्ममें जो मैं था और जो कुछ मुझ पर बीती ॥३६॥ मैं पूर्वजन्ममें ब्राह्मण था, मेरा चित्त सदा परमात्मामें लीन रहता था और आत्मविद्याके विचारमें बहुत ही पक्का होगया था ॥३७॥ सदा योग करता था, योगसे चित्त एकाग्र रखता था, सज्जनोंका संग करता था, अपने स्वभावहीसे सदा विचार करके तत्व ढूंढ़ा करता था—इस प्रकार अभ्यास करते करते उसमें परम प्रेम होगया। अन्तमें मैं शिष्योंका सब सन्देह दूर करनेवाला आचार्य्य बन गया ॥३८॥ कुछ काल पीछे अज्ञानसे मेरा सद्भाव दब गया। प्रमादसे मैं विपन्न हुआ परन्तु मृत्युसमय मेरा ज्ञान फिर लोप नहीं हुआ। इसी कारण जन्मकालसे जितने वर्ष बीते हैं उन सबमें मेरी स्मृति बनीही रही ॥४१॥ अतएव हे पिता ! मैं पूर्वजन्मके अभ्याससे जितेन्द्रिय हूं अब मैं ऐसा अभ्यास करूंगा जिससे फिर कभी मोह न हो ॥४२॥ मुझे जो पूर्वजन्मोंकी बातें याद आती हैं यह ज्ञानदानका फल है। वेदविहित कर्मकाण्ड करनेसे यह बात कभी नहीं होसकती ॥४३॥ जन्म पाकर भी मैं, लड़कपनहीसे निष्ठाधर्ममें रहकर अपने मोक्षका उपाय करूंगा ॥४४॥ हे महाभाग पिता ! आपके हृदयमें जो सन्देह हो वह कहिये मैं उसका उत्तर देके आपको प्रसन्नता प्राप्त करूं और आपसे उऋण रहूं ॥४५॥ पिताने पुत्रकी बातपर विश्वास करके कहा हे पुत्र ! संसारके जन्म मरणकी बात अच्छी तरह समझाकर कहो ॥४६॥ पुत्रने उत्तर दिया—हे पिता ! जिसका मैंने कई बार अनुभव किया वह तत्व मैं आपसे कहता हूं। इस संसारचक्रकी जरा भी नहीं है और स्थिति भी नहीं है ॥४७॥ यह शरीर पाकर मनुष्य अज्ञानी

होजाता है पहलेकी सभी बातें भूल जाता है। इस कारण जो विषय दूसरा कोई कभी नहीं कह सकता वह सब आपकी आज्ञा पाकर कहता हूं ॥४८॥ भीतरके शरीरकी अग्नि (पित्त) प्रकुपित होकर ईन्धन न मिलने पर भी तीव्र वायुसे जल उठती है और सब मर्म्म स्थानोंको भेदती है। उदान नामक शरीरस्थ वायु उसके ऊपर प्रवर्त्तमान होकर तरल भोजनोंकी अधोगति निरोध करती है। उस समय प्राणीकी मृत्यु होजाती है ॥५०॥

जो आदमी जलदान किये रहता है, दूसरोंको अन्न भोजन कराये रहता है वह मृत्यु समय उसी पुण्यके प्रतापसे प्रसन्न रहता है ॥५१॥ जिसने श्रद्धासें पवित्र चित्तसे अन्न दान किया है वहउस समय विना जल भी तृप्त होताहै ॥५२॥ जिसने कभी झूठी बातें नहीं कही हैं, मित्रताका त्याग नहीं किया है, परलोकमें विश्वास रखा है और देवता ब्राह्मणमें श्रद्धा रखी है वह सुखसे मरता है ॥५३॥ जो सदा देवता और ब्राह्मणोंकी पूजामें लीन रहते हैं, किसीकी निन्दा नहीं करते, स्वच्छतासे रहते हैं, दानी हैं और लज्जा रखते हैं वह सुखसे मरते हैं ॥५४॥ जो काम, भय और वैरसे धर्म्म नहीं छोड़ते, कही बात पूरी करते तथा शान्तिसे रहतेहैं वह सुखसे मरते हैं ॥५५॥ जिन्होंने जलदान नहीं किया है उनको प्यास, जिन्होंने अन्नदान नहीं किया है उनको भूख, मृत्युके समय बड़े वेगसे लगती है ॥५६॥ लकड़ी दान करनेवालेको जाड़ा चन्दन देनेवालेको ताप नहीं होता और दूसरेका भय छुड़ानेवाले मनुष्यको प्राण-नाशकारिणी कठिन यातना नहीं होती ॥५७॥ जो दूसरे को मोह तथा अज्ञान देनेवाले हैं उन्हें मृत्युके समय बड़ा भारी भय आघेरता है। अधम नर कठिन वेदनाओंसे पीड़ित होते हैं ॥५८॥ झूठी गवाही देनेवाला, झूठी बात बोलनेवाला, खराब राय देनेवाला और वेदकी निन्दा करनेवाला मृत्युके समय मोह पाता है ॥५९॥ जिनके रूप देखनेसे डर लगता है, देहसे दुर्गन्धि उड़ती है, हाथमें लाठी और मुद्गर लिये रहते हैं, ऐसे यमराजके दुष्ट दूत दिखाई

देते हैं ॥६०॥ उनको देखतेही मनुष्य कांपने लगता है और भाई माई और बेटा कह कहकर रोने लगता है ॥६१॥ हे पिता! उसकी बोली साफ नहीं सुन पड़तीं, केवल एक प्रकारका शब्द सुन पड़ता है। डरसे आंखें घूमने लगती हैं और हांफते हांफते मुंह सूख जाता है ॥६२॥ सांस ऊपरको चलने लगती हैं, आंखें उलट जाती हैं, तब वह घबराकर शरीर छोड़ देता है ॥६३॥ पीछे हवा में चलनेवाला एक दूसराही शरीर पाता है, वह शरीर माता पिता के गर्भसे नहीं होता, वह केवल कर्मानुसारही कर्म भोगनेके लिये मिलता हैं। जैसा मनुष्य मरता है ठीक ठीक वही अवस्था वही दशा और वही देहकी गठन होती है ॥६४॥ तब यमदूत उसे अपने कठिन पाशोंसे बांध लेते हैं और डण्डोंसे मार मारकर दक्षिण दिशा में खींच लेजाते हैं ॥६५॥ कुश, कांटे, बिमोट, कङ्कड़, पत्थर आदि से कठोर भूमि तथा तपी आग और हजारों गढ़ोंमें खींचते घसीटते लेजाते हैं ॥६६॥ उत्तप्त सूर्य्यकी तपी हुई किरनोंसे तपी हुई जमीन में यमदूत खींचे चले जाते हैं और जीव बड़ी घोर चिल्लाहट मचाता है ॥६७॥ उस समय हजारों डरायने सियार उसे काट काट कर खाने लगते हैं। पापी आदमीको बड़े कठिन रास्तेसे जाना पड़ता है ॥६८॥ जो मनुष्य छाता जूता कपड़ा अन्न गरीबोंको देते हैं वह उस रास्तेमें सुखसे चले जाते हैं ॥६९॥ इस तरह पराधीन होकर पापसे दुःखित होकर, दुःखोंको भोगता भोगता बारह दिनमें धर्म-राजकी पुरीमें पहुंचता है ॥७०॥ उसकी देह जब जलाई जाती है तब उसे बड़ा कष्ट मालूम पड़ता है। कपालक्रिया करनेके लिये जब बांससे उसका सिर तोड़ा जाता है, तब उसे बड़ा दुःख होता है ॥७१॥ जब उस पर जल डाला जाता है तब उसे बड़ा क्लेश होता है। वह दूसरा शरीर पाकर भी इस शरीरका सुख दुःख भोगता है ॥७२॥ वहां उसके परिवारके लोग जो तिलके संग जल देते हैं और पिण्डदान करते हैं वही वह खाता पीता है ॥७३॥ परिवारके लोगोंकी देहमें जो तेल लगाया जाता है, देह दबाई

जाती है और जो परिवारके लोग भोजन करते हैं उनसे वह मरा हुआ जीव सुख पाता है ॥७४॥ उसके बन्धुगण जमीन पर सोते हैं तो उसे बहुत क्लेश नहीं होता और बंधुवर्ग जो दान करते हैं उससे वह मृतक जीव सुखी होता है ॥७५॥ फिर वह बारहवें दिन अपने घर आता और पृथिवीमें रखा हुआ पिण्ड तथा जल खाता पीता है ॥७६॥ बारहवें दिनके बाद जब मृतक जीव फिर यमदूतों से खिंचकर यमपुरीमें पहुंचाया जाता है तब वह वहां जाकर महा-भयानक, डरावनी सूरत, लोहेका बना हुआ, लाल आंखों वाला, घोटे हुए काजलके समान काला और मृत्यु, काल आतङ्क-आदि देवोंके बीच बैठा हुआ यमका स्वरूप देखता है ॥७८॥ यमके बड़े बड़े दांत डरावना मुंह, टेढ़ी भौंहें भयानक देह है और वह बद-सूरत भयंकर टेढ़े बांके अनेक रोगोंके बीच मालिक बनकर बैठे रहते हैं ॥७९॥ उनके एक हाथमें दण्ड, दूसरे हाथमें पाश रहता है, उनकी बांह बड़ी लम्बी हैं, उनका स्वरूप बड़ाही भयंकर है। उनकी आज्ञासे यह जीव बुरी वा भली गति पाता है ॥८०॥ जो झूठी गवाही देता है, झूठी बात बोलता है वह रौरव नरकमें जाता है। मैं उस रौरव नरकका रूप बतलाता हूं सुनिये ॥८१॥

रौरव नरक दो हजार योजन लम्बा चौड़ा है उसमें जंघा भर गहरा एक बड़ाही लम्बा चौड़ा गढ़ा है। जिसमें अङ्गारे मट्टीकी जगह बिछाये गये हैं। इस कारण वह भूमि बड़ी ज्वालासे वेगके साथ धधकती है॥८३॥यमदूत उसमें पापियोंको गिरादेते हैं और वह जब वह आगसे जलने लगते हैं तब उठकर दौड़ते हैं ॥८४॥ पैर पैर पर उनके पांव जलने लगते हैं और चलनेमें असमर्थ होजाते हैं। दिन रात उसीमें चलना पड़ता है ॥८५॥ इस प्रकार हजार योजन उन्हें चलना पड़ता है। तब पापी वहांसे छूटता है। फिर उसे पाप छुड़ानेके लिये उसी प्रकारके दूसरे नरकमें जाना पड़ता है ॥८६॥ पीछे सब नरकोंसे निकलकर पापी पक्षीकी योनिमें पैदा होता है। फिर कीड़े मकोड़े फतिंगे मक्खी मच्छरगाय घोड़े हाथी और वृक्ष

लता नाना विधिके कष्टप्रद योनियोंमें जन्म ग्रहण करता है ॥८८॥ फिर मनुष्य योनिमें पैदा होकर कुबड़ा लंगड़ा कुरूप वामन डोम चमार आदि होता है ॥८९॥ तब बचे हुए पुण्यसे ऊपरकी जाति में चढ़कर पहले शूद्र फिर वैश्य क्षत्रिय ब्राह्मण और इन्द्र तक हो सकता है और फिर बुरे काम करनेसे गिरता गिरता उन्हीं नरकों में सड़ता है ॥९१॥ अब पुण्यात्माओंकी बात कहता हूं सुनिये। पुण्यात्मा लोग यमराजकी आज्ञा पाकर पवित्र गति पाते हैं ॥९२॥ गन्धर्वगण उनकी कीर्ति गाते हैं, अप्सराएं उनकेआगे नाचती हैं और वह धर्मात्माजन हार नूपुर आदिके मधुरशब्दोंसे आच्छादि तथा शोभित अच्छे अच्छे विमानोंपर अनेक प्रकारकी दिव्य मालाएं पहनकर चले जाते हैं ॥९३॥ जब वहांसे बहुत दिनोंके बाद नीचे गिरते हैं तब राजा तथा दूसरे उच्च कुलमें उत्पन्न होते हैं। वहां अनेक प्रकारके सुख भोगते हैं ॥९४॥ वह यदि पुण्य अधिक करने लगते हैं तो फिर लौटकर स्वर्गमें चले जाते हैं। यदि पाप करते हैं तो नीचेकी योनियोंमें पैदा होते होते नरक तक पहुंच जाते हैं ॥९५॥ यह सब कथा मैंने आपसे कही जिस प्रकार जीवकी ऊंची नीची गति होती है। हे पिता! अब जिस प्रकार जीव गर्भमें जाता है वह बातें समझाता हूं ॥९६॥

ग्यारहवां अध्याय।

जीवोंका उत्पत्तिक्रम।

पुत्रने कहा—हे पिता! जब पुरुषका वीर्य्य स्त्रीके रजमें मिल जाता है तब उसमें स्वर्ग अथवा नरकसे निकला हुआ जीव आकर निवास करने लगता है ॥१॥ फिर दोनो मिलकर एक होजाते हैं। पीछे क्रमसे कलल बुदबुद और पेशी बनते हैं पेशीमें जो खण्ड

बीज होता है उसे अंकुर कहते हैं और उसी अंकुरसें भागानुक्रमसे पांचों अंग बनते हैं। पीछे उपाङ्ग अर्थात् अंगुली, आंख, नाक, मुंह और कान आदि बन जाते हैं। उन सब उपांगोंसें जो अंकुर जमता है उनसे नखादि उत्पन्न होते हैं। फिर त्वचा पर रोमावली और केश उगते हैं। इसी प्रकार सब अंग और उद्भवकोष दोनो बढ़ते हैं अर्थात् नारियलका फल जिस प्रकार कोषके साथ साथ बढ़ता है वैसेही प्राणी भी गर्भकोषके साथ नीचेको बढ़ता है ॥६॥ प्राणी जब गर्भकोषसें नीचे मुंह किये रहता है तब जानु और पार्श्व सहित दोनो हाथ नीचेको लगे रहते हैं दोनो अंगूठे जानुके ऊपर रहते हैं और दूसरी अंगुलियां जानुके अग्रभाग पर फैली रहती हैं। दोनो स्फिक पार्ष्णि पर, और दोनो बाहु और जंघा बाहरी भागसें रहते हैं। प्राणी गर्भसें रहकर इस प्रकार बढ़ता है और दूसरे प्राणियोंकी जैसी जैसी आकृति होती है वैसेही वैसे वह रहते हैं ॥८॥ पेटकी गर्मीसे वह कठिन होजाता है और खाये पीये पदार्थों से वह जीता है। पुख्य पापकी कमी बेशीके अनुसार गर्भवाससे भी सुख दुःख रहता है। जीवकी नाभिसे जो आप्यायिनी नाड़ी बंधी रहती है वह स्त्रीकी आंतोंसे जुड़ी रहती है। उस नाड़ीके छेदसे स्त्रीका खाया पीया जीवके पेटसें जाता है और उसीसे वह बढ़ता है ॥१२॥ उस समय संसारकी बहुत बातें उसे स्मरण होती हैं और पेटमें दबकर बहुत कष्ट पाता है। उसे सैकड़ों जन्मकी बातें स्मरण होआती हैं और वह प्रतिज्ञा करता है कि अबके उदर से निकलूंगा तो फिर वैसे काम न करूंगा। अब ऐसा यत्न करूंगा जिससे फिर गर्भवासका कष्ट न सहना पड़े ॥१५॥ इस प्रकार ८।१० महीने पेटसें रहकर उसका जन्म होता है उस समय वह प्राजापत्य वायुसे बहुत पीड़ित होता है और हृदयके दुःखसे रोता बाहर निकलता है। उदरसे निकलकर वह मूर्च्छित होजाता है और वायु लगनेसे उसे चैतन्य होता है तब विष्णुकी मोहिनी माया उसे छूती है और उससे उसका ज्ञान नष्ट होजाता है। ज्ञान नष्ट होने

से वह बाल्य, कौमार, यौवन और वृद्धता आदि दशाएं भोगकर मरता है और फिर जन्म लेता है। कुम्हारके चाककी तरह संसार-चक्रमें पड़कर बराबर फिरता रहता है ॥२१॥ वह कभी स्वर्ग कभी नरक और कभी दोनो स्थानोंमें जाता है और कभी फिर यही जन्म लेकर कर्मफल भोगता है कभी सब कर्मोंके फल भोगकर जल्द मर जाता है। हे द्विजवर! कभी थोड़े पापपुण्यके कारण थोड़ेही दिन स्वर्ग नरक भोगता है। स्वर्गमें स्वर्गवासियोंके आमोदकी बातें स्मरण करके नरकके पापी मनमें बहुत दुःख पाते हैं। पर स्वर्गमें भी बड़ा दुःख है। स्वर्गमें जातेही जीव सोचने लगता है कि पुण्य पूरा होतेही नीचे पटक दिये जायंगे। हे पिता! नरकवासियोंको देखकर भी स्वर्गवाले दुःखित होते हैं कि हमारी भी ऐसीही दशा होगी। इस प्रकार स्वर्गवाले भी दुःखित रहते हैं। गर्भवासही एक तो बड़ा दुःखमय है फिर योनिमार्गसे जन्म लेना और भी दुःख-दायी है। जन्म लेने पर अज्ञानावस्था बालकपन दोनो दुःखही भरे हैं, काम ईर्ष्या और क्रोधादिके कारण जवानी तो दुःखका घरही है फिर बुढ़ापा घोरदुःख और मरना उससे भी बढ़कर है! ॥२८॥ फिर जब यमके दूत पकड़ते हैं और नरकमें ठेलते हैं तब तो दुःख की सीमा नहीं रहती। पीछे फिर गर्भवास, फिर जन्म फिर मरना और नरकमें गिरना! इस प्रकार संसारचक्रमें बंधा हुआ जीव चाककी तरह फिरा करता है और बार बार बन्धन यन्त्रणा भोग करता है। सुतराम् हे पिता! सैकड़ों दुःखोंसे भरे हुए इस संसार में लेशमात्र भी सुख नहीं है। इससे जब मैं मुक्तिकी चेष्टा करता हूं तो फिर वैदिकधर्मकी सेवा क्यों करूंगा ॥३२॥

बारहवां अध्याय ।

नरक विवरण ।

पिताने कहा—हे बेटा ! तुमने ज्ञान देनेके छलसे महाफलप्रद इस गहन संसारका विषय उत्तमरूपसे वर्णन किया। अब रौरव और दूसरे नरकोंकी बात जो तुम कह चुके हो उसीको विस्तारसे कहो। पुत्रने कहा—पिताजी ! रौरव नरककी बात पहले सुना चुका हूं अब महारौरवकी बात सुनिये ॥ ३ ॥ बारह हजार योजन की तांबेकी बनी भूमि है उसकी तलीमें अग्नि है ॥ ४ ॥ उसके तापसे तपकर चारों दिशाएं हजारों उगे हुए चन्द्रमाओंके समान प्रकाशित रहती हैं उसका देखना छूना महाभयङ्कर है ॥ ५ ॥ यमके दूत पापियोंके हाथ पैर बांधकर उसीमें छोड़ देते हैं और पापी उसमें छटपटाने लगते हैं ॥ ६ ॥ कव्वा, बगुला, गीदड़, बुघू, बिच्छू, और मच्छड़ उन्हें खाने लगते हैं और गिद्ध उन्हें नोचने लगते हैं ॥ ७ ॥ जब पापियोंकी देह जलने लगती है तब वह बेचारे यन्त्रणाके मारे हाय बाप ! हाय मैया, हाय भैया, हाय तात ! इत्यादि कहकर घबरा घबरा कर बार बार चिल्लाने लगते हैं। उन्हें कुछ भी शान्ति नहीं मिलती ॥ ८ ॥ इस प्रकार कई हजार वर्षों में दुष्ट पापी छुटकारा पाते हैं ॥ ९ ॥ एक और नरक है जिसका नाम "तम" है वह बड़ाही ठण्ढा है। महारौरवके बराबरही लम्बा चौड़ा है और अन्धकारसे भरा हुआ है ॥ १० ॥ उसमें पापी लोग पड़कर जाड़ेसे ठिठुरकर उस महाअन्धकारमें इधर उधर दौड़ते फिरते हैं और आपसमें एक दूसरेको पकड़कर और सटकर खड़े होजाते हैं। भूख प्यास और दूसरे उपद्रवोंसे व्याकुल होजाते हैं ॥ १२ ॥ हवा बर्फके टुकड़े लेकर बहती है और उन पापियोंकी हड्डियां कंपा देती है, मेद, मज्जा आदि गलकर गिरने लगता है,

वह पापी उन्हींको भूखके मारे खाने लगते हैं और आपसमें एक दूसरेका शरीर चाटते हुए इधर उधर दौड़ते हैं ॥ १३ ॥ इस प्रकार पापी मनुष्य उस अन्धेरेमें महाकष्ट पाते हैं। जबतक कि उनके सब पापोंका भोग पूरा नहीं होजाता ॥ १४ ॥ हे पिता! एक और नरक है जिसका नाम 'निकृन्तन' है। उसमें कुम्हारकेसे अनेक चाक सदा घूम रहे हैं ॥ १५ ॥ उन पर बैठाकर यमराजके दूतोंकी अंगुलियोंसे बंधे हुए कालसूत्रोंसे पापीजनोंके सिरसे लेकर पैर तक सब अङ्ग काटे जाते हैं ॥ १६ ॥ पर इस पर भी उनकी मौत नहीं होती और वह कटे टुकड़े फिर जुड़ जाते हैं ॥ १७ ॥ इस तरह हजारों वर्ष पापी उसमें कटते रहते हैं जबतक कि उनका सब पाप क्षय नहीं होजाता ॥ १८ ॥ अब "अप्रतिष्ठ" नामक नरक की बात कहता हूं सुनिये। जहां रहकर नारकी लोग असह्य दुःख सहते हैं ॥ १९ ॥ वहां भी पापी जनोंको दुःख देनेवाले अगणित चर्खे रहते हैं ॥ २० ॥ कितने पापीजन उन्हीं चर्खों पर चढ़ाकर हजार वर्ष तक घुमाये जाते हैं, कितनेही मट्टीके घड़ेकी भांति चाक पर घूमते घूमते बारबार रक्त वमन करते हैं, मुंहसे निकले रक्त और आंखोंसे निकले आंसुओंसे घोर कष्ट पाते हैं ॥ २३ ॥ "असिपत्र" नामक एक दूसरा नरक है वहां हजार योजन तक जमीन पर जलती हुई आग फैली हुई है ॥ २४ ॥ और अत्यन्त भयानक प्रचण्ड सूर्यकी किरणोंसे भूमि तप्त रहती है। वहां नरक निवासी लोग गिराये जाते हैं ॥ २५ ॥ उसके बीचमें चिकने पत्ते वाला एक मनोहर वन है। देखनेमें उसके पत्ते बड़े चिकने हैं पर वैसे वह तलवारकी धारकी तरह तीक्ष्ण हैं ॥ २६ ॥ वहां बाघोंकी भांति बलवान तेज दांतोंवाले हजारों कुत्ते भूंकते रहते हैं ॥ २७ ॥ उस वनकी शीतल छाया जानि देखकर बड़ी जोरकी लगी हुई भूख प्याससे घबराकर पापी जीव उसमें घुस जाते हैं ॥ २८ ॥ हाय माता! हाय पिता! इत्यादि कहकर बड़े दुःखसे चिल्लाते रहते हैं। कुत्तोंके काटनेसे उनके पैर जलते रहते हैं ॥ २९ ॥ जब पापी जीव उस वन

में चले जाते हैं तब उन पत्तोंके गिरानेवाली हवा बड़े वेगसे बहती है जिससे पत्ते टूट टूट कर उन पर गिरते हैं॥ ३०॥ उन पत्तोंके गिरनेसे घबराकर पापी जलती हुई जमीन पर गिर पड़ते हैं। उन्हें बचनेको कहीं शरण नहीं मिलती॥ ३१॥ जब वह पापी गिर जाते हैं तो उन्हें वह भीषण कुत्ते आकर फाड़ने लगते हैं। तब पापीजन बड़े जोरसे रोने लगते हैं॥ ३२॥ हे पिता! असि-पत्र बन नामक नरकका मैंने तुमसे वर्णन किया। अब उससे भी भयानक "तप्तकुम्भ" नरकका वर्णन करता हूं, सुनिये॥ ३३॥ धधकती हुई आगकी ज्वालासे तपाये हुए अगणित बड़े बड़े घड़े रखे रहते हैं उनमें खौलता हुआ तेल और लौहचूर्ण भरा रहता है॥ ३४॥ यमदूत पापियोंको उठा उठाकर उन्हीं घड़ोंमें उलटा मुंह करके डाल देते हैं पापीजन उनमें उलटेही पड़े पड़े पकने लगते हैं उनकी देहसे फूट फूट कर चर्बी गिरने लगती हैं जिनसे जमीनमें कीच मच जाती है॥ ३५॥ उनके सिर, नेत्र और हड्डियां टूट फूट जाती हैं, बड़े बड़े डरावने गीध उन पापियोंको लेकर आकाशमें उड़ जाते हैं फिर काट पीटकर उन्हीं घड़ोंमें उन्हें गिरा देते हैं॥ ३६॥ फिर तेलमें पड़कर 'सिम सिम' शब्द करके पकने लगते हैं, तब सब शरीरकी चर्बी, मांस, चमड़ा और हड्डियां पिघल जाती हैं॥ ३७॥ फिर यमदूत बड़ी बड़ी 'कलछियां' लेकर उन्हें उन्हीं घड़ोंमें घोलने लगते हैं, इस तरह उन्हें खूब भयङ्कर बड़ाही दुःख देते हैं॥ ३८॥ हे पिता! मैंने आपसे तप्तकुंभ नामक नरक का सत्य सत्य वर्णन किया॥ ३९॥

तेरहवां अध्याय।

यमसे राजाकी बातें।

पुत्रने कहा—हे पिता! इस जन्मसे सातवें जन्म पहले मैं वैश्य कुलमें पैदा हुआ था। एक दिन गायें कूएंके निकट एक जलाशय में पानी पीरही थीं, मैंने उन्हें रोका ॥१॥ उसी पापकर्मके विपाक से बड़े भयानक नरकमें मैं गिरा। वहां आग धधक रही थी, लोहे के बने हुए चोंचवाले पक्षी उड़ रहे थे और काटे हुए शरीरोंसे लहू इतना गिरता था कि वहांकी जमीन एकदम गीली होगई थी। पापियोंकी चिल्लाहटसे महा कोलाहल मच रहा था ॥२॥ उसमें पड़े पड़े मुझे सौ वर्षसे भी अधिक बीत गये। मैं तापसे बड़ा तप्त हो रहा था और प्यासकी दाहसे सूख रहा था ॥४॥ उस तपी हुई रेत के ऊपर अचानक एक ऐसी ठण्ढी हवा आई जिससे मुझे बड़ा आनन्द आया ॥५॥ उस हवाके लगनेसे सब जीवोंको बड़ा सुख मिला। मुझे तो ऐसा सुख मिला जैसा स्वर्गमें देवताओंको मिलता है ॥६॥ हम सब लोग अचम्भेमें पड़ गये कि यह आनन्द हम सबको कैसे मिला? हम चारों ओर आंखें फैलाकर देखने लगे। हम ने देखा कि एक बड़ा ही सुन्दर पुरुष हमारी ओर आरहा है ॥७॥ और बड़े बड़े भयंकर यमदूत वज्रके समान दण्ड हाथमें लिये "इधर आइये इधर आइये" ऐसा कहते हुए उसे रास्ता बतला रहे हैं ॥८॥ हजारों पीड़ाओंसे भरा हुआ नरक देख कर उस पुरुषने बड़ी दया करके उन यमदूतोंसे पूछा ॥९॥ हे यम-दूतगण। तुम मुझे बताओ कि मैंने कौनसा ऐसा पाप किया है जिससे इस दुःखदायी नरकमें मुझे आना पड़ा है ॥१०॥ मैंने मिथिला में जनक राजाके वंशमें पहले जन्म लिया था, "विपश्चित्" मेरा नाम था। प्रजाओंको अच्छी तरह पालता था ॥११॥ मैंने यज्ञोंसे

यज्ञ किये, धर्मपूर्वक पृथिवीका पालन किया, लड़ाईमें कभी पीछे पैर नहीं रखा, आये हुए अतिथियोंको अपने द्वारसे कभी विमुख नहीं लौटाया ॥१२॥ पितर, देवर्षि अथवा भृत्य का कभी निरादर नहीं किया। पराये धन और पराई स्त्रीकी मैंने कभी इच्छा नहीं की ॥१३॥ जलाशयके पास जैसे गाय आपसे आप चली जाती है वैसेही पर्वकालमें मेरे पास पितृगण और तिथिकालमें देवता आते थे। देवता या पितृ जिस गृहस्थकी पाससे विमुख जाते हैं उसका तर्पण और यज्ञ दोनो धर्म नष्ट होते हैं ॥१५॥ जब पितृ लोग आकर बिना सत्कार सांस मारकर लौट जाते हैं तब सात जन्मोंका किया हुआ पुण्य नष्ट होजाता है। यदि देवता लोग विमुख हो सांस मार लौट जायं तो तीन जन्मका किया हुआ पुण्य अवश्य नष्ट हो जाता है ॥१६॥ इस कारण मैं पूर्वजन्ममें देवकर्म और पितृकर्म बड़ी श्रद्धासे करता था। फिर मैं किस कारण इस घोर नरकमें आया ॥१७॥

चौदहवां अध्याय।

कर्मफलसे उत्पन्न हुई नरक-यातनाका वर्णन।

पुत्रने कहा—हे पिता! उस महात्मा पुरुषने हम लोगोंके सामने यमदूतसे यह बात पूछी। उस यमदूतने भयानक होने परभी बड़ेही मीठे शब्दोंमें कहा ॥१॥ हे राजा! जो तुम कहते हो वह बहुत ठीक है इसमें कोई सन्देह नहीं। किन्तु तुमने जो थोड़ासा पाप किया है उसे याद दिलाता हूं ॥२॥ पूर्वजन्ममें पीवरी नामकी विदर्भ देश-सम्भूता तुम्हारी स्त्री एक समय ऋतुमती हुई। तुम इस ऋतुके समय उसके पास नहीं गये उसका ऋतु विफल होगया ॥३॥ उस समय तुम कैकय देशकी रानी सुशोभना पर आसक्त थे।

इसी ऋतुका त्याग करनेसे तुम्हें इस नरकमें आना पड़ा है ॥४॥ होमके समय जिस प्रकार अग्नि घीकी चाह करती है उसी प्रकार ऋतुके समय प्रजापति बीजकी चाह करते हैं ॥५॥ जो व्यक्ति उस ऋतु समयको उलंघन करके प्रेमके कारण दूसरी स्त्रीसे सम्भोग करते है वह पितरोंके ऋणसे पापी होकर नरकमें जाते हैं ॥६॥ हे राजा! बस, इतनाही तुम्हारा पाप है और कुछ नहीं, इस कारण अब चलो अपने पुण्योंका भोग करो ॥७॥ राजाने कहा—हे देवानुचर! तुम जहां लेचलो मैं वहां चलूंगा। पर मैं कुछ बातें तुमसे पूछता हूं वह ठीक ठीक बता दो ॥८॥ यह वज्रकीसी चोंच वाले कव्वे मनुष्योंकी आंखें निकाल लेते हैं किन्तु फिर फिर उनके आंखें होजाती हैं इसका क्या कारण? ॥९॥ इन लोगोंने कौन ऐसा पाप किया है कि इनकी जीभें यह कव्वे उखाड़ लेते हैं और फिर फिर वह जीभें नई उग जाती हैं ॥१०॥ किस पापसे यह करपत्र नामक पत्तेसे काटेजाकर बहुतही दुःखित होते हैं और यह पापी क्यों तेलके कड़ाहोंमें डालकर पकाये जाते हैं ॥११॥ क्यों इन्हें लोहेकी चोंचवाली चिड़ियां काटती हैं और इनकी देहकी सब गांठें कट रही हैं जिससे दुःख पाकर यह जोर जोरसे चिल्ला रहे हैं ॥१२॥ लोहेकी चोंचोंसे इनके सब अंग कटकर लहू टपक रहा है इन लोगोंने क्या पाप किया है कि इस तरह सताये जाते हैं ॥१३॥ यह दुःख तथा और प्रकारकी जो पीड़ाएं पापियोंकी होती देख पड़ती हैं किन कर्मोंसे होती हैं मुझे अच्छी तरह बता दो ॥१४॥

यमदूतने कहा—हे भूपाल! तुम जो पापोंकी बातें पूछते हो तो मैं बहुतही संक्षेपसे उनका ठीक ठीक भेद बताता हूं ॥१५॥ पुरुष पुण्य और पाप कर्मोंको भोगते हैं। पाप तथा पुण्य भोगनेहीसे नष्ट होते हैं ॥१६॥ बिना भोगे पाप पुण्य नष्ट नहीं होता। उसके नाश करनेका उपाय भोगनाही है ॥१७॥ हे राजन्! पुण्य पाप भोगनेहीसे छूटा होता है। कर्मबन्धनमें पड़कर प्राणी नाना भोग भोगता है। प्राणी दरिद्री होता है और धनवान पर धनवान,

क्लेश पर क्लेश, भय पर भय और मृत्यु पर मृत्यु भोगता है। श्रद्धावान, शान्त चित्त, धन दान करनेवाले अवश्य सुखी होते हैं और अच्छे अच्छे विमानों पर चढ़कर स्वर्ग चले जाते हैं॥२०॥ पापी लोग पाप करके ऐसी ऐसी भयानक जगहोंमें जाते हैं जहां बड़े बड़े सांप हाथी चोर आदि डरावने अगणित जीव रहते हैं ॥२१॥ और पुण्यात्मा लोग अपने पुण्यबलसे सुगन्ध भरी माला अच्छे कपड़े, अच्छी सवारी, अच्छे बिछौने, अच्छे भोजन पाकर, देवताओंसे सम्मानित होकर पुण्यभवनमें चले जाते हैं॥२२॥ कई हजार, कई सैकड़े जन्मोंका सञ्चित पुण्य पाप मनुष्यके सुख दुःख का अंकुर है॥२३॥ जिस प्रकार बीज जलकी चाह करता है उसी प्रकार पुण्य तथा पाप देश काल और पात्रकी चाह करता है॥२४॥ देश कालसे उत्पन्न हुए छोटे पाप, रास्तेमें चलते फिरते कांटे गड़ जानेहीसे बीत जाते हैं॥२५॥ वह पाप अधिक रहता है तो शूल तथा बड़ी बड़ी कीलोंके गड़ जानेसे बीत जाता है अथवा सिर दर्द आदि दुःसह दुःखोंके भोगनेसे बीतता है॥२६॥ अनुचित भोजन, ठण्ढा, गरम, परिश्रम, ताप आदिसे उत्पन्न दुःख भी पापहीके फल स्वरूप हैं॥२७॥ इस प्रकार बड़े बड़े पाप बड़े बड़े रोग पैदा करते हैं अथवा शस्त्र, अग्नि, कैद आदि अनेक प्रकारके कठिन दुःख देते हैं॥२८॥ छोटे छोटे पुण्य चलतेही फिरते सुगन्ध, कोमल स्पर्श, मीठा शब्द, मधुर रस तथा सुन्दर रूप आदि साधारण सुखसंयोग कराकर बीत जाते हैं॥२९॥ इसी तरह बड़े बड़े पुण्य बहुत दिनों तक बड़े बड़े सुख देकर बीतते हैं॥३०॥ प्राणी इसी प्रकार इस महासंसारमें पुण्य पापसे उत्पन्न सुख दुःख भोग करके जीवन बिताता है॥३१॥ पुण्य पाप, जाति तथा देशसे बंधे हुए ज्ञान अज्ञान पैदा करते हुए अत्यन्त छोटे रूपसे आत्मामें निवास करते हैं॥३२॥ शरीरसे मनसे अथवा वचनसे किये बिना कोई मनुष्य पुण्य अथवा पापका भागी कभी नहीं होता॥३३॥ पुरुष, सुख अथवा दुःख जो कुछ भोगता है वह थोड़ा हो वा बहुत हो उससे चित्तमें विकार

जरूरही होजाता है ॥३४॥ जिस तरह अन्न खानेसे घट जाता है उस तरह पुण्य अथवा पाप भोगनेहीसे घटते हैं ॥३५॥ इसी कारण यह पापी नरकमें रहकर बड़ी बड़ी यातनाएं सहकर बड़े बड़े पाप भोगते हैं ॥३६॥

हे राजन् उसी तरह पुण्यात्मा लोग देवताओंके साथ रहकर गन्धर्व सिद्ध तथा अप्सराओंके गीत सुनकर पुण्योंका भोग करते हैं ॥३७॥ देवता होकर मनुष्य होकर अथवा पशु पची बनकर पाप पुण्यसे उत्पन्न दुःख सुखका भोग प्राणीको करना पड़ता है ॥३०॥ हे राजा! तुम जो पापियोंके कष्टोंकी बात पूछते हो तो मैं जिस पापसे कौन कष्ट होता है यह सब बातें विस्तारसे कहता हूं ॥३८॥ जो अधम नर पराई स्त्रीको पापदृष्टिसे देखते हैं और पराया धन दुष्ट मनसे लेनेकी इच्छा करते हैं उनकी दोनो आंखें वज्रके समान चोंचवाले पची नोच लेते हैं और वह फिर फिर होजाती हैं। इस प्रकार जितनी बार पलक उठाकर पापकी दृष्टिसे पराई स्त्रीको देखते हैं उतनेही हजार वर्ष यह नेत्रका दुःख पापी लोग सहते हैं ॥४२॥ जो शत्रुको धोखा देनेको अन्याय उपदेश या कुमन्त्रणा देते हैं, जो शास्त्रोंकी उल्टी व्याख्या करते हैं, जो मिथ्या बोलते हैं और वेद, देवता, ब्राह्मण और गुरुओंकी निन्दा करते हैं, हे राजा! यह वज्रकी चोंचवाले पची उन्हींकी जिह्वाको बारम्बार छेदते हैं। उन्होंने जितनी बार ऐसे पाप किये हैं वज्रवत् पची उन्हें उतनेही वर्ष काटते हैं ॥४५॥ हे राजा! जो मनुष्य दो मित्रोंमें, पिता पुत्रमें, एक परिवारमें, यजमान पुरोहितमें, माता पुत्रमें, स्त्री पति और साथियोंमें विच्छेद कराते हैं वह इन करपत्रोंसे फाड़े जाते हैं ॥४७॥ जो दूसरोंको दुःख देते हैं, जो दूसरोंका आनन्द बिगाड़ते हैं, जो पंखे, हवाकी जगह, चन्दन और खसका हरण करते हैं और जो नीच पुरुष सज्जनोंको [illegible] कष्ट देते हैं वह पापी तपे हुए बालूमें डाले जाते हैं ॥४८॥ [illegible] मनुष्य देव या पितृकार्यमें [illegible] निमन्त्रण लेकर दूसरेके [illegible] भोजन करते हैं उन्हें यह

भयानक पक्षी दो टुकड़े कर देते हैं ॥५०॥ जो अपने कठोर वचनोंसे सज्जनोंका हृदय वेधते हैं उन्हें यह पक्षी सदा दुःख देनेके लिये सय्यार रहते हैं ॥५१॥ जो नराधम दूसरेकी चुगली करते फिरते हैं उनकी जीभें तीखे तीरोंसे फाड़कर दो करदी जाती हैं ॥५२॥ जो अभिमानी माता पिता वा गुरुका निरादर करते हैं वह पीव विष्ठा और मूत्रसे भरे हुए गढ़ोंमें उल्टे मुंह डाल कर डबो दिये जाते हैं ॥५३॥ जो देवता, अतिथि, नौकर, अभ्यागत, पिता, माता, अग्नि, और पक्षियोंको खिलाये बिना आप भोजन कर लेते हैं वह दुष्ट थूक आदि खाते हैं। उनका मुंह सूई सा पतला और शरीर पहाड़सा बड़ा होजाता है इस कारण उनका पेट कभी नहीं भरता ॥५५॥ जो एक पांतिमें ब्राह्मण अथवा किसी अन्य जातिके मनुष्यको बैठाकर दो तरहकी चीज खिलाते हैं वह इन लोगोंकी भांति विष्ठा खाते हैं ॥५६॥ यात्रामें जो अपने दरिद्र साथीको छोड़कर आपही अन्न खा लेते हैं वह नरकमें श्लेष्मा खाते हैं ॥५७॥ जो जूठे हाथसे देवता, ब्राह्मण, गाय वा अग्निको छूते हैं उनके हाथ इन्हीं तपे हुए घड़ोंमें डालकर जलाये जाते हैं ॥५८॥ जो उच्छिष्टदशामें सूर्य्य चन्द्र वा तारोंको जानकर देखते हैं उनकी आंखोंमें यमदूत आग डालकर जलाते हैं ॥५९॥ जो गाय, आग, माता पिता, ब्राह्मण, बड़े भाई, बहिन, कुलवासिनियों, स्वामी, गुरु और बूढ़े ब्राह्मणोंको पैर लगाते हैं उनके पैर आगसे तपे हुए लोहेकी सांकलोंसे बांधे जाते हैं और जानु तक जलाये जाते हैं ॥६१॥ खीर, खिचड़ी, और देवान्न आदिको जो असंस्कृत करके खाजाते हैं वह पापी भूमिमें गिरकर ऊपरको देखते हैं और यमदूतोंके काटके मुखमें जाते हैं ॥६३॥ जो पापी नर प्रसन्न होकर गुरु, देवता, ब्राह्मण और वेदकी निन्दा सुनते हैं उनके कानों में जलते हुए लोहेकी कीलें यमदूत ठोंकते हैं ॥६५॥ जो प्रपा, (प्याज-जलघर) देवालय, ब्राह्मणका घर, देवमूर्ति और सभा आदिको क्रोध या लोभके वश तोड़ देते हैं उनकी त्वचाएं बड़े बड़े भयङ्कर

यमदूत तेज हथियारोंसे टुकड़े टुकड़े कर देते हैं ॥६७॥ जो मनुष्य गाय, ब्राह्मण वा सूर्य्यकी ओर मुंह करके पेशाब करते हैं उनके गुद में अपनी चोंचें घुसाकर यह काव्वे आंतें निकाल लेते हैं ॥६८॥ जो मनुष्य एकको अपनी कन्या दान करके दूसरेको व्याह दें वह घायल करके लवणकी नदीमें डाल दिये जाते हैं ॥६९॥ जो मनुष्य क्रोधमें आकर अथवा अकाल पड़ जानेपर वा डरसे अपना प्राण बचानेकेलिये अपने पुत्र स्त्री नौकर भाईबन्धु तथा अपने परिवारके दरिद्र जनोंको त्याग देते हैं यमदूत उन्हींका मांस काटकर उन्हें देते हैं और वह मारे भूखके उसीको खाजाते हैं ॥७१॥ जो अपनी शरणमें आये हुए जनोंको अथवा अपने सच्चे दासोंको किसी लोभसे छोड़ देते हैं उनकी भी यही दशा होती है ॥७२॥ जो नर अपना जना भरका पुरुष किसी कारण किसीके हाथ बेच देते हैं वह चक्कीमें डालकर यमदूतोंके हाथ पीसे जाते हैं ॥७३॥ जो किसीकी धरोहर पचा जाते हैं उनके शरीर रस्सियोंसे जकड़कर कीड़े बिच्छू और सांपोंसे कटवाये जाते हैं ॥७४॥ जो मनुष्य दिनमें अपनी स्त्री अथवा पराई स्त्रीसे सञ्जोग करते हैं वह भूखसे व्याकुल होते हैं और प्याससे उनके तालू सूख जाते हैं। वह बड़े बड़े लोहेके कांटोंसे भरे सेमल के पेड़ों पर चढ़ाये जाते हैं वहां उनके शरीर कटकर बहुत रक्त बहने लगता है। और दूसरी परनारी भोगनेवालोंको यमदूत कुण्डोंमें डालकर गला रहे हैं ॥७७॥ जो घमण्डमें अपने गुरुको नीचे आसन पर बैठाकर पढ़ते हैं अथवा किसी तरहका गुण वा कारी-गरी सीखते हैं उन्हें इस प्रकार सिर पर शिला रखकर नरकोंमें होय भोगना पड़ता है। बोझके मारे भूखसे व्याकुल होकर दिन रात सूखते हैं ॥७९॥ जो जलमें विष्ठा मूत्र और थूक डालते हैं वहीं इस मूत्र विष्ठा और थूककी दुर्गन्धसे भरे हुए नरकमें पड़ते हैं ॥८०॥ यह जो भूखके मारे एक दूसरेका मांस खाते हैं इसीसे पूर्वजन्ममें आपसके निमन्त्रणमें भोजन नहीं किया था। न यह उसके यहां भोजन करने गया न वह इसके ॥८१॥ जिन ब्राह्मणोंने वेद

तथा अग्निको त्यागदिया है वह ऊंचेपर्वतकी चोटीसे नीचे बारम्बार गिराया जाता है ॥८२॥ जो पुनर्भू (दूसरे व्याही स्त्रीसे) के पति होकर जीवन बिताते हैं वह कीड़े होते हैं और उन्हें चिंवटियां खाती हैं ॥८३॥ जो पतितका दिया हुआ दान लेता है उसका यज्ञ कराता है और उसकी सेवा करता है वह पत्थरके भीतर रहने वाला कीड़ा होता है ॥८४॥ जो मनुष्य अपने दास, मित्र तथा अतिथिके रहते भी उनका अनादर करके अकेला मिष्टान्न खाजाता है उसे जलते हुए अंगारे खाने पड़ते हैं ॥८५॥ यह मनुष्य सबको पीठ देकर अकेले खाता था इस कारण नित्य इसको पीठका मांस भयङ्कर भेड़िये खाजाते हैं ॥८६॥ वह जो अन्धा बहरा गूंगा हो होकर भूखके मारे घूमता फिरता है उसने उपकारीका उपकार नहीं माना था उसीका यह फल है। यह नराधम मित्रोंका अपकार करता था और कृतघ्न था इसीसे पहले तपाये हुए कुण्डमें डाला गया है पीछे चक्कीमें पिसेगा ॥८८॥ फिर जलते बालूके यन्त्र में डालकर दबाया जायगा। फिर असिपत्र-वनमें फाड़ाजायगा॥८९॥ फिर कालसूत्र नरकमें छेदा जायगा। और अनेक यातनाएं दी जायगी, मैं नहीं जानता उसका इस पापसे कैसे उद्धार होगा ॥९०॥ श्राद्धमें जीमनेके लिये जो ब्राह्मण आपसमें लड़ते हैं वह अपने शरीरोंसे निकला पसीना चाटते हैं ॥९१॥ सोना चुरानेवाला, ब्रह्म हत्या करनेवाला, मद्य पीनेवाला और गुरुकी स्त्रीके संग भोग करने वाला मनुष्य आगके कुण्डमें डालकर तपाया जाता हैं। उसके ऊपर नीचे और चारों ओर आग रहती है और वह उसमें हजारों वर्ष जलता है। पीछे कोढ़ी क्षयरोग ग्रस्त होकर जन्म लेता है ॥९३॥ मरकर नरकमें पड़ता है फिर जन्म पाकर एक कल्प तक रोगी रहता है ॥९४॥ गायका मारनेवाला मनुष्य तीन जन्म घोर नरकों में रहता है। इसी प्रकार दूसरे छोटे छोटे पाप करनेसे दुःख भोगना पड़ता है ॥९५॥ हे महाराज! जिन जिन पापोंसे मनुष्य नरकमें पड़ता है और फिर जिस योनिमें पैदा होता है वह मैं तुम से कहता हूं सुनो ॥९६॥

पन्द्रहवां अध्याय ।

कर्मफल और पापियोंकी नरकसे मुक्ति ।

यमदूतने कहा—जो ब्राह्मण पतितसे दान लेता है वह गधेका जन्म पाता है। पतितका यज्ञ करानेवाला पहले नरकमें पड़ता है फिर निकलकर कीड़ा बनता है ॥१॥ जो ब्राह्मण उपाध्यायसे झूठ बोलता है अथवा उसकी स्त्रीको पापदृष्टिसे देखता है, वा उसका धन लेना चाहता है वह कुत्ता होताहै ॥२॥ जो पितामाताका निरादर करता है वह भी गधा होताहै और मातापितापर क्रोध करनेसे मैना होता है ॥३॥ बड़े भाईकी स्त्रीका जो निरादर करता है वह कबूतर होता है और जो उसे सताता है वह कछुआ होता है ॥४॥ जो मालिकका अन्न खाकर उसकी शुभकामना नहीं करता वह मोहाच्छन्न होकर बन्दर बनता है ॥५॥ जो किसीकी धरोहर ले कर नहीं देता वह नरकसे निकलकर कीड़ा होता है। जो दूसरे से डाह करता है वह नरकसे निकलनेके बाद राक्षस होता है ॥६॥ जो विश्वासघात करता है वह मनुष्य मछली होता है। जो धान, जव, तिल, उड़द, कुरथी, सरसों, चना, केराव, शालि, मूंग, गेहूं, अलसी वा और कोई दूसरा अन्न चुराता है वह नेवलेके बराबर बड़े मुंहका चूहा (घूंस) होता है। जो पराई स्त्रीका संग करता है वह बड़ा भयङ्कर भेड़िया होता है ॥८॥ फिर उसे क्रमसे कुत्ते, गीदड़, बगुले, गिद्ध, बाज और काककी योनिमें जन्म लेना होता है। जो दुर्बुद्धि छोटे भाईकी स्त्रीके संग सम्भोग करता है वह नरकसे निकलकर नर-कोकिल होता है ॥१०॥ जो पापी, मित्रकी स्त्री, गुरुकी स्त्री और राजाकी स्त्रीके साथ सम्भोग करता है वह कामी शूकर होता है ॥११॥ जो यज्ञ दान वा विवाहमें विघ्न डालता है वह कीड़ा होता है। जो अपनी कन्या एकको देकर दूसरेको दे

देता है वह भी कीड़ाही होता है ॥१२॥ जो देवता, माता पिता वा ब्राह्मणको बिना दिये अकेला खालेता है वह नरकसे निकलने पर कव्वा होता ॥१३॥ जो पिताके तुल्य बड़े भाईका निरादर करता है वह नरकसे निकलकर क्रौञ्च पक्षी होता है ॥१४॥ जो शूद्र ब्राह्मणीसे सम्भोग करता है वह कीड़ा होता है। जो शूद्र ब्राह्मणी से सम्भोग करके उसके गर्भसे लड़का पैदा करता है वह लकड़ीमें रहनेवाला कीड़ा फिर सूअर, बहुत छोटा कीड़ा और अन्तमें फिर चाण्डाल होता है। जो कृतघ्नता करता है वह नरकसे निकलकर कृमि, कीट, पतङ्ग, बिच्छू, मछली, कव्वा, कछवा और फिर चाण्डाल होता है ॥१७॥ शस्त्रहीनको मारनेवाला गधा होता है। स्त्री तथा शिशुघातक कृमि होता है ॥१८॥ जो भोजन चुराता है वह मक्खी होता है। उस विषयमें जो विशेष बातें हैं वह भी कहता हूं सुनिये ॥१९॥ जो अन्न चुराता है वह नरकसे निकल कर बिलाव होता है। तिलकी खलीसे मिला हुआ अन्न जो चुराता है वह चूहा होता है ॥२०॥ घी चुरानेसे नेवला, बकरेका मांस चुरानेसे कव्वा, मछलीका मांस चुरानेसे भी कव्वा और हरिनका मांस चुरानेसे बाज होता है ॥२१॥ लवण चुरानेसे जलकाक, दही चुरानेसे कीड़ा और दूध चुरानेसे बगुला होता है ॥२२॥ जो तेल चुराता है वह तेलचट्टा जो मधु चुराता है वह मच्छड़ और जो पूआ तथा पूड़ी चुराता है चिंवटी होता है ॥२३॥ जो अन्नसे निकाला हुआ भूसा चुराता है वह गोह होता है। जो मद्य चुराता है वह तीतर होता है ॥२४॥ जो लोहा चुराता है वह कव्वा होता है। जो कांसा चुराता है वह हारीत पक्षी होता है और जो चांदी चुराता है कबूतर होता है ॥२५॥ जो सोनेका पात्र चुराता है वह कीड़ा होता है। जो रेशमी कपड़ा चुराता है वह क्रकर पक्षी होता है ॥२६॥ जो गेरुआ कपड़ा चुराता है वह कोपकार पक्षी होता है। धोती अंगोछा चुरानेसे शारङ्ग पक्षी होता है॥ जो बकरीके रोएंका बना हुआ कपड़ा या दुशाला चुराता है वह तोता

बनता है। कपासके बने कपड़े चुरानेवाला क्रौञ्च पक्षी बनता है। जो वल्कल चुराता है वह बगुला होता है ॥२८॥ जो छींट चुराता है वह मोर होता है, जो लाल कपड़ा चुराता है वह चकोर होता है ॥२९॥ जो सुगन्धित चीजें चुराता है वह छछून्दर होता है। वास चुरानेवाला शशक होता है जो फल चुराता है वह मुंढ़ी कीड़ा होता है और काठ चुरानेवाला घुन होता है ॥३०॥ जो फूल चुराता है वह दरिद्र होता है जो सवारी चुराता है वह लूला होता है। शाक चुरानेवाला हारीत होता है, पानी चुरानेवाला पपीहा होता है ॥३१॥ भूमि हरण करनेवाला रौरव आदि नरकोंमें जाकर क्रम से तृण, गुच्छ, लता, बेल, और बड़े बड़े पेड़ होता है। फिर पाप नष्ट होने पर मनुष्यका जन्म पाता है। फिर कृमि, कीट, पतंग, जलचर पक्षी, हरिन गाय आदि होनेके बाद चाण्डाल, पुक्कस आदि नीच जाति होकर लंगड़ा, अन्धा, बहरा, कोढ़ी, क्षयी आदि रोगोंसे पीड़ित होता है। मुंहके रोग, आंखके रोग और बवासीर, भगन्दर आदि गुद रोगोंसे दुःखित होता है। फिर अपस्मार आदिसे दुःख पाकर अन्तमें शूद्र होता है। यही हाल गऊ और सोना चुराने वालेका भी होता है। जो दूसरेकी विद्या अपहरण या गुरुकी दक्षिणा मार लेता है वह भी ऐसेही फल भोगता है। जो दूसरे की स्त्री अपहरण करके किसी औरको देता है वह बहुत कष्ट भोग कर अन्तमें नपुंसक होता है ॥३७॥ जो ब्राह्मण बुझी हुई आगमें आहुति डालता है वह अजीर्ण रोगग्रस्त होकर मन्दाग्निसे पीड़ित होता है। जो पर निन्दा, कृतघ्नता, दूसरेके छिद्रको दुखाना, निठुरता, निर्दयता, पराई स्त्रीका संग, दूसरेका धनहरण, देवताओं की निन्दा, शठता, ठगी, कंजूसी और जीववध करना है और दूसरा कोई निषिद्ध काम करता है वह पहले नरकोंमें बहुत दिनों तक रहकर अनेक प्रकारका दुःख भोगता है। फिर नरकसे निकलकर अनेक योनियोंमें जन्म लेकर दुःख भोगता रहता है ॥४१॥ तुम फिर मनुष्योंको देखो कि वह प्राणियों पर दया करते हैं सबसे प्रेम

से बोलते हैं, परलोक सिद्धिके उपाय करते हैं, सत्य बोलते हैं, प्राणियोंकी भलाई करते हैं, वेदको प्रमाण समझते और बतलाते हैं गुरु, देवता, ऋषि, सिद्ध आदिकी पूजा, साधुओंका संग, अच्छे कामोंका अभ्यास, सबसे मित्रता और अच्छे काम करते हैं समझ लो कि निश्चय वह स्वर्गभ्रष्ट होकर संसारमें पैदा हुए हैं ॥४४॥ हे राजन्! मैंने आपके कहनेसे धर्मात्मा तथा पापात्माजनोंके कर्मभोगों का वर्णन किया है ॥४५॥ तुमने अच्छी तरह नरक भी देख लिया। अब आओ हम लोग यहांसे अन्यत्र चलें ॥४६॥

पुत्रने कहा—तब वह राजा यमदूतको आगे करके चलने लगा। उस समय नरकके सब पापी जोर जोरसे चिल्लाने लगे ॥४७॥ हे राजा तुम हम पर कृपाकर थोड़ी देर और ठहरो। तुम्हारे शरीर की हवा लगकर हमें सुखी कर रही है ॥४८॥ हम सबके शरीरोंकी बाधा मिट गई सब ताप दूर होगये। हे महाराज! तुम हम पर दया करो ॥४९॥ नरकनिवासी पापियोंकी यह बात सुनकर राजाने यमदूतसे पूछा—हे यमदूत! क्या कारण है कि मेरे खड़े रहनेसे इन लोगोंको आनन्द मिलता है ॥५०॥ मैंने पूर्व जन्ममें कौनसा ऐसा बड़ा पुण्य किया है कि जिस कारण मेरे शरीर से ऐसी आनन्ददायिनी वृष्टि होरही है यह मुझे बताओ ॥५१॥ यमदूतने कहा—हे राजा! पितर, देवता और अतिथिकी पूजा करके तथा पवित्र अन्नके सेवन करनेसे तुम्हारा यह शरीर पुष्ट हुआ है और तुम्हारा चित्त भी उन्हीं देवता और पितरोंमें रहता है इसी कारण तुम्हारे शरीरसे निकली हुई हवा इनको सुख देरही है और किये हुए पापोंकी पीड़ा इन्हें नहीं व्यापती ॥५३॥ तुमने पूर्वजन्म में अश्वमेध राजसूय आदि अनेक यज्ञ विधिपूर्वक किये हैं इसकारण यमराजके यन्त्र, शस्त्र, अग्नि, काक पीड़ा, छेदन दाह आदि जो पापियोंको महादुःख देनेवाले पदार्थ हैं वह तुम्हारे तेजसे वलीहन होकर कोमल होगये हैं ॥५५॥ राजाने कहा हे यमदूत! भद्रमुख! स्वर्ग या ब्रह्मलोकमें वह सुख नहीं मिल सकता जो सुख कि दुःखित

जनोंका ताप छुड़ानेसे मिलता है यही मेरा सिद्धान्त है ॥५६॥ यदि मेरे रहनेसे इन लोगोंको नरकपीड़ा नहीं होती है तो मैं इसी जगह खंभेकी तरह खड़ा रहूंगा ॥५७॥ यमदूतने कहा—हे राजा! आओ चलो, अब इन पापियोंकी पीड़ाका भोग छोड़कर अपने किये हुए पुण्योंका फल भोगो ॥५८॥ राजाने कहा जबतक यह लोग दुःखित हैं तबतक मैं यहांसे नहीं जाऊंगा। क्योंकि मेरे रहनेसे यह नरकनिवासी सुखी हैं ॥५९॥ उसके जीवनको धिक्कार है जो पुरुष अपनी शरणमें आये हुए शत्रुका भी दुःख नहीं छुड़ाता और जो मित्र हैं उनका तो कहनाही क्या है ॥६०॥ जिसके मनमें दुःखितोंका दुःख छुड़ानेकी इच्छा नहीं रहती उसके यज्ञ, दान, और तप इस लोक वा परलोकमें कल्याणकारी नहीं होते ॥६१॥ जिसका मन बालक बूढ़े वा रोगीको देखकर नहीं पिघल जाता मैं उसे मनुष्य नहीं समझता वह राक्षस है ॥६२॥ इनके पास रहनेसे मुझे यद्यपि नारकीय आगकी गन्ध अथवा भूख प्यासका चेतना होनेवाला महादुःख भोगना होगा तथापि इनका परित्राण होगा—यह भाव मेरे जीमें आनेसे वह महादुःख मुझे स्वर्गके सुखसे भी अच्छा जान पड़ेगा। यदि मुझ अकेलेके दुःख पानेसे बहुतसे आर्त लोगोंको सुख मिले तो मुझे कौनसा सुख न मिला। इससे हे यमदूत! तुम विलम्ब न करो यहांसे चल दो ॥६५॥ यमदूतने कहा—हे राजा! वह देखो तुम्हें लेजानेके लिये धर्मराज और इन्द्रदेव इधरही चले आरहे हैं इससे तुरत यहांसे चलो ॥६६॥

तब धर्मराजने आगे बढ़कर कहा—हे राजा! तुमने मेरी बड़ी उपासना की है इससे स्वर्गमें चलो, विलम्ब मत करो, यह विमान है इस पर चढ़ो ॥६७॥ राजाने जवाब दिया—हे धर्मराज! इस नरकमें हजारों मनुष्य महादुःख भोग रहे हैं और "मेरी रक्षा करो मुझे बचाओ"—कहकर मुझे पुकारते हैं इससे मैं नहीं जाऊंगा ॥६८॥ इन्द्रने कहा—हे राजा! यह लोग अपनेही किये हुए पाप कर्मोंसे नरकमें पड़े हैं तुम अपने किये हुए पुण्य कर्मोंसे स्वर्गमें

चलो ॥६९॥ राजाने कहा—हे धर्मदेव ! हे इन्द्रदेव ! यदि आप मेरे किये हुए पुण्योंकी संख्या जानते हैं तो मुझे कृपाकर बताइये कि कितने दिनों तक मुझे पुण्य भोगना होगा ॥७०॥ धर्मने उत्तर दिया—हे राजा ! समुद्रमें जितने जलके बिन्दु हैं, आकाशमें जितने तारे हैं, मेघ जितनी धाराएं बरसते हैं और गङ्गामें जितने बालूके कण हैं उतनेही तुम्हारे पुण्य हैं ॥७१॥ जिस तरह जलमें बिन्दुओं की गिनती नहीं होसकती उसी तरह तुम्हारे पुण्योंकी गिनती नहीं होसकती ॥७२॥ तुमने जो इस समय इन पापियों पर दया की है इसीके पुण्यकी गिनती तो हजारोंसे ऊपर होगई ॥७३॥ इस कारण हे महाराज ! अपना पुण्य भोगनेके लिये अब स्वर्गमें चलो और यह पापी लोग भी इस नरकमें रहकर अपना किया पाप भोगें ॥७४॥ राजाने कहा—हे धर्म ! आपही कहिये, यदि मेरे आजाने पर इनका क्लेश न छूटा तो फिर दूसरे मनुष्य मेरे संग रहनेकी इच्छा कैसे करेंगे ? इस कारण हे स्वर्गके स्वामी इन्द्रदेव ! जो कुछ मेरे किये पुण्य हैं उन पुण्योंके प्रभावसे यह दुःखित पापी इस नरकसे मुक्त किये जायं ॥७६॥ इन्द्रने कहा—हे राजा ! तुमने इस दयाके कारण इससे भी ऊंचा पद पाया। और देखो यह पापी भी नरकसे निकलकर चले जारहे हैं ॥७७॥ पुत्रने पितासे कहा—हे पिता ! पीछे उस राजा पर फूलोंकी वर्षा होने लगी और इन्द्रदेव राजा को विमान पर चढ़ाकर स्वर्गमें लेगये ॥७८॥ फिर मैं और दूसरे पापी उन कठिन यातनाओंसे छूटकर अपने अपने कर्मके अनुसार अनेक योनियोंमें पैदा होनेके लिये इधर उधर चले गये ॥७९॥ हे पिता ! मैंने इस तरह इन नरकोंकी बातें आपसे कहीं। जिस जिस पापसे जिस जिस योनियोंमें जीव पैदा होते हैं ॥८०॥ वह सब बातें मैंने आपसे कही हैं जो मैंने पहले अपनी आंखों देखी हैं। पूर्वजन्मोंके अनुभवोंसे मैंने यह सत्य ज्ञान पाया है और आपसे सत्य सत्य वर्णन किया है। हे महाभाग ! आप आज्ञा दीजिये और क्या सुनाऊं ? ॥८१॥

सोलहवां अध्याय।

पतिव्रता-माहात्म्य।

पिताने कहा—हे पुत्र ! कुम्हारके चाककी भांति चञ्चल अति हेय इस संसारकी बात तुमने मुझसे खोलकर सुनाई, मुझे भी ज्ञान होगया कि ठीक ऐसाही है। यदि इस संसारकी ऐसी दशा है तो बताओ अब मुझे क्या करना चाहिये ॥२॥ पुत्रने कहा—पिता ! यदि तुम मेरे बचनों पर श्रद्धा और विश्वास करते हो तो इस गृहस्थाश्रमको छोड़कर वानप्रस्थ होजाओ ॥३॥ वानप्रस्थ आश्रमका अनुष्ठान पूरा करके अग्नि परिग्रह छोड़कर आत्मामें आत्मा संयोग करके निर्द्वन्द्व और निष्परिग्रह हो और एक दिनके अन्तरमें आहार तथा आत्माको वशीभूत करके आलस्यहीन सन्यासी हो जाओ। तब योगमें लवलीन हूजिये और बाहरी बातोंका ज्ञान छोड़ दीजिये। तब मुक्तिके कारणस्वरूप उपमाविहीन वाक्यातीत निःसंग दुःखोंकी औषधिस्वरूप योगको प्राप्त होंगे। उस योगमें संयोग होने पर आप पञ्चभूतसे मुक्त होजायंगे ॥६॥ पिताने कहा—हे पुत्र ! तुम मुझसे उस योगकी बात कहो जिसे तुम मोक्षका कारण कहते हो। जिसकी प्राप्तिसे फिर जन्म लेना और वह दुःख भोगना नहीं पड़ता ॥७॥ जिस योगमें लगजानेसे मेरी आत्मा संसारके बन्धनोंसे अलग रहे उस योगका वर्णन करो ॥८॥ संसार रूपी सूर्य्यकी तापसे मेरी देह और आत्मा सूखकर झुलसरही है उसे तुम ब्रह्मज्ञान रूपी शीतल जल सिंचित बचनों द्वारा सींचो ॥९॥ मुझे अज्ञान रूपी काले सांपने काट खाया है। उस विषसे मैं बहुत पीड़ित हूं। तुम अपने बचनोंका अमृत पिलाकर मुझे जिला दो ॥१०॥ पुत्र स्त्री घर खेत आदिके ममत्व रूपी सांकलोंसे मेरा अंग अंग बन्धा हुआ है। अब तुम तुरन्तही उत्तम ज्ञानरूपी तलवारसे उसे तोड़कर

मुझे छुड़ा दो ॥११॥ पुत्रने कहा—हे पिता ! अलर्कके पूछने पर दत्तात्रेयने उनको विस्तारपूर्वक योगकी बातें सुनाई थीं मैं वही सुनाता हूं सुनो ॥१२॥ पिताने पूछा—हे पुत्र ! दत्तात्रेय किसके लड़के थे और किस प्रकार उन्होंने योग सुनाया। महाभाग अलर्क कौन थे जिन्होंने योगका विषय पूछा था ॥१३॥ पुत्रने कहा—प्रतिष्ठान नगरमें कुशिक वंशका कोई ब्राह्मण था वह अन्य जन्मोंके किये हुए पापोंसे कोढ़ी होगया था ॥१४॥ उसकी स्त्री अपने रोगी पतिका पैर धोकर, देहमें तेल लगाकर, स्नान कराकर, कपड़ा पहनाकर और भोजन कराकर देवताके समान सेवा करने लगी ॥१५॥ वह पतिव्रता अपने पतिके शरीरमें लगे हुए थूक मूत्र विष्ठा और रुधिरके प्रवाहोंको धो देती थी। एकान्तमें बिछौने आदिसे सुखी करती थी और मीठी बातें करती थी ॥१६॥ पर वह ऐसा कठोर और निठुर था कि उस विनीतभावसे बोलनेवाली स्त्रीको भी सदा कठोर वचन कहा करता था ॥१७॥ पर वह ऐसी प्रतिव्रता थी कि ऐसे घृणित तथा निठुर पतिको देवताके समान समझती थी ॥१८॥ वह ब्राह्मण चलनेमेंमें असमर्थ था तो भी उसने एक दिन अपनी स्त्रीसे कहा कि यदि तू कुछ धर्म जानती है तो मुझे किसी तरह उस वेश्याके घर पहुंचा जिसे मैंने आज सड़कके किनारेके घरमें देखा था। वह मेरे हृदयमें समा गई है ॥२०॥ सूर्य्योदयके समय मैंने उसे देखा था, अब रात होगई पर जबसे मैंने उसे देखा है तबसे मेरे हृदयसे वह नहीं निकलती ॥२१॥ यदि वह बड़े नितम्ब तथा कुचोंसे शोभा पानेवाली और पतली कमरवाली सुन्दरी वेश्या मुझे न मिलेगी तो मैं निश्चय प्राण त्याग दूंगा ॥२२॥ एक तो कामदेव मनुष्यका शत्रु है दूसरे उसके बहुत चाहनेवाले हैं फिर मुझमें चलनेकी शक्ति नहीं इससे मेरेलिये बड़ा सङ्कट उपस्थित हुआ है ॥२४॥ कामातुर स्वामीकी यह बात सुनकर उस अच्छे कुलवाली महाभागा पतिव्रता स्त्रीने कमर बांधी, बहुतसा धन लिया और पतिको कन्धे पर चढ़ाकर धीरे धीरे चलने लगी ॥२५॥ रात

होगई थी, आकाशमें मेघमण्डली छारही थी, वह अपने पतिकी अभिलाषा पूरी करनेकी चेष्टामें लगी हुई ब्राह्मणी बिजलीकी चमक के सहारे रास्ता चलने लगी। रास्तेमें माण्डव्य मुनिको चोर समझ कर सूली पर लटका दिया गया था उस समय वह वहीं लटक रहे थे। अचानक स्त्रीके कन्धे पर चढ़े हुए उस कोढ़ी कौशिक ब्राह्मण का पैर माण्डव्यके शरीरसे लग गया। इससे मुनिको बड़ा क्रोध हुआ वह बोले ॥२८॥ जिस आदमीके पैर लगनेसे मुझे अधिक कष्ट पहुंचा है सूर्य्य उगनेसे पहले वह पापी बहुत कष्ट पाकर मर जायगा। सूर्य्यका दर्शन होतेही निश्चय उसका प्राण निकल जायगा। तब उस कोढीकी स्त्रीने मुनिका यह कठिन शाप सुनकर बहुतही दुःख माना और कहा—"सूर्य्य उगेहीगा नहीं।" ॥२९॥

इसके बाद सूर्योदय न होनेसे बहुत दिनों तक चारोंओर रात ही रात रही। तब सब देवता डर गये ॥३२॥ वह सोचने लगे कि वेदपाठ, वषट्कार, स्वधा, स्वाहा बन्द होगये। अब कौनकार जगतकी रक्षा होगी ॥३३॥ दिनरातकी व्यवस्था न होनेसे मास तथा ऋतु नहीं होंगे और मास ऋतु न होनेसे दक्षिणायन, उत्तरायणका ज्ञान न होगा ॥३४॥ अयनका ज्ञान न होनेसे वर्षका ज्ञान न होगा, वर्षका ज्ञान न होनेसे कालका ज्ञान कैसे होगा। पतिव्रताके कहनेके अनुसार सूर्य्य नहीं उगता है। सूर्य्यके बिना स्नान दानादि बन्द होगये, अग्निहोत्र नहीं होते यज्ञ भी नहीं होते। होमके बिना हमारा दूसरा उपाय नहीं। जब मनुष्य यज्ञमें हवन कर हमें उचित भाग देकर प्रसन्न करते हैं तब हम प्रसन्न होकर पानी बरसाते हैं अन्न पैदा करके उन जगतके प्राणियों की रक्षा करते हैं ॥३८॥ जब खेतोंमें अन्न होते हैं तब मनुष्य यज्ञ करके हमें तृप्त करते हैं जब हम तृप्त होते हैं तब मनुष्योंकी इच्छायें पूर्ण करते हैं ॥३९॥ हम नीचे बरसाते हैं मनुष्य ऊपर बरसाते हैं। हम जलकी वर्षा करते हैं मनुष्य हविष्यकी ॥४०॥ और जो दुरात्मा लोभी नीचजन नित्यकी देवक्रियाएं नहीं करते, सब वस्तु आपसे

खाजाते हैं उन पापियोंका नाश करनेके लिये हम जल, सूर्य्य, अग्नि वायु और पृथिवीको बिगाड़ देते हैं। जिसमें पापियोंकी हानि हो ॥४२॥ उन पापियोंको खराब जल, वायु सेवन करनेसे अनेक प्रकार के रोग होते हैं जिससे वह मर जाते हैं ॥४३॥ जो हमें प्रसन्न कर बची हुई वस्तु खाते हैं उनका पुण्य हम अच्छी तरह बढ़ा देते हैं। इन सब पदार्थोंके नष्ट होजानेसे संसारकी क्या दशा होजायगी यह नहीं जान पड़ता। अब किस प्रकार दिन होगा। इस तरह सब देवता आपसमें बातचीत करने लगे ॥४५॥ यज्ञके नाशकी आशङ्कासे एकत्र होकर विचार करनेवाले उन देवताओंका बयान सुनकर प्रजापति बोले ॥४६॥ हे देवगण! मेरी बात सुनो। तेजसे तेज और तपसे तप दबाया जाता है ॥४७॥ पतिव्रताकी महिमासे सूर्य्य उदय नहीं होते और सूर्य्यके उदय न होनेसे देवता तथा मनुष्योंकी हानि होती है ॥४८॥ इस कारण तुम लोग जाकर अत्रि ऋषिकी तपस्विनी पतिव्रता स्त्री अनुसूयाको सूर्य्योदयके लिये प्रसन्न करो ॥४९॥ पुत्रने कहा—हे पिता! जब देवताओंने जाकर अनुसूया को प्रसन्न किया तब अनुसूयाने कहा—हे देवगण! तुम क्या चाहते हो कहो। देवताओंने कहा—जैसे पहले सूर्य्य उदय होता था वैसेही फिर हो ॥५०॥ अनुसूया बोली—हे देवगण! पतिव्रताका वचन किसी तरह झूठा नहीं होसकता पर मैं ऐसा करूंगी जिससे वह साध्वी प्रसन्न हो और फिर दिन रात होने लगे और उसका पति भी न मरे ॥५२॥ इस प्रकार देवताओंको धीरज देकर अनुसूया उस पतिव्रताके घर गई। वहां उसने उसका और उसके पति का कुशल पूछा ॥५३॥ और कहा—हे कल्याणी! तुम अपने पतिका मुंह देखकर प्रसन्न तो रहती हो? सब देवताओंसे बढ़कर अपने पतिको समझती तो हो? ॥५४॥ मैंने तो पतिहीकी सेवासे बड़े बड़े फल पाये हैं। सब काम अपने चित्तके अनुसार होनेहीसे सब विघ्न नष्ट होगये हैं ॥५५॥ हे पतिव्रते! मनुष्यको सदाही पांच ऋण चुकाने पड़ते हैं। अपने वर्णधर्मके अनुसार धन कमाना

और वह धन विधिपूर्वक उपयुक्त लोगोंको देना, सदा सत्य, सरलता, तप, दान और दयावान होना तथा नित्य श्रद्धाके साथ अनुराग और द्वेष रहित होकर शास्त्रोक्त क्रियाएं यथाशक्ति करना ॥५८॥ मनुष्य बड़े बड़े क्लेशोंसे अपने किये हुए कर्मोंके अनुसार देवलोक, ब्रह्म-लोक आदि पवित्र स्थान पाता है ॥५९॥ मनुष्य जिन पुण्योंको बड़े बड़े दुःखोंसे एकत्र करता है स्त्री केवल पतिकी सेवाही करके उन सबका आधा हिस्सा लेलेती है॥६०॥ स्त्रियोंको अलग यज्ञ श्राद्ध वा व्रत करना कहीं नहीं लिखा है वह केवल पतिकी सेवाही करनेसे उत्तम लोकोंमें चली जाती हैं ॥६१॥ इस कारण हे साध्वी! महाभागे! तुम सदा पति सेवामें ध्यान रक्खो। कारण यह कि स्त्रीके लिये पति ही उत्तम गति है ॥६२॥ पति, देवता पितर तथा अतिथियोंकी आदरसे सेवा करके जो पुण्य सञ्चय करता है उन पुण्योंका आधा हिस्सा नारी केवल पतिसेवाहीसे लेलेती है ॥६३॥

अनुसूयाकी यह बातें सुन आदरसे पूजा करके उस पतिव्रता ब्राह्मणीने उससे कहा ॥६४॥ हे स्वभाव-शुभदायिनी! मैं अपनेको धन्य समझती हूं। देवताओंने मुझ पर बड़ी दया की, क्योंकि तुमने मेरी पति पर श्रद्धा बढ़ाई ॥६५॥ मैं जानती हूं कि स्त्रियोंके लिये पतिसे बढ़कर और कुछ नहीं है। पतिकी प्रसन्नता से इस लोक और परलोकमें सुख होता है ॥६६॥ हे यशस्विनी! पतिहीकी प्रसन्नतासे नारी इस लोक और परलोकमें सुख पाती हैं क्योंकि नारीके लिये पतिही सबसे बड़ा देवता है ॥६७॥ हे महाभागे! तुम मेरे घर आई हो, कहो मुझे और मेरे पतिको तुम्हारी प्रसन्नताके लिये क्या करना चाहिये ॥६८॥ अनुसूयाने कहा—सब देवता दुःखित होकर इन्द्र सहित मेरे पास आये थे। तुम्हारे सत्य वचनके कारण दिन रात नहीं होते इससे कोई सत्कर्म नहीं हो सकता ॥६९॥ वह लोग चाहते हैं कि उसी प्रकार दिन रात हों। उसीके लिये मैं तुम्हारे पास आई हूं ॥७०॥ दिनके न होनेसे सब यज्ञोंका अभाव होगया है। यज्ञोंके न होनेसे सब देवता निर्बल

होगये हैं ॥७१॥ दिन न होनेसे सब कर्म्म नष्ट होगये। कर्म्म नष्ट होनेसे वर्षा नहीं होती। वर्षा न होनेसे जगतका नाश होजायगा ॥७२॥ ऐसी विपदोंसे जगतको बचाना चाहती हो तो तुम प्रसन्न हो जिससे पहलेकी तरह सूर्य्य उदय हो ॥७३॥ ब्राह्मणीने कहा—हे महाभागे! माण्डव्यने बड़ा क्रोध करके मेरे पतिको शाप दिया है कि वह सूर्य्योदय होतेही मर जायगा ॥७४॥ अनुसूयाने कहा—हे पतिव्रता। यदि तुम कहो तो मैं तुम्हारे पतिको जिला दूंगी और उनका पहलेकासा नया कलेवर होजायगा ॥७५॥ हे सती! पतिव्रताकी महिमा सबसे बढ़कर है। इससे मैं तुम्हारा बड़ा आदर करती हूं ॥७६॥ पतिव्रताने कहा—तथास्तु। तब तपस्विनी अनुसूयाने अर्घ्य देकर सूर्य्यका आह्वान किया। उस समय दस दिन तक बराबर रात रह चुकी थी ॥७७॥ पीछे सूर्य्य नारायण खिले हुए लाल कमलके समान अपना रूप बनाकर बड़ा भारी मण्डल धारणकर उदयाचल पर उदित हुए ॥७८॥ उनके उदय होतेही पतिव्रताका पति मरकर पृथिवी पर गिरने लगा। ब्राह्मणी ने उसी समय गिरते हुए पतिको पकड़ लिया ॥७९॥ अनुसूया बोली —हे पतिव्रते! विषन्न न हो। केवल पतिसेवा करके मैंने जो बल प्राप्त किया है उसका फल देखो ॥८०॥ यदि मैंने रूप, शील, बुद्धि वा मधुर वचन आदि गुणोंमें अपने पतिसे बढ़कर दूसरेको कभी न समझा हो तो उसी सत्यके प्रभावसे यह ब्राह्मण रोगोंसे छूट फिर जवान होकर सैकड़ों वर्ष अपनी स्त्रीके संग जीवित रहे ॥८२॥ यदि मैंने अपने पतिसे बढ़कर दूसरे किसी देवताको भी न समझा हो तो उसी सत्यके प्रतापसे यह ब्राह्मण इसी समय रोगमुक्त होकर जीउठे ॥८३॥ यदि मैंने मन, वचन और कर्म्मसे अपने पतिकी सच्ची सेवा की हो तो उसी सत्यके प्रभावसे यह ब्राह्मण जी जाय ॥८४॥ पुत्रने कहा—तब वह ब्राह्मण रोगरहित तथा जवान होकर उठ खड़ा हुआ और अपनी देहकी चमकसे उस स्थानको प्रकाशित करता हुआ देवताके समान जान पड़ने लगा ॥८५॥ देवता दुन्दुभि बजा

कर आकाशसे फूलोंकी वर्षा करने लगे। वह बहुतही प्रसन्न हो अनुसूयासे बोले ॥८६॥ हे तपस्विनी! कल्याणी! तुमने देवताओं का बहुत बड़ा कार्य्य किया इससे देवता तुम्हें वर देना चाहते हैं ॥ ८७॥ अनुसूया बोली हे देव! यदि ब्रह्मा आदि सब देवता मुझपर प्रसन्न हैं और मुझे वर देनेयोग्य समझते हैं तो ब्रह्मा विष्णु शिव तीनों मेरे पुत्र हों। और मैं अपने पतिके संग रहकर योग पाऊं ॥ ८८॥ तब ब्रह्मा, विष्णु और शिव "अच्छा ऐसाही होगा" कहकर उस तपस्विनीका आदर करके वहांसे चले गये।

सत्रहवां अध्याय।

चन्द्र, दत्तात्रेय और दुर्वासाका जन्म।

पुत्रने कहा—हे पिता! बहुत दिन बीत जानेके बाद ब्रह्मा के द्वितीय पुत्र अत्रि ऋषिने अपनी स्त्रीको देखा कि वह ऋतुस्नानसे पवित्र हुई है। उसके सब अङ्ग अच्छे लगे। देखकर प्रीति हुई। चित्त चञ्चल होगया। उन्होंने मनद्वारा उससे सम्भोग किया। इससे मुनिका जो तेज गिरा वेगवान पवनने उसे लेकर पक्षीकी भांति उड़ा दिया ॥३॥ ब्रह्मतेज सम्पन्न शुक्लकान्त रजोगुण स्वरूप वह तेज गिरकर चन्द्रमा रूपसे दशों दिशाओंमें फैल गया ॥४॥ सब प्राणियोंके प्राणाधार उस ब्रह्म रूपी चन्द्रने प्रजापति अत्रिका मानस-रूपी पुत्र बनकर अनुसूयाके गर्भसे जन्म लिया ॥५॥ विष्णुने प्रसन्न होकर अपने शरीरसे सत-गुण स्वरूप महात्मा द्विजोत्तम दत्तात्रेयको पैदा किया ॥६॥ उन दत्तात्रेयने अनुसूयाके स्तन पान किये वह अत्रिके दूसरे पुत्र कहलाये ॥७॥ जब अनुसूयाको तीसरा गर्भ रहा तब उन्मार्गगामी हैहय देशका राजा निर्भय होकर बड़ा अनर्थ कर रहा था, इससे

सातही दिनके गर्भसे क्रोध करके तीसरे पुत्रने जन्म लिया। एक तो उन्होंने देखा कि हैहय मेरे पिताके साथ भी अनीति कर रहा है दूसरे गर्भमें रहनेसे बड़ा परिश्रम और कष्ट होता था इस कारण क्रोधसे हैहयको जलानेकेलिये प्रगटहुए। उन्हींका नाम दुर्वासापड़ा। वह तमोगुणमय पूर्ण शिवके अंश थे। इस प्रकार ब्रह्मा विष्णु शिव स्वरूप तीन पुत्र अनुसूयाजीके हुए ॥१०॥ ब्रह्मा चन्द्रमा विष्णु दत्तात्रेय और शिव दुर्वासा बनकर देवताओंके वर-दानसे प्रगट हुए ॥११॥ वह ब्रह्म स्वरूप चन्द्रमा अपनी शीतल किरणोंसे वृक्ष, औषधि और मनुष्योंको प्रसन्न करते हुए सदा आकाशमें प्रकाशित हैं ॥१२॥ विष्णुके अंश दत्तात्रेय दुष्ट दैत्यों को दण्ड देकर अच्छे लोगोंका सत्कार करतेहुए प्रजाका पालनकरने लगे ॥१३॥ और शिव स्वरूप दुर्वासा नेत्र, मन तथा वचनोंसे उद्दण्ड होकर निरादर करनेवालेदुष्टोंका नाश करतेहैं ॥१४॥ ब्रह्मा चन्द्रमा बनकर आकाशमें निवास करने लगे। विष्णु दत्तात्रेय बनकर योग से विषयोंका भोग करने लगे ॥१५॥ शिव दुर्वासा बनकर पिता माताको छोड़कर उत्तम नामक व्रत करते हुए भूमण्डलमें भ्रमण करने लगे ॥१६॥ दत्तात्रेयको परम योगी समझकर मुनिपुत्र सदा घेरे रहते थे। दत्तात्रेय उनसे अलग रहनेके लिये बहुत दिन तक सरोवरमें डूबे रहे ॥१७॥ तिस पर भी उनके साथी मुनिकुमार अपने प्यारे दत्तात्रेयके प्रेमसे उसी तालावके चारों ओर रहने लगे और एक दिन भी वहांसे न हटे ॥१८॥ इस प्रकार जब देवताओंकी गिनतीसे सौवर्ष बीतगये और उन लोगोंने वहांसे अपने आसन नहीं हटाये तो दिव्य वस्त्र धारण करनेवाली, बड़े बड़े सुन्दर नितम्बोंसे शोभा पानेवाली और अनेक शुभ लक्षणोंसे भरी एक स्त्रीको लेकर दत्तात्रेय जलसे बाहर निकल आये ॥२०॥ सोचने लगे—"स्त्रीको मेरे सङ्ग देखकर यह मुनिकुमार अवश्य मुझे त्याग देंगे और मैं एकान्तमें रहकर ध्यानमग्न हूंगा।" पर मुनिकुमारोंने उन्हें न छोड़ा। तब दत्तात्रेय अपनी स्त्रीके सङ्ग मद्यपान करने लगे ॥२२॥

उनका मद्य पीना देखकर भी मुनिकुमारोंने उन्हें न छोड़ा। तब वह गीत, बाजे, स्त्री सम्भोग, इत्यादि दूषित कामोंको दिखाकर अपना विकार तथा मत्तता प्रगट करने लगी। तौभी उन मुनिकुमारों ने उन्हें महात्माही समझा ॥२३॥ दत्तात्रेय योगी थे इस कारण मद्य पीकर भी किसी तरह दोषी नहीं हुए। जैसे वायु चाण्डाल के मकानके भीतर भी जाकर दूषित नहीं होती ॥२४॥ वैसेही वह योगिराज दत्तात्रेय स्त्रीके संग मद्य पीते हुए भी दूषित न हुए और मुमुक्षु योगियोंके ध्यान लगाने योग्य हुए ॥२५॥

अठारहवां अध्याय।

कार्त्तवीर्य्य अर्जुनको गर्ग मुनिका उपदेश।

पुत्रने कहा—हे पिता! किसी समय कृतवीर्य्यके स्वर्गमें चले जाने पर उनके पुत्र अर्जुनको मन्त्री पुरोहित तथा नगरके रहने वालोंने राजगद्दी पर बिठाना चाहा। उस समय उसने कहा कि हे मन्त्रियो! मैं राज्य नहीं लूँगा क्योंकि राज्य करनेकापरिणाम नरक है। देखो जिस कामके लिये कर लिया जाता है उसका पूरा करना बड़ा कठिन है। वणिक लोग मालका बारहवां भाग राजाको इस लिये देते हैं कि राजा उनकी चोर लुटेरोंसे रक्षा करे और वह बेखटके आ जा सकें। गोपगण भी दही आदिका छठा भाग और किसान खेतीका छठा भाग कर स्वरूप देते हैं। वह यदि अधिक दें या राजा अधिक ले तो वह चोरी है। उस राजाका कर्म धर्म सब नष्ट होजाता है। और देखिये यदि प्रजा कर देकर भी दूसरे के द्वारा रक्षित हो तो छठा भाग लेनेवाला राजा निश्चयही नरकमें जायगा। पहले पण्डितोंने प्रजाकी रक्षाके लियेही राजाके वेतनस्वरूप छठा भाग बांध दिया है। उसे लेकर राजा यदि ठीक ठीक प्रजा रक्षण न कर सके तो इसे चोरी समझिये। उस राजाको चोरी

का पाप लगेगा। इससे यदि तपस्या करके योगित्व लाभ कर सकूं और पृथिवी पर शस्त्रधारी साम्य और पृथिवीपालनमें भलीभांति समर्थ होकर एकमात्र नरपति होसकूं, ऐसा प्रतापी बनकर राज्य कर सकता हूं, नहीं तो पापी नहीं बनूंगा॥८॥ अर्जुनकी ऐसी प्रतिज्ञा देखकर मन्त्रियोंमें बैठे हुए महाबुद्धिमान मुनिवर गर्गने कहा कि हे राजकुमार! तुम राज्यशासन करनेमें यदि ऐसी अभिलाषा करते हो तो मैं जो कुछ कहता हूं वह सुनो और करो॥११॥ जो त्रिभुवनके रक्षक, परमयोगी और सर्वत्र समदर्शी हैं और जो जगतकी रक्षाके लिये विष्णुके अंश से जन्म लेकर पृथिवी पर आये हैं और जिनकी आराधना करके सहस्र नयन इन्द्रने दैत्योंको विनाश करके दुष्ट दैत्यों द्वारा छीनाहुआ अपना पद फिर प्राप्त किया है तुम उन्ही सह्यपर्वत गुहा-वासी महाभाग दत्तात्रेयकी आराधना करो॥१४॥

अर्जुनने पूछा—देवताओंने प्रतापी दत्तात्रेयकी आराधना कैसे की थी? और इन्द्रने कैसे अपना दैत्योंसे छीना हुआ अपना पद फिर प्राप्त किया था? गर्गने कहा, एकबार देवताओं और दैत्योंमें भयङ्कर संग्राम हुआ। जम्भ दैत्योंके अधिनायक थे और इन्द्र देवताओंके। लड़ते लड़ते एक दिव्य वर्ष बीत गया। तब देव हारे और दैत्य जीते। विप्रचित दानव आदिसे हारकर देव इधर उधर भागने लगे। दैत्यों पर फिर विजय पानेकी इच्छासे वह भागकर बृहस्पति के पास गये और वहां बालखिल्य ऋषियोंसे मन्त्रणा करने लगे। बृहस्पति बोले—हे देवगण! तुम भक्तिपूर्वक तपोधन महात्मा विज्ञा-नाचारी अत्रितनय दत्तात्रेयको सन्तुष्ट करनेकी चेष्टा करो। वह वरदाता दैत्यविनाशके लिये तुम्हें वर देंगे। तब तुम मिलकर दैत्य और दानवोंको हरा सकोगे॥२१॥ गर्ग बोले—देवगण बृहस्पति का यह आदेश पाकर दत्तात्रेयके आश्रममें गये। देखा कि वह महात्मा लक्ष्मीको लिये सुरा पी रहे हैं और गन्धर्व उनके पास बैठ गारहे हैं। देवताओंने वहां पहुंचकर प्रणाम किया। बहुत प्रकार

स्तुति करने लगे और उनके खाने पीनेकी चीजें तथा मालाएं भेंट करने लगे। दत्तात्रेय बैठते थे तो देवता भी बैठते थे और वह चलते थे तो वह भी चलते थे। इस प्रकार उनके आसनसे नीचे बैठकर देवगण उनकी आराधनामें लगे। अन्तमें दत्तात्रेयने देवताओंसे कहा कि आप मुझसे क्या चाहते हैं जो इस प्रकार मेरी सेवा करते हैं ? ॥२५॥ देवताओंने कहा कि हे मुनि शार्दूल ! जम्भ आदि दानवोंने हम पर चढ़ाई करके भूर्भुवादि तीनों लोक और हमारा यज्ञ भाग सब छीन लिया है। आप उनके विनाशका उपाय करके हमारा परित्राण कीजिये। आपके प्रसादसे हमें अपना खोया पद फिर मिले यही अभिलाषा है ॥२७॥ दत्तात्रेयने कहा मैं मद्य पीता हूं और सदा अपवित्र रहता हूं इससे हे देवगण ! तुम मेरे द्वारा शत्रुको हरानेकी आशा कैसे रखते हो ? देवताओंने कहा, हे जगन्नाथ ! आपका पवित्र अन्तःकरण विद्यासे धुला हुआ है और उसमें ज्ञानका प्रकाश फैला हुआ है। इससे आप पापरहित और निर्लिप्त हैं ॥२९॥ दत्तात्रेयने कहा कि हे सुरगण ! निस्सन्देह मुझे ज्ञान है और मैं समदर्शी भी हूं पर इस स्त्रीके संसर्गसे अशुचि होगया हूं ॥३०॥ स्त्रीसंसर्गमें लगे रहना बड़े दोषोंका आकर है। यह सुनकर देव बोले—हे द्विजश्रेष्ठ ! सूर्य्यकी किरणें जिस प्रकार ब्राह्मण या चाण्डालसे छूकर पवित्र या अपवित्र नहीं होतीं वैसेही यह जगन्माता भी आपके संसर्गसे दूषित नहीं ॥३२॥ दत्तात्रेय देवताओंकी यह उक्ति सुनकर कुछ हंसे और बोले हे देवगण ! यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो सब दैत्योंको युद्धके लिये बुलाकर मेरे सामने करो। विलम्ब न करो ॥३४॥ मेरी दृष्टिकी आगसे दैत्योंके बल तथा तेज नष्ट होजायंगे। मेरे ऐसा होनेसे देखते देखते सब दैत्योंका नाश होजायगा ॥३५॥ गर्ग बोले—उनकी यह बात सुनकर देवताओंने दैत्योंको कहला भेजा कि तुम आकर हमसे युद्ध करो। दैत्य यह सुनतेही क्रोधसे चढ़ आये ॥३६॥ दोनो दल जब एकत्र हो गये और दैत्योंने देवताओंको मारना आरम्भ किया, तब

देवता डरकर अपनी रक्षाके लिये दत्तात्रेयकी शरणमें गये ॥३७॥ उनके पीछे पीछे दैत्य भी देवताओंको मारते पीटते दत्तात्रेयके आश्रममें घुसे। उन्होंने महाबली दत्तात्रेयको देखा ॥३८॥ उनकी बाईं ओर बैठी हुई जगत भरकी इष्टदायिनी शुभकारिणी चन्द्रमुखी उनकी पत्नी लक्ष्मीको देखा। दानव उस नीलोत्पल नयना बड़े बड़े स्तन और नितम्बवाली मधुरभाषिणी सब उत्तम गुणोंसे सम्पन्न ललनाको सम्मुख देखकर अत्यन्त मोहित हुए ॥४०॥ दैत्योंने लक्ष्मीको देखा तो उनकी उन्हें छीन लेनेकी इच्छा हो आई, कामवश उनका धैर्य्य छूट गया ॥४१॥ उन्होंने देवताओंको छोड़ दिया और उस स्त्रीके लेनेके उपायमें लगे। इस पापसे मुग्ध होकर वह बोले ॥४२॥ यह स्त्री रत्न तीनों लोकमें सबसे दुर्लभ वस्तु है यदि यह हम लोगोंको मिल जाय तो हम धन्य हों और हमारी भावना छूटे ॥४३॥ इससे हम इसे पालकीमें बिठाकर अपने घर लेचलें। यही निश्चय है ॥४४॥ गर्ग बोले—वह सब आपसमें पागल हुए ऐसी बातचीत करके कामविवश होकर उस पतिव्रताको पालकीमें बिठाकर अपने कन्धों पर उस पालकीको रखकर अपने घरको चल दिये ॥४६॥ यह देखकर दत्तात्रेयने कुछ हंसकर कहा, हे देवगण! अब तुम्हारा भाग्योदय हुआ, लक्ष्मी ७स्थानोंको छोड़कर इन दैत्योंके सिर चढ़ गई। अब वह उनको छोड़कर दूसरेके पास जायगी ॥४७॥ देवताओंने पूछा—हे भगवन! कहिये लक्ष्मी किस किस स्थानमें रह कर पुरुषको क्या क्या फल देती है ॥४८॥ दत्तात्रेयने उत्तर दिया लक्ष्मी मनुष्यके पैरमें रहकर मकान देती हैं, हड्डियोंमें रहकर वस्त्र तथा कई प्रकारका धन देती है। गुप्तस्थानमें रहकर स्त्री देती है, छातीमें रहकर सन्तान देती और हृदयमें रहकर मनुष्योंका मनोरथ पूरा करती है। सर्वप्रधान लक्ष्मी कंठमें रहकर लक्ष्मीवानोंको कंठभूषण देती है। अपने प्रवासी मित्र बन्धु और स्त्रीसे मिलाती है। समुद्रतनया लक्ष्मी मुंहमें रहती है तो सुन्दर वाक्य लावण्य आज्ञापालन तथा कवित्व देती है ॥५३॥ और जब सिर पर पहुंच जाती

है तब उस मनुष्यको छोड़कर दूसरे मनुष्यके पास चली जाती है वही लक्ष्मी इन लोगोंके सिर चढ़ गई इससे अब इनको छोड़ किसी दूसरेके पास जायगी ॥५३॥ अब तुम लोग शस्त्र लेकर इन दैत्योंको मारो, डरनेका कुछ काम नहीं, मेरी दृष्टिसे इनका तेज नष्ट होगया और पराई स्त्री हरण करनेसे इनका पुण्य नष्ट हो गया ॥५४॥ तब देवताओंने बहुतसे अस्त्र शस्त्र लेकर असुरोंको मार दिया, लक्ष्मीको माथे पर विठाकर असुरगण इस प्रकार हत हुए ॥५५॥ लक्ष्मी वहांसे हटकर दत्तात्रेयके पास चली आई। दैत्योंके नाश से प्रसन्न देवगण उनकी स्तुति करने लगे ॥५६॥ फिर देवगण दत्तात्रेयको प्रणामकर सुखी होकर स्वर्गमें चले आये ॥५७॥ हे राजेन्द्र! यदि तुम अतुल ऐश्वर्य्य पाना चाहते हो तो तुरतही जाकर दत्तात्रेयकी सेवा करो ॥५८॥

उन्नीसवां अध्याय।

कार्त्तवीर्य्य पर दत्तात्रेयका अनुग्रह।

पुत्रने कहा—हे पिता! गर्गकी यह बात सुनकर वह कार्त्तवीर्य्य अर्जुन राजा, दत्तात्रेयके आश्रममें जाकर उनकी पूजा बड़ी भक्तिसे करने लगा ॥१॥ पैर दबाकर, मधु आदि पदार्थ लाकर, चन्दन लगाकर, उनके गलेमें फूलोंकी माला पहनाकर, सिरमें सुगन्धित तेल लगाकर फल और जल ला देता और उनको रसोई बनाता था जूठा धोता था। इस तरहकी सब सेवा करता था। एक दिन मुनि प्रसन्न होकर बोले ॥२॥ हे राजा! देखो मैं मद्य पीता हूं स्त्रीके सङ्ग सदा रहता हूं और जितने मेरे काम हैं सब खराबहैं। मैं सदा दुखी दशामें रहता हूं। इस कारण तुम मुझे मत सेवो मुझसे तुम्हारा कुछ उपकार नहीं होसकता। किसी समर्थकी सेवा करो जो तुम्हारा कुछ उपकार कर सके ॥५॥ दत्तात्रेयकी

बात सुनकर राजाको गर्गकी कही बात याद आगई। राजाने तुरत ही प्रणाम करके उत्तर दिया ॥६॥ हे देव! आप मुझे मोहित न करें। आप पापशून्य हैं क्योंकि आप अपनी मायासे मिले हुए हैं और यह आपकीदेवी भी जगतकी अरणि(१) स्वरूपा है ॥७॥

यह बात सुनतेही मुनि प्रसन्न होकर भूमण्डलको वश में करनेवाले महाभाग कार्त्तवीर्य्य अर्जुनसे बोले ॥८॥ हे राजा! तुमने जो गुप्त बात कही है उससे मैं तुम पर आज बहुतही प्रसन्न हूं। अब तुम मुझसे वर मांगो ॥९॥ जो चन्दन फूल आदि सुगन्धित पदार्थ, मांस मद्य आदि भोजनके पदार्थ और घीके बने हुए मीठे अन्न आदि खिला पिलाकर मेरी सेवा करते हैं और गीत तथा वीणा, वंशी, शंख आदि मनोहर बाजोंसे लक्ष्मी सहित मुझको प्रसन्न करते हैं उन पर मैं प्रसन्न होकर पुत्र धन स्त्री आदि दुर्लभ पदार्थ देता हूं और उनके शत्रुओंका नाश करता हूं ॥१२॥ तुमने जो मेरे नाम कीर्तन किये हैं उससे मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हुआ तुम जो चाहते हो वह मांगो ॥१३॥ कार्तवीर्यने कहा—हे देव! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे ऐसी ऋद्धि दीजिये जिससे मैं सहजमें प्रजाका पालन कर सकूं और किसी तरहका पाप मुझे न हो। मैं चाहता हूं कि मुझे सब अपनी पहली बातें याद रहें, लड़ाईमें कोई बैरी मेरा सामना न कर सके और मुझे हजार हाथ हों पर वह हलके हों जिससे मुझे बोझा न जान पड़े ॥१५॥ पहाड़ आकाश जल वा भूमिमें जहां चाहूं चला जाऊं पातालमें भी मेरी रोक न हो। मेरी मृत्यु किसी बड़े महात्माके हाथसे हो ॥१६॥ जो लोग रास्ता भूलें उनको मैं मार्ग दिखा सकूं। मैं अपने हाथों से अतिथियोंका खूब सत्कार करूं। सब मेरी प्रशंसा करें। मेरे राज्यमें दरिद्रता कभी न हो। मेरा नाम लेकर सब सुखी हों और तुम्हारे चरणोंमें मेरी अचल भक्ति सदा बनी रहे ॥१८॥ दत्तात्रेयने

(१) वह लकड़ी जिसे घिसकर आग निकालते हैं।

कहा जो तुमने वर मांगी हैं वह सब मेरी कृपासे तुम्हें मिलेंगी। तुम चक्रवर्ती राजा होगे॥१९॥ पीछे अर्जुन मुनिको प्रणाम कर घर चला आया। यहां आकर सब प्रजाको बुलाकर अपना अभिषेक कराकर राजा बना॥२०॥ तब गन्धर्व, अप्सरागण, वशिष्ठादि ऋषि सुमेरु आदि पर्वत गङ्गा आदि नदी जलसेभरेसमुद्र आदि नद पीपल आदि सब वृक्ष, इन्द्र आदि सब देवता, वासुकि आदि नाग, गरुड़ आदि सब पक्षी और नगर तथा देशके रहनेवाले मनुष्य सब सामान लेकर उसके राजतिलककेलिये एकत्रहुए। यह सबबातें दत्तात्रेयकी दयासे हुईं। ब्रह्मा आदि देवता मन्त्र पढ़ने लगे, अधर्मके नाश और धर्मके संस्थापनके निमित्त समुद्र नदी और ऋषियों सहित दत्तात्रेय ने उसका अभिषेककिया। अतुल ऐश्वर्य पाकर अर्जुनने अपने राज्यमें यहघोषणाकीकि अबसे मेरे सिवा जो अस्त्र धारणकरेगा वह हिंसक और चोर समझा जायगा और मैं उसे मारदूंगा॥२७॥ यह आज्ञा पाकर उस राज्य में कोई शस्त्र नहीं उठाता था केवल वही पुरुष सिंह अपने पराक्रमसे शस्त्र लेकर राज्य करता था॥२८॥ वही ग्रामपाल, पशुपाल, क्षेत्रपाल, ब्राह्मण और तपस्वियोंका प्रतिपालक और वैश्यों की रक्षा करनेवाला हुआ। वह चोर, सांप, अग्नि, शस्त्र तथा भय आदिसे तथा समुद्रोंमें डूबतेहुए जनोंकी रक्षा करताथा विपत्तिमेंफंसे हुए जीवोंकी रक्षा करता था। शत्रुओंको मारता था जो उसे पुकारतेथे तुरतही उनका संकट मिटाता था॥३१॥ उस समय उसके राज्य में दरिद्रता नहीं व्यापती थी, उसने अनेक यज्ञ किये ब्राह्मणोंको दक्षिणाएं दीं॥३२॥ उस राजा अर्जुनका किया हुआ तप, युद्धमें वीरता, सम्पत्ति और उत्तम आदर देखकर बृहस्पतिने कहा॥३३॥ कोई राजा यज्ञ, दान, तप वा वीरतामें कार्त्तवीर्य अर्जुनकी कभी बराबरी नहीं कर सकता॥३४॥ जिस दिन उस राजाने दत्तात्रेय से सम्पत्ति पाई उसी दिन दत्तात्रेयकी प्रसन्नताके लिये यज्ञ किये॥ २५॥ और उसकी प्रजाने भी उसी दिन उसकी सम्पति देख सावधानीके साथ यज्ञ किया॥३६॥ इन बुद्धिमान दत्तात्रेयकी महिमा

जो विष्णुस्वरूप हैं, चर अचरके गुरु हैं और बड़े महात्मा हैं। पुराणों में बहुतप्रकारलिखो है वह दत्तात्रेय शाङ्गधन्वा शंख चक्र गदाधारी अन्तररहित और प्रमाण रहित विष्णुके अवतार हैं॥३८॥ जो इनके परम रूपका ध्यान करता है वह मनुष्य सुखी होता है और संसार रूपी समुद्रसे तुरतही पार होजाता है॥३९॥ वह सदा यह कहते हैं—हे वैष्णवो! भक्ति द्वारा मैं तुम्हारे लिये सदा सुलभ हूं। उन की सेवा मनुष्य क्यों न करें॥४०॥ वह अनादि निधन देवही धर्म्म के प्रचार और अधर्म्मके नाशके लिये रक्षण और पालन करते हैं॥४१॥ अब मैं अलर्कके जन्मकी कथा आपसे कहता हूं जिसे दत्तात्रेयने योग बतलाया था। वह महात्मा अलर्क राजर्षि थे और पिताके भक्त और महात्मा थे॥४२॥

बीसवां अध्याय।

कुवलयाश्वका घोड़ा।

पुत्रने कहा—हे पिता! पहले समयमें शत्रुजित् नामक एक महाबली राजा था। उसकी यज्ञमें सोम पीकर शचीपति इन्द्र बहुत प्रसन्न हुए थे॥१॥ उस राजाके एक पुत्र हुआ जो पिताकी भांति परिविदारण और महाबलशाली था। वह बुद्धिमें बृहस्पति, बलमें इन्द्र और रूपमें अश्विनीकुमारोंके सदृश था॥२॥ राजकुमार जिन राजकुमारोंमें रहता था वह भी अवस्था, बुद्धि, बल, उत्साह और चेष्टामें उक्त राजकुमारसे कम न थे॥३॥ वह कभी बैठकर शास्त्रोंके तत्वोंका विचार करता और कभी कविताकी चर्चा और गानासुनने और नाटक आदि देखनेमें समयबिताता॥४॥ कभी चौसर खेलने, अस्त्र शस्त्र(१) चलाने, विनय नम्रता दिखाने, योग्य साथियों

(१) जो मन्त्र पढ़कार शत्रु पर चलाया जाय उसे अस्त्र कहते हैं और जो बिना मन्त्रही चलाया जाय उसे शस्त्र कहते हैं।

से कुश्ती लड़ने, हाथी घोड़े औ रथोंको चलानेमें तत्पर होकर उन राजकुमारोंके साथ दिन बिताता था और उसी प्रकार रात भी आनन्दपूर्वक उनके साथ बिताता था ॥६॥ उसके खेलमें उसके उमर वाले कितनेही ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्यके लड़के हर्षपूर्वक जाते थे ॥७॥ इसी प्रकार किसी समय नागराज अश्वतरके दो पुत्र नाग लोकसे पृथिवी पर आये ॥८॥ उनका रूप ठीक ब्राह्मणकी भांति था दोनो नवयुवक और सुन्दर थे। वह दोनो उस राजकुमार और उन ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य बालकोंके साथ अनेक प्रकारके खेल करते हुए वहां प्रेमसे रहने लगे ॥१०॥ वह राजकुमार ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंके बालक और वह नागकुमार एक साथही स्नान सवारी कपड़े पहनना सुगन्ध आदि लगाना और खाना पीना करने लगे ॥११॥ बहुतदिन बीतजानेसे वह दोनो नागकुमार राजकुमारकी प्रीतिमें बंधकर नित्य आने जानेलगे और राजकुमार भी उनके आमोदप्रमोद हास्य संलापसे बहुतही प्रसन्न था ॥१३॥ यहां तक कि वह उनके बिना खाना, स्नान करना, मधुपान, खेलकूद कुछ न करता था अपना गुण दिखानेको शस्त्र तक हाथमें न लेता था ॥१४॥ वह दोनो भी दिन भर राजकुमारहीके संग रहते थे और रात रसातल में सांसें लेकर बिताते थे ॥१५॥ एक दिन उन दोनोके पिताने उनसे पूछा—प्रियदर्शन पुत्रो! तुम दोनोको मर्त्यलोकसे ऐसा प्रेम क्यों होगया है? बहुत दिनोंसे तुम पातालमें दिनमें नहीं दिखाई देते। रातको दिखाई देते हो इसका क्या कारण? ॥१७॥ पिताके पूछनेपर उन दोनो नागकुमारोंने हाथ जोड़ प्रणाम करके कहा ॥१८॥ हे तात! मर्त्यलोकमें राजा शत्रुजितका पुत्र ऋतुध्वज बड़ाही सुन्दर, सुशील, वीर, मानी और प्रियवादी है ॥१९॥ वह सबसे पहले बोलने वाला, वाग्मी, विद्वान्, मित्रता विशिष्ट तथा गुणोंका आकर है। वह बड़ोंको पूज्य दृष्टिसे देखता है और बुद्धिमान, लज्जावान तथा विनयी है ॥२०॥ हे पिता! उसके सत्कार, प्रीति और संगमें हमारा मन उसके अधीन होगया है। अब हमें मर्त्यलोक वा नागलोक

कहीं भी उसके बिना अच्छा नहीं लगता ॥२१॥ हे तात! उसके वियोगसे पातालकी शीतल रात भी हमें तपाती है और उसके साथ रहकर मर्त्य लोकमें दिनको सूर्य्य भी शीतल जान पड़ता है ॥२२॥ नागराजने कहा—वह पुण्यशील राजकुमार धन्य है जिसकी प्रशंसा तुम सरीखे सज्जन और गुणी पीठ पीछे करते हैं ॥२३॥ कितनेही पण्डित दुःशील और कितनेही मूर्ख सुशील होते हैं पर मैं जानता हूं कि वह राजपुत्र धन्य है जो शील और शास्त्र दोनोंमें बराबर है ॥२४॥ देखो जिसके गुणकी प्रशंसा मित्र करते हैं, और शत्रु जिसके पराक्रमकी बड़ाई करते है अनेक सन्तान रहने पर भी पिता उसी पुत्र द्वारा पुत्रवान कहलाता है ॥२५॥ अच्छा, क्या तुमने अपने उस उपकारी मित्रके चित्तकी प्रसन्नताके लिये कभी कोई उसके मनके योग्य काम किया है? ॥२६॥ वह धन्य है उसका जीवन धन्य है और उसका जन्म धन्य है जिसका याचक विमुख नहीं जाता और जिसके मित्रका प्रयोजन व्यर्थ नहीं होता ॥२७॥ मेरे घरमें सोना, रत्न, सवारी, आसन आदि जो कुछ हैं उसके प्रसन्न करनेके लिये उसे मुझसे विना पूछे देसकते हो ॥२८॥ देखो, पुत्रो! जो मित्रके साथ पूरी मित्रताका वर्ताव न करके जीता रहनेकी इच्छा करे उसके जीवनको धिक्कार है ॥२९॥ और जो पुरुष रूपी मेघ मित्रोंके उपकार और शत्रुओंके अपकार रूपी जल बरसाता है, देवगण! सदा उसीकी उन्नति साधनकी इच्छा करते हैं ॥३०॥ कुमारोंने कहा—उस धन्य पुरुषका कोई क्या उपकार कर सकता है जिसके द्वार पर याचकोंकी सब कामनाएं पूरी होती हैं ॥३१॥ जो रत्न, सवारी, आसन, घोड़े, हाथी, गहने और वस्त्र उसके घर हैं वह हमारे पातालमें कहां? ॥३२॥ जो विज्ञान उसके हृदयमें है वह दूसरी जगह नहीं है। वह बुद्धिमानोंके हृदयका सन्देह रूपी अन्धकार दूर करता है ॥३३॥ पर एक उसका काम है जिसे ब्रह्मा, विष्णु और शिवके सिवा दूसरा कोई नहीं करसकता ॥३४॥ पिताने कहा—हे लड़को! पण्डितोंके लिये असाध्य कुछ नहीं है तो भी

साध्य वा असाध्य जो उसका काम है मुझे सुनाओ ॥३५॥ उद्योगी पुरुष देवत्व, इन्द्रत्व अथवा उससे भी पूज्यभाव प्राप्त कर सकता है। ३६॥ जो मन इन्द्रिय और आत्माको वशमें रखकर उद्योग करते हैं उनके लिये स्वर्ग मर्त्य और पातालमें कोई वस्तु अज्ञात अप्राप्य और अगम्य नहीं रहती है ॥३७॥ देखो क्षुद्र चिंवटी उद्योगी होनेसे हजार योजन चली जाती है पर बिना उद्योग किये पक्षिराज गरुड़ भी एक पैर नहीं चल सकते ॥३८॥ उद्योगी पुरुषोंके लिये कुछ गम्य वा अगम्य नहीं है। कहां पृथिवी और कहां वह स्वर्गका ध्रुव स्थान जिसे उत्तानपाद राजाके लड़के ध्रुवने पृथिवीही पर रह कर लेलिया ॥३९॥ अतएव हे पुत्रो! वह काम करो जिसे करके तुम उस महाभाग साधु राजपुत्रकी मित्रतासे उऋण होजाओ॥४०॥ दोनों कुमारोंने कहा—हे पिता! उस सद्वृत्तशाली महात्मा राजकुमारने अपनी बीती कहानी हमसे एक दिन कही थी वह घटना उसकी कौमार अवस्था की है ॥४१॥ उसने कहा कि एकदिन गालव नामक बुद्धिमान विप्र शत्रुजित राजाके पास एक घोड़ा लेकर आया और राजासे बोला—हे राजा! कोई पापी अधम दैत्य मेरे आश्रम में आकर सब ध्वंस कर देता है। वह कभी सिंह, कभी हाथी, कभी वनचर कभी और दूसरे जन्तुका रूपबनाकर आश्रममें आकर इस प्रकार विघ्न करता है और मेरा समाधिके ध्यानमें लगा हुआ मौनव्रतमें निरत रहनेवाला चित्त चञ्चल होजाता है ॥४५॥ हे राजा! तुम चाहो तो अपनी क्रोधाग्निमें इसी समय उसे जलासकते हो पर मैं नहीं जला सकता। मेरी इच्छा नहीं कि बड़े दुःखोंसे एकत्र किया हुआ अपना तप नष्ट करूं ॥४६॥ हे राजा! एक समय उस दुष्ट से दुःखित होकर मैंने एक लम्बी सांस छोड़ी। उसी समय यह घोड़ा आकाशसे गिरा और आकाशवाणी भी हुई जिसे मैं आपसे कहता हूं सुनिये ॥४८॥ हे विप्रश्रेष्ठ! तुम्हें जो घोड़ा मिला है यह सूर्यकी भांति बिना थके सारी पृथिवीमें फिर सकेगा। पाताल आकाश जल पर्वत कहीं इसकी गति न रुकेगी, वह सब दिशाओंमें

जासकेगा ॥५०॥ यह संपूर्ण भूवलय (पृथिवीतल) में घूमनेसे भी न थकेगा इसी कारण जगतमें इसका नाम "कुवलय" पड़ेगा ॥५१॥ जो पापी अधम दानव दिन रात तुम्हें कष्ट देरहा है उसको द्विज-श्रेष्ठ शत्रुजित राजाका लड़का ऋतुध्वज इस घोड़े पर चढ़कर मारेगा और इस घोड़ेसे उसकी बड़ी ख्याति होगी ॥५३॥ हे राजा! इसी कारण मैं तुम्हारे पास आया हूं। आपको भी तपस्याका भाग मिलता है इससे उस तपोविघ्नकारीको रोको ॥५४॥ महाराज! अब यह घोड़ा आपको देता हूं आप इसे लेकर अपने पुत्रको इसी प्रकार आज्ञा दीजिये जिससे धर्म लोप न हो ॥५५॥ राजाने उसकी बात मानकर सब मङ्गलाचार करके अपने पुत्र ऋतुध्वजको उस घोड़े पर चढ़ाकर सन्मानपूर्वक मुनिके साथ बिदा किया ॥५६॥ और मुनिवर गालव भी प्रसन्न होकर राजकुमारको संग लेकर अपने आश्रमको चले गये ॥५७॥

इक्कीसवां अध्याय।

मदालसा-परिणय।

पिताने पूछा—गालव मुनिके संग आश्रममें जाकर राजपुत्रने क्या किया? हे पुत्रो! यह कथा बड़ी विचित्र है इससे मुझे सुनाओ ॥१॥ कुमारोंने कहा—हे पिता! उस राजपुत्रने गालव मुनिके रमणीय आश्रममें रहकर वेदपाठ करनेवाले ब्राह्मणोंका सब विघ्न दूर किया ॥२॥ वह महा अभिमानी दानव यह नहीं जानता था कि वीर राजपुत्र कुवलयाश्व गालवके आश्रममें रहता है ॥३॥ इसीसे जिस समय गालव मुनि बैठे संध्या कर रहे थे उसी समय वह अधम दानव सूअर बनकर उन्हें दुःख देनेके लिये आया ॥४॥ और आकर उत्पात करने लगा। उसे देखतेही मुनिके शिष्य डरके मारे चिल्लाने लगे। तब राजपुत्र उस घोड़े पर तुरतही चढ़कर

धनुष बाण खेंचकर उस सूअरके पीछे दौड़ा। कुछ दूर जाकर मनोहर चित्रोंसे शोभित धनुष खेंचकर अर्द्धचन्द्र बाणसे उसे मारा। ॥६॥ वह दैत्य घायल होकर अपनी जान बचानेके लिये पर्वत और वृक्षोंके एक बड़े भारी बनमें इधर उधर छिपने लगा ॥७॥ पिताकी आज्ञासे उस कर्तव्यपरायण राजकुमारने भी अपना घोड़ा उसके पीछे सरपट दौड़ाया ॥८॥ तब वह सूअर रूपी दानव बड़े वेगसे हजार योजन पारकरके पृथिवीगर्भस्थ एक गढ़ेमेंजागिरा। उसकेपीछे पीछे राजकुमार भी अपना घोड़ा लिये इस अन्धकारपूर्ण गढ़ेमें कूद पड़ा ॥१०॥ पर अन्धकार होनेसे वह सूअर झट उसकी दृष्टिसे लोप होगया। कुछदेर बाद उसने चमकताहुआ पाताल देखा ॥११॥ पर वहां भी उस दैत्यको न पाया। कुछ और आगेबढ़कर राजपुत्रने एकनगर देखा जहां हजारों सोने तथा जवाहिरोंकेबने चमकते दमकते बड़े बड़े महल थे। वह नगर अमरावतीसा जानपड़ता था ॥१२॥ राजकुमार उस नगरमें चारों ओर फिरा पर कहीं मनुष्य न दिखाई दिया। अन्तमें एक जगह एक स्त्रीको बड़े वेगसे जाते देखा ॥१३॥ राजकुमारने उस कृशाङ्गीसे पूछा तुम किसकी भेजी किसके पास जाती हो? उसने कुछ भी उत्तर न दिया और झट महलमें चली गई ॥१४॥ राजकुमारने घोड़ेसे उतरकर उसे एक जगह बांध दिया और निडर होकर आश्चर्य्यसे देखताहुआ उस स्त्रीके पीछे पीछे चला गया ॥१५॥ वहां जाकर उसने देखा कि एक सकामा रतिके समान चन्द्रमुखी पीनश्रोणी पयोधरा मनोहारिणी रमणी सोनेके एक बड़े पलंग पर उदास बैठी है। उसके बिम्बसे ओठ, दुबला शरीर, नील कमलसी आंखें थीं। उसके नख लाल और कुच उच्च थे, नवीन उमर, श्यामा शरीर, हाथ पांवके तलवे कोमल और लाल, उरू हाथीके सूंडके समान, दांत सुन्दर और केश स्थिर और पतले थे। राजकुमारने उस चारुलतासी सर्वाङ्ग सुन्दरी कामिनीको देखकर उसे पातालकी देवी समझा ॥१८॥ उस शुभमयी रमणीने भी राजकुमारके काले घुंघराले बाल, चौड़ी छाती, भारी कन्धे, लम्बी

भुजाएं देखकर उसे कामदेव समझा ॥२०॥ तब वह कृशाङ्गी महा-भागा चित्तके चोभसे अचानक उठी और फिर लज्जा विस्मय और दीनताके वश होगई ॥२१॥ सोचने लगी कि यह कौन है? देवता हैं या यक्ष या गन्धर्व अथवा यह नाग या विद्याधर हैं? या कोई पुण्यवान मनुष्य हैं जो यहां आये हैं ॥२२॥ उस मतवाली आंखों वालीने पातालमें इस प्रकार चिन्ता करके लम्बा सांस लिया और बैठ गई और फिर झट मूर्च्छित होगई ॥२३॥ राजकुमार भी कामबाणोंसे विधकर "कुछ भय नहीं, कुछ भय नहीं" कहकर उसे सम्हालने लगा ॥२४॥ जो स्त्री उसे पहले दिखाई दी थी वह बहुत व्याकुल होकर ताड़के पंखेसे उसको पवन करने लगी ॥२५॥

तब राजकुमारने उसको धीर बंधाकर उससे उसके मूर्च्छित होनेका कारण पूछा। पर उस लज्जावतीने राजकुमारसे कुछ न कहकर अपनी सखीसे सब बातें कहीं। उसकी सखीने राजकुमार से उस रमणीका सब वृत्तान्त सुनाया और कहा कि तुम्हें ही देख कर उसे मूर्च्छा आई। प्रभो! स्वर्गमें विश्वावसु एक गन्धर्व राज हैं। यह सुन्दर भंवोंवाली उन्हीकी कन्या है। इसका नाम मदा-लसा है। एक दिन यह वाटिकामें खेल रही थी। इतनेमें वज्र-केतु दानवके पुत्र पातालवासी उग्रमूर्त्ति शत्रुविदारण पातालकेतु नामक विख्यात दुरात्मा दानवने अपनी तमोमयी माया फैलाकर इस असहाया अबलाको हरण किया। मैं तब वहां न थी ॥३०॥ अब वह आनेवाली त्रयोदशीको इसके साथ विवाह करेगा। पर जिस प्रकार शूद्रको वेद श्रुतिका अधिकार नहीं वैसेही वह भी इस सुन्दरीके योग्य नहीं है ॥३१॥ जो हो, कल जब यह आत्महत्या करने लगी तो सुरभिने कहा—"यह नीच दानव तुम्हें न पासकेगा। यह मर्त्यलोकमें जाकर एक मनुष्यके तीरसे छिदेगा वही व्यक्ति बहुत शीघ्र तुम्हारा पति होगा" ॥३३॥ मैं इसकी सखी हूं मेरा नाम कुण्डला है। मैं विंध्यवानकी मनस्विनी कन्या हूं और वीर पुष्कर मालीकी स्त्री। मेरे पतिको शुम्भने मार डाला। परलोक

उद्धारके लिये उद्यत होकर मैं दिव्यगतिसे तीर्थोंमें फिरती हूं ॥३५॥ दुष्टात्मा पातालकेतुने आज बाराहका रूप धारण किया था। एक व्यक्तिने जो मुनियोंकी रक्षाके लिये आया था उसे बाण से छेद दिया है ॥३६॥ यह बात ठीक है या नहीं यही जाननेके लिये मैं जल्दी जल्दी जाती थी, मैंने देखा कि वह अधम सचही किसीके बाणसे बिध गया ॥३७॥ और यह जो मूर्च्छित हुई इसका कारण सुनिये। हे मानदाता! आपका दर्शन करतेही इस बाला की आप पर बड़ी प्रीति होगई क्योंकि आप देखनेमें देवकुमार तुल्य हैं और सुन्दर वचन आदि अनेक गुण आपमें है, पर जिसने उस दानवको छेदा है उसके भिन्न यह दूसरेकी स्त्री न होसकेगी ॥३८॥ इसीसे उसे अत्यन्त मोह हुआ। कारण यह कि उसे जीवन भर दुःख भोगनेका भय हुआ है ॥४०॥ इसका मन तो तुममें अनुरक्त होगया पर इसका पति कोई दूसरा होगा क्योंकि सुरभिका वाक्य तो टलेगा नहीं इससे इसे जीवन भर दुःखही भोगना होगा ॥४१॥ महाराज! मैं इसीसे दुःखित चित्तसे मैं इसके निकट आई हूं क्यों कि सखीके और मेरे शरीरमें कुछ अन्तर नहीं है ॥४२॥ यदि इस सुन्दरीको मनभावता वीर पति मिले तो मैं निश्चिन्त होकर तप करूं ॥४३॥ हे महामति! आप कौन हैं, यहां क्यों आये हैं, आप देव हैं या दैत्य या गन्धर्व अथवा पन्नग वा उरग? क्योंकि न मनुष्य यहां आसकता है और न मनुष्यका ऐसा शरीर होता है इससे आप भी मेरी भांति सब बातें ठीक ठीक कहिये ॥४५॥ कुवलयाश्वने कहा कि हे धर्मज्ञ! तुमने जो पूछा कि तुम कौन हो, क्यों यहां आये हो इसका उत्तर मैं देता हूं ॥४६॥ हे मार्जित बुद्धिवाली! मैं राजा शत्रुजितका पुत्र हूं। हे शुभे! पिताने मुनियोंकी रक्षाके लिये मुझे गालव मुनिके आश्रममें भेजा। वहां मैं धर्माचारी मुनियोंकी रक्षा करता था इतनेमें कोई दैत्य सूअर बनकर आश्रममें विघ्न करने आया ॥४८॥ मैंने उसे अर्द्धचन्द्र बाणसे मारा। वह वेगसे भागा मैंने भी अपना

घोड़ा उसके पीछे छोड़ा। भागता भागता वह एक गढ़ेमें कूदा, मैं भी उसके साथ कूदा। पीछे घोड़े पर चढ़ा हुआ इधर उधर फिरता प्रकाशमें आया और तुम दिखाई दी। तुमसे पूछा तो तुमने कुछ उत्तर न दिया तब मैं तुम्हारा पीछा करता हुआ इस सुन्दर महलमें आपहुंचा। मैंने कुल बातें ठीक ठीक कह दीं। मैं न देवता हूं न दानव, न पन्नग गन्धर्व वा किन्नर—मैं मनुष्य हूं। इसमें आप कुछ भी सन्देह न करें॥५३॥ वह भामिनी मदालसा यह सुन कर बड़ी प्रसन्न हुई और लज्जासे स्थिर होकर केवल अपनी सखीका मुंह देखने लगी और कुछ न बोली। कुण्डलाने भी प्रसन्न होकर मदालसासे कहा—हे सुरभिके वचनको माननेवाली! इन्होंने सब बातें ठीक कही हैं॥५५॥ कुण्डलाने तब राजपुत्रसे कहा—हे वीर! आपने जो कुछ कहा सब सच और सन्देह-रहित है नहीं तो आप को देखकर इसका हृदय आपमें इतना क्यों लग जाता॥५६॥ क्योंकि अधिक कान्ति चन्द्रमाहीको मिलती है, प्रभा सूर्य्यको, ऐश्वर्य्य भाग्यमान पुरुषको, धृति धीरको और क्षमा उत्तम पुरुषको प्राप्त होती है॥५७॥ इससे आपहीने निस्सन्देह उस पापी दानवको छेदा है क्योंकि गोमाता सुरभि कभी मिथ्या न कहेगी। आपसे सम्बन्ध होनेसे मेरी सखी धन्य हुई। अब हे वीर! विधिके अनु-सार जो कर्तव्य हो उसे पूरा कीजिये॥५८॥ राजपुत्रने कहा, मैं पराधीन हूं पिताकी आज्ञा बिना इस बालासे विवाह कैसे करूं? कुण्डलाने कहा—आप ऐसा न कहिये, यह देवकन्या है इससे विवाह करिये। राजपुत्रके तथास्तु कहने पर विवाहकी तय्यारी हुई और मदालसाने अपने कुलगुरु तुम्बुरुको स्मरण किया। स्मरण करतेही तुम्बुरु समिध और कुश लिये उपस्थित हुए॥६२॥ मदा-लसाकी प्रीति और कुण्डलाके गौरवसे घीकी आहुति डालकर प्रज्वलित अग्निको ऊंचा करते हुए वैवाहिक विधानके अनुसार मङ्गलपूर्वक मदालसाका पाणिग्रहण कराके जहांसे आये थे वहीं तपस्याके लिये तुम्बुरुजी चले गये॥६४॥

तब कुण्डलाने मदालसासे कहा—रूपशालिनी सखी! तुझे इनके साथ सम्मिलित देखकर मैं कृतार्थ हुई। अब मैं निश्चिन्त हो कर तपस्या करूंगी और तीर्थोंके जलसे अपने सब पाप धो बहाऊंगी जिससे फिर मेरी अबकीसी गति न हो। जानेकी तय्यारी करके सखीके प्रेमसे विह्वल होकर उसने बड़ी नम्रतासे राजकुमार से कहा—हे अपरिमित बुद्धिशाली! बड़े पण्डित भी आप जैसे पुरुषोंको उपदेश नहीं देसकते फिर मैं तो स्त्री हूं मैं आपको क्या उपदेश दूंगी। पर इस सखीके स्नेहने मेरा मन बहुत खेंच लिया है और आपकी मेरे ऊपर बड़ी कृपा है इस विचारसे आपको कुछ स्मरण कराती हूं। पतिको अपनी स्त्रीकी सदा रक्षा और भरण पोषण करना चाहिये, स्त्री पतिकी सहायिनी होनेसे धर्म्म अर्थ और कामकी भलीभांति सिद्धि होती है। पति पत्नी जब एक दूसरेके वशीभूत होते हैं तभी अर्थ धर्म्म और काम उनके साथी होते हैं। धर्म्म आदि तीनों वर्ग स्त्रीसेही समाहित समझकर पुरुष जिस प्रकार स्त्री बिना कभी धर्म्म अर्थ या काम लाभ नहीं करता वैसेही स्त्री भी स्वामी बिना धर्म्म आदिका साधन नहीं कर सकती। क्योंकि धर्म्म अर्थ और काम समान भावसे स्त्रीपुरुषके आश्रयमें रहते हैं। हे राजनन्दन! स्त्री बिना अकेला पुरुष देवता पितृ नौकर और अतिथियोंकी पूजा रूपी धर्म्म नहीं कर सकता। पुरुष कितना ही धन घरमें ले आवे तो भी स्त्री न होनेसे कुल नष्ट होजाता है। बिना स्त्रीके काम नहीं रह सकता यह तो स्पष्टही है। अधिक क्या स्त्री और पुरुष यदि मिलकर काम करें तो तीनों धर्म्म प्राप्त कर सकते हैं। यदि पुरुषोंको अच्छी स्त्रियां मिलें तो पुत्र उत्पन्न करके पितृगणको, भोजनादिसे अतिथियोंको और पूजा आदि देवताओंको प्रसन्न कर सकते हैं। बिना स्वामीके स्त्री भी धर्म्म अर्थ और कामकी उन्नति नहीं कर सकती। क्योंकि यह तीनों दाम्पत्य भावके आश्रित हैं। अस्तु, आप दोनोंसे मेरा निवेदन है कि आप आज्ञादें मैं जहां जाना चाहती हूं वहां जाऊं। आशीर्वाद करनेसे

आप दोनो धन पुत्र सुख और आयुसे लदें बंधें ॥७८॥ नागपुत्रोंने कहा—कुण्डला यह बातें कहकर अपनी सखीसे मिलके और राजपुत्रको नमस्कार करके जहां जाना चाहती थी, चली गई। वह शत्रुजित तनय ऋतुध्वज भी मदालसाको उस घोड़े पर चढ़ाकर पातालसे निकलने लगा। उस समय दानवोंने जाना कि पातालकेतु स्वर्गसे जो कन्या उठा लाया था उसीको राजकुमार लिये जाता है। तब दानवोंने चिल्लाहट मचाई उनकी सेना पातालकेतुके साथ सम्मिलित हुई। परिघ, खड्ग, गदा, शूल और वाण आदि शस्त्र लेकर राजकुमारको रोकने लगी और उनपर हथियार चलाने लगी ॥८४॥ तब अति बलशाली राजकुमारने हंसते हंसते बातकी बात में दानवोंके सब अस्त्र शस्त्र अपने तीरोंसे काट डाले। राजकुमारों के तीरोंसे टूटे हुए हथियारोंका ढेर पातालमें लग गया। पीछे राजकुमारने त्वाष्ट्रअस्त्र उठाकर दानवों पर फेंका। वह भयंकर ज्वालासे भराहुआ अस्त्र पातालकेतु और अन्यान्य दानवोंकी हड्डियां चूरचूर करने लगा। कपिल मुनिके तेजसे सगर राजाके लड़के जैसे एक क्षणमें भस्म होगये थे उसी प्रकार सब असुर भस्म होगये।

राजकुमार असुरोंको मारकर उस स्त्रीरत्न सहित घोड़े पर चढ़कर अपने पिताके घर आया और प्रणाम किया। उसने पातालमें जाने, कुण्डलाके देखने, मदालसाके पाणिग्रहण करने, दानवोंसे लड़ने, उन्हें अस्त्रसे मारने और वहांसे लौटने आदिकी सब बातें पिताको सुनाईं। पिता यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने पुत्रको आलिङ्गन करके कहा—हेपुत्र! जिसके द्वारा धर्मशील मुनि भयसे रक्षित हुए मैं भी उस महात्मा सत्पात्र द्वारा तर गया। पुत्र! मेरे बड़ोंने जो यश संचय किया था और मैंने उसको जो विस्तारित किया, हे वीर पराक्रमशाली! तुमने उस यशको बहुतही बढ़ा दिया ॥८४॥ देखो, पिताका उपार्जन किया जो यश, वल, धन, है उसकी जो पुरुष रक्षा भर करता है वह मध्यम, पर जो व्यक्ति उससे भी अधिक बलवान होकर अपनी शक्तिसे उसे और बढ़ाता है

पण्डित उसे उत्तम कहते हैं और जो बापके उपार्जित यश, बल और धनको नष्ट करता है उस पुरुषको पण्डित लोग अधम कहते हैं। हे वत्स! मैंने केवल मात्र ब्राह्मणोंकी रक्षा की थी, पर तुमने पातालमें जाकर असुरोंको मारा, ब्राह्मणोंकी रक्षा की, बहुत बढ़ कर काम किये इससे तुम उत्तम पुरुष हो। हे बालक! तुम धन्य हो, तुमसा पुत्र पाकर पुण्यवानोंमें मेरी श्लाघा बढ़ी। वत्स! जिस व्यक्तिका ज्ञान, दान और बल पुत्र द्वारा भलीभांति नहीं बढ़ता उस पिताका पुत्रवान समझकर आदर नहीं होता॥ १००॥ जिस पुत्रका पिताके नामसे लोगोंमें आदर हो उसे धिक्कार है, पर जिस पिताका पुत्रके यशसे यश बढ़े उसका जन्म सार्थक है। जो मनुष्य अपनेही नामसे प्रख्यात हो वही धन्य है। जो मनुष्य बाप दादाके पुण्यसे विख्यात होता है वह मध्यम है और जो मामा नानाके नाम से विख्यात होता है वह नराधम है। अस्तु, हे पुत्र! तुम्हारा धन बल और सुख बढ़े और यह गन्धर्वकुमारी तुमसे कभी न बिछड़े। यह सब बातें कहकर पिताने राजकुमारको आलिङ्गन किया और वह अपनी स्त्री सहित घर आया। अपनी पत्नी मदालसा सहित वह अपने पिताके महलों, उद्यानों, पर्वतोंमें आनन्द करने लगा और वह शुभमयी सुमध्यमा मदालसा भी नित्य सबेरे सास ससुरके चरणोंकी वन्दना करके पतिके साथ आनन्दसे रहने लगी॥१०६॥

बाईसवां अध्याय।

सदालसा-वियोग।

नागपुत्र बोले—कुछ पीछे राजाने अपने पुत्रको बुलाकर कहा हे बेटा! इस घोड़े पर चढ़कर ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये संपूर्ण पृथिवी तलमें घूमो ॥१॥ और दिन रात सांझ सवेरे इस बातका सदा ध्यान रखो कि ब्राह्मणोंके तपमें किसी प्रकार विघ्न तो नहीं होता है ॥२॥ सहस्रों पापी दानव बड़ी दुष्टता करते फिरते हैं तुम ऐसा करो जिससे वह मुनियोंको किसी प्रकारका कष्ट न पहुंचा सकें ॥३॥ राजकुमार पिताकी आज्ञा मानकर वैसाही करने लगा। नित्य दोपहर दिन चढ़े पहले पृथिवी पर फिरकर लौट आता और पिताकी चरण सेवा करता। शेष समय अपनी प्यारी स्त्रीके साथ बिताता ॥५॥ फिरते फिरते एक दिन उसने देखा कि पातालकेतु का छोटा भाई तालकेतु यमुनातट पर आश्रम बनाकर बैठा है। उस मायावीने मुनिका रूप बना रखा था। पुरानी शत्रुताका ध्यान करके उसने राजकुमारसे कहा—राजकुमार मैं जो कहता हूं यदि इच्छा हो तो उसे करो। हे सत्यप्रतिज्ञ! आप कभी किसीको प्रार्थनाभङ्ग नहीं करते हैं ॥८॥ राजकुमार! मैं यज्ञ करूंगा और इच्छापूर्वक अग्नि चयन करूंगा पर मेरे पास दक्षिणा देनेके लिये धन नहीं है। इससे हे वीर! सोना दान करनेके लिये मुझे अपने गलेका कण्ठा दीजिये। मैं जलमें जाकर वैदिक वारुण मन्त्रसे जो प्रजाकी पुष्टि करनेवाला है वरुण देव और वरुणकी स्तुति करूंगा। जबतक मैं न आऊं तबतक आप यहां ठहरें और मेरे आश्रमकी रक्षा करें मैं जल्द आता हूं। राजपुत्रने ऐसा कहते हुए कपट मुनिको प्रणाम किया और अपना कण्ठा उतारकर उसे दे दिया और कहा—आप बेडर होकर अपना काम करें मैं आपके

पण्डित उसे उत्तम कहते हैं और जो बापकी उपार्जित यश, बल और धनको नष्ट करता है उस पुरुषको पण्डित लोग अधम कहते हैं। हे वत्स! मैंने केवल मात्र ब्राह्मणोंकी रक्षा की थी, पर तुमने पातालमें जाकर असुरोंको मारा, ब्राह्मणोंकी रक्षा की, बहुत बढ़कर काम किये इससे तुम उत्तम पुरुष हो। हे बालक! तुम धन्य हो, तुमसा पुत्र पाकर पुण्यवानोंमें मेरी श्लाघा बढ़ी। वत्स! जिस व्यक्तिका ज्ञान, दान और बल पुत्र द्वारा भलीभांति नहीं बढ़ता उस पिताका पुत्रवान समझकर आदर नहीं होता॥ १००॥ जिस पुत्रका पिताके नामसे लोगोंमें आदर हो उसे धिक्कार है, पर जिस पिताका पुत्रके यशसे यश बढ़े उसका जन्म सार्थक है। जो मनुष्य अपनेही नामसे प्रख्यात हो वही धन्य है। जो मनुष्य बाप दादाके पुण्यसे विख्यात होता है वह मध्यम है और जो मामा नानाके नामसे विख्यात होता है वह नराधम है। अस्तु, हे पुत्र! तुम्हारा धन बल और सुख बढ़े और यह गन्धर्वकुमारी तुमसे कभी न बिछड़े। यह सब बातें कहकर पिताने राजकुमारको आलिङ्गन किया और वह अपनी स्त्री सहित घर आया। अपनी पत्नी मदालसा सहित वह अपने पिताके महलों, उद्यानों, पर्वतोंमें आनन्द करने लगा और वह शुभमयी सुमध्यमा मदालसा भी नित्य सवेरे सास ससुरके चरणोंकी वन्दना करके पतिके साथ आनन्दसे रहने लगी॥१०६॥

बाइसवां अध्याय।

मदालसा-वियोग।

नागपुत्र बोले—कुछ पीछे राजाने अपने पुत्रको बुलाकर कहा हे बेटा! इस घोड़े पर चढ़कर ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये संपूर्ण पृथिवी तलमें घूमो ॥१॥ और दिन रात सांझ सबेरे इस बातका सदा ध्यान रखो कि ब्राह्मणोंके तपमें किसी प्रकार विघ्न तो नहीं होता है ॥२॥ सहस्रों पापी दानव बड़ी दुष्टता करते फिरते हैं तुम ऐसा करो जिससे वह मुनियोंको किसी प्रकारका कष्ट न पहुंचा सकें ॥३॥ राजकुमार पिताकी आज्ञा मानकर वैसाही करने लगा। नित्य दोपहर दिन चढ़े पहले पृथिवी पर फिरकर लौट आता और पिताकी चरण सेवा करता। शेष समय अपनी प्यारी स्त्रीके साथ बिताता ॥५॥ फिरते फिरते एक दिन उसने देखा कि पातालकेतु का छोटा भाई तालकेतु यमुनातट पर आश्रम बनाकर बैठा है। उस मायावीने मुनिका रूप बना रखा था। पुरानी शत्रुताका ध्यान करके उसने राजकुमारसे कहा—राजकुमार मैं जो कहता हूं यदि इच्छा हो तो उसे करो। हे सत्यप्रतिज्ञ! आप कभी किसीकी प्रार्थनाभङ्ग नहीं करते हैं ॥८॥ राजकुमार! मैं यज्ञ करूंगा और इच्छापूर्वक अग्नि चयन करूंगा पर मेरे पास दक्षिणा देनेके लिये धन नहीं है। इससे हे वीर! सोना दान करनेके लिये मुझे अपने गलेका कण्ठा दीजिये। मैं जलमें जाकर वैदिक वारुण मन्त्रसे जो प्रजाकी पुष्टि करनेवाला है वरुण देव और वरुणकी स्तुति करूंगा। जबतक मैं न आऊं तबतक आप यहां ठहरें और मेरे आश्रमकी रक्षा करें मैं जल्द आता हूं। राजपुत्रने ऐसा कहते हुए कपट मुनिको प्रणाम किया और अपना कण्ठा उतारकर उसे दे दिया और कहा—आप बेडर होकर अपना काम करें मैं आपके

आने तक यहीं ठहरूंगा। कोई आपकी कुछ वस्तु बिगाड़ न सकेगा। हे ब्राह्मण! वेखटके जाइये और अपना काम कीजिये ॥१४॥ नागपुत्र बोले—वह मायामुनि तालकेतु राजकुमारकी बात सुनकर यमुना जलमें घुस गया। राजकुमार उसके मायासे बने आश्रमकी रक्षा करने लगा। फिर तालकेतु नदीसे निकलकर राजा शत्रुजितके नगरमें गया। उसने मदलसा और दूसरे आदमियोंके सामने कहा कि वीर कुवलयाश्व मेरे आश्रमके पास तपस्वियोंकी रक्षा करता था। उसने एक दुष्ट दानवके साथ लड़कर ब्रह्मद्वेषी अनेक असुरोंको मारा। पर उस पापी असुरने मायासे शूलद्वारा राजकुमारका वक्षःस्थल चीर डाला। मरते हुए राजकुमारने यह कण्ठा मुझे दिया है। वनमें राजकुमारकी लाश शूद्रतापसगणने जला दी। उनका डबडबाई आंखोंसे आर्तनाद करता हुआ घोड़ा भी उसी दुरात्मा असुरने लेलिया है। उस निर्दय पापीने यह सब किया है अब जैसा उचित हो वैसीही अकालिक क्रिया आप भी करें और यह जीको सन्तोष देनेवाला कण्ठा लें मैं तपस्वी हूं मुझे सोना नहीं चाहिये ॥२२॥ यह कहकर तालकेतु कुवलयाश्वका कण्ठा रखकर चल दिया। वहांके लोग शोकसे मूर्च्छित होगये फिर चेतमें आकर राजा रानी और दूसरी राजललनायें बड़े दुःखसे विलाप करने लगीं। मदालसा पतिका कण्ठा देखकर और उसका मरना सुनकर बड़ी कातर हुई और उसी क्षण मर गई। उस समय राजभवनमें जैसा रोना पीटना मचा हुआ था प्रजाके घरोंकी भी वही दशा थी ॥२३॥ राजाने देखा कि मदालसा पतिवियोगमें मर गई। उन्होंने धैर्य्य धारण करके पास खड़े लोगोंसे कहा—मरना सबको है सब अनित्य हैं इससे आपको या हमें रोना नहीं चाहिये। पुत्र और बहूके लिये हमें शोक न करना चाहिये। उन दोनोंने अपना कर्तव्य पालन किया है। पुत्र मेरी सेवा करता था और मेरी आज्ञासे उसने ब्राह्मणोंकी सेवा करते हुए प्राण दिया। ऐसे पुत्रके लिये शोक करना बुद्धिमानका काम नहीं ॥२४॥

शरीर अनित्य है मेरे पुत्रने जब यह शरीर ब्राह्मणके लिये त्यागा है तो सोचकी बात नहीं अभ्युदयकी बात है। और इस उत्तम कुलवाली बहूने अपने पतिका साथ दिया है फिर इसके लिये सोच कैसा? स्वामीके अतिरिक्त स्त्रीका कोई देवता नहीं है। यदि यह स्वामीके वियोगमें जीती रहती तो हमारे बन्धु बान्धवों और दूसरे दयालु लोगोंके लिये दुःखकी बात होती। पर इसने तो पतिका मरना सुनतेही प्राण देदिया अतः पण्डित इसके लिये सोच न करेंगे। पतिके मरने पर जो स्त्री जीती रहे उसकेलिये दुःख करना चाहिये। पर जो स्वामीके साथ चली जाय उसके लिये क्या दुःख है। उस पुण्यवतीने पतिवियोग अनुभव नहीं किया। इस लोक और परलोकके सुखदाता पतिको कौन स्त्री मनुष्य समझेगी वह तो देव-तुल्य है। मेरा पुत्र, उसकी स्त्री, मैं, मेरी रानी कोई शोकके उप-युक्त नहीं है क्योंकि ब्राह्मणोंके निमित्त प्राण देकर पुत्रने हम सब का उद्धार किया है। मेरा महामति पुत्र नई उमरमें प्राण देकर मुझसे ब्राह्मणोंसे और धर्मसे उऋण हुआ॥३९॥ ब्राह्मणरक्षामें प्राण देनेसे माताके सत्वंशकी विमलता और अपनी वीरता सबका उसने पालन किया॥४०॥

नागपुत्रोंने कहा—कुवलयाश्वकी माने अपने पुत्रका मरना अपने पतिसे पीछे सुना। वह अपने पतिको देखकर उन्हींकी भांति कहने लगी। महाराज! मुनिरक्षा करते हुए पुत्रके प्राण देनेकी बात सुनकर मुझे जैसा हर्ष हुआ वैसा सुख न कभी मातासे हुआ न बहनसे। जो शोचनीय दशामें कुटुम्बियोंके लिये दुःखसे सांस छो-ड़तेहुए रोगग्रस्त होकर मरतेहैं उनकी माता वृथा सन्तानकी माता कहलाती हैं॥४३॥ जो गो ब्राह्मणकी रक्षाके लिये निडर होकर लड़ते हुए घायल होतें हैं पृथिवीमें वही मनुष्य कहलानेके योग्य हैं। प्रार्थी मित्र और शत्रु, जिसके सामनेसे विमुख न जावें ऐसेही पुत्रके पिता पुत्रवान कहलाते हैं और उसकी माता वीरजननी। पुत्र जब युद्धमें मारा जाता है या विजय पाकर लौटता है तबही

स्त्रियोंके गर्भ धारण करनेका क्लेश सार्थक होता है ॥४५॥

नागपुत्रोंने कहा—तब राजा शत्रुजितने पुत्रवधूका मृतक संस्कार किया और नगरके बाहर स्नान करके पुत्रके निमित्त जलाञ्जलि दी। इधर नीचदानव तालकेतु यमुना जलसे निकला और बड़े मीठे वचनोंसे राजपुत्रसे बोला—हे भूपालपुत्र! मैं तुमसे बड़ा कृतार्थ हुआ। तुम यहां अविचल भावसे खड़े रहे इससे मैंने महात्मा जलपति वरुणका यज्ञकार्य्य अपनी अभिलाषाके अनुसार अपनी मायासे पूरा किया। अब तुम जाओ। तब राजपुत्र मुनिको प्रणाम करके गरुड़ और वायुके सदृश विक्रमशाली अपने घोड़े पर चढ़कर पिताके नगरको चला ॥५०॥

तेईसवां अध्याय।

अश्वतरका तपस्यासे मदालसाको फिर पाना और
कुवलयाश्वका अश्वतरके यहां पातालमें जाना।

नागपुत्रोंने अपने पितासे कहा कि राजकुमार कुवलयाश्व माता पिताकी चरण वन्दना और प्यारीपत्नी मदालसाको देखनेकी लालसा से बहुत शीघ्र अपने नगरमें पहुंचा। उसने देखा कि नगरनिवासी बहुत घबराये हुए और उदास हैं। पर उसे देखतेही उन्हें आश्चर्य्य हुआ। उनके चेहरों पर हर्ष छागया। वह उत्फुल्ल नयनोंसे "हे ईश्वर हे ईश्वर" कहने लगे। एक दूसरेके गले मिलकर हर्ष प्रगट करने और कहने लगे—हे राजकुमार! तुम दीर्घजीवी हो तुम्हारे शत्रुओंकी क्षय हो। तुम अपने माता पिताके और हमारे चित्तको सदा हर्षित करो। यह कहते हुए लोग कुमारके आगे पीछे होगये और वह उन लोगोंसे घिरा हुआ उस समयके आनन्दसे आनन्दित होता पिताके भवनमें पहुंचा ॥५॥ पिता माता और दूसरे बन्धुओंने आलिङ्गन करके "चिरजीवी हो" कहते हुए उसे आशीर्वाद दिया। तब कुमारने प्रणाम करके आश्चर्य्यसे पूछा—तात! यह क्या बात

है ? उन्होंने राजकुमारसे सब वृत्तान्त सुनाया। राजकुमार प्यारी स्त्रीके मरनेकी बात सुनकर पितामाताको सामने देखकर लज्जा और शोकसे सोचने लगा—हा! जब उस सती स्त्रीने मेरे मरने की बात सुनतेही प्राण त्याग दिया तो मुझ कठोर हृदयको धिक्कार है। जिस मृगनैनीने मेरे लिये प्राण देदिया उसके बिना मैं जीता हूं तो निस्सन्देह मैं नृशंस अनार्य्य और अत्यन्त निर्दय हूं। वह बहुत घबराकर लम्बी सांसें लेकर मोहके उच्छ्वासमें निमग्न हुआ। फिर धैर्य्य धरकर सोचनेलगा—उस कामिनीने मेरे लिये प्राण दिया है यदि मैं भी उसके लिये प्राणत्याग दूं तो इससे उसका क्या उपकार करूंगा ? पर ऐसी स्त्रियां धन्य हैं! यदि 'हाप्यारी हा प्यारी' करके बारबार रोऊं तो भी निन्दाकी बात है क्योंकि मैं पुरुष हूं। यदि माला आदि शृङ्गार छोड़कर उदास रहूं तो विपक्षी हंसेंगे। क्योंकि शत्रुदमन और पिताकी सेवा करनाही मेरा एक मात्र धर्म्म है। मेरा जीवन उन्हींके अधीन है इससे इसे परित्याग न करना चाहिये। अच्छा दूसरी स्त्रीका सम्भोग छोड़नेसे भी क्या मेरी प्यारी का कुछ उपकार होगा ? पर मैं ऐसाही करूंगा। चाहे इससे प्यारीका उपकार हो या अपकार पर मैं यह नृशंस काम करूंगा। जिसने मेरे लिये प्राण दिया उसके लिये क्या मैं इतना भी न करूं? ॥१७॥ यह निश्चय करके राजकुमारने अपनी स्त्रीके निमित्त जलाञ्जलि दी और उसका क्रियाकर्म्म करके कहा—वह मेरी प्यारी सुन्दरी स्त्री मदालसा ही जब नहीं है तो इस जन्ममें और कोई स्त्री मेरी साथिन नहीं होसकती। मैं सच कहता हूं कि उस मृगनैनी गन्धर्व कन्याके सिवा मैं किसी स्त्रीका सम्भोग नहीं करूंगा। मैं उस सद्धर्म्मचारिणी गजगामिनी पत्नीको त्याग कर किसी कामिनीको अङ्गीकार न करूंगा, यह सच कहता हूं। नागकुमारोंने कहा—हे पिता! वह राजपुत्र अब अन्य स्त्रियोंसे विमुख होकर स्वभाव और सम्पदमें बराबरकी आयुवाले कुमारोंके साथ समय बिताता है। पिताजी! उसका यही एक काम करने योग्य है। पर इसमें किसीका

वश नहीं! यह तो ईश्वरके लिये भी कठिन है दूसरे लोगों को तो क्या गिनती है! ॥२३॥ अपने पुत्रोंके मुंहसे यह घटना सुनकर नागराज पहले तो बड़े उदास हुए पीछे कुछ सोचकर मुसकाते हुए उनसे बोले—पुत्रो! हो नहीं सकता, कह कर मनुष्य कर्मका उद्योग नहीं करता उस उद्योगहीनताहीसे उस की बड़ी हानि होती है। अपना पौरुष नष्ट न करके मनुष्योंको अपना कार्य्य आरम्भ करनाचाहिये। क्योंकि दैव या पौरुषसेही काम होता है। मैं अब तप करूंगा उससे जल्द यह काम होगा—यह कहकर नागराज अश्वतर हिमालय पर्वतके प्लचावतरण तीर्थमें चले गये और कठिन तपस्या करने लगे। पीछे उन्होंने जी लगाकर परिमित भोजन, तीनों समय स्नान और वचनोंसे सरस्वतीकी स्तुति करना आरम्भ की ॥२८॥ कहा—मैं शुभमयी जगज्जननी ब्रह्मयोनि सरस्वती देवीकी आराधनाकी इच्छासे उन्हें सिर झुकाकर प्रणाम करता हूं और उनकी स्तुति करता हूं। हे देवी! मोक्ष विशिष्ट सदसत् स्वरूप जो सब पद हैं वह तुमसे असंयुक्त होने पर भी संयुक्तकी भांति समान रूपसे तुम्हीमें विद्यमान हैं। हे देवी! तुम परम अक्षर हो और तुमहीमें सब प्रतिष्ठित हैं ॥३२॥ किन्तु समस्त अक्षर स्वरूप परमब्रह्म और चरात्मक यह विश्व भी तुमहीमें अव स्थित है! अनल और भूमिके समस्त परमाणु जिस प्रकार काठमें रहते उसी प्रकार परब्रह्म और अशेष जगत तुमहीमें विद्यमान है। हे देवी! ओंकार अक्षर संस्थान और स्थिरास्थिर अर्थात् सदसत् सम्पूर्ण पदार्थ तुमहीमें वर्त्तमान रहते हैं। हे माता! तीन लोक तीन वेद तीन विद्या तीन अग्नि तीन ज्योति तीन वर्ग तीन धर्मादि तीन गुण तीन शब्द तीन दोष तीनों आश्रम तीन काल तीन अवस्था पितृ और दिन रात इत्यादि सब वस्तु जो तीन मात्राओंके स्वरूप हैं पृथक पृथक सम्प्रदाय-भुक्त पुरुषोंके लिये सोमसंस्थ हविःसंस्थ और पाकसंस्थ रूपसे, आद्य और सनातन सात प्रकारकी व्याहृति वेदमें निरूपित हुई हैं, ब्रह्मवादी

एक मात्र तुम्हारेही कीर्तनमें वह सब समाहित करते हैं। हे माता! उल्लिखित रूपके अतिरिक्त आपका और एक जो अनिर्देश्य परमरूप है जिसको अर्द्धमात्रा कहते हैं वह भी इसी प्रकार अविकारी अक्षय और अशेष है। हे माता! मेरी ऐसी शक्ति नहीं है जिसके द्वारा आपके उस परम रूपका निर्देश करनेमें समर्थ हूं ॥४१॥ क्योंकि शरीर जिह्वा तालु और ओठादि द्वारा उस का उच्चारण नहीं होता। इन्द्र वसुगण ब्रह्मा चन्द्र सूर्य्य वा अन्यान्य ज्योतिर्मय पदार्थ सब उसका स्वरूप हैं ॥४२॥ वही विश्वका आवास विश्वका स्वरूप विश्वका ईश्वर और परमेश्वर है! सांख्य वेदान्त और तर्कशास्त्रमें जो कथित हुआ है, वेदकी अनेक शाखाओंसे जो निश्चित हुआ है, जिसका आदि मध्य और अन्त नहीं है जो सत् और असत् है संसारके भेद समाश्रममें जो एक अनेक और नाना प्रकार है जिसकी आख्या नहीं है अथच षटगुण और समस्त वर्ग ही जिसकी आख्या हैं जो त्रिगुणावलम्बी है जो नाना प्रकार शक्तिमान मनुष्योंकी शक्तिका परमविभवसम्पन्न और जो सुख असुख तथा महासुख रूप है हेमाता! तुममें ही वह सब लक्षित होता है ॥४४॥ देवी! इसीप्रकार सकल और विष्कल सारा जगतही तुससे व्याप्त होरहा है ॥ ४५ ॥ और जो अद्वैतावस्थित एवं द्वैतावस्थित ब्रह्म है वह भी तुम्हारे द्वारा व्याप्त हुआ है जो अर्थ नित्य और जो अनित्य है और जो स्थूल तथा सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म है और जो पृथिवी वा अन्तरिक्षमें या अन्यत्र विद्यमान है हे देवी! तुमसेही उन सब पदार्थोंकी प्राप्ति होती है ॥ ४७ ॥ हे माता! जो वस्तु मूर्तियुक्त वा अमूर्त्त है जो सब प्राणियोंमे कुछ कुछ विद्यमान हैं जो स्वर्गमें पृथिवीतलमें अन्तरिक्षमें वा अन्यान्य स्थानमें वर्त्तमान हैं हे देवी! तुम्हारे स्वर और व्यञ्जन द्वाराही उन सब पदार्थोंका ज्ञान होता है ॥४७॥ विष्णुजिह्वासरस्वतीने नागराजके द्वारा इस प्रकार स्तुति सुनकर उन महात्मा अश्वतर नागसे कहा ॥ ४८ ॥

हे कम्बलभ्राता उरगाधिप! मैं तुमको वर दूंगी अतएव तुम्हारे

सवारी कपड़े आदि जोकुछ हैं वह सब आपके हैं ॥७९॥ यदि तुम्हारा प्रेम मुझ पर बहुत है तो जो धन वा रत्न तुम दोनो मुझे देना चाहते हो वह दे दो ॥८०॥ यदि तुम इस घरको अपना नहीं समझते तो मैं अपने दुर्भाग्यके सिवा और क्या समझूँ? यदि मेरी प्रसन्नता चाहते हो और मुझ पर कृपा करनाचाहते हो तो हमारे इसघर और धनको अपना समझो ॥८२॥ जो तुम्हारा है वह मेरा है जो मेरा है वह तुम्हारा है। तुम मेरी बात सच्ची समझो। तुम मेरे शरीरके बाहर रहनेवाले प्राण हो ॥८३॥ इससे फिर कभी ऐसी भिन्नताकी बात न कहना। मैं अन्तरसे तुम्हें शपथ दिलाता हूं कि तुम प्रीतिपूर्वक मुझपर प्रसन्न हो ॥८४॥ नागकुमारोंकी आंखोंमें प्रेमकेआंसू भर आये और उन्होंने जरा कोपकरके कहा कि तुम जो कहते हो वही तो सदा हमारा विचार है इसमें कुछ संशय नहीं इससे भिन्नता कुछ भी नहीं है हमारे पिताने बारबार कहके तुम्हें बुलाया है। यह सुनतेही कुवलयाश्व अपने उत्तम आसनसे उठा और बोला—स्वयं पिताने बुलाया है? यह कहकर उसने झुककर प्रणाम किया। फिर कहा मैं धन्य हूं पुण्यवान हूं मेरासा भाग्यवान कौन होगा कि मुझे देखनेको पिताजी उत्सुक हैं। लो अभी चलो। अब एक मुहूर्त नहीं ठहरना चाहते। उनके चरणोंकी मैं शपथ करता हूं ॥९०॥ ऐसा कहकर वह राजपुत्र उन दोनो कुमारोंके संग नगरसे बाहर निकलकर पवित्र नदी गौतमीके तीर पर पहुंचा ॥९१॥ उसमें होकर तीनो चले। राजकुमारने समझा इस नदीके पार इनका घर होगा ॥९२॥ पर वह दोनो राजकुमार को पातालमें खेंच लेगये। पातालमें जाकर राजपुत्रने देखा कि उन दोनोंने अपना बनावटी वेश उतार दिया और नागकुमार बन गये हैं। फणके मणियोंकी चमकसे उनका प्रकाश बढ़ गया है। स्वस्तिक चिन्ह स्पष्ट दिखाई देने लगे हैं ॥९३॥ उनको निज रूपमें देख राजपुत्र विस्मित हुआ और हंसकर कहा कि धन्य हो!॥९४॥ तब देवताओंसे सम्मानित शांतचरित्र अपने पिता अश्वतरके सम्मुख उन

दोनोने राजपुत्रके आनेकी बात कही ॥९५॥ राजपुत्रने देखा कि पाताल बड़ा सुन्दर है, बालक जवान वृद्ध सब प्रकारके सर्प वहां शोभायमान हैं। नागपुत्रियां उनके चारों ओर फिरती हैं। उनके हार कुण्डल बड़े मनोहर हैं। जिससे पातालकी शोभा तारोंसे भरे आकाशकीसी होरही हैं। कहीं गाना होता है, साथ साथ वेणु और वीणा बजती हैं। मृदङ्ग पणव और आतोद्य आदि बाजे बज रहे हैं। उसमें हजारों सुन्दर घरहैं ॥९८॥ कुमार ऋतुध्वज दोनो प्यारेमित्रोंके साथ पाताल देखतादेखता नागराजके मन्दिरमें पहुंचा। वहां जाकर देखा कि नागराज बैठे हैं। वह दिव्य वस्त्र पहने हैं गले में दिव्य माला धारण किये हैं। कानोंमें मणिके कुण्डल हिलरहेहैं। गलेमें स्वच्छ मोतियोंकी सुन्दर माला पड़ी है। दोनो हाथोंमें कड़े शोभा पारहे हैं और माणिक्य मूंगे पुखराज आदि रत्नोंसे जटित सोनेके सिंहासन पर बैठे हैं ॥१०२॥ उन दोनो नागकुमारोंने राजकुमारसे कहा देखो वही नागराज हमारे पिता हैं। फिर अपने पितासे निवेदन किया कि वीर ऋतुध्वज यही हैं ॥१०३॥ ऋतुध्वज ने नागराजके पैरों पर गिरकर प्रणाम किया। नागराजने झट ऋतुध्वजको उठाकर अपनी छातीसे लगाया और उसका सिर सूँघकर आशीर्वाद दिया कि चिरजीवी हो और अपने शत्रुओंको मारकर मातापिताकी सेवा करो ॥१०॥ हे वत्स! तुम धन्य हो क्योंकि मेरे पुत्र सदा तुम्हारे अलौकिक गुणोंकी प्रशंसा किया करते हैं ॥१०६॥ इससे तुम्हारी मन वचन शरीर और चेष्टा सब बातोंमें वृद्धि होती है। जो गुणवान हैं उन्हींका जीवन धारण श्लाघाका विषय है गुणहीन जीतेही मृतवत् हैं ॥१०७॥ गुणवान पुरुष पितामाता के हृदयमें शांति शत्रुओंके हृदयमें ताप और अच्छे लोगोंके हृदयमें विश्वास उत्पन्न करके अपना मङ्गलसाधन करते हैं ॥१०८॥ देवता, पितर, बन्धु, मित्र, याचक और विकलाङ्ग गुणवानोंके दीर्घजीवन की कामना करते हैं ॥१०९॥ गुणवान परनिन्दा नहीं करते, दरिद्रों पर दया करते और विपत्तिमें फंसे हुए मनुष्योंको सहारा देते हैं।

नागराजने कहा हे विचारवान बालक! ऐसाही होगा। तुम्हारा मन सदा धर्ममें है। तुमने जो जो कहा वह सत्य है। वास्तवमें यह सब बातें पुण्यका फल हैं ॥२३॥ तथापि जब तुम मेरे घर आये हो तब तुम कोई ऐसी वस्तु लो जो मनुष्य लोकमें कभी नहीं मिल सकती ॥२४॥ नागराजकी यह बात सुनकर राजपुत्र नागकुमारोंके मुंहकी ओर देखने लगा ॥२५॥ इसके बाद दोनो नागकुमारोंने पिताको प्रणाम करके राजपुत्रकी मनोवासना स्पष्ट कहसुनाई ॥२६॥ नागनन्दनोंने कहा—हे पिता! इनकी प्यारी पत्नीने एक दुरात्मा दानवकी प्रवञ्चनासे इनके मरनेका झूठा सम्वाद सुनकर अपना प्राण देदिया। वह नीच दैत्य इनसे पुराना वैर रखता था। इनकी वह स्त्री गन्धर्वराजकी कन्या थी उसका नाम मदालसा था। उसके प्राण त्यागने पर इन्होंने प्रतिज्ञा की—"अब मदालसा व्यतीय दूसरी स्त्री मेरी पत्नी नहीं होसकती" ॥२९॥ हे तात! यह महावीर राजकुमार चाहते हैं कि उसका दर्शन करें। यदि आपसे यह बात होसके तो कीजिये ॥३०॥ नागराजने कहा जो मर गया है उसका फिर मिलना स्वप्न या शम्बरकी कही हुई आसुरी मायाके बिना और प्रकार असम्भव है ॥३१॥ इसके बाद ऋतुध्वजने नागराजको प्रणाम कर बड़े प्रेम और लज्जासे कहा ॥३२॥ हे तात! यदि आप माया से भी उस मदालसाको एकबार मुझे दिखा दीजिये तो मैं समझूंगा कि मेरे ऊपर आपकी बड़ी कृपा हुई ॥३३॥ नागराजने कहा—हे बेटा! यदि तुम मायाकी मदालसाही देखना चाहते हो तो सो देखो, क्योंकि तुम ऐसीही कृपाके पात्र हो। बालक होने पर भी मेरे घर अतिथि होनेके कारण गुरुकी भांति सम्मानके योग्य हो। तब नागराजने घरमें छिपाई हुई मदालसाको वहां लाकर खड़ाकर दिया और कुमारको भुलानेकेलिये झूठमूठकुछ मन्त्र पढ़के मदालसा उसे दिखाई और कहा पहचानो यही तुम्हारी पत्नी मदालसा है कि नहीं ॥३६॥ राजपुत्र मदालसाको देखतेही लज्जा छोड़'प्यारी' कहते चाहते उसके सामने बढ़ा। नागराजने झट उसे रोका और कहा—

बेटा ! इसे मत छूओ यह माया है। मैंने पहलेही कहा है कि छूतेही वह अन्तर्ह्धित होजायगी ॥३८॥ यह बात सुनतेही राजपुत्र "हा प्यारी !" कहकर शोकसे मूर्च्छित होकर गिर पड़ा ॥३९॥ यह देख मदालसाने मनमें सोचा—धन्य कुमारका प्रेम ! मुझपर इनका कितना अचल प्रेम है। यह बड़े बड़े शत्रुओंको अपने अस्त्रसे गिरा देते थे पर इस समय यह बिना शस्त्रही गिर पड़े ॥४०॥ मैं माया रूपसे प्रगट हुई हूं वास्तवमें मिथ्या हूं इससे सचमुच मायाही हूं। क्योंकि वायु जल तेज मृत्तिका और आकाश—इन पांच भूतोंसे मनुष्यका जन्म होता है। मायाके सिवा इसे और क्या कहना चाहिये ? ॥४१॥ तदनन्तर नागराजने राजकुमारकी मूर्च्छा छुड़ाकर मदालसाके फिर जिलानेकी सब बातें कहीं ॥४२॥ राजकुमार अपनी प्यारी मदालसाको पाकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने अपने घोड़ेको स्मरण किया। स्मरण करतेही घोड़ा उपस्थित हुआ। तब राजकुमार नागराजके पांवमें गिरकर मदालसा सहित घोड़े पर चढ़ा और अपने नगरको चला गया ॥४३॥

पचीसवां अध्याय।

मदालसाका अपने पुत्रको ज्ञान सिखाना।

राजपुत्रने अपने नगरमें आकर अपने मातापितासे मृत मदालसाके फिरसे मिलनेकी कथा आदिसे अन्त तक कह सुनाई ॥१॥ कल्याणी सुभाङ्गी मदालसा भी अपनी सास तथा ससुरके चरणोंमें प्रणाम करके परिवारवालोंसे यथोचित मिली ॥२॥ उसने बड़ोंकी पूजा की, समान उमरवालोंका सत्कार किया और अपनेसे छोटोंका दुलार किया। पीछे नगरमें घर घर महा आनन्द होने लगा ॥३॥

इधर ऋतुध्वजने सुमध्यमा पत्नी सहित नदियोंके तट, पहाड़ी झरनों, और मनोहर वन उपवनोंमें घूम घूमकर बहुत दिन आनन्द किया ॥४॥ मदालसा भी अपने कमनीय कान्ति पतिके साथ उत्तम स्थानोंमें विहार करके सुख भोगने लगी ॥५॥ इस प्रकार बहुत दिन बीत जाने पर राजा शत्रुजित् पृथिवीका अच्छी तरह पालन करके कालवश हुए ॥६॥ तब प्रजावर्गने मिलकर उत्तम गुणोंसे भरे पूरे राजकुमार ऋतुध्वजको पिताके राजसिंहासन पर बिठाया ॥७॥ ऋतुध्वज सिंहासन पर बैठकर प्रजाको पुत्रके तुल्य पालने लगे। इस समय मदालसाके गर्भसे पहला पुत्र हुआ ॥८॥ पिताने उस मतिमान बालकका नाम "विक्रान्त" रखा। यह बात सुनकर सब दासदासी आनन्द मनाने लगे पर मदालसा हंसने लगी ॥९॥ वह बालक उत्तानशायी होकर अस्फुट स्वरसे रोने लगा। मदालसा चुप करानेके बहाने उससे प्यारसे बोली ॥१०॥ "रे बालक! तू शुद्ध स्वरूप है, नाम हीन है। यह तेरा कल्पित नाम है। तेरा यह शरीर पांच भूतसे बना है। यह न तेरा है न तू इसका फिर क्यों रोता है? ॥११॥ अथवा तू नहीं रोता है यह शब्द राजपुत्रके सहारे स्वयं आविर्भूत होता है। अनेक प्रकारके भौतिक गुण और अगुण तेरी संपूर्ण इन्द्रियोंमें वास करके निराकार आत्माके रूपमें रहते हैं ॥१२॥ दुर्बल जीव जैसे जीवके सहारे अन्न जलादि पाकर बढ़ता है वैसी वृद्धि या क्षय तेरी नहीं है ॥१३॥ तेरी यह देह अंगरखेके समान है यह पुरानी भी हो जायगी इसकी सुन्दरतासे प्रेम मत कर। तेरी इस आत्माको शुभ अशुभ कर्मोंसे यह देह, मद मोह आदिसे दृढ़ कंचुक बनकर जकड़ रही है ॥१४॥ तू इन देहोंसे किसीको बाप किसीको मा, किसीको लड़का, किसीको स्त्री, किसीको अपना, किसीको पराया समझता है ॥१५॥ मूर्ख एक दुःखको छुड़ानेके लिये दूसरे दुःख स्वरूप भोगोंको सुख समझता है। फिर मूर्ख उन्हीं दुःखोंको दुःख दूर करनेवाला सुख समझता है ॥१६॥ मूर्ख स्त्रीको सुखकी सामग्री समझता है, पर

वह तो नरक स्वरूपही है। देख, मूर्ख, हड्डियां देख पड़ती हैं तो उसे हास्य समझकर प्रसन्न होता है इसी तरह दोनों चर्मस्वरूप आंखोंको प्यारीकी प्यारी चितवन समझकर सुखी होता है और मांसके पिण्ड स्तनोंको कुच आदि नाम रखकर आनन्द मानता है ॥१७॥ पृथिवी पर रथ है, रथमें देह है और देहमें कोई दूसरा ही पुरुष बैठा है। जैसी ममता सबको अपनी अपनी देहमें रहती है वैसी किसी दूसरी वस्तुमें नहीं रहती। यह सब बातें मूर्खता की हैं ॥१८॥

छब्बीसवां अध्याय।

छोटे पुत्र अलर्कके प्रति मदालसाका उपदेश।

वह लड़का ज्यों ज्यों बढ़ने लगा वैसेही रानी मदालसा खेलानेके बहाने उस निर्मलात्मा पुत्रको आत्मज्ञानका बोध कराने लगी॥१॥ पुत्र ने धीरे धीरे जिस प्रकार पितासे बल और बुद्धि पाई वैसेही माताके उपदेशसे आत्मज्ञान प्राप्त किया ॥२॥ बचपनहीसे माताके ज्ञान भरे वचनोंसे उस बालकको ज्ञान हो गया। इस कारण वह ममत्व रहित हो कर विवाह न करके गृहस्थ धर्मसे अलग रहने लगा ॥३॥ फिर मदालसाके गर्भसे दूसरा लड़का हुआ जिसका नाम पिताने "सुबाहु" रखा। उस समय भी मदालसा हंसी ॥४॥ उसने उस लड़केको भी उसी तरह बचपनहीसे ज्ञान भरी बातें सुना सुना कर ज्ञानी बना दिया ॥५॥ राजाको तीसरा लड़का हुआ। उसका नाम राजाने "शत्रुमर्द्दन" रखा। फिर भी मदालसा बहुत हंसी ॥६॥ वह भी उसी प्रकार माताके वचनोंसे ज्ञानी होकर तप करने लगा। पिताका काम उसने भी कुछ न किया ॥७॥ जब चौथा लड़का हुआ और राजा उसका नाम रखने लगे तब फिर मदालसा उसी

तरह हंसी। राजा अचम्भेमें आकर हंसती हुई प्यारी मदालसासे बोले ॥८॥ हे प्यारी! मेरे नाम रखनेके समय तुम क्यों हंसती हो? "विक्रान्त" "सुबाहु" और "शत्रुमर्दन" नाम बड़े सुन्दर हैं। मैंने अपनी समझमें वीरता तथा प्रतापयुक्त ये नाम क्षत्रियोंके योग्य ही रखे हैं ॥१०॥ यदि ये नाम अच्छे नहीं हैं तो तुम्हें जो अच्छा लगे वही नाम इस चौथे लड़केका रखो ॥११॥ मदालसाने कहा—प्यारे महाराज! यदि मेरी बात मानते हो और मुझसे नाम रखनेकेलिये कहते हो तो इस चौथे लड़केका नाम मैं "अलर्क" रखूंगी ॥१२॥ यह जगतमें धर्मज्ञ कहला कर बड़ा नाम पावेगा। यह तुम्हारा छोटा लड़का बड़ा बुद्धिमान होगा ॥१३॥ राजा मदालसाका यह अर्थ-रहित रखा हुआ नाम सुन कर हंसने लगे और बोले ॥१४॥ ऐ प्यारी! तुमने मेरे लड़केका नाम जो "अलर्क" रखा है यह कैसा बे सिर पैरका है इसका अर्थ क्या है? ॥१५॥ मदालसाने कहा —महाराज! मैंने जो नाम रखा है वह नाम व्यवहारके योग्य है। और तुम्हारे रखे हुए सब नाम निरर्थक हैं। मैं यह बतला देती हूं आप सुनिये ॥१६॥ पहले "विक्रान्त"का अर्थ देखिये। बुद्धिमान लोग पुरुष (ईश्वर)को सर्वव्यापी कहते हैं और एक जगहसे दूसरी जगह जानेवाली गतिको "क्रांति" कहते हैं ॥१७॥ व्यापी सब जगह रहता है एक जगहसे दूसरी जगह नहीं जाता। कारण वह संपूर्ण रूप मात्रका स्वामी है। इसलिये "विक्रांत" नाम निरर्थक है ॥१८॥ दूसरा नाम आपने "सुबाहु" रखा है वह भी निरर्थक ही है कारण यह कि यदि पुरुष निराकार है तो उसको बांह कहांसे आई ॥१९॥ तीसरे लड़केका नाम आपने "अरिमर्दन" रखा है यह भी बेसिर पैरका है। इसका कारण आपसे कहती हूं सुनिये ॥२०॥ एक ही पुरुष सब शरीरोंमें रहता है तो कौन इसका शत्रु हुआ और कौन इसका मित्र हुआ? ॥२१॥ रूपवान पदार्थ रूपवान पदार्थको मार सकता है जिसमें रूप ही नहीं है वह कैसे मारा जासकता है। और क्रोध आदि निराकार पदार्थमें सटही नहीं सकते तो शत्रुता या मित्रता कैसे होगी।

इस कारण यह नाम भी किसी कामका नहीं ॥२२॥ यदि व्यवहार के लिये खराब नाम रक्खा जाता है तो "अलर्क"को आपने क्यों बे सिर पैरका समझा? ॥२३॥ यह बात सुन कर राजाने सत्य बोलनेवाली प्यारी बुद्धिमती रानीसे कहा, तुम्हारा कहना बहुत ठीक है ॥२४॥ वह सुन्दर भौंहवाली रानी मदालसा जिस तरह उन तीनों लड़कोंको ज्ञानकी बातें सिखलाती थी उसी तरह इसे भी सिखलाने लगी। राजा यह सुनते ही कुछ क्रोधसे बोला ॥२५॥ अरी गंवार! तू यह क्या कर रही है? जिस तरह उन तीनों को तूने खराब बातें सिखलाईं उसी तरह इसे भी सिखला कर मेरे वंशकी जड़ काट डालेगी? ॥२६॥ यदि तू मुझे प्यार करती है तो मेरी बात मान। इस लड़केको ऐसी बातें सिखला जिससे यह संसारी बने ॥२७॥ ऐसा करनेसे कर्ममार्ग (संध्या यज्ञ आदि)भी नष्ट नहीं होगा और पितरोंका श्राद्ध तथा पिण्ड दान भी नहीं रुकेगा ॥२८॥ स्वर्गमें रहनेवाले पशु पक्षी आदिकी योनिमें रहने वाले, मनुष्यका जन्म पानेवाले वा भूत प्रेतकी योनियोंमें रहनेवाले पितर लोग पुण्यवान् वा पापी हो कर जब भूखसे घबरा जाते हैं प्याससे तड़पने लगते हैं, तब कर्म्मकाण्डमें श्रद्धा तथा विश्वास रखने वाला मनुष्य पिण्डदान, तथा तर्पण करके उनको तृप्त करता है, सुखी करता है। और देवता तथा अतिथियोंकी पूजा वा सत्कार करके प्रसन्न करता है ॥३०॥ देवता, मनुष्य, पितर, प्रेत, भूत गुह्यक, पक्षी, कीड़े, वा पशुओंमें मनुष्य ही प्रधान समझे जाते हैं ॥३१॥ इस कारणसे हे पतली देहवाली सुंदरी! तुम्हें वही करना चाहिये जिससे क्षत्रियोंका धर्म रहे और इस लोक तथा परलोकका फल अच्छी तरह मिले ॥३२॥ पतिकी यह आज्ञा पाकर सुंदरी मदालसा "अलर्क" नामक लड़केसे प्यार करती हुई बोली ॥३३॥ ऐ पुत्र! तू बढ़। अपने कामोंसे पिताका आनन्द बढ़ा, मित्रों का उपकार और शत्रुओंका नाश कर ॥३४॥ बेटा! तू धन्य है तू शत्रुओंको मार कर एक छत्र धारण कर इस पृथिवीका

पालन करेगा। उस पालनसे तुम्हे सुख हो। धर्मसे तुझे अमर फल मिले ॥३५॥ पर्वके दिनोंमें तुम ब्राह्मणोंको प्रसन्नकरो भाई बंधुओंका मनोरथ सिद्ध करो। अपने मनमें दूसरेको भलाई करनेकी इच्छा रखो और पराई स्त्रियोंसे अपना चित्त हटाये रहो ॥३६॥ ऐ वीर! अनेक यज्ञ करके देवताओंको सदा प्रसन्न करो ब्राह्मणोंको धन दो। आश्रित जनोंको पालो। स्त्रियोंको अनेक प्रकारके संभोग तथा भूषण आदि वस्तुओंसे सुखी करो और अपने शत्रुओंको युद्ध से प्रसन्न करो ॥३७॥ बेटा! लड़कपनसे भाई बंधुओंका मन प्रसन्न करो। कुमार हो कर उनकी आज्ञा पालन कर अपने बड़ोंको प्रसन्न करो॥ जवान हो कर अच्छे कुलकी लड़कियोंसेब्याह कर उन्हें प्रसन्न करो। और बूढ़े हो कर बनवाससे बनचरोंको प्रसन्न करो ॥३८॥ राज्य करते हुए मित्रोंको आनन्दित करो, सज्जनोंकी रक्षा करते हुए अनेक यज्ञ करो। और लड़ाईमें दुष्ट वैरियोंका नाश करते हुए गाय और ब्राह्मणोंके लिये प्राण त्याग करो ॥३९॥

सत्ताइसवां अध्याय।

राजधर्म।

इस प्रकार मातासे लाड़ प्यार पाता हुआ बालक "अलर्क" बल और बुद्धिके साथ बढ़ने लगा ॥१॥ जब वह कुमार हुआ तब उसका यज्ञोपवीत संस्कार किया गया। वह माताको प्रणाम करके बोला ॥२॥ माता! मैं विनयपूर्वक तुमसे पूछता हूं कि मुझे क्या करना चाहिये? जिनसे इस लोक और परलोकमें मेरा कल्याण हो, वह बताओ ॥३॥ मदालसाने कहा, बेटा! राजा जब राजगद्दी पर बैठे तब आदिहीसे अपना धर्म पालता हुआ, प्रजाको प्रसन्न करे ॥४॥ मूलके नाश करनेवाले सातों व्यसनोंको छोड़ दे। मनुओंसे अपनी

आत्माकी रक्षा करे। अपनी सलाहकी बात बाहर न जाने दे ॥५॥ जिस तरह अच्छे पहियेवाले रथोंसे पृथ्वी कट जाती है उसी तरह सलाहकी बात बाहर फैल जानेसे अवश्यही राजाका नाश हो जाता है ॥६॥ भले बुरेका ज्ञान रखे, मंत्रियोंके चित्तकी परीक्षा करता रहे और दूतोंको चारों ओर भेज कर शत्रुओंका पता लगाता रहे ॥७॥ राजाको चाहिये कि मित्र, हित और भाइयोंका भी विश्वास न करे। और कोई ज्यादा जरूरत पड़ जाय तो शत्रुओंका भी विश्वास कर ले ॥८॥ राजा छहों गुणोंसे युक्त हो कर अपने मन्त्र स्थानोंकी बढ़ती तथा नाशका ध्यान रखे। कभी कामके वश न हो जाय ॥९॥ राजा पहले अपने मनको वशमें करे, तब मन्त्रियोंको तब नौकरोंको इसके बाद नगरके लोगोंको फिर सबके अन्तमें शत्रु-ओंको, लड़ कर अपने वशमें कर ले ॥१०॥ जो इनको विना जीते ही शत्रुओंसे लड़ बैठता है वह शत्रुओंसे जीता जाता है ॥११॥ पुत्र! इस कारण राजाको उचित है कि काम क्रोध आदिको पहले जीते उसकेबाद शत्रुओंको जीतनेकी इच्छाकरे। जो काम आदिको जीतते हैं उनकी अवश्य जीत होती है और जो उन्हींसे जीते जाते हैं वह शत्रुओंसे हार जाते हैं ॥१२॥

काम, क्रोध, लोभ, मद, मान और हर्ष राजाके नाश करनेवाले शत्रु हैं ॥१३॥ काममें आसक्त होनेसे "पाण्डु" मारा गया। क्रोधसे "अनुहाद" और उसका पुत्र मारा गया ॥१४॥ लोभसे "ऐल" मारा गया। मदसे "वेण" मारा गया। मानसे अनायुषाका पुत्र "बलि" मारा गया। और हर्षसे "पुरंजय" मारा गया॥ ॥१५॥ महात्मा भरतने इन सबको जीतनेके बाद शत्रुओंको जीत लिया। इन बातोंको याद करके राजा अपने सब दोषोंका त्याग करे ॥१६॥ कव्वे, कोयल, भौंरे, हरिन, सांप, मोर, हंस, मुरगे, और लोहे का चरित्र राजा सीखे ॥१७॥ राजा शत्रुओंके पक्षमें घुन की तरह लग कर भीतर अगणित छेद करदे। और समय पाकर चींटियोंकी तरह भी काम करले ॥१८॥ राजाको अपनी नीतिका

पालन करनेके लिये उचित है कि आगके टुकड़ोंकी तरह चमकीली चीजों तथा सेमलके बीजकी तरह छिपी चीजोंको अच्छी तरह पहचाने ॥१९॥ कुलटा, कमल, शरभ, शूलिका, गर्भिणीके स्तन, तथा अहीरियोंसे बुद्धि सीखना राजाको उचित है ॥२०॥ राजाको उचित है कि पृथिवीके पालनके समय इन्द्र सूर्य, यम, चन्द्रमा, और वायुका रूप धारण करे ॥२१॥ जिस तरह इन्द्र चार महीने जलकी वर्षा करके प्रजाको तृप्त करते हैं उसी तरह राजा भी दानसे प्रजाको पाले ॥२२॥ जिस तरह सूर्य आठ महीने अपनी किरणोंसे जल खींच लेते हैं उसी तरह राजा भी अपना सब कर छिपे हुए छोटे छोटे उपायोंसे खींचा करे ॥२३॥ जिस तरह यमराज समय पड़ने पर प्रेम तथा बैर करते हैं उसी तरह दुष्ट और सज्जनों पर क्रोध तथा प्रेम दिखाया करे ॥२४॥ जिस तरह मनुष्य चन्द्रमाको देख कर प्रसन्न होते हैं उसी तरह जब राजाको देख कर प्रजा प्रसन्न हो तब राजा अपनेको अच्छा राजा समझे ॥२५॥ जिस तरह वायु सब जगह छिप कर रहता है उसी प्रकार राजा भी छिपे छिपे अपने दूतोंको भेज कर प्रजा, मंत्री तथा भाई बंधुओंके मनकी बात समझता रहे ॥२६॥ जिस राजाका मन काम, लोभ, वा धनसे नहीं चिलता वही राजा स्वर्गमें जाता है ॥२७॥ जो राजा खराब रास्तेमे चलनेवाले मूर्खोंको और अपना धर्म छोड़नेवाले पापी जनोंको अपने धर्ममें लाता है वही राजा स्वर्गमें जाता है ॥२८॥ जिस राजाके राज्यमें चारो वर्णोंके धर्म ठीक ठीक बने रहते हैं और चारो आश्रम (ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य; वानप्रस्थ, और संन्यास) अच्छी तरह स्थिर रहते है वह राजा इस लोक तथा परलोकमें सुख पाता है ॥२९॥ राजाका यह परम धर्म है कि अपना सब काम सिद्ध करे और नीच बुद्धियोंसे हिलाये हुए अपने धर्मको स्थिर रखे ॥३०॥ राजा अपनी प्रजाका पालन करनेहीसे धन्य भागी होता है। जो राजा प्रजाको अच्छी तरह पालता है वह राजा प्रजाके सब धर्मोंमें भाग

पाता है ॥२१॥ जो राजा इस तरह चारो वर्णोंकी रक्षा करता है वह इस लोकमें इन्द्रके समान सुख भोगता है ॥२२॥

अठाइसवां अध्याय।

वर्णाश्रमधर्म्म।

माताकी यह बात सुन कर "अलर्क" चारो वर्णों और चारो आश्रमोंका धर्म पूछने लगा ॥१॥ माता! तुमने राजधर्म अच्छी तरह कहा उसमें वर्ण धर्म और आश्रम धर्मका भी नाम लिया है। इस कारण मैं अब वर्ण धर्म तथा आश्रम धर्म सुनना चाहता हूं ॥२॥ मदालसा कहने लगी। सुखी ब्राह्मणके दान, अध्ययन और यज्ञ, यह तीनही धर्म प्रधान हैं चौथा नहीं ॥३॥ यज्ञ कराना, पढ़ाना और पवित्र वस्तु दान लेना, ये तीन जीविकायें ब्राह्मणोंकी हैं ॥४॥ दानदेना, वेद पढ़ना, और यज्ञ करना ये तीन धर्म क्षत्रियोंके हैं। और पृथिवीका पालन करना तथा शस्त्र धारण करना क्षत्रियोंकी जीविका है ॥५॥ दान देना, वेद पढ़ना, तथा यज्ञ करना, ये तीन वैश्यके धर्म हैं। वाणिज्य, पशु पालन तथा खेती करना ये वैश्यकी जीविकाएं हैं ॥६॥ दान देना, यज्ञ करना, तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्यकी सेवा करना ये तीन धर्म शूद्रके हैं। नौकारी करना, तीनो उत्तम जातियोंकी सेवा करना, पशु पालन तथा खरीदना बेचना ये सब शूद्रकी जीविकाएं हैं। मैंने तुमसे वर्ण धर्म कहा, अब आश्रमोंकी बात कहती हूं सुनो ॥८॥ जो मनुष्य अपने धर्म पर रहता है वह सिद्ध पाता है। जो अपना धर्म छोड़ देता है वह कभी सिद्धि नहीं पाता। शास्त्रोंमें जिन बातोंका करना मना है उन्हें जो करता है वह नरकमें पड़ता है ॥९॥ जब तक ब्राह्मण, क्षत्रिय, तथा वैश्यको जनेऊ नहीं पहनाया जाता तब

तक वे जो चाहें खा पी सकते हैं ॥१०॥ पर जब जनेऊ पहनाया जाय तब अच्छी तरह ब्रह्मचर्य धारण करके गुरुके घर उन्हें रहना चाहिये। अब ब्रह्मचारीका धर्म कहती हूं सुनो ॥११॥

वेद पढ़ना, हवन करना, स्नान करना, भिक्षा मांगना, भिक्षा मांग कर गुरुको देना उनसे पूछ कर भोजनकरना, गुरुके काममें सदा तत्पररहना, सबतरह गुरुकी प्रीति पैदा करना, जब गुरुजी बुलाकर पढ़नेके लिये कहें तब मन लगाकर पढ़ना, ये सब ब्रह्मचारीके धर्म हैं ॥१३॥ एक वेद, दो वेद, तीन वेद वा चारो वेद पढ़नेके पश्चात् गुरुसे आज्ञा लेकर उनके चरणोंको प्रणाम कर, और गुरुदक्षिणा दे कर, यदि गृहस्थ बननेकी इच्छा होतो गृहस्थ बने। वानप्रस्थ होनाचाहे तो उस आश्रममें प्रवेश करे और संन्यासी होना चाहे तो संन्यास लेले ॥१५॥ अथवा इच्छा हो तो गुरुके घर ही पर ब्रह्मचर्य धारण करके रहे। गुरु की सदा सेवा करता रहे गुरुजी न हों तो उनके पुत्रकी सेवा करे उनके पुत्र न हो तो उनके शिष्यकी सेवा करे। ॥१६॥ कभी किसी प्रकारका अभिमान न करे। इस प्रकार ब्रह्मचारी बन कर रहे। इसके बाद गृहस्थ बननेके लिये वहांसे लौटे ॥१७॥ घर पर आकर समान ऋषिवाले कुलमें उत्पन्न, नीरोग, सब अंगोंसे युक्त सुंदरी कन्यासे व्याह कर उसे भार्या बनावे। बिना व्याह किये मनुष्य गृहस्थ नहीं बन सकता ॥१८॥ अपने उचित कामसे धन पैदा कर के देवता, पितर, तथा अतिथियोंकी भक्तिसे पूजा करे और नौकर लड़के, दीन, अन्ध, पतित, पशु, पक्षी, तथा अन्य जीवोंको अन्न देकर यथाशक्ति पालन करे ॥२०॥ गृहस्थका यह भी धर्म है कि जब स्त्री ऋतुस्नान (मासिक होनेके चौथे दिन पवित्र हो) करे तब उस से संयोग करे। पंच यज्ञ (पाठ, होम, अतिथियोंकी पूजा, तर्पण, और विश्वेदेव बलि)को यथा शक्ति न छोड़े ॥२१॥ पितर, देवता, अतिथि, तथा जातिसे बचा हुआ अन्न, गृहस्थ अपने परिवार तथा नौकर चाकरोंके संग यथाशक्ति भोजन करे ॥२२॥ इस प्रकार

मैंने तुमसे गृहस्थाश्रमका वर्णन किया॥ अब वानप्रस्थका धर्म कहती हूं मन लगा कर सुनो ॥२३॥ मनुष्य जब देखे कि उसे पुत्र हो गया और देह दिनदिन ढलती जाती है तब अपनी आत्माकी शुद्धिके लिये वानप्रस्थ आश्रममें प्रवेश करे ॥२४॥ वनमें रह कर जंगली वस्तुओंको भोजन करना, तप करना, पृथिवी पर सोना, ब्रह्मचर्य धारण करना, पितर, देवता, अतिथियोंका पवित्र काम करना, होम करना, तीन बार स्नान करना, सिर पर जटा रखना, वलकल धारण करना, सदा योगका अभ्यास करना, जंगली तेल (हिंगोट आदिका तेल) लगाना: इत्यादि काम पापोंसे शुद्ध करने और आत्माका उपकार करनेवाले हैं। वानप्रस्थ आश्रमके बाद "भिक्षु" (संन्यास) नामक आश्रममें चला जाय ॥२७॥ बेटा! अब मैं तुमसे चौथे आश्रम (संन्यास) का वर्णन करती हूं जो इस आश्रममें रहने वाले महात्माओंने कहा है ॥२८॥ सब कामोंको छोड़ देना, ब्रह्मचर्यसे रहना, क्रोध न करना, अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखना, और एक स्थानमें बहुत दिनों तक न रहना, कोई संसारी काम न करना, भीख मांग कर एकही समय भोजन करना, आत्मज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा रखना, अपनी आत्माका रूप देखते रहना ॥३०॥ यह चौथे आश्रमका धर्म मैंने तुमसे कहा अब दूसरी जातियोंका साधारण धर्म कहती हूं सुनो ॥३१॥ सच बोलना, पवित्र रहना, जीवहिंसा न करना, दूसरेकी निंदा न करना, क्षमा करना दया रखना, कंजूसी न करना, संतोष रखना, ये धर्म चारवर्ण और चारों आश्रममें रहनेवाले मनुष्योंके हैं। मनुष्योंको उचित है कि इन धर्मोंको पालते हुए अपने अपने आश्रममें रहें ॥३२॥ जो इन धर्मोंका पालन करते हैं वह स्वर्गमें जाते हैं। जो अपना जातिधर्म, तथा आश्रम-धर्म नहीं रखता, वह राजासे दंड पाने योग्य होता है ॥३४॥ जो मनुष्य अपना धर्म छोड़ कर पाप करते हैं और राजा भी उनका ख्याल नहीं करता तो उन मनुष्यों तथा राजाके किये हुए यज्ञोंका, तथा तालाब वा मन्दिर बनानेके पुण्योंका नाश

हो जाता है ॥२५॥ इस कारण राजाको उचित है कि सब वर्णों-को अपने अपने धर्ममें रहनेके लिये सचेत किया करे और जो अपना धर्म न पालन करें उन्हे दण्ड दे ॥२६॥

उन्तीसवां अध्याय।

गार्हस्थ्य धर्म।

अलर्कने कहा—माता! गृहआश्रममें रहने वाले पुरुषोंका जो काम है; जिसके त्याग देने वा न माननेसे संसारके जालमें पुरुष बंध जाते हैं, जिससे मनुष्योंका उपकार होता है जो घरमें करनेके योग्य नहीं वा जो कार्य्य सब जिस प्रकार कियाजाता है वह सब काम मुझे ठीक ठीक बता दो ॥२॥ मदालसाने कहा—बेटा! जो मनुष्य गृहस्थ बन कर संपूर्ण जगत तथा प्राणियोंका पालन करता है वह अपना सब मनोरथ पाता है ॥३॥ पितर, मुनि, देवता, भूत, मनुष्य, कीट, पतंग, पक्षी, पशु और राक्षस सब गृहस्थको आशा करते हैं उसीके दिये हुए अन्न जलसे तृप्त होते हैं। और सब लोग गृहस्थ ही का मुंह देखते रहते हैं ॥५॥ गृहस्थ सबको सहारा देनेवाला है तथा अर्थ धर्म, कामको पूरा करनेवाली कामधेनुके समान है। जिसमें समूचा संसार रहता है और उसीसे समूचा जगत पैदा होता है ॥६॥ ऋग्वेद उस गायकी पीठ है, यजुर्वेद पेट और साम-वेद गरदन और मुंह है। यज्ञ तथा तालाब, मन्दिर, आदि सींग कोमल वचन रोम, शान्ति गोबर, पुष्टि मूत्र, और जाति चारो पैर हैं। ऐसी कामधेनु जगतको जिलानेवाली है, वह मोटी नहीं होती और न दुबली होती। ८॥ स्वाहाकार, (हवन) स्वधा-कार, (तर्पण) वषट्कार (वेदपाठ) और हन्तकार (अन्नदान) ये चारो उस गौके चार स्तन हैं ॥९॥ देवता स्वाहाकार नामक स्तन

पीते हैं, पितर स्वधाकार नामक स्तन, मुनि वषट्कार नामक स्तन और मनुष्य हंतकार नामक स्तन सदा पीते रहते हैं। इस प्रकार यह गौ इन लोगोंको तृप्त करती है ॥११॥ जो मनुष्य इस गृहस्थाश्रम का नाश कर देते हैं वह बड़े भारी पापी हैं और वह तामिस्र तथा अंधतामिस्र नामक नरकमें पड़ते हैं ॥१२॥ जो पुरुष इस धेनुके स्तन देवता, पितर आदि बछड़ोंको उचित समय पर पिलाते है वे स्वर्गमें जाते हैं ॥१३॥ इस कारण मनुष्यको उचितहै कि जिस तरह अपने शरीरकी रक्षा करे उसी तरह देवता ऋषि, पितर, मनुष्य तथा और जीवोंकी रक्षा करे ॥१४॥ इस कारण गृहस्थ सवेरे स्नान करके पवित्र हो उचित समय पर प्रसन्न चित्तसे देव, ऋषि, पितर तथा प्रजापतिका जलसे तर्पण करे ॥१५॥ मनुष्य पहले फूल गन्ध धूप आदि वस्तुओंसे देवताओंकी पूजा करे तब हवन करे, तब तर्पण करे, उसके बाद "वलि विश्वदेव" करे ॥१६॥ घरके बीचमें ब्रह्मा उत्तर दिशामें विश्वेदेव तथा धन्वन्तरि पूर्व दिशामें इन्द्र दक्षिण दिशामें यम पश्चिम दिशामें वरुण उत्तर की ओर चन्द्रमा, घरके द्वार पर धाता और विधाता, घरके बाहर चारों ओर अर्यमा, और आकाशमें निशाचरोंको वलि नामक पूजा देनी चाहिये। पितरोंको पिंड दक्षिणकी ओर मुंह करके दे ॥२०॥ गृहस्थ अपना चित्त स्थिर करके जल लेकर उन देवताओंको आचमन करानेके लिये उन स्थानों पर उनके नाम गिरावे ॥२१॥ गृहस्थ इसतरह घरमें "गृहवलि" करके पवित्र चित्तसे भूतोंको तृप्त करनेके लिये "उत्सर्ग" नामक वलि करे "प्रश्च्य: श्वप-चेभ्य: वयोभ्य:" ऐसा कह कह कर पृथिवी पर अन्न गिरावे ॥२३॥ यह विश्वेदेवके नाम हैं इन्हें संध्या सवेरे पाठ करना चाहिये। फिर आचमन करके बुद्धिमान मनुष्य दरवाजेकी ओर देखे। कुछ देर तक अतिथिकी बाट देखे यदि कोई अतिथि आजाय तो उसे अन्न जलसे तृप्त करे और गंध फूल आदिसे यथाशक्ति उसकी पूजा करे॥२५॥ अपने मित्र तथा उसी गांवमें रहनेवाले मनुष्यको अतिथि न बनावे

जिसका कुल तथा नाम न मालूम हो, जो उसी समय बिना बुलाये आया हो, जिसे भूख लगी हो, जो थका हो, मांगता हो जिसके पास कुछ न हो और जो जातिका ब्राह्मण हो उसे "अतिथि" कहते हैं। उसकी पूजा अपनी शक्तिके अनुसार अवश्य करे ॥२७॥ उससे गोत्र न पूछे, वेद न पूछे, उसकी सुन्दरता वा असुन्दरताका विचार न करे उसको प्रजापतिका स्वरूप समझे। वह नित्य नहीं आता, उसका तिथिनियम नहीं रहता इस लिये वह अतिथि कहलाता है। उसके तृप्त होनेसे गृहस्थ नरयज्ञसे होनेवाले ऋणसे उद्धार होजाता है ॥२८॥ जो मनुष्य अतिथिको बिना खिलायेही आप खालेता है, वह पाप खानेवाला है फिर दूसरा जन्म पाकर विठा खाता है ॥३०॥ जिसका अतिथि निराश होकर लौट जाता है वह अतिथि उस गृहस्थको अपना पाप दे कर उसका पुण्य ले लेता है ॥३१॥ केवल जल तथा शाकही देकर वा जो स्वयं खाय वही उसे देकर अपनी शक्तिके अनुसार आदरसे उस अतिथिकी पूजा करनी चाहिये ॥३२॥ प्रतिदिन अन्न तथा जलसे श्राद्ध करना चाहिये। पितरोंके नाम पर अनेक वा एक ब्राह्मण को रोज भोजन कराना चाहिये ॥३३॥ अन्नका ऊपरी हिस्सा ब्राह्मणको देना चाहिये। संन्यासी वा ब्रह्मचारी यदि भिक्षा मांगनेके लिये आजाय तो उसे भी अवश्य अन्न देना चाहिये ॥३४॥ ब्राह्मणको अन्न देना हो तो चार ग्राससे कम न दे। और भिक्षा देना हो तो एक ग्राससे कम न दे। सोलह ग्रासका नाम है "हंतकार"। और चार ग्रासका नाम है "अग्र" ॥३५॥ हंतकार अग्र वा भिक्षा, अपनी शक्तिके अनुसार बिना दियेही भोजन न करना चाहिये ॥३६॥ पहले अतिथि, मित्र, जाति, भाई बंधु याचक, लूले, लंगड़े, लड़के, बूढ़े और बीमारोंको खिलादे तब आप खाय ॥३७॥ भूखा वा गरीब, अपने दरवाजे पर आकर अन्न मांगे और यदि शक्ति हो तो अवश्यही उसके सब कुटुम्बको भोजन देना चाहिये। नहीं तो उसे तो थोड़ा बहुत देना बहुतही जरूरी है ॥३८॥

धनी भाईके दरवाजे पर यदि गरीब भाई जा कर कुछ भी न मिलनेके कारण दुखी होता है तो उसका सब पाप उस धनी भाईके सिर पर चढ़ जाता है।॥३९॥ यदि सूर्यके अस्त होनेके समय कोई अतिथि आजाय तो उसका भी यथा शक्ति भोजन बिछौना आदि देकर सत्कार करना चाहिये ॥४०॥ इस प्रकार गृहस्थों पर गृहस्थधर्मका भार रखा गया है। जो गृहस्थ अपने उचित धर्मका अच्छी तरह पालन करता है उसके लिये ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा अन्य देव, पितरलोग, महर्षिगण, अतिथि भाई बंधु, याचक, पशु, पक्षी, कीड़े मकोड़े इत्यादि सब प्रसन्न हो कर मंगलकी वर्षा करते है और तृप्त हो कर अनेक आशीर्वाद देते हैं ॥४२॥ अत्रि ऋषिने जो गृहस्थोंके विषयमें गाथाएं कही हैं मैं वह कहती हूं सुनो ॥४३॥ गृहस्थको धन हो तो वह देव, पितर, अतिथि, बंधुगण, जातिके लोग तथा और दीन जीवोंको भोजन दे। "श्वभ्य: श्वपचेभ्यः वयोभ्य:" ऐसा कहकर पृथिवीपर अन्न रखदे। यह विश्वेदेवके तीनों नाम हैं इन्हें सन्ध्या सवेरे याद कर ले ॥४५॥ मांस, अन्न, साग वा जो कुछ अपने घरमें बना हो वह इन सबको बिना दिये कभी भोजन न करे ॥४६॥

तीसवां अध्याय।



मदालसा कहने लगी—ऐ बेटा! गृहस्थके तीन कर्म हैं। नित्य-कर्म, नैमित्तिककर्म तथा नित्यनैमित्तिककर्म। मैं अब इनकी सबबातें तुमसे कहतीहूं सुनो ॥१॥ पंचयज्ञवाले जितने काम हैं वह नित्यकाम कहलाते हैं। पुत्र, धन आदिके लिये जो काम किये जाते हैं वे नैमित्तिककर्म कहलाते हैं। पर्व आदि तिथियोंमें जो किये जाते हैं वे नित्यनैमित्तिक कर्म कहलाते हैं अब मैं नैमित्तिक श्राधकी

बातें कहती हूं ॥३॥ पुत्र! जन्मजात, कर्म (अन्नप्राशन कर्णवेध, मुंडन आदि) और विवाह आदि मंगल समयमें जो कार्य्य किये जाते हैं उसे सुनो ॥४॥ इन मंगल कार्योंमें पितरोंको पूजा करनी चाहिये उन्हें "नान्दीमुख श्राद्ध" कहते हैं। यजमान पूर्व वा उत्तरको ओर मुंह करके प्रसन्न मनसे दही और यव मिला कर पितरोंको पिंड दान करे। कोई आचार्य विश्वेदेवको पिण्ड दान करना लिखते हैं कोई नहीं भी लिखते ॥६॥ इसमें दो ब्राह्मणोंको वरण करना चाहिये और उनको पूजा तथा प्रदक्षिणा भी करना उचित है। यह मंगलके समय किया जाता है और मरने पर भी पिंड दान किया जाता है। उसे और्द्धदैहिक श्राद्ध कहते हैं। जिस तिथिको कोई मरा हो फिर जब वह तिथि आवे तब जो श्राद्ध करे उसे "एकोद्दिष्ट श्राद्ध" कहते हैं। इसमें देवताओंको पिंड नहीं देना चाहिये और एकही "पवित्री" (कुशकी अंगूठी) पहनना लिखा है। इसमें अग्निका आवाहन तथा हवन न करे। अपसव्य हो कर (दाहिने कंधे पर जनेऊ रख कर) प्रेतका नाम उच्चारण करके तिल तथा जलके साथ पिण्ड बनाकर "इस पिंडसे अमुक मनुष्यको अक्षय तृप्ति हो" ऐसा कहकर पिंड दान करे। फिर "अभिरम्यतां" (चले जाइये) ऐसा कह कर पितरका विसर्जन करे। एक वर्ष तक हर महीने इसी तरह करे ॥११॥ जब वर्ष पूरा हो जाय, तब अथवा जब अपना अनुकूल समय मिले तब "सपिंडीकरण" करे। अब उसकी भी विधि कहती हूं ॥१२॥ उसमें भी देवताकी पूजा तथा हवन करना मना है। इसमें भी एकही पवित्री पहनना लिखा है। इसमें सब काम अपसव्य होकर करे। जोड़े ब्राह्मणको भोजन न करावे। इसमें एक, तीन या विषम संख्यके ब्राह्मणोंको निमन्त्रण दे ॥१३॥ एक वर्षमें हर महीने और भी कई तरहकी विधि करनेको लिखा है। अब उन्हें कहती हूं मन लगाकर सुनो ॥१४॥ तिल, चंदन और जलसे भरे हुए चार पात्र रखे, तीन पितरोंके लिये

और एक प्रेतके लिये ॥१५॥ तीन पात्रोंमें प्रेत पात्र तथा अर्घ पात्र रख कर, "येसमाना" यह मंत्र पढ़ कर, पहले कही हुई विधिसे सब काम करे। स्त्रियोंका भी एकोद्दिष्ट इसी तरह होना चाहिये। जिस स्त्रीको पुत्र न हो उसका "सपिंडीकरण" करना मना है ॥१७॥ हर साल पुरुष और स्त्री, दोनोंका एकोद्दिष्ट श्राद्ध इन कही हुई विधियोंके अनुसार करना उचित है ॥१८॥ पुत्र न हो तो उसके खास घरके लोग करें यदि खास नजदीकी कोई आदमी न हो तो उसके गोत्रके लोग करें। माताके सपिंड (बहुत नजदीकी लोग) अथवा गोत्रके लोग भी पुत्र रहितका श्राद्ध कर सकते हैं। अथवा जिसको पुत्र न हो उसका श्राद्ध उसका नाती (लड़कीका बेटा) करे तो बहुत अच्छा है। वह नानाका श्राद्ध अच्छी तरह कर सकता है ॥२०॥ मनुष्य "आमुष्यायण" नामक नाना और दादा दोनोंका श्राद्ध विधिपूर्वक करे ॥२१। जिसको नाती न हो उसका श्राद्ध स्त्री करे, इसमें मंत्रका कुछ काम नहीं है। जिसके स्त्री भी न हो तो उसका श्राद्ध उसके हित, नाते वा कुटुंबके लोगोंसे राजा करवा दे ॥२२॥ उसीकी जातिके लोगोंसे दाह आदि सब क्रिया करवा दे। कारण यह कि राजा सब जातियोंका भाई बंधु कहलाता है ॥२३। ऐ बेटा! यह नित्यनैमित्तिक कर्म मैंने तुमसे कहा और नित्य नैमित्तिक क्रिया कहती हूं सुनो ॥२४॥ उनमें चन्द्रमाका क्षय करनेवाला "दर्श" (सूर्य चन्द्रके इकट्ठे होनेकी तिथि अमावस्या) निमित्त कहलाता है। जिस क्रियाका वही काल निश्चय हो उस क्रियाको नित्यनैमित्तिक कहते हैं ॥२५॥

इकतीसवां अध्याय।

पिताके सपिंडीकरणके बाद दादा लेपभुज (हाथमें लगी हुए पदार्थका भोजन करनेवाला) होजाता है। पितृपिंडसे वह अलग

कर दिया जाता है। वह पिताके नामसे पिण्ड नहीं पा सकता पर दादा कहला कर पिण्ड पा सकता है ॥१॥ जो तीन पुरुष (बाप, दादा, परदादा)से चौथा (परदादाका बाप) हो जाता है वह अपने पुत्रके लेपभुज नामक अन्नमेंसे कुछ अन्न पाता है। वह एक प्रकार सम्बन्धसे अलगही समझा जाता है ॥२॥ पिता पितामह और प्रपितामह ये तीनों पुरुष पिण्ड सम्बन्धी हैं। इनके ऊपरके सम्बन्धी, पितामहके पितामह (परदादाके परदादा) तक ये पुरुष (सात वीं पीढ़ी तक ऊपरके ये लोग) "लेपसम्बन्धी" कहलाते हैं ॥४॥ मुनि लोग इन्हीं सात पुरुषोंको "सास पौरुष" (सात पीढ़ी) कहते हैं। यजमान (पिण्ड देनेवाले) से ऊंचे सात पुरुषोंके ऊपर (उनके दादा परदादा) जो सातपुरुष हैं वह "अनुलेपभुज" कहलाते हैं ॥५॥ अनुलेपभुजसे भी ऊपर रहनेवाले पूर्वज पुरुष, और जो नरकमें रहनेवाले पुरुष तथा जीव हैं, जो पशु पक्षी आदि योनियोंमें पड़े हैं और जिन्होंने भूत, प्रेत आदि योनियोंमें जन्मपाया है उनमबको यजमान विधिपूर्वक श्राद्ध करके जिन उपायोंसे तृप्त करता है वह सब उपाय तुमसे कहतो हूं सुनो ॥७॥ मनुष्य जो अन्न भूमि पर बखेर देते हैं उस अन्नसे पिशाच बनेहुए जीव तृप्त होते हैं ॥८॥ मनुष्यके स्नान किये हुए वस्त्रसे जो जल गिरता है उससे वृक्ष बने हुए जीव तृप्त होते हैं ॥९॥ मनुष्यकी देहसे जो पसीना भूमि पर पड़ता है उससे दैत्य दानव कुलमें उत्पन्न होनेवाले जीव तृप्त होते हैं ॥१०॥ पिण्ड उठानेके समय जो अन्नके टुकड़े हाथसे नीचे गिर जाते हैं उनसे पक्षी योनिमें उत्पन्न होनेवाले जीव तृप्त होते हैं ॥११॥ जो कुलके लड़के जल कर मर जाते हैं जो क्रियाके योग्य नहीं था जिनका संस्कार नहीं हुआ और उन्हें जब भूख लगती है तब वे घरमें बिखरे हुए अन्न खाते हैं। और बर्तनका धोया हुआ जल पाकर प्यास बुझाते हैं। खाकर हाथ धोनेके समय जो जल गिराया जाता है या ब्राह्मणोंके पैर धोनेके समय जो जल गिरता है उसे पा कर वे तृप्त हो जाते हैं ॥१३॥ जो मनुष्य विधि पूर्वक श्राद्ध

करता है उसके ऊपर कही हुई नाना योनियोंमें उत्पन्न होनेवाले पुरखा लोग उन निमंत्रित ब्राह्मणोंके जूठे अन्न जलसे वा श्राद्धके समय गिरे हुए अन्न जलसे तृप्त हो जाते हैं इसमें संदेह नहीं ॥१५॥ जो मनुष्य अनुचित कामसे धन कमा कर उसी धनसे पितरोंका श्राद्ध करते हैं उस श्राद्धसे चांडाल, भंगी आदि योनियोंमें पैदा होने वाले पूर्वज लोग तृप्त होते हैं। इस प्रकार भी बहुतसे बन्धु बान्धवों की तृप्ति होती है ऐसे श्राद्धमें जो अन्न जल गिरता है उससे भी कितनोंहीकी तृप्ति होजाती है ॥१७॥ इस कारण सब मनुष्योंको उचित है कि उत्तम अन्न जल न मिले तो साग पातसे भी श्राद्ध तो अवश्यही भक्ति पूर्वक करे। जो श्राद्ध करता है उसके कुल का कोई प्राणी दुखी नहीं होता। किसी न किसी तरह उसकी तृप्ति अवश्यही हो जाती है ॥१८॥

अब मैं तुमसे यह बताती हूं कि नित्यनैमित्तिक कर्म्म किस समय किस विधिसे मनुष्यको करना उचित है ॥१९॥ हर महीने की अमावस्या तिथिको अथवा उस नियत तिथिको अवश्य श्राद्ध करना चाहिये ॥२०॥ जब कोई अच्छा ब्राह्मण मिल जाय तब सूर्य्यग्रहण. चन्द्रग्रहण, दक्षिणायनकी संक्रान्ति, उत्तरायण संक्रान्ति (तुला संक्रान्ति और मेष संक्रान्ति) तथा व्यतिपातमें श्राद्ध उचित श्राद्ध-सामग्रियोंसे करे। फिर बुरा स्वप्न देखने पर वा जन्मके नक्षत्र तथा ग्रहकी पीड़ा हो तो भी इच्छा होने पर श्राद्ध कर सकते हैं। ॥२२॥ विद्वान, वेदपाठी, योगी, वेद जाननेवाला, उत्तम साम गाने-वाला, त्रिणाचिकेत, त्रिमधु, त्रिसुपर्ण (ये तीनों ब्रह्मचर्य्य व्रत करनेवाले एक प्रकारके व्रती ब्राह्मण हैं) छओं अंग (शिक्षा, कल्प निरुक्त, छन्द, व्याकरण, ज्योतिष) जाननेवाला, नाती, ऋत्विक् (यज्ञ करनेवाला), दामाद, भांजा, ससुर, पञ्चाग्नि कर्म्म करनेवाला, तपस्वी, मामा, नाना, दादा, शिष्य, नातेदार, अपने परिवारके लोग ये सब ब्राह्मण श्राद्धमें रह सकते हैं। २५॥ लम्पट, रोगी अङ्गहीन, अङ्गाधिक, पतित, काना, कुण्ड (पिताके जीवित रहने

पर भी दूसरे पितासे उत्पन्न) गोलक (पिताके मर जाने पर दूसरे पितासे उत्पन्न) मित्रद्रोही, जिनके नख गल गये हों, नपुंसक, काले दांतवाला, कुरूप, पिता जिसको अयोग्य समझता हो, चुगली खानेवाला, सोम बेचनेवाला, कन्याको कलङ्कित करनेवाला, वेद्य गुरु पिता तथा माताका त्याग करनेवाला, धनलेकर वेदपढ़ानेवाला शत्रु, पराई स्त्रीसे सम्भोग करनेवाला, वेदपाठ न करनेवाला, हवन छोड़ देनेवाला, शूद्रीसे व्याह वा सम्भोग करनेवाला तथा और अनेक प्रकारके नीच ब्राह्मण श्राद्धमें न बुलाये जायं ॥२८॥ जिस दिन श्राद्ध करना हो उसके एक दिन पहलेही ब्राह्मणको निमन्त्रण देना चाहिये। देवकार्यमें भी ऐसेही उत्तम ब्राह्मणोंको निमन्त्रण देना चाहिये, ऊपर कहे हुए नीच ब्राह्मणोंको किसी पवित्र कार्यमें न बुलाना चाहिये ।३०। जो श्राद्ध करे और जो श्राद्ध करावे उन दोनोंको बड़े संयमसे रहना चाहिये। जो मनुष्य श्राद्ध करके वा श्राद्ध कराके वा श्राद्धमें भोजन करके उस दिन मैथुन करता है उनका मांस पितर खाते हैं और उन दोनोंके वीर्य्य में पितर सोते हैं ॥३१॥ जो मनुष्य स्त्री सम्भोग करके श्राद्ध करते वा कराते हैं वा भोजन करते हैं उनके पितर लोग उन्हींका मांस खाते हैं और उन्हींका वीर्य्य और मूत्र पीते हैं ॥३२॥ इस कारण बुद्धिमान पुरुषको उचित है कि एक दिन पहलेही निमन्त्रण देदे जिससे दोनों (यजमान और पुरोहित) नियमसे रहें। यदि पहले दिन पुरोहित न मिले तो दूसरे दिन निमन्त्रण देते समय अच्छी तरह जांच ले कि उन्होंने पहले दिन स्त्री-सम्भोग तो नहीं किया है। यदि उन्होंने पहले दिन सम्भोग किया हो तो उन्हें छोड़कर किसी दूसरे अच्छे ब्राह्मणको निमन्त्रण दे ॥३३॥ यदि श्राद्धके समय कोई ब्रह्मचर्य्य धारण करनेवाला संन्यासी भिक्षा मांगनेके लिये अपने द्वार पर आजाय तो उसे भी प्रणाम आदिसे प्रसन्न करके भक्तिपूर्वक भोजन करादे ॥३४॥

जिस प्रकार पितरोंको शुक्लपक्षसे अधिक कृष्ण पक्षही प्यारा

है उसी प्रकार पितरोंको दिनके पूर्वान्ह (दोपहरके पहले) से अधिक अपरान्ह (दोपहरके बाद) ही प्यारा जान पड़ता है ॥२५॥ निमन्त्रित ब्राह्मण जब अपने घर आवें तब बड़ी भक्तिके साथ उनके चरण धो उन्हें आचमन कराकर आसनपर बिठावे ॥२६॥ पितरोंकेनिमित्त विषम संख्या (१—३—५ इत्यादि) के और देवताओंके निमित्त सम संख्या (२—४—६) इत्यादि के अथवा विशेष शक्ति न हो तो देवता तथा पितरके लिये एक एक ब्राह्मण भोजन करावे ॥२७॥ किसी आचार्य्यका मत है कि जितने ब्राह्मण पितरोंके निमित्त भोजन कराये जायं उतनेही ब्राह्मण वैश्वदेवके लिये भी हों। किसीका मत है कि जितने ब्राह्मण पिता पितामह आदिके लिये हों उतने ब्राह्मण मातामह प्रमातामह आदिके लिये तथा वैश्वदेव और देवताओंके लिये भी हों। पर सब आचार्य्य इसको नहीं मानते ॥२८॥ देवताके निमित्त कुछ संकल्प करना हो तो पूर्व दिशाकी ओर मुंह करके करे और पितर लोगोंके लिये उत्तरकी ओर मुंह करके संकल्प करना चाहिये ॥२९॥ बैठनेके लिये कुशका आसन देकर अर्घ्य आदिसे पुजा करके उन्हें पवित्री पहनावे फिर उनसे आज्ञा लेकर मन्त्र पढ़कर देवताओंका आवाहन करे। यव तथा जल लेकर विश्वेदेवको अर्घ्य दे। फिर चन्दन, फूल, जल धूप, दीप आदिसे विधिपूर्वक पूजा करे। पितरोंको पूजा आदि सब काम अपसव्य होकर करे ॥४२॥ फिर उन ब्राह्मणोंसे आज्ञा लेकर पितरोंको दुगुना कुश दे। मन्त्र पढ़कर पितरोंका आवाहन करे ॥४३॥ पितरोंको तृप्त करनेके लिये अर्घ तिलके साथ दे। ॥४४॥ यदि ब्राह्मण आज्ञा दें तो होम भी करे। अग्निमें लोन या और कोई दूसरी खारी वस्तु न डाले। केवल घृत तथा दूध चीनी आदि मधुर पदार्थसे हवन करे ॥४५॥ पहले- "कव्यवाहाय स्वाहा" कहकर आहुति अग्निमें डाले। दूसरी बार "सोमाय पितृमते स्वाहा" कहकर आहुति दे। तीसरी बार "यमाय प्रेतपतये स्वाहा" कहकर आहुति दे। फिर जो कुछ हवन करनेसे बच जाय उसे

ब्राह्मणोंके पात्रमें डाल दे ॥४७॥ बर्तन उठाकर उसमें सावधानीके साथ अन्न डाले। फिर "यथा सुखं जुषध्वं भो" (आप लोग सुखसे भोजन करें) ऐसा कोमल वचन बोले ॥४८॥ ब्राह्मण लोग चुपचाप बैठकर आनन्दपूर्वक भोजन करें। जो वस्तु उन्हें रुचे वह उनके बर्तनमें धीरेसे डाल दे। उनको भोजन करानेके समय क्रोध न करे परन्तु ऐसी प्रसन्नता प्रगट करे जिससे ब्राह्मणोंका भोजन करनेमें और भी उत्साह बढ़े ॥५०॥ श्राद्धमें सब प्रकारकी सिद्धि देनेवाले तिलोंको चारों ओर बखेरते हुए "रक्षोघ्नान्" इत्यादि मन्त्र जपे। कारण यह कि श्राद्धमें अनेक प्रकारके विघ्न होनेका डर रहता है ॥५१॥ जब ब्राह्मण लोग बारबार कहने लगें कि "हम लोग तृप्त होगये, हम लोग खाचुके" तब उनकी आज्ञा लेकर चारों ओर थोड़ा थोड़ा अन्न छींटे ॥५२॥ फिर ब्राह्मणोंको हाथ धोनेके लिये धीरे धीरे थोड़ा थोड़ा जल दे। फिर उनसे आज्ञा लेकर चित्त स्थिर करके सव्य होकर तिल सहित अन्नका पिण्ड, पितरोंके नामसे ब्राह्मणोंके जूठे बर्तनोंके पास रख दे। फिर यजमान पितरोंकी तृप्तिके लिये, पितृतीर्थ (अंगूठा और तर्जनीके बीच) से जल गिरावे ॥५५॥ मातामह प्रमातामह, वृद्ध प्रमातामहके नामसे भी चन्दन, फूल आदिसे मिला हुआ पिण्ड देकर जल गिरावे ॥५६॥ इसके बाद ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर "सुस्वधास्तु" कहे। तब ब्राह्मण लोग प्रसन्न हो कर "तथास्तु" कहें। फिर यजमान "प्रीयन्तां भद्रं वो विश्वेदेवा" कहे। तब ब्राह्मण लोग "तथास्तु" कहकर आशीर्वाद दें। फिर यजमान अनेक प्रिय वचन बोलकर भक्तिसे प्रणामकर ब्राह्मणोंको विदा करे और उनके पीछेपीछे द्वारतकजाकर उनकी आज्ञासे लौट आवे ॥५८॥ फिर नित्यक्रिया करे उसके बाद अतिथियोंको भोजन करावे। किसी आचार्यका मत है कि तर्पण भी करे ॥६०॥ और कोई आचार्य कहते हैं कि उस दिन पितृ कार्य न करे पर देव कार्य सब करे। किसी आचार्यका मत है कि फिर दूसरा अन्न बना कर सदा पूजा सब कर्म करे। पर कोई आचार्य कहते हैं कि उसी

पहले बने हुए अन्नसे सब कर्म करे ॥६१॥ इसके बाद भाई बंधु नौकर आदिके साथ बैठ कर यजमान भोजन करे ॥६२॥ मनुष्य इस प्रकार सावधान हो कर धर्मबुद्धिसे श्राद्ध करे। अथवा जिस प्रकार ब्राह्मण लोग प्रसन्न हों उसी प्रकार करे ॥६३॥ श्राद्धमें तीन वस्तु पवित्र हैं नाती, दिन दोपहरके बादका समय, और तिल। और तीन बातें निषिद्ध हैं, क्रोध, रास्ता चलना और जल्दी करना ॥६४॥ श्राद्धमें चांदीका बर्तन पवित्र समझना चाहिये। चांदी का दर्शन करना चाहिये और दक्षिणामें भी चांदी ही देना चाहिये ॥६५॥ वेदमें लिखा है कि पितरोंने पृथिवीसे चांदी हीके बर्तन में "स्वधा" दूहा था। इस कारण चांदीसे पितरोंका प्रेम है और उसीसे उनका आनन्द बढ़ता है।६६॥

बत्तीसवां अध्याय।

मदालसा फिर कहने लगी—ऐ बेटा! अब मैं तुमको यह बताती हूं कि किस वस्तुसे पितर लोग प्रसन्न रहते हैं और किससे अप्रसन्न ॥१॥ पितर "हविष्यान्न" (दूध, उड़द, तिल, चीनी, मधु आदि) से एक महीने तक प्रसन्न रहते हैं। मांस और मछलीसे पितर दो महीने तक तृप्त रहते हैं ॥२॥ हरिनके मांससे तीन महीने, शशक (खरगोश) के मांससे चार महीने, चिड़ियोंके मांससे पांच महीने, सूअरके मांससे छ महीने, बकरेके मांससे सात महीने, ऐणेय (जिस हरिनका चमड़ा बिछानेके काममें आता है) नामक हरिनके मांससे आठ महीने, रुरु नामक हरिनके मांससे नौ महीने, गवय (एक प्रकारकी जंगली गाय) के मांससे दस महीने भेड़के मांससे ग्यारह महीने, और गायके दूधकी बनी हुई खीरसे एक बरस तक पितर लोग तृप्त रहते हैं ॥६॥ वाध्रीणसका मांस

लोहा, काला शाक, मधु, नाती (बेटीका बेटा) अपने कुलका उत्पन्न पवित्र पदार्थ और गणेश पितरोंको अनन्त तृप्ति देनेवाले हैं। गया श्राद्धसे भी पितरोंको अनंत सुख मिलता है॥८॥ सावां, राजसावां, प्रसातिका, नीवार पौष्कल, जौ, धान, गेहूं, तिल, मूंग सरसों, मालकांगुनि, निष्पाव, और कोविदार श्राद्धमें बहुत अच्छे समझे जाते हैं॥१०॥ मटर, राजमाष, अणु (एक प्रकारका धान) विप्रूषिका, और मसूर श्राद्धमें न रखना चाहिये ॥११॥ लहसुन गाजर, प्याज, पिण्डमूलक, दहीमें साना हुआ सत्तू तथा और भी जितने रस हीन पदार्थ हैं वह श्राद्धमें न रखनेके योग्य हैं॥१२॥ गांधारिका (गांभर) लौआ (कद्दू) काला नोन काढ़ा वा कसैला प्रत्यच्चलवण (केवल नोन) और जो कहनेमें बुरी जानपड़ें ऐसी वस्तुओं को श्राद्धमें मत रखो। घूसका रुपया, पतितसे मिला हुआ धन अनीतिसे कमाया, और लड़की बेंच कर इकट्ठा किया हुआ धन श्राद्धमें न लगाना चाहिये। दुर्गंधयुक्त, फेनयुक्त, तथा छोटे जलाशयका जल, जिस जलको गाय न पीवे, रातका लाया जल जिसे कोई आदमी पसंद न करे, जिसे पीनेमें कष्ट हो और छोटे गढ़े में गिरा हुआ जल श्राद्ध कर्ममें न लगाना चाहिये। जिस जलमें कीचड़ बहुत हो जो गदला हो जिसमें ऊंट नहाता हो, जिसमें एकही मछली हो, जिसमें भैंस बैठती हो, जिसको हमेशा गाय भक्षण करती हो "पितरके लिये मुझे जल दीजिये" ऐसा कहकर जो जल मांगा गया हो, इस तरहका जल श्राद्धमें मना है ॥१८॥ जिसमें कीड़े पड़े हों, रूखी हो, आगसे जल गई हो, जहां अशुभ वा कठोर शब्द होता हो और दुर्गंध उठती हो, ऐसी मही श्राद्धके काममें न लानी चाहिये ॥१९॥ अपने कुलका अनादर करनेवाला, आपस कुलसे लड़ाई करनेवाला, शास्त्रकी मर्यादाके बाहर होनेवाला, नंगा दासी, नपुंसक, जिसका अंग कट गया हो, मुर्गी, [illegible] गधा, कुत्ते और बानर यदि श्राद्धको अपनी आंखों देखें तो वह श्राद्ध नष्ट होजाता है॥२१॥ इस कारण चारों ओर तिल छींटकर

सावधानीके साथ श्राद्ध की रक्षा करे ॥२२॥ काने, सूअर, दीर्घ रोगी, पतित और मैले कुचैले आदमियोंका छूआ पदार्थ पितरों को तृप्त नहीं कर सकता। २३॥ यजमानको उचित है कि श्राद्ध में ऋतुमती स्त्री, जिसने सिर मुंड़ाया हो तथा सूंडी (मद्य बेचनेवाले) को न आने दे ॥२४॥ जिसमें बाल वा कीड़े पड़े हों, जिसे कुत्तेने देख लिया हो, जिससे दुर्गन्ध निकलती हो, बासी, जिसमें वार्ताकी (एक प्रकारकी औषधि) हो, मद्यसे मिला हुआ और जिसमें कपड़े की हवा लगी हो ऐसी वस्तु श्राद्धमें न रखे ॥२५॥ पितरका नाम गोत्र उच्चारण करके जो पदार्थ श्रद्धासे दिया जाता है वह पदार्थ पितरके खाने योग्य बन जाता है ॥२६॥ इस कारण जो पितरों को तृप्त करना चाहे वह पवित्र पात्रमें पवित्र वस्तु पितरके निमित्त दे ॥२७॥

पितर लोग योगहीके आधारसे रहते हैं इस कारण बुद्धिमान पुरुषको उचित है कि श्राद्धमें योगीको अवश्य भोजन करावे ॥२८॥ हजार ब्राह्मणोंके बीचमें यदि एक भी योगी हो तो वह यजमान पितर तथा उन ब्राह्मणोंको भी पापसे ऐसे तार दे जैसे अगाध जल से नावको किनारे लगा देते हैं ॥२९॥ ब्रह्मवादी लोग श्राद्धमें उस गाथाको गावें जिसे ऐल और पितरोंने गाया था ॥३०॥ वह गाथा यह है—"कदानः सन्ततावग्र्यः कस्य चिद्भविता सुतः। यो योगि-भुक्त शेषान्नो भुवि पिण्डं प्रदास्यति" ॥१॥ अर्थात् हमारे बंशमें ऐसा प्रधान पुरुष कब उत्पन्न होगा जो योगीके भोजनसे बचा हुआ अन्न खाकर हम लोगोंको पिण्ड देगा ॥३१॥ गयामें पिण्डदान करनेसे, गैंड़ेके मांस, महा हविष्य, काले शाक, तिल और मिले हुए पवित्र अन्नोंसे एक महीने तक पितर लोग तृप्त रहते हैं ॥३२॥ वैश्वदेव बलि देनेसे, सोम देनेसे, गैंड़ेके मांससे, महाहविष्यसे बड़ी तृप्ति होती है। यदि बिना सींगके गैंडेका मांस पितरोंको दिया जाय तो उससे जबतक सूर्य्य रहते हैं तबतक पितरोंको तृप्ति होती है ॥३३॥ जब दक्षिणायन सूर्य्य होजायं तब त्रयोदशी तिथिको

मघा नक्षत्रमें मधु और घीसे मिली हुई दूधकी खीर विधिपूर्वक पितरोंको दे ॥२४॥ इस कारण मनुष्यको उचित है कि वह अपना मनोरथ सिद्ध होनेके लिये और अपनेको पापसे छुड़ानेके लिये अपने पितरोंकी भक्तिसे पूजा करे ॥२५॥ मनुष्योंके श्राद्ध करनेसे जब पितर लोग तृप्त होजाते हैं तब वसु, रुद्र, आदित्य, नक्षत्र ग्रह और तारा सब प्रसन्न होजाते हैं ॥२६॥ जब पितर श्राद्धसे तृप्त होजाते हैं तब यजमानको आयु वृद्धि, धन, विद्या, स्वर्ग मोक्ष और सुख देते हैं ॥२७॥ पुत्र ! मैंने तुमसे श्राद्धकर्म्म अच्छी तरह कहा, अब यह बतलाती हूं कि यजमान किस कामकी सफलताके लिये किस तिथिको श्राद्ध करे ॥२८॥

तैंतीसवां अध्याय।

जो यजमान प्रतिपदाको श्राद्ध करता है वह धन पाता है द्वितीयाको श्राद्ध करनेसे, दोनों पैरोंका रोग छूट जाता है। तृतीया को श्राद्ध करनेसे विपुल धन, चतुर्थीको करनेसे शत्रुका नाश पंचमीको करनेसे लक्ष्मी, षष्ठीको करनेसे प्रतिष्ठा, सप्तमी को करनेसे अपनी जातिका प्रधानत्व, अष्टमीको करने से उत्तम वृष्टि, नवमीको करनेसे स्त्री, दशमीको करनेसे मनकी इच्छा और एकादशी तिथिको श्राद्ध करनेसे वेद पाता है ॥३॥ जो यजमान द्वादशी तिथिको श्राद्ध करता है वह विजय पाता है। जो त्रयोदशी तिथिको श्राद्ध करता है वह पुत्रपौत्र प्रज्ञाबुद्धि, पशुवृद्धि, स्वतंत्रता, उत्तम बल, बड़ी आयु और बड़ा ऐश्वर्य पाता है इसमें कुछ भी संदेह नहीं ॥५॥ जिसके पितर जवानीमें मर गये हों, वा शस्त्रसे कट कर मर गये हों, उस मनुष्यको उचित है कि चतुर्दशी तिथिको उत्तम उत्तम श्राद्धकी सामग्री इकट्ठी करके

श्रद्धा तथा प्रेमसे श्राद्ध करे। जो पुरुष पवित्र हो कर बड़ी श्रद्धासे अमावस्या तिथिको श्राद्ध करते हैं वे इस लोकमें अपना सब मनोरथ पाते हैं और मरने पर सीधे स्वर्गको चले जाते हैं। जो कृत्तिका नक्षत्रमें श्राद्ध करते हैं वे भी स्वर्ग पाते हैं॥८। रोहिणी नक्षत्रमें श्राद्ध करनेवाला पुरुष संतान पाता है। मृगशिरामें करने वाला तेज, आर्द्रा नक्षत्रमें करनेवाला शूरता, पुनर्वसुमें करने वाला पृथिवी, पुष्यमें करनेवाला बल, अश्लेषामें करनेवाला उत्तम पुत्र, मघामें करनेवाला जातिकी बड़ाई, पूर्वा फाल्गुनीमें करनेवाला सौभाग्य पाता है। उत्तराफाल्गुनीमें करनेवाला दानशील और पुत्रवान होताहै। जो यजमान हस्त नक्षत्रमें श्राद्ध करता है वह बड़ाई पाता है। ११॥ चित्रामें श्राद्ध करनेसे रूप और संतान मिलती है। स्वाती नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे वाणिज्यमें लाभ होता है। विशाखामें श्राद्ध करनेसे पुत्र मिलता है॥१२॥ जो अनुराधा नक्षत्रमें श्राद्ध करता है वह चक्रवर्ती राजा होता है। ज्येष्ठामें करनेसे स्वामी, और मूलमें करनेसे आरोग्य होता है॥१३॥ पूर्वाषाढ़में करनेसे यश और उत्तराषाढ़में करनेसे निश्चिन्तता, श्रवणा में करनेसे अच्छा लोक, धनिष्ठामें करनेसे बहुत धन, अभिजितमें करनेसे वेदज्ञान, शतभिषा नक्षत्रमें करनेसे वैद्यकशास्त्रका ज्ञान, पूर्वाभाद्रपदमें करनेसे विजय, उत्तरा भाद्रमें करनेसे स्वच्छ विचार मिलता है॥१५॥ रेवती नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे अनन्त धन और अश्विनी नक्षत्रमें करनेसे घोड़ा मिलता है। जो भरणी नक्षत्रमें श्राद्ध करता है वह उत्तम आयुर्बल पाता है। इस कारण जो मनुष्य जिस बातकी इच्छा करे वह उसी नक्षत्रमें श्राद्ध करे जिससे उसका मनोरथ सिद्ध हो॥१६॥

चौतीसवां अध्याय।

फिर मदालसा कहने लगी कि बेटा! इस तरह देवता तथा पितरोंको यजमान, हव्य कव्यसे प्रसन्न करे और अन्नसे अतिथि भाई बन्धु, भूत प्रेत, नौकर चाकर, पशु, पक्षी, चींटी, भिखारी और घरमें रहनेवाले सब प्राणियोंको प्रसन्न करे ॥२॥ गृहस्थको चाहिये कि सदाचारसे रहे, और अपना स्वभाव बहुत स्वच्छ बना रखे। जो गृहस्थ नित्यनैमित्तिक कर्म नहीं करता वह पापी होता है ॥३॥ अलर्कने पूछा—ऐ माता! तुमने मुझसे नित्य, नैमित्तिक और नित्यनैमित्तिक कर्म कहे। हे कुलको बढ़ाने और आनन्द देनेवाली मेरी माता! अब मैं तुमसे सदाचार सुनना चाहता हूँ जिसके करनेसे मनुष्य इस लोक और परलोकमें सुख पाता है ॥५॥ मदालसा बोली—बेटा अलर्क! सदाचारका पालन करना गृहस्थका परम धर्म है। जो आचारविहीन हो जाता है उसको इस लोक और पर लोकमें भी सुख नहीं होता ॥६॥ जो सदाचारको छोड़ देता है उसको भलाई, यज्ञ, दान वा तपकरनेसे भी नहीं होती ॥७॥ जो दुराचारी हो जाता है वह कभी बहुत दिनों तक नहीं जी सकता। इससे बड़े परिश्रमसे सदाचारकी रक्षा करनी चाहिये। दुराचार मनुष्यको मार डालता है ॥८॥ बेटा! अब मैं सदाचारका स्वरूप तुमसे बताती हूं तुम मन लगा कर सुनो और उसको पालो ॥९॥ गृहस्थ पुरुष अर्थ, धर्म और कामको सिद्ध करे। इन्हीं तीनोंकी सिद्धिसे इस लोक और परलोकमें सिद्धि मिलती है ॥१०॥ अपने पास आय का जितना धन हो उसके चार भाग करे। एक भाग परलोककी सिद्धि करनेवाले कामोंके लिये रख दे। दो भागसे अपना तथा

परिवार और नित्यनैमित्तिक कार्मोंका निर्वाह करे और बचा हुआ एक भाग अपने व्यवहारके लिये जमा करके रख दे और अनेक उपायोंसे उसे बढ़ाता रहे। इस चालसे जो रहता है उसीका धन सफल होता है ॥१२॥ बुद्धिमान पुरुष पापसे बचने और परलोक सुधारनेके लिये धर्म करे और काम तो इसी संसारही में सुख देनेवाला है ॥१३॥ काम भी दो प्रकारका है एक पापसे बचानेवाला, दूसरा त्रिवर्ग (अर्थ, धर्म, मोक्ष) का साधन करनेवाला ॥१४॥ इन सबके परस्परका सम्बन्ध विचारे। और इनका विपरीत भी सम्बन्ध है। अब मैं सब तुमसे बताती हूं सुनो ॥१५॥ धर्म धर्मका बढ़ानेवाला है, धर्म धर्मको बाधा नहीं करता। एक काम धर्म बढ़ानेवाला है और एक काम अर्थ बढ़ानेवाला है ॥१६॥ ब्राह्म समय (एक पहर रात रहने पर) पर उठकर अर्थ धर्मकी चिंता करे। कार्योंके दुःख तथा उनकी जड़ और वेदके तत्वोंका विचार करे। बिछौनेसे उठ कर मुंह धो डाले। फिर पवित्र हो कर सावधानीसे बैठ जाय ॥१७॥ उसी समय पवित्रताके साथ जब कि आकाशमें तारा गण देख पड़ते हों, तब पूर्व दिशाकी ओर मुंह करके प्रातःकालकी संध्या करे। फिर सांझके समय जब सूर्य आकाशमें रहें तभी पश्चिम दिशाकी ओर मुंह करके सायं कालकी संध्या करे। यह कभी न छोड़े। जब कोई बड़ी भारी विपत्ति पड़ जाय तो उसकी बातही न्यारी है ॥१८॥ झूठी बात मुंहसे न निकाले और बुरी बात न कहे, कठोर वचन न बोले, बुरी पुस्तक न पढ़े, किसीकी बुरी बातमें मदद न दे। बुरी बातके लिये झगड़ा भी न करे ॥१९॥ मनुष्यको उचित है कि दह संध्या और सवेरे नित्य अवश्य होम करे, सूर्य जब उदय और अस्त होने लगे उस समय उसके गोले को न देखे ॥२०॥ दिन को दो पहरसे पहलेही बाल झाड़े, आइनेमें मुंह देखे, मुंह धोवे। और देवताओंका तर्पण करे ॥२१॥ गांव, गौथान (गायोंके रहनेकी जगह) तीर्थ, खेत, नदी आदिके मार्गमें शौच न करे ॥२२॥ दूसरेकी

चौंतीसवां अध्याय।

फिर मदालसा कहने लगी कि बेटा! इस तरह देवता तथा पितरोंको यजमान, हव्य कव्यसे प्रसन्न करे और अन्नसे अतिथि भाई बन्धु, भूत प्रेत, नौकर चाकर, पशु, पक्षी, चींटी, भिखारी और घरमें रहनेवाले सब प्राणियोंको प्रसन्न करे ॥२॥ गृहस्थको चाहिये कि सदाचारसे रहे, और अपना स्वभाव बहुत स्वच्छ बना रखे। जो गृहस्थ नित्यनैमित्तिक कर्म्म नहीं करता वह पापी होता है ॥३॥ अलर्कने पूछा—ऐ माता! तुमने मुझसे नित्य, नैमित्तिक और नित्यनैमित्तिक कर्म्म कहे। हे कुलको बढ़ाने और आनन्द देनेवाली मेरी माता! अब मैं तुमसे सदाचार सुनना चाहता हूँ जिसके करनेसे मनुष्य इस लोक और परलोकमें सुख पाता है ॥५॥ मदालसा बोली—बेटा अलर्क! सदाचारका पालन करना गृहस्थका परम धर्म्म है। जो आचारविहीन हो जाता है उसको इस लोक और पर लोकमें भी सुख नहीं होता ॥६॥ जो सदाचारको छोड़ देता है उसकी भलाई, यज्ञ, दान वा तपकरनेसे भी नहीं होती ॥७॥ जो दुराचारी हो जाता है वह कभी बहुत दिनों तक नहीं जी सकता। इससे बड़े परिश्रमसे सदाचारकी रक्षा करनी चाहिये। दुराचारही मनुष्यको मार डालता है ॥८॥ बेटा! अब मैं सदाचारका स्वरूप तुमसे बताती हूं तुम मन लगा कर सुनो और उसको पालो ॥९॥ गृहस्थ पुरुष अर्थ, धर्म और कामको सिद्ध करे। इन्हीं तीनोंकी सिद्धिसे इस लोक और परलोकमें सिद्धि मिलती है ॥१०॥ अपने पास आय का जितना धन हो उसके चार भाग करे। एक भाग परलोककी सिद्धि करनेवाले कामोंके लिये रख दे। दो भागसे अपना तथा

परिवार और नित्यनैमित्तिक कर्मोंका निर्वाह करे और बचा हुआ एक भाग अपने व्यवहारके लिये जमा करके रख दे और अनेक उपायोंसे उसे बढ़ाता रहे। इस चालसे जो रहता है उसीका धन सफल होता है ॥१२॥ बुद्धिमान पुरुष पापसे बचने और परलोक सुधारनेके लिये धर्म करे और काम तो इसी संसारही में सुख देनेवाला है ॥१३॥ काम भी दो प्रकारका है एक पापसे बचानेवाला, दूसरा त्रिवर्ग (अर्थ, धर्म, मोक्ष) का साधन करनेवाला ॥१४॥ इन सबके परस्परका सम्बन्ध विचारे। और इनका विपरीत भी सम्बन्ध है। अब मैं सब तुमसे बताती हूं सुनो ॥१५॥ धर्म धर्मका बढ़ानेवाला है, धर्म धर्मको बाधा नहीं करता। एक काम धर्म बढ़ानेवाला है और एक काम अर्थ बढ़ानेवाला है ॥१६॥ ब्राह्म समय (एक पहर रात रहने पर) पर उठकर अर्थ धर्मकी चिंता करे। कार्योंके दुःख तथा उनकी जड़ और वेदके तत्वोंका विचार करे। बिछौनेसे उठ कर मुंह धो डाले। फिर पवित्र हो कर सावधानीसे बैठ जाय ॥१७॥ उसी समय पवित्रताके साथ जब कि आकाशमें तारा गण देख पड़ते हों, तब पूर्व दिशाकी ओर मुंह करके प्रातःकालकी संध्या करे। फिर सांझके समय जब सूर्य आकाशमें रहें तभी पश्चिम दिशाकी ओर मुंह करके सायं कालकी संध्या करे। यह कभी न छोड़े। जब कोई बड़ी भारी विपत्ति पड़ जाय तो उसकी बातही न्यारी है ॥१८॥ झूठी बात मुंहसे न निकाले और बुरी बात न कहे, कठोर वचन न बोले, बुरी पुस्तक न पढ़े, किसीकी बुरी बातमें मदद न दे। बुरी बातके लिये झगड़ा भी न करे ॥१९॥ मनुष्यको उचित है कि वह संध्या और सवेरे नित्य अवश्य होम करे, सूर्य जब उदय और अस्त होने लगे उस समय उसके गोले को न देखे ॥२०॥ दिन को दो पहरसे पहलेही बाल झाड़े, आइनेमें मुंह देखे, मुंह धोवे। और देवताओंका तर्पण करे ॥२१॥ गांव, गोधान (गायोंके रहनेकी जगह) तीर्थ, खेत, नदी आदिके मार्गमें शौच न करे ॥२२॥ दूसरेकी

नंगी स्त्रीको न देखे, अपनी विष्ठा न देखे, ऋतुमती स्त्रीको न देखे न छूए न उससे बोले ॥२३॥ पानीमें शौच वा स्त्रीसंभोग न करे। जहां शौच किया हो, कटे हुए बाल पड़े हों, राख गिरी हो और जहां आदमियोंकी खोपड़ियां पड़ी हों वहां न बैठे ॥२४॥ जहां भूसा, आग, हड्डी, डोरी और कपड़ोंके चीथड़े फैले पड़े हों ऐसे रास्तेसे न जाय और ऐसी भूमि पर न बैठे ॥२५॥ गृहस्थ को उचित है कि वह अपनी शक्तिके अनुसार पहले पितर, देवता मनुष्य और भूतको पूजा करले पीछे आप भोजन करे ॥२६॥ मनुष्य जलसे कुल्ला करके पवित्र हो कर चुप चाप पूर्व वा उत्तर दिशाकी ओर मुंह करके बैठ कर दोनों पैरोंके बीच हाथ रख कर स्वस्थ चित्त हो अन्न खाय ॥२७॥ यदि रसोई बिगड़ जाय तो दूसरेको दोष न दे, ऊपरसे लोन लेकर न खाय और बहुत गर्म अन्न भी न खाय ॥२८॥ चलते समय, खड़े हो कर झाड़ा पेशाब न करे, भोजन न करे और पानी भी न पीवे ॥२९॥ जूठे मुंह, किसी से बात चीत न करे, वेदका मंत्र न पढ़े, गाय, ब्राह्मण अग्नि और अपना सिर न छूए ॥३०॥ सूर्य चन्द्रमा तथा तारोंको न देखे। टूटा आसन, फटी शय्या और फूटा बर्तन छोड़ देना चाहिये ॥३१॥ यदि गुरु जी अपने घर आवें तो खड़े होजाना आसन देना, सत्कार करना, मीठी बातें कहना, प्रणाम करना और उनके जानेके समय कुछ दूर तक पीछे चलना उचित है। उनकी ओर पीठ करके बात चीत न करे ॥३२॥ एक वस्त्रमें भोजन और देवताओंकी पूजा न करे। ब्राह्मणके कांधे पर न चढ़े वा कोई वस्तु उसे ले चलनेके लिये न कहे और आगमें पेशाब न करे ॥३३॥ नंगा हो कर स्नान न करे न सोवे। दोनों हाथोंसे एकही बार अपना सिर न खुजलावे ॥३४॥ बिना कारण बारम्बार स्नान न करे, सिरमें तेल लगा कर बिना स्नान किये कोई वस्तु न छूए ॥३५॥

अनाध्यायकी तिथियोंमें वेद न पढ़े। ब्राह्मण गौ और सूर्यकी

ओर तथा जिधरसे हवा आती है उस ओर मुंह करके पेशाव न करे ॥३६॥ दिनको उत्तर और रातको दक्षिणकी ओर मुंह करके एकान्तमें स्वस्थचित्तसे शौच करे ॥३७॥ गुरुकी निन्दा न करे, दूसरा कोई निन्दा करता हो तो न सुने और गुरुजी अप्रसन्न हों तो उन्हें प्रसन्न करे॥३८॥ ब्राह्मण, राजा, दुखी, विद्यामें अधिक, गर्भिणी, बोझ लिये आदमी, बूढ़ा, गूंगा, अन्धा, बहरा, मतवाला, पागल, कुलटा स्त्री, लड़का और पापी यदि एकही रास्तेसे आते हों तो उन्हें रास्ता देदेना चाहिये ॥४०॥ बुद्धिमान् पुरुष देवमन्दिर, यज्ञशाला का वृक्ष, तुलसी, चतुष्पथ, विद्यामें अधिक, गुरु और देवताकी प्रदक्षिणा करे ॥४१॥ बुद्धिमान् पुरुष जूता, कपड़ा, माला, जनेऊ और गहना, दूसरेका पहना हो तो, न ले ॥४२॥ चतुर्दशी, अष्टमी पूर्णिमा और अमावस्याको तेल न लगावे और न स्त्रीसे सम्भोग करे ॥४३॥ बुद्धिमान् पुरुष समूचा पैर फैलाकर कभी न बैठे। पैरोंको कभी न हिलावे और पैर पर पैर न रखे ॥४४॥ चतुर मनुष्य, किसीके हृदयमें दुःख न पहुंचावे, किसीकी निन्दा न करे किसीकी चुगली न खाय, डाह तथा अभिमान न करे ॥४५॥ मूर्ख पागल, दुखी, कुरूप, कपटी, काने, लूले, लंगड़े, बहरे, गूंगे अन्धे और अधिक अंगवाले (छः अंगुलीवाले, घीलटवाले इत्यादि) की हंसी और निन्दा न करे ॥४६॥ जिससे कोई सम्बन्ध न हो उसे दण्ड न दे। पुत्र और शिष्यको सिखलानेके लिये दण्ड दे। बिछौनेपर एकदम पैर रखकर न बैठ जाय ॥४७॥ खीर, खिचड़ी और मांस केवल अपने लिये न बनावे। सन्ध्या सवेरे बिना अतिथि को भोजन कराये कभी न खाय ॥४८॥ पूर्व तथा उत्तर दिशाकी ओर मुंह करके चुपचाप दन्तधावन करे, जिन वृक्षोंकी दातन मनाहै उनसे मुंह न धोवे ॥४९। उत्तर वा पश्चिमकी ओर सिर करके कभी न सोवे। पूर्व या दक्षिणकी ओर सिर करके सोना उचित है ॥५०॥ दुर्गन्धवाले जलसे कभी न नहावे, रातको स्नान न करे, सदा सूर्य्यकेरहतेही स्नान करे, यदि चन्द्रग्रहण लगे तो

रातको भी स्नान करे ॥५१॥ स्नान न करना हो तो, हाथमें कपड़ा लेकर देह न मले, बालोंको न फटकारे और कपड़ोंको भी न फटकारे ॥५२॥ बिना स्नान किये चन्दन न लगावे, लाल काला वा छींटका कपड़ा न पहने ॥५३॥ कपड़े और गहने उलट पलटकर न पहने (गमछा न पहने, धोती न ओढ़े, कुण्डल पैरकी अंगुलियोंमें न लगावे, पैरकी अंगूठी कानमें नडालेइत्यादि) जो कपड़ा मना है वा बहुतही फट गया है वा बहुतही मैला है उसे न पहने ॥५४॥ जिसमें बाल लिपटा हो, कीड़े पड़े हों, जो काटा हो, कुत्तेसे चाटा गया हो, पुराना हो, जिसमें रक्त न हो, जो पीठका हो और जो शास्त्रसे मना हो, ऐसा मांस कभी न खाय और ऊपरसे लोन लगाकर कोई वस्तु न खाय ॥५६॥ वर्जित अन्न, बहुत देरका बना हुआ और वासी भात न खाय। आटा मिलाया हुआ, शाक मिलाया हुआ ऊखका रस मिलाया हुआ, दूध मिलाया हुआ और मांस मिलाया हुआ अन्न यदि वासी होजाय तो उसे न खाय। सूर्य्यके उदय और अस्त होनेके समय सोना मना है ॥५८॥ पुरुषको उचित है कि सदा प्रातःकाल और सायंकाल स्नान करके भोजन करे। बिना स्नान किये, बिना बैठे और बिना चित्त स्थिर किये भोजन न करे। बिछौने पर बैठकर, सोकर, पृथिवी पर बिना आसन बैठकर बोलते हुए, एक वस्त्र लेकर, चिल्लाकर और देखनेवालोंको बिना दिये भोजन न करे ॥६०॥ चतुर नर पराई स्त्रीसे कभी सम्भोग न करे जो पराई स्त्रीका संग करता है उसका यज्ञ, मन्दिर, तालाब और आयुर्बल नष्ट होजाता है ॥६१॥ इस संसारमें परस्त्री सम्भोगके बराबर दूसरा कोई पाप नहीं है और आयुर्बल क्षीण तथा नष्ट करनेवाली ऐसी कोई वस्तु नहीं है जैसा पुरुषके लिये परस्त्रीसम्भोग है ॥६२॥ मनुष्यको उचित है कि वह अच्छी तरह हाथ मुंह धोकर देवताकी पूजा, हवन, गुरुको प्रणाम और भोजन करे ॥६३॥ जिसमें फेन न हो, दुर्गन्ध न हो, बल्कि बहुतही स्वच्छ हो ऐसे पवित्र जलसे पूर्व वा उत्तर मुंह करके आचमन करे ॥६४॥

जलके भीतर गोथान, वल्मीक (दीमकोंके रहनेकी जगह) मूसोंके बिलकी और हाथ मुंह धोनेसे बची हुई मट्टीसे हाथ वा बर्तन न मांजे॥६५॥ हाथपैर धोकरअपने ऊपर थोड़ाजल छींटकर स्वस्थचित्त हो जंघोंके बीच हाथ सिकोड़ कर, कुल्ला करे और पानी पीवे ॥६६॥ मुंह दो बार धो कर, सिर पर जल छींट कर, आकाशकी ओर जल फेंक कर फिर थोड़ासा जल पी करके पवित्र हो सब नित्य कर्म करे ॥६७॥ देवकर्म, ऋषिकर्म और पितृकर्म साव-धान होकरकरे ॥६८॥ शौच जाकर, मुंह धोकर और कपड़ा धोकर आचमन करे। देहमें यदि विष्ठा लग जाय, कोई जंतु देह चाटदे या कय किया हुआ पदार्थ लगजाय, तो स्नान करे, खूब मुंह धोवे गायकी पीठ छूए, सूर्यका दर्शन करे और अपना दाहिना कान हाथसे पकड़े ॥७०॥ इसका क्रम यह है कि इन अशुद्ध पदार्थोंके लग जाने वा छू जानेसे स्नान करे, थोड़ा जल हो तो कुल्ला करे जल न मिलसके तो गायकी पीठ छूए गाय न मिलेतो सूर्यका दर्शन करे सूर्य न हो तो दाहिना कान छूए ॥७१॥ कभी दांत न कट-कटावे, अपनी देह न पीटे, और संध्या सवेरे (सूर्यके अस्त और उदय होनेके समय) शयन, भोजन, वेदपाठ और स्त्री संभोग न करे ॥७३॥ प्रातःकाल देवकर्म, मध्यान्ह काल मनुष्य कर्म और सायंकाल पितृकर्म करे ॥७४॥ स्नान करके देवकर्म वा पितृ कर्म करे। पूर्व वा उत्तर मुंह करके हजामत बनावे ॥७५॥ उत्तमकुलमें उत्पन्न हो, किन्तु उसकी देह टेढ़ीबांकी हो वा रोगिणी होतो उस कन्यासे व्याह न करे। जिसका रूप अच्छा न हो, देहका रंग एक दम भूरा हो, और बहुत कठोर वचन बोलती हो, सब उत्तम गुणोंसे शून्य हो उस कन्यासे व्याह न करे ॥७६॥ जिसके सब अंग सीधे हों, नाक बड़ी सुन्दर हो, सब उत्तम गुणोंसे भरी पूरी हो, उस कन्याके संग अपनी भलाई चाहनेवाला मनुष्य व्याह करे ॥७७॥ जिसका अपने मातृकुल और पितृकुलसे पांचवीं और सातवीं पीढ़ी तक कोई सम्बन्ध न हो ऐसी कन्यासे व्याह

करे। उसकी खूब रक्षाकरे, उससे डाह न करे और उसके संग दिनको शयन वा संभोग न करे ॥७८॥ जिससे दूसरेको दुःख हो या किसी जीवको पीड़ा हो ऐसा काम न करे। सब जातिके मनुष्य को उचित है कि जब स्त्रीके मासिक धर्म हो तो चार दिन तक उसका संग न करे, पांचवें दिन संग करनेसे लड़की उत्पन्न होती है इस कारण पुत्रकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य छठी, आठवीं, दसवीं, बारहवीं, चौदहवीं और सोलहवीं रातको स्त्रीके साथ संभोग करे ॥८०॥ युग्म रात्रिको (छठी, आठवीं इत्यादि) संग करनेसे पुत्र और अयुग्म रात्रिको (पांचवीं सातवीं इत्यादि) संग करनेसे लड़की पैदा होती है। इस कारण पुत्रकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य युग्म रात्रिमें स्त्रीका संग करे। मासिक धर्मसे पहले चार दिनमें संभोग करे तो मांसका गुथला वा नपुंसक बालकहो॥८१॥ हजामत बनाकर उलटी करनेके बाद, स्त्री संगके बाद, मनुष्य सचैल स्नान करे ॥८२॥ वेद, देव, विप्र, साधु, सत्यवादी, महात्मा, गुरु, पतिव्रता, यज्ञ करने वाले, और तप करनेवालेकी हंसी वा निन्दा न करनी चाहिये। यदि कोई दूसरा नीच मनुष्य इनकी निन्दा वा हंसी करता हो तो न सुनना चाहिये ॥८४॥ बहुतही ऊंचे बिछौने वा आसन पर तथा बहुत ही नीचे बिछौने वा आसन पर बैठना मना है। अपना वेष कभी बुरा न बनावे और बुरी बात मुंहसे न निकाले ॥८५॥ मनुष्य सदा स्वच्छ कपड़े पहने और स्वच्छ चन्दन लगावे। पण्डित नर, अभिमानी, पागल, मूर्ख, बेशऊर, बदचलन, चोर फजूल खर्च, लोभी, वैरी, बदचलन स्त्री, नीच जातिवाले, बदचलन स्त्रीसे प्रेम करनेवाले, बलवान, दुर्बल, जिसकी सब लोग निन्दा करते हों, सबसे डरनेवाले और केवल भाग्यहीका भरोसा करनेवाले मनुष्योंसे मित्रता न करे ॥८८॥ सज्जन, परोपकारी, सदाचारसे रहनेवाले, बुद्धिमान दानी, समर्थ, और सब कामोंमें उद्योग करनेवाले मनुष्योंसे मित्रता करे ॥९०॥ वेद जाननेवाले, विद्या पढ़नेवाले, सदा स्नान

करनेवाले, मित्र, गुरु, राजा, ब्रह्मचारी और ससुरके साथ सदा बैठे उठे ॥८१॥ यज्ञ करानेवाले छओं अर्घ्यके योग्य मनुष्य अपने घर आजायं तो उनका सत्कार करे। यदि अपने घर पर, एक वर्ष परदेशमें रह कर लौटनेवाला ब्राह्मण आजाय तो उसी समय आलस्य छोड़ कर मधुपर्कसे उसकी पूजा करे, और अपनी भलाईके लिये उसकी आज्ञामें रहे। उससे लड़ाई झगड़ा न करे, यदि वह क्रोधसे कोई बात कहदे तो भी उसका उत्तर न दे ॥८३॥ समूचा घर स्वच्छ रखे। फिर अग्नि रख कर उसमें आहुति दे ॥८४॥ पहली आहुति ब्राह्मण, दूसरी आहुति प्रजापति, तीसरी आहुति गुह्यक और चौथी काश्यपको दे। इसके बाद जिसे चाहे उसे आहुति दे। पश्चात् गृहबलि करे। नित्य कर्मकी जो जो विधि मैं तुमसे पहले कह आई हूं वह सब करे ॥८६॥ उसके बाद वैश्वदेव बलि करे। फिर तीन बलि करे। उचित स्थान पर (जैसा कि पहले कहचुकी हूं) देवताओंका नाम लेकर एक बलि करे। मेघ, जल, पृथिवी, और वायुके नामसे बलि करे। पूर्वसे लेकर दसों दिशाओंके नाम बलि करे। फिर ब्रह्मा, आकाश और सूर्यके नामसे क्रमसे बलि करे। उसके बाद विश्वेदेव और विश्वभूतके नामसे बलि करे ॥८८॥ उपम नामक भूतपतिके नाम उत्तर दिशामें बलि करे। उस समय "उपमेभूतपतयेनमः" यह मंत्र पढ़े। फिर "पितृभ्यःस्वधा" यह मंत्र पढ़ कर दक्षिण दिशामें पितरोंके नामसे बलि करे ॥१००॥ इसके बाद अपसव्य हो कर वायव्यकोण (पश्चिम उत्तरके बीच)की ओर मुंह करके "यक्ष्मैतत्ते" यह कह कर बचा हुआ अन्न बर्तनसे निकाल कर रखदे उसके बाद विधिसे जल गिरावे ॥१०१॥ इसके बाद अन्नाग्र निकाल कर हंतकार बना कर शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार ब्राह्मणको निवेदन करे ॥१०२ देवता ब्राह्मण और पितरोंको जल देना हो तो भिन्न भिन्न तीर्थोंसे विधि पूर्वक दे ॥१०३॥ देवताओंको जल देना होतो "ब्राह्म" नामक तीर्थसे जल गिरावे। दाहिने हाथमें अंगूठेके उत्तरकी ओर

जो रेखा है (कलाईसे लेकर बिचली उंगलीकी जड़के नजदीक तक एक रेखा रहती है) उसे "ब्राह्म" तीर्थ कहते हैं। यह देवताओं को जल देनेके लिये है ॥१०४॥ अंगूठे और तर्जनी के बीचमें जो जगह है उसे "पैत्र" तीर्थ कहते हैं। यह पितरोंको जल देनेके लिये है। किन्तु नान्दीमुख श्राद्धमें "ब्राह्मय्" तीर्थ हीसे जल देना उचित है ॥१०५॥ उंगलीके अग्र भागमें देव तीर्थ है उसीसे देव सम्बन्धी और कार्य्य करे। कनिष्ठकाकी जड़में "तीर्थ" नामक एक स्थान है उसीसे प्रजापतिका सब कर्म करे ॥१०६॥ इस प्रकार इन कहे हुए तीर्थोंसे देव, पितर तथा प्रजापतिको जल दे। भूल कर भी उलटे पुलटे तीर्थोंसे जल न दे ॥१०७॥ "ब्राह्म" तीर्थसे आचमन करना सदा श्रेष्ठ है। पितृकर्ममें पैत्र तीर्थसे देव कर्ममें देव तीर्थसे और प्रजापतिके कर्मसे प्राजापत्य तीर्थसे आचमन उत्तम है ॥१०८॥ नांदीमुखमें पिण्डदान आदि सब काम और प्रजापति कर्म "प्रजापत्य" तीर्थसे ही करे ॥१०९॥ एकही समय आग और पानी न ले। गुरु, देवता तथा अपनेसे बड़ोंकी ओर पैर न फैलावे ॥११०॥ जब गौ अपने बछड़ेको दूधपिलाने लगे तब उसे न देखे। हाथकी अंजलीमें जल लेकर न पीवे ॥१११॥ शौचक्रियामें विलम्ब न करे वा स्नानका समय हो जाय तो न ठहरे। मुंहसे आग न फूंके ॥११२॥

बेटा! उस जगह कभी न बसे जहां ये चार न हों—कर्ज देनेवाला, वैद्य, वेद पढ़नेवाला, और जलसे भरी नदी ॥११३॥ जहांका राजा, शत्रुओंको जीतनेवाला, बलवान् और धर्मात्मा हो वहां रहना उचित है। जहां अच्छा राजा नहीं होता वहां सुख नहीं मिलता ॥११४॥ जहांका राजा बड़ा बलवान हो जिसे कोई शत्रु न दबा सके, उपजाऊ जमीन हो, प्रजा अच्छी चालसे रहने-वाली हो, कर्मचारी न्याय करनेवाले हों, आदमी सबसे मिल कर प्रेमसे रहते हों, जहांके खेती करनेवाले गृहस्थ भोगी न हों, और जहां सब तरहकी

औषधियां मिलती हों, वहां चतुर मनुष्य रहे। ऐसी जगह पर रहनेसे अनेक प्रकारके सुख मिलते हैं ॥११६॥ ऐ पुत्र ! उस जगह कभी न रहना चाहिये जहां ये तीनों हों—अपनेको दबानेकी इच्छा रखनेवाले, पुराना वैर रखनेवाले वैरी और दिन रात नाचही तमाशा देखनेवाले मनुष्य ॥११७॥ चतुर मनुष्य सदा अच्छे स्वभाववाले मित्रोंके संगमें रहे। ऐ पुत्र ! मैंने यह सब बातें तुम्हारीही भलाईके लिये कही हैं ॥११८॥

पैंतीसवां अध्याय।



मदालसा कहने लगी कि ऐ बेटा ! किस वस्तुका सेवन करना चाहिये और किस वस्तुका नहीं यही बात मैं इस समय तुमसे बताती हूं सुनो। घी वा तेलमें जो वस्तु बनी हो वह बासी भी हो तो खासकते हैं। गेहूं, जौ तथा गोरसकी चीज यदि बिना तेल वा घीके बनी हो तो वह बासी होने पर भी खाने योग्य है। खरगोश, कछुए, गोह, साहिल और गैंड़ेका मांस पवित्र है। उसे खा सकते हैं। घरेले सूअर और मुरगीका मांस खाना मना है। पितर तथा देवताको निवेदन करनेके बाद जो बच जाय, जो श्राद्ध में बनाया जाय, जो ब्राह्मणके लिये बनाया जाय, उसके खानेसे बचा हो, जो यज्ञके लिये मारा गया हो और जो दवाके लिये बनाया गया हो ऐसा मांस खानेमें कुछ भी दोष नहीं है ॥३॥ शंख पत्थर, सोना, चांदी, डोर, कपड़ा, शाक, सूत, फल, बांसके बने बर्तन, मणि, हीरा, मूंगा और मनुष्यका शरीर, जलसे धोनेसे पवित्र हो जाते हैं ॥५॥ लोहेका वर्तन आगसे, पत्थरकी वस्तु घिसनेसे और तेल वा घीका वर्तन गरम पानीसे पवित्र होता है ॥६॥ सूप, अन्न, चमड़ा, सूराख, [illegible], कपड़ोंका गट्ठर, और

किसी चीजका गट्ठर, जल छिड़कनेसे पवित्र होता है ॥७॥ सब प्रकारके वल्कल (पेड़की छाल) मिट्टी लगा कर धोनेसे पवित्र होते हैं। सूखी वा हरी घास, लकड़ी और दवा पानी छिड़कनेसे पवित्र होती है ॥८॥ बकरी वा भेड़के रोएं और सिरके बाल सरसों वा तिल जलमें पीस कर लगानेसे पवित्र होते हैं और कहीं चोट लग जाय तो उस पर भी यही लेप लगा कर पवित्र करे। कपासके बने वस्त्र राख और जलसे पवित्र होते हैं ॥१०॥ लकड़ी, दांत, हड्डी और सींग, छील देनेसे पवित्र होते हैं। मिट्टीके बर्तन फिर आगमें जला देनेसे पवित्र होते हैं ॥११॥ भिक्षाकी चीज, चितेरेका हाथ, बाजारी चीज, स्त्रीका मुंह, दुकान की चीज, अनजानी चीज और नौकरके हाथकी लाई चीजें पवित्र हैं ॥१२॥ कहनेमें जो अच्छी जान पड़े, बहुत पुरानी, ढेरके बीच पड़ी हुई, बहुतही छोटी, बहुत बड़ी और लड़के बूढ़े या रोगीकी खरीदी हुई चीज, कार्यालय, राजाका भीतरी आंगन, यज्ञका मकान जिसमें सदा आग रहती हो, दूध पीनेवाला बहुत छोटा लड़का स्त्री और दुर्गंध और फेन रहित पहाड़से गिरा हुआ जल पवित्र है ॥१४॥ पृथिवी, बहुत दिनोंके बीत जानेसे, जला देनेसे, बुहारनेसे और गौके चलानेसे पवित्र होती है। मकान खोदकर ऊपरकी कुछ मिट्टी निकाल देने, पानी छिड़कने, लीपने और रङ्ग लगानेसे पवित्र होताहै ॥१५॥ जिसमें बाल वा कीड़े लगे हों, जिसे गायने सूँघ दिया हो और जिस पर मक्खी बैठ गई हो वह मिट्टी वा राख लगाकर जलसे धोदेनेपर पवित्र होता है ॥१६॥ तांबेका बर्तन खट्टी चीजसे जस्ते और सीसेका बर्तन राखसे, कांसेका बर्तन, राख पानी से और गलनेवाली चीज गलाकर पिघलादेनेसे पवित्र होती है॥१७॥ जिस चीजमें अशुद्ध गंध वा अशुद्ध रंगवाली चीज लग जाय उसे मिट्टी और पानीसे शुद्ध करे। जब तक उसकी गंध वा रंग न दूर हो जाय तबतक उसे अच्छी तरह धो कर पवित्र करे ॥१८॥ जो जल गायके पीनेसे न घट जाय, जो कूए वा खोतेसे आपही निकला हो

वा जो बड़े भारी गढ़ेमें इकट्ठा हो गया वह जल पवित्र है। चाण्डाल वा दाघ आदि भयंकर जानवरोंसे मारा हुआ मांस पवित्र है ॥१९॥ गलियोंमें पड़े हुए बहुत छोटे चौथड़े वा सूत पवित्र हैं ॥२०॥ धूल, आग, घोड़ा, गाय, छाया, सूर्यकी किरण, हवा पृथिवी, थूककी बूँद और मक्खी, अशुद्ध चीजोंके छूजानेसे भी पवित्रही रहती हैं ॥२१॥ बकरी और घोड़ेका मुंह पवित्र है गाय और बछड़ेका मुंह अशुद्ध है। माताका स्तन पवित्र है और तोतेका जूठा फल पवित्र है ॥२२॥ आसनी, बिछौना, पालकी गाड़ी, नाव, रास्तेमें पड़ी हुई सूखी वा हरी घास, चन्द्रमाकी चांदनी, सूरजकी किरण, और हवा सदा पवित्र है ॥२३॥ गलीमें चलनेसे, स्नान, प्यास या भूखसे, यदि देह मैली हो जाय तो उसे कपड़ा बदल कर आचमन करके पवित्र करे ॥२४॥ खराब गली की कीच, ईंट और गिलावेसे बना मकान, हवा लगनेसे पवित्र हो जाता है ॥२५॥ अन्नकी ढेरीमें यदि कोई अशुद्ध चीज (कुत्ते बिल्ली आदिकी बिष्ठा) पड़ जाय तो उस अशुद्ध पदार्थको निकालदे जिसमें उसका रस न भीगे और भीग जाय तो जितना भीगा हो उतनाही निकालकर फेंक दे और बची हुई ढेरीको जल छिड़क कर पवित्र करे और आप अच्छी तरह मुंह धो कर स्नान करे। यदि बिना जाने अशुद्ध पदार्थ खा जाय तो तीन रात तीन दिन उपवास करे। यदि जान कर कोई अशुद्ध पदार्थ खा जाय तो धर्मशास्त्रोंमें लिखे हुए वचनोंके अनुसार प्रायश्चित्त करे ॥२७॥ ऋतुमती स्त्री, कुत्ते, गीदड़, सूतिकामें रहनेवाले मनुष्य, अन्त्यज और मुरदा ढोनेवालेको यदि कोई मनुष्य छू दे तो वह स्नान करनेसे पवित्र होता है ॥२८॥ यदि खून लगी हुई आदमीकी हड्डी छू जाय तो स्नान करनेसे पवित्र हो। यदि आदमीकी सूखी हड्डी छू जाय तो आचमन कर डाले वा गायकी पीठ छूए अथवा सूर्यका दर्शन करे ॥२९॥ खून, थूक और गधेकी लोटीहुई जमीनको न लांघे और बेसमय बागीचे वा बनमें न जाय ॥३०॥ जिसे सब लोग

खराब कहते हों और जिस स्त्रीके लड़का वा पति न हो उससे कभी न बोले। घरके जूठे, विष्ठा और मूत्र आदि अशुद्ध पदार्थ अपने घरसे निकाल दे ॥३१॥ यदि दूसरेके खुदवाये हुए तालाव वा बावलीमें स्नान करना हो तो उसकी पांच मुट्ठी मिट्टी निकाल कर बाहर फेंक दे तब स्नान करे। इस कारण उचित है कि मनुष्य देवखात (कुंड आदि) झील, गंगा और यमुना आदि नदियों में बिना परिश्रमसुखसे स्नान करे ॥३२॥ देवता, पितर, उत्तम शास्त्र यज्ञ वेद मंत्र आदिकी निन्दा करनेवाले नीचसे बात चीत करनेके बाद वा उसे छू कर सूर्यका दर्शन करके पवित्र हो जाना चाहिये अथवा मेरी दी हुई अंगूठी देख कर पवित्र हो जाय ॥३३॥ ऋतुमती स्त्री, डोम, चमार आदि नीच जाति, पतित, पापी, मुरदा ढोनेवाले, विधर्मी, सूतिका गृहमें रहनेवाले, खोजे, नंगी आदमी नीच जातियोंको पवित्र करनेवाले और दूसरी स्त्रीसे सम्भोग करने वालेसे बातचीत करनेके बाद स्नान करने वा सूर्यका दर्शन करनेसे पवित्र होता है ॥३५॥ अशुद्ध भोजनकी वस्तु, सूतिका गृहमें रहनेवाले मनुष्य, खोजे बिल्ली, चूहे, कुत्ते, मुर्गे, पापी, संस्कार हीन डोम, मुरदा ढोनेवाले, ऋतुमती स्त्री, घरेले सूअर, और सूतकवाले मनुष्यके छू जाने पर स्नान करनेसे आदमी पवित्र होता है ॥३७॥ जिसके घरमें धर्मशास्त्रके अनुसार नित्यकर्म नहीं किया जाता और जिसको ब्राह्मणोंने त्याग दिया हो वह अधम मनुष्य पापी है ॥३८॥ अपने नित्य कर्मोंको कभी न छोड़ना चाहिये। घरका कोई मर जाय वा कोई लड़का पैदा हो तो जब तक सूतक रहे तब तक नित्यकर्म करना मना है ॥३९॥ घरमें जन्म या मृत्युका सूतक होजाय तो दस दिन ब्राह्मण, बारह दिन क्षत्रिय, पन्दरह दिन वैश्य और एक महीने शूद्र अपना पवित्र नित्यकर्म न करे। इसके बाद अपना नित्यकर्म करे ॥४१॥ जब कोई मरजाय तो अपने गोत्रों के संग उसे गांवके बाहर लेजाकर जलावे। पहले, चौथे, सातवें और नवें दिन प्रेतके नामसे तिल और जलकी अंजुली दे। चौथे दिन

उसी मरघटमें जाकर चिताकी राख बटोर कर इकट्ठी करे फिर उसे गंगा आदि पवित्र नदियोंमें डालदेनेके लिये भेजदे। राख इकट्ठी करनेके बाद स्नान और मृतकके नाम तर्पण करे। इसके बाद अपने सगोत्रको छू सकता है पर दूसरे गोत्रवालेको सूतक बीत जानेही पर छूना उचित है ॥४४॥ जो आदमी बाघ, भालू आदि जानवरोंसे हथियारसे, जलमें डूब कर, फांसीसे, आगमें जल कर जहर खा कर, पहाड़ वा कोठेसे गिर कर या उपवास करके मर जाय, जो लड़कापनमें मरे वा परदेशमें मरे वा सन्यासी होकर मरे उसका सूतक तीन दिन तक रहता है। कोई आचार्य तो कहते हैं कि इनका सूतक स्नानही करनेसे छूट जाता है ॥४६॥ एक आदमी मर गया उसका सूतक अभी छूटा नहीं है इसी बीचमें यदि उसी गोत्रका नजदीकी कोई और आदमी मर जाय तो उसका सूतक पहले मरे हुए आदमीके सूतकके दिन तक रहेगा और पहले मरे हुए आदमीका जिस दिन सूतक छूटेगा उसी दिन बीच में मरे हुए आदमीका भी सूतक छूट जायगा। इसी तरह यदि घरमें कोई लड़का पैदा हुआ है उसी सूतकके बीचमें यदि कोई और लड़का उसी गोत्रमें पैदा हो जाय तो पहले सूतकहीके साथ उसका सूतक भी छूट जायगा। जिस दिन लड़का पैदा हो उस दिन पिता स्नान करे और अपने पहने हुए कपड़ोंको धो डाले ॥५०॥ ब्राह्मण दस दिन, क्षत्रिय बारह दिन, वैश्य पन्द्रह दिन और शूद्र एक महीनेके बाद जन्म सूतकमें, अपना नित्य कर्म करे ॥५१॥ मरण सूतकमें सूतक छूट जानेके बाद एकोद्दिष्ट श्राद्ध करे। मृतक मनुष्यकी जो जो प्यारी वस्तुएं हैं वे वेदज्ञ पवित्र तथा सच्चरित ब्राह्मण को भक्तिसे भोजन करावे, और उन्हें उन प्रिय वस्तुओंको उसकी अक्षय तृप्तिके लिये दान करे ॥५३॥ सब क्रियाओंके बीत जानेके बाद जल, घोड़े, हाथी आदि सवारी, हथियार, छड़ी आदि मंगल पदार्थोंको छूए और अपनी जातिके अनुसार सब क्रिया करे। इसके बाद अपना ऐहलौकिक और पारलौकिक

काम करे ॥५५॥ विद्वान पुरुष नित्य वेद पाठ करे। धर्मसे धन इकट्ठा करे, नित्य यज्ञ आदि भी किया करे ॥५६॥ जिस कामके करनेमें लज्जा वा डर न हो और जिस कामको छिपानेकी कोई आवश्यकता न ज्ञान पड़े वह पवित्र काम है उसे मनुष्य अच्छी तरह कर सकता है ॥५७॥ बेटा! जो मनुष्य इस तरह अपना धर्म तथा आचार रखता है वह इस लोक और परलोकमें सुखी होता है ॥५८॥

छत्तीसवां अध्याय।

ऋतुध्वजके पुत्र अलर्कने मातासे इस प्रकार शिक्षा पाकर युवावस्थामें विधिपूर्वक अपना ब्याह किया ॥१॥ धर्मसे पुत्र उत्पन्न किये, अनेक यज्ञ किये, और सदा अपने पिताकी आज्ञामें रहने लगा ॥२॥ ऋतुध्वज जब बहुत बूढ़ा हो गया तब अपनी स्त्रीके संग वनमें जाकर तप करनेकी इच्छासे अपने पुत्र अलर्कको राजगद्दी पर बिठला कर तिलक देदिया। राजा ऋतुध्वज प्रजाकी रक्षा भली भांति करता था, बड़ा भाग्यवान था और इस पृथिवी पर एक विचित्रही राजा पैदा हुआ था ।४॥ मदालसा ने अपने पुत्रको शिक्षा देनेकी इच्छा की जिससे उसको कामकी चेष्टामें कोई हानि न पहुंचे ॥५॥ मदालसा बोली—बेटा! अब तुम गृहस्थ होकर अपना धर्म पालन करते हुए राज्यका पालन करोगे उस समय यदि प्यारे परिवारके वियोग, शत्रुके डर वा धनके नाश होजानेसे तुम्हें असह्य दुःख हो, तो तुम इस शासनपत्रके सूक्ष्म अक्षरोंको पढ़ना। गृहस्थी ममताका आधार है इस कारण दुःख का घर है। सम्भव है कि तुम्हें अनेक कष्ट सहने पड़ें ॥८॥ यह कह कर मदालसाने अंगूठीके साथ सुवर्णका बना हुआ शासनपत्र

अपने प्रिय पुत्र अलर्कको दिया और अनेक प्रकारके उत्तम आशीर्वाद दिये ॥९॥ इसके बाद ऋतुध्वज रानी मदालसाके संग तप करनेके लिये वनमें चला गया ॥१०॥

सैंतीसवां अध्याय।

राजा अलर्क राजगद्दी पर बैठ कर अपने धर्म पर दृढ़ रहनेवाली संपूर्ण प्रजाको प्रसन्नतापूर्वक धर्मके साथ नीतिके अनुसार पालने लगा ॥१॥ दुष्टोंको दंड देने लगा, सज्जनोंको अच्छी तरह पालने लगा और अनेक यज्ञ किये ॥२॥ राजाके बड़े बलवान पराक्रमी, धर्मात्मा, महात्मा और अच्छे पथ पर चलनेवाले अनेक लड़के हुए ॥३॥ अलर्क धर्मसे अर्थ पैदा करता था, अर्थसे धर्म पैदा करता था और दोनोंको बचाता हुआ संसारी सुख भोगने लगा ॥४॥ धर्म, अर्थ और काममें आसक्त हो कर पृथिवीका पालन करते करते कई वर्ष एक दिनके समान बीत गये ॥५॥ संसारी सुख भोगते भोगते कई वर्ष बीतगये पर उसके चित्तमें विराग नहीं उत्पन्न हुआ और न धर्म तथा अर्थसे उसका चित्त संतुष्ट हुआ, वरन् दिन पर दिन धर्म और अर्थ इकट्ठा करनेकी चाह बढ़तीही गई ॥६॥ वह दिन पर दिन संसारमें लिपटता ही गया। संभोग सुखमें डूब गया, उसकी सब इन्द्रियां बेवश होगईं यह सुन कर उसका भाई वनवासी सुबाहु उसे समझानेकी चिन्ता करने लगा। उसने अच्छी तरह विचार कर निश्चय किया कि बिना शत्रुसे दुखी हुए उसका चित्त संसारसे नहीं हटेगा और इसीमें उसका कल्याण है ॥८॥ इसके बाद धर्मात्मा सुबाहु सेनाकी सामग्री तथा बलसे भरे पूरे काशिराजकी शरणमें अपना राज्य पानेकी इच्छासे गया॥९॥ काशिराजने भी सुबाहुको राज्यदिलानेकी

इच्छासे अपनी सेना तैयार कर ली और अलर्कके पास दूत भेज कर कहलाया—"तुम अपना राज्य सुबाहुको दे दो" ॥१०॥ राजा अलर्क क्षत्रिय धर्म जानता था इससे दूसरे राजाकी आज्ञा पाकर डरसे राज्य देना नहीं चाहता था। उसने काशिराजके दूतसे कहा ॥११॥ "मेरा बड़ा भाई सुबाहु मेरे पास आकर प्रीतिसे राज्य मांगे तो पा सकता है, मैं किसीके डरसे एक अंगुल मात्र भी पृथिवी नहीं दूंगा" ॥१२॥ महाबुद्धिमान् सुबाहुने राज्य न मांगा और किसीसे मांगना क्षत्रियोंका धर्म नहीं है, क्षत्रियोंका धन मानही है ॥१३॥ काशिराज अपनी समूची सेना लेकर राजा अलर्कका राज्य घेर लेनेकी इच्छासे आपहुंचा ॥१४॥ उसने राजा अलर्कके कितनेही बड़े बड़े कर्मचारियोंको अपनी ओर कर लिया और कई तरहके उपाय करके उसे अपने वशमें करने लगा ॥१५॥ अलर्कका राज्य घेर कर उसके अधीनस्थ छोटे छोटे राजाओंको तंग करने लगा। उसने दुर्गपालको वशमें कर लिया। किसीको प्रेमकी बातें कहकर किसीको धन दे कर किसीको भेदसे, किसीको सामसे और किसीको विश्वास देकर अपने वशमें कर लिया। १७। तब राजा अलर्क निर्बल हो गया दूसरे राजासे दुखी हुआ, उसका खजाना नष्ट हो गया और उस का नगर शत्रुने घेर लिया ॥१८॥ वह इस प्रकार दिन दिन खजाना खाली होते देख कर दुखी होने लगा। उसका चित्त एक दम घबरा गया ॥१९॥ उसने बहुत दुखी होकर उस अंगूठीको स्मरण किया जिसे याद करनेके लिये माता मदालसा कह गई थी ॥२०॥ उसने स्नान करके पवित्र हो ब्राह्मणोंकी आज्ञासे उस "शासनपत्र"के स्पष्ट अक्षरोंका पाठ किया ।२१॥ माताके लिखे हुए उन अक्षरोंको पढ़कर राजा अलर्क बहुत प्रसन्न हुआ, उसके सब अंग प्रकाशित होगये, प्रसन्नतासे नेत्र प्रफुल्लित होगये ॥२२। उसमें लिखा था "संगः सर्वात्मनात्याज्यः सचेत् त्यक्तुंनशक्यते। ससद्भिः सह-कर्त्तव्यः सतां संगोहि भेषजम्। कामः सर्वात्मनाहेयःसातुंचे वह्यते—

न सः। मुमुक्षांप्रति सत् कार्यं सैव तस्यापि भेषजम्" अर्थात् सब तरह संग छोड़ो यदि तुम संग न छोड़ सको तो सत्पुरुषोंका संग करो। सत्पुरुषोंका संग दवाके समान फल देनेवाला है। सब तरह कामको छोड़ दो यदि काम न छोड़ सको तो मोक्षके लिये काम करो वह भी दवाके समान है ॥२४॥ राजा अलर्क वारम्वार उसका पाठ करने लगा और सोचने लगा कि मनुष्यका किस तरह कल्याण होता है। अन्तमें उसने निश्चय कर लिया कि सत्पुरुषोंके संग और मोक्षसे मनुष्योंका सब तरह कल्याण हो सकता है ॥२५॥ वह फिर सोचने लगा कि मैं किस सज्जनका संग करूं। थोड़ी देर बाद राजा अलर्क बहुत दुखी हो कर महात्मा दत्तात्रेयकी शरणमें गया ॥२६॥ उस पाप रहित, संग रहित, महात्मा दत्तात्रेयके समीप जा कर हाथ जोड़ पैरों पर पड़ कर बड़ी बिनतीसे बोला ॥२७॥ हे ब्रह्मन्! आप मुझ पर प्रसन्न हों मैं श्रीमान्‌को शरणमें आया हूं मैं बड़ाही दुखी और कामी हूं, आप दया करके मेरा दुःख दूर कीजिये ॥२८॥ दत्तात्रेयने कहा--राजा! मैं इसी समय तुम्हारा दुःख दूर करदेताहूं तुम सच बतादो कि तुम्हें किसबातका दुःख है। तुम यह तो सोचो कि तुम कौनहो? तुम्हें किस बातका दुःख है? तुम अंग हो और सभी तुम्हारे अंग हैं ।२९॥ दत्तात्रेयकी बात सुनकर राजा अपने मनमें सोचने लगाकि सब प्रकारके दुःखोंको मैंही जड़हूं। ३०॥ राजा फिर भी बहुत देरतक अपनी आत्माको सोचकर हंसता हुआ धीरताके साथ बोला ॥३१॥ मैं पृथिवी नहीं हूं जल नहीं हूं अग्नि नहीं हूं, वायु नहीं हूं, आकाश नहीं हूं, किन्तु सबके मेल से बना शरीर पाकर सुखी हूं ॥३२॥ यही पांचों घट बढ़ कर सुख वा दुःख पैदा करते हैं। यदि मैं कोई विचित्र पदार्थ वा प्रधान पदार्थ होता तो इस शरीर और पर शरीर दोनों पर मेरा पूरा अधिकार होता ॥३३॥ जो पदार्थ नित्य है और प्रभूत सत्ता भावोंसे पूर्ण है, उसमें कमी, बेशी, बड़ाई, छुटाई और समताका प्रभाव कैसे हो सकता है ॥३४॥ जब कि इनकी मात्राएं घटते

घटती तिहाई बच जाती हैं तब वे बहुत ही छोटी जान पड़ती हैं उस समय जीव भी निर्बल हो जाता है। क्या सुख दुःख शरीर का धर्म है? ॥३५॥ दुःख और सुख मनमें होता है। यदि मन में सुख दुःख होता है तो मैं मन नहीं हूं इस कारण मैं दुखी वा सुखी नहीं हूं ॥३६॥ मैं अहङ्कार नहीं हूं, मैं मन नहीं हूं, मैं बुद्धि नहीं हूं, दुःख तो मनमें होता है तो मैं पराये दुखसे दुखी कैसे हो सकता हूं? ॥३७॥ मैं शरीर नहीं हूं मन नहीं हूं मैं मन और शरीरसे अलग हूं इससे मेरे मनमें वा शरीरमें दुःख वा सुख हो तो उससे मेरी हानि क्या है? ॥३८॥ इस देहका बड़ा भाई राज्य लेना चाहता है और यह देह पंचभूतसे बनी है इसमें रजोगुण, तमोगुण और सत्वगुण भरा है। मैं इस देहमें जाकर रहता हूं इस कारण मैं शरीर नहीं हूं मैं कोई दूसराही पदार्थ हूं ॥३९॥ हाथ पांव आदि अंग मेरे नहीं हैं, मांस और हड्डियां भी मेरी नहीं हैं, ये रग और नाड़ी भी मेरी नहीं हैं। जिस तरह हाथी, घोड़े वा रथ पर चढ़नेवाला हाथी, घोड़े और रथसे अलग है उसी तरह इस शरीरमें रहनेवाली आत्मा भी शरीरसे अलग है ।४०॥ इस कारण कोई मेरा शत्रु नहीं है, मुझे कुछ दुःख नहीं है वा कुछ सुख नहीं है, यह नगर मेरा नहीं है, यह खजाना मेरा नहीं है, यह हाथी, घोड़ा वा सेना मेरी नहीं है, यह सब न मेरा है न दूसरे किसीका है ॥४१॥ जैसे एकही आकाश घड़े, कमंडलु वा दूसरे बर्तनोंमें पड़ कर कई तरहका देख पड़ता है उसी प्रकार आत्मा सुबाहु, मैं और मेरे भाई तथा सब मनुष्योंकी देहमें रह कर कई तरहकी बन जाती है।४२॥

अड़तीसवां अध्याय।

इसके बाद उस राजाने प्रेमसे नम्र हो महात्मा दत्तात्रेयको प्रणाम करके कहा ॥१॥ हे ब्रह्मन्! जब मैं अच्छी तरह विचार कर देखता हूं तो मुझे किसी तरहका दुःख नहीं जान पड़ता पर जब विचार नष्ट होजाता है तब मैं अपनेको दुःखमें डूबा हुआ समझता हूं ॥२॥ मनुष्यका चित्त जिन वस्तुओंमें फंस जाता है फिर उन्हीं वस्तुओंके लिये चित्त दुखी होता जाता है ॥३॥ अपने घरकी मुर्गीको यदि बिल्ली खा जाय तो कितना दुःख होता है पर दूसरेके पपीहा, कोयल वा किसी उत्तम पक्षीको बिल्ली वा चूहा खा जाय तो उतना कष्ट नहीं होता ॥४॥ मैं मायासे अलग हूं इस कारण मैं सुखी नहीं हूं और दुःखी भी नहीं हूं। जो पांचों भूतोंमें लिपटा रहता है वही सुखी वा दुखी होता है ॥५॥ दत्तात्रेयने कहा—ऐ पुरुषसिंह! तुमने जो कहा है वह बहुत ठीक है। "यह मेरा है" यह ममत्वही दुःखका कारण है। "मेरा कुछ नहीं है" ऐसा विचारही सुखका कारण है ॥६॥ यह बहुत ही अच्छा हुआ कि मेरे पूछनेहीसे तुम्हें ज्ञान होगया और तुम्हारा ममत्व सेमरकी रूईकी तरह उड़ गया ॥ ॥

ममत्व एक वृक्ष है। "मैं" यह अभिमानही उसका मूल है "यह मेरा है" यह घमण्डही उसका स्कन्ध है। घर और खेत उसकी शाखा है। पुत्र, स्त्री आदि परिवार उसके छोटे पत्ते हैं। अन्न और धन बड़े बड़े पत्ते हैं, पाप पुण्य उसके फूल हैं, सुख दुःख उसके बड़े बड़े फल हैं, अनेक प्रकारके काम करनेकी इच्छा उसमें भौंरोंके झुण्ड हैं, अज्ञान उसको सींचनेके लिये जल है, वह वृक्ष बहुत दिनोंमें तय्यार हुआ है और मोक्षके बीच रास्तोंमें लगा है। जो मनुष्य संसार रूपी रास्तेमें चलनेसे थक गये हैं वे उसके नीचे

क्रोध आदि दोषोंको भस्म कर दे। अपनी आत्मा अपने वशमें करके पापोंको भस्म कर दे। चित्तको खींचकर संसारी सुख छोड़ दे और ध्यान करके रजोगुण और तमोगुणका नाश करदे ॥१०॥ जिस तरह पर्वतमें उत्पन्न होनेवाली धातुओंके सब दोष आगमें तपा देनेसे नष्ट होजाते हैं उसी तरह प्राणायाम करनेसे इन्द्रियोंके सब दोष नष्ट होजाते हैं ॥११॥ योगीको उचित है कि वह पहले प्राणयामका साधन करे। प्राण और अपान वायुको रोकना प्राणायाम कहलाता है ॥१२॥ प्राणायाम तीन प्रकारका है लघु, मध्यम और उत्तरीय। हे अलर्क! अब मैं उसका प्रमाण कहता हूं, सुनो ॥१३॥ बारह मात्राको लघु प्राणायाम कहते हैं उसको दूनी (२४ मात्रा) को मध्यम प्राणायाम कहते हैं और उससे तिगुनी मात्रा (३६) को उत्तम वा उत्तर प्राणायाम कहते हैं ॥१४॥ आंखकी दोनों पलकें आपसमें सटकर जितने समयमें अलग हो जाती हैं उस समयको एकमात्रा वा लघुवर कहते हैं। प्राणायामकी गिनतीमें इसीसे बारह मात्राकी गिनती है ॥१५॥ प्रथम प्राणायामसे स्वेद (पसीने) को जीते। मध्यम प्राणायामसे वेपथु (कम्प) को जीते। उत्तम प्राणायामसे विषाद (दुःख) को जीते ॥१६॥ जिस तरह सिंह, बाघ, हाथी, सेवा करनेसे कोमल होकर वशमें होजाते हैं उसी तरह प्राण प्राणायामसे योगीके वशमें आजाते हैं॥१७॥ जिस तरह महावत मतवाले हाथीको अपने वशमें रखकर जिधर चाहता है उधर घुमाता फिरता है उसी तरह योगी भी अपने प्राणको वशमें करके जहां चाहता है वहां निश्चिन्त होकर विचरण करता है ॥१८॥ जिस तरह वशमें किया हुआ सिंह मृगोंको मारता है मनुष्योंको नहीं, उसीतरह वशमें कियाहुआ प्राणायाम पापोंको नष्ट करता है शरीरको नहीं ॥१९॥ इस कारण योगीको उचित है कि वह सदा प्राणायाम करे। अब मैं उसकी चार अवस्थाओंका वर्णन करता हूं सुनो— जिससे मोक्ष होता है ॥२०॥ उन चारों अवस्थाओंके नाम ये हैं—ध्वस्ति, प्राप्ति, संवित् और

प्रसाद। अब मैं क्रमसे इनका रूप बतलाताहूं सुनो ॥२१॥ जिस अवस्थामें पाप तथा पुण्य कर्मोंके फलोंका नाश होताहै और चित्त स्वच्छ होजाता है उसे ध्वस्ति कहते हैं ॥२२॥ जिस अवस्थामें लोभ, मोहसे भरेपूरे, इस लोक तथा परलोकके कामोंको रोककर योगी स्थिर हो जाता है उसे प्राप्ति कहते हैं यह सदा रहनेवाली है ॥२३॥ जिस प्राणायामकी अवस्थामें भूत और भविष्य अर्थोंको, प्रगट तथा गुप्त वस्तुओंको, सूर्य्य, चन्द्र तथा अन्य नक्षत्रोंकी गतिको एक भावसे योगी अपने ज्ञानके बलसे देखने लगता है उस प्राणायामकी अवस्थाको संवित् कहते हैं ॥२५॥ जिस अवस्थामें योगीका मन पांचों वायु (प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान) दसों इन्द्रिय और सब अङ्ग प्रसन्न रहते हैं उसे प्रसाद कहते हैं ॥२६॥

हे राजा! अब मैं तुमको प्राणायामका लक्षण बताता हूं सुनो। योगीको किस तरह आसन करके योग करना चाहिये इसका वर्णन करता हूँ ॥२७॥ पद्मासन, अर्द्धासन वा स्वस्तिकासन लगा कर योगी हृदयमें प्रणव (ओंकार) को धारण करे ॥२८॥ चौरस भूमि पर आसन बिछाकर दोनों पैरोंको समेटकर मुंह बन्द करके वायु रोककर, चुप हो दोनों पैरोंकी एड़ियोंको लिंग और कोषसे कुछ अलग रखकर, सिरको कुछ ऊंचा कर, ऊपर और नीचेके दांतोंको कुछ कुछ अलग कर, नाकके ऊपरी अग्रभागको देखता हुआ और दूसरी दिशाओंको न देखता हुआ, तमोगुणको रजोगुण से छिपा कर, रजोगुणको सत्वगुणसे छिपाकर, निर्मल तत्व (ब्रह्ममें) चित्त स्थिर कर, इन्द्रियके सुखोंसे इन्द्रियोंको हटा कर और प्राण तथा मनको वशमें करके धीरे धीरे प्राणायाम करे ॥३२॥ जिस तरह कछुआ अपना सब अंग समेट करके छिपा लेता है उसी तरह अपने सब कामोंको इकट्ठा करके दबा दे ॥३३॥ सदा आत्मा में प्रेम रखे, एक भावसे रहे, आत्माको अपनेमें देखे, कंठसे ले कर नाभी तक भीतर और बाहर साफ करे। फिर वायुसे भर कर प्रत्याहार (प्राणोंको इकट्ठा) करे। बारह प्राणायामको "धारणा"

कहते हैं। ३५॥ अपना चित्त वशमें रखनेवाले योगियोंके लिये तत्व देखनेवाले योगियोंने दो धारणाएं अवश्य करना लिखा है। (इससे अधिक करनेसे अधिक फल मिलेगा) ॥३६॥ प्राणायाम करनेसे सब दोष दूर हो जाते हैं चित्त स्थिर हो जाता है, योगी परब्रह्मको देखने लगता है और संसारी वस्तुओंको उससे अलग देखने लगता है, आकाश आदि वस्तुओंको समझने परमाणु (१) को पहचानने और आत्माको पाप रहित स्वच्छ देखने लगता है। इस प्रकार योगी नियमसे भोजन तथा अन्य शरीर सम्बन्धी कार्य्य करता हुआ प्राणायाम साधन करता है ॥३८॥ जिस तरह वीर अपने शत्रु के राज्यमें घुस कर जीतता जीतता आगे बढ़ता हुआ शत्रु के घर तक पहुंच जाता है और सबको अपने वशमें कर लेता है उसी तरह योगी सब दोषोंको, सब रोगोंको और मोह क्रोधादि सब विकारोंको जीतता हुआ सर्वत्र अपना प्रताप फैलादेताहै। ३९॥ योगीको उचित है कि बिना जीती हुई भूमि पर पैर न रखे पहले वह भूमि जीत ले तब उस पर पैर रखे (अर्थात् जब तक योगी कामादिको न जीत ले तब तक कामादिसे बहुतही अलग रहे भूल कर भी उसका सेवन न करे)। इसमें प्राण रोका जाता है इस लिये इसे प्राणायाम कहते हैं। जिसमें मनको जीत कर धारण करते हैं (अपने वशमें रखते हैं) उसे "धारणा" कहते हैं। जिसमें शब्द, रूप, रस तथा गंध आदिमें लगी हुई इन्द्रियोंको चित्त स्थिर करके समेट लेते हैं उसे "प्रत्याहार" (बटोरना) कहते हैं ॥४१॥ बड़े बड़े ऋषि, और योगियोंने इसके उपाय बताये हैं जिनसे योगियोंको रोग आदि कोई दोष उत्पन्न न हो। ४२। जिस तरह

---

(१) दिनको दोपहरके समय किवाड़ बन्द कर देनेके बाद किसी छेदसे घरके भीतर सूर्य्यकी किरणें घुसती हैं। उनमें बहुत छोटे छोटे टुकड़े देख पड़ते हैं। उनमेंसे एक टुकड़ेके साठवें भागको "परमाणु" कहते हैं।

प्यासा आदमी नल आदि वालोंके द्वारा धीरे धीरे जल पी लेता है उसी तरह योगी धीरे धीरे हवा पीवे ॥४३॥ योगी वायुको पहले नाभीमें, फिर हृदयमें, फिर छातीमें, फिर कंठमें, फिर मुंहमें फिर नाकके अग्रभागमें, फिर आंखोंमें, फिर दोनों भौंहोंके बीचमें फिर सिरमें चढ़ावे। उससे भी कुछ ऊंचा चढ़ा देनेसे "धारणा" होती है। इस धारणा करनेसे योगी ब्रह्मके समीप पहुंच जाता है ॥४५॥ भूखा, प्यासा, थका और घबराया हुआ योगी योग न करे। जो योगी अपनी सिद्धि चाहे वह स्थिर हो कर योग करे ॥४६॥ जहां बहुत जाड़ा लगता हो, जहां बहुत गरमी पड़ती हो, जहां खूब जोरसे हवा चलती हो,वहां योग न करे। योगीको उचित है कि ठीक समय और ठीक स्थानमें बैठ कर योगका साधन करे जिससे सिद्धि मिले ॥४७॥ जहां बहुत हल्ला हो, जहां आग लगी हो जहां पानी पड़ता हो और जहां मकान पुराना हो, वहां योग न करे। चौराहे पर, सूखे पत्तोंकी ढेरीके पास, नदीके तीर, मरघट सांपके बिलके पास, डरावनी जगहमें, कूए पर, यज्ञशालामें और बल्मीक पर विचारवान् पुरुष योग न करे ॥४८॥ जहां सत्वगुणकी उत्पत्ति न हो और जहां नीच मनुष्योंका संग हो वहां योग न करे ॥५०॥ जो मनुष्य अपनी मूर्खतासे इन कहे हुए स्थानोंका विचार न कर जहां जीमें आता है वहांही बैठ कर योग करने लगता है उसके योगमें विघ्न करनेवाले अनेक दोष होते हैं; मैं उन्हें बताताहूं सुनो॥५१॥ वह बहरा होजाताहै, मूर्ख होजाताहै, उसे सबबातें भूल जाती हैं, वह गूंगा होजाता है, अंधा होजाता है और उसे ज्वर भी आजाताहै इससे उचित है कि उचित स्थानमें बैठकर योगकरे ॥५२॥ यदि अज्ञान वश यह दोष किसी योगीसे हो जाय तो उसके छूटनेका उपाय बताता हूं सुनो ॥५३॥ खूब घी देकर उत्तम "हलवा" बना कर गरम गरम खा जाय, इससे वात रोग गुल्म रोग, उदावर्त तथा अन्य उदर रोग नष्ट होते हैं ॥५४॥ गांठोंमें दर्द हो जाय तो उस जगह खूब गरम हलवा बांध दे जिससे वहां

हवा न लगे। यदि चित्तमें किसी तरहका विकार हो जाय तो चित्तको महा पर्वतके समान स्थिर रखे किसी तरहका परिश्रम उसे न होने दे ॥५५॥ गूंगा हो जाय तो उसे कुछ भी हूं हां न करने दे, बहरा हो जाय तो कोई कठोर शब्द न सुनने दे। यदि जीभ सूखने लगे तो उस पर आमका फल वा रस लगावे वा आम का ध्यान करे ॥५६॥ जिस अङ्गमें रोग हो उसमें उपकार करने वाली दवाओंका सेवन करे। यदि गरमी मालूम पड़े तो ठंढी दवा खावे वा लगावे और सर्दी जान पड़े तो गरम दवा लगावे वा खावे ॥५७॥ यदि ऐसा रोग हो कि याद की हुई बातें भूल जायं तो सिर पर कील रख कर उसपर लकड़ी रख कर लकड़ीसे पीटे। ऐसा करनेसे उसको लाभ पहुंचता है ॥५८॥ यदि किसी तरहका प्रेत विकार वा प्रमाद हो जाय तो संपूर्ण जगतमें फैलनेवाली हवा को प्राणायामसे रोके। इस रोगकी यही दवा है ॥५९॥ यदि हृदयके भीतर कोई भूत प्रेत प्रवेश कर जाय वा अत्यंत नीच काम करनेकी इच्छा पैदा हो तो हृदयके भीतर रहनेवाली हवा और आगको अपने वशमें दृढ़तासे करे। ऐसा करनेसे हृदयके सब रोग नष्ट हो जाते हैं ॥६०॥ हे राजा! इस तरह अनेक उपायोंसे अपने शरीरकी रक्षा करनी चाहिये। कारण यह कि शरीरही धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका साधन करनेवाला है ॥६१॥ मोह होनेसे और अच्छी तरह चित्तको वशमें न करनेसे योगीका ज्ञान नष्ट हो जाता है इस कारण संसारी वस्तुओंसे चित्तको अच्छी तरह हटाले ॥६२॥ योगीका पहला लक्षण यही है कि चित्त स्थिर हो जाय, शरीर नीरोग रहे, मनमें कठोरता न रहे, शरीरसे सुगन्ध उड़े थोड़ा पेशाब कम हो, देहमें चमक हो, मुंह प्रसन्न हो और बोली मीठी हो जाय ॥६३॥ जो योगी सिद्ध हो जाते हैं उनसे सब लोग प्रेम करने लगते हैं, मुंह पीछे उनकी प्रशंसा करते हैं और कोई जीव उनसे नहीं डरता ॥६४॥ जिन्हें सिद्धि मिल जाती है उन्हें जाड़ा वा गरमी नहीं जान पड़ती। कोई उन्हें दुःख नहीं दे सकता और किसी भयानक जीवसे उन्हें डर नहीं लगता ॥६५॥

चालीसवां अध्याय।

दत्तात्रेयने कहा—आत्माको देखलेने पर भी योगियोंको अनेक प्रकारकी इच्छाएं उत्पन्न होती हैं उनका वर्णन करता हूं सुनो॥१॥ पुत्र, धन आदि देनेवाली क्रियाएं करनेकी इच्छा होती है, जो सुख मनुष्योंको प्यारे हैं उन्हें पानेकी इच्छा होती है। स्त्री, दानका फल, विद्या, प्रेम, अथाह सम्पत्ति और स्वर्ग पानेकी चाह होती है। देवता या इन्द्र होने, अनेक प्रकारके रस पैदा करने, आकाशमें उड़ने, यज्ञ करने, जलमें चलने, आगमें बैठने, श्राद्ध, अनेक प्रकारके दान, नियम, व्रत, तालाब तथा कूआ बनाने और देवताओंकी पूजा करनेके फलोंकी चाह पैदा होती है। सब कर्मोंको योगी छोड़ देता है तो भी उन्हें करनेकी इच्छा बनीही रहती है॥४॥ योगी इस प्रकार संसारी वस्तुओंमें लिपटे हुए चित्तको अनेक उपायोंसे हटावे। अपना मन सदा ब्रह्ममें लगाये रहे तब संसारकी वासना छूट सकती है॥५॥ योगी संसारी इच्छाओंको छोड़ देता है तो उसके बाद सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुणसे उत्पन्न होनेवाले पांच प्रकारके विघ्न उत्पन्न होते हैं जिनका होना बहुतही बुरा है और उनके होनेसे योगमें कई प्रकारके विघ्न होतेहैं। उनके नाम ये हैं—१ प्रातिभ, २ श्रावण, ३ दैव, ४ भ्रम और ५ आवर्त्त॥७॥ जब वेदोंके अर्थ, काव्य शास्त्रोंके अर्थ और संपूर्ण शिल्पशास्त्र योगियोंके चित्तमें प्रगट होते हैं तब उसे 'प्रातिभ' कहते हैं॥८॥ जब सम्पूर्ण शास्त्रोंके शब्दोंका अर्थ योगी जानता है और चार हजार कोस पर होनेवाले शब्दको सुनलेता है तब उसे 'श्रावण' कहते हैं॥९॥ जब योगी देवताके समान होकर मतवालेकी भांति चारों ओर आठों पहर देखने लगता है तब उसे 'दैव' कहते हैं॥१०॥ जब योगीका चित्त किसी

दोषसे निरवलम्ब घूमने लगता है और उसके सब आचार छूट जाते हैं तब उसे 'भ्रम' कहते हैं ॥११॥ जिस तरह जलमें भंवर होता है उसी तरह जब योगीका चित्त ज्ञानके भंवरमें पड़कर नष्ट हो जाता है तब उसे 'आवर्त्त' कहते हैं। ये पांचों उपसर्ग अर्थात् विघ्न हैं ॥१२॥ इन विघ्नोंसे जब योग नष्ट होजाता है तब देवताकी बराबरी करनेवाले योगी भी इन विघ्नोंमें पड़कर बारम्बार घूमा करते हैं उनका चित्त स्थिर नहीं होता ॥१३॥ इस कारण स्वच्छ चित्त रूपी कम्बल ओढ़कर योगी ब्रह्मकी ओर मन झुकाकर सदा ब्रह्मकी चिन्ता करे ॥१४॥ योगी सदा योग करता रहे, थोड़ा भोजन करे, इन्द्रियोंको अपने वशमें रखे और भू आदि सातों धारणाओंको सिर पर धारण करे ॥१५॥ योगी धरित्री धारणाको धारण करे तो सुखी होता है। अपनेको पृथिवी में गन्ध समझे तब पृथिवीके बन्धनसे छूट जाता है ॥१६॥ जलमें अपनेको रसरूप समझे, तेजमें अपनेको रूप तुल्य समझे और वायुमें स्पर्श समझे ॥१७॥ आकाशमें अपनेको शब्द समझे तब इन सबसे छुटकारा पावे ॥१८॥ सब प्राणियोंके मनमें मनसे घुसकर बहुत छोटा रूप बन जाय तब मन अत्यन्त सूक्ष्म होजाता है तभी मनके बन्धनोंसे योगी छुटकारा पाता है ॥१९॥ योगी सब प्राणियों की बुद्धिमें अपनी बुद्धिसे घुम जाय तब बुद्धिके बहुत लघु होजानेसे उसके बन्धनोंसे छूट जाता है ॥२०॥ जो पूर्ण योगी बनकर इन सबको अत्यन्त लघु बनाकर अपने वशमें कर लेता है वह अच्छी तरह ज्ञानी होजाता है फिर उसका जन्म इस संसारमें नहीं होता ॥२१॥ इन सातों धारणाओंको अपनी आत्मामें धारण करे तब सिद्धि पाकर संसार छोड़कर मोक्ष पावे ॥२२॥ जिन जीवोंमें योगी प्रेम करता है फिर उन्हीं योनियोंमें रहकर नष्ट होजाता है ॥२३॥ इस कारण जो मनुष्य इनको अच्छी तरह पहचानकर और इन्हें बन्धन समझकर छोड़ देता है वह परम पद (मोक्ष) पाता है ॥२४॥ इन्हीं सातों धारणाओंको धारणकर सबसे उदासीन

होकर अच्छे भाव जाननेवाला मनुष्य मुक्ति पाता है ॥२५॥ जो मनुष्य गन्ध, रूप, स्पर्श और रस आदि विषयोंमें प्रेम करता है वह वारम्बार जन्म पाता है और ब्रह्मसे अलग होजाता है ॥२६॥ जो मनुष्य योगसे इन सातों धारणाओंको धारणकर सूक्ष्म बनकर (इच्छा रूप होकर) जिन जीवोंकी इच्छा करता है उन जीवोंमें जाकर रहने लगता है ॥२७॥ देवता, दैत्य, गन्धर्व, नाग और राक्षसकी देहोंमें जाकर मिल जाता है पर उसमें सटता नहीं, वह जब चाहे अलग होसकताहै॥२८॥ अणिमा, लघिमा, महिमा, गरिमा प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व– ये आठ ऐश्वर्य्य सब काम पूर्ण करनेवाले हैं। इनके पानेसे मनुष्य निर्वाण (मोक्ष) पाता है ॥३०॥ छोटीसे भी छोटी अणिमा है, जल्दीसे भी जल्दी लघिमा है, गुरुता से गरिमा है, सबसे पूजित होनेके कारण महिमा है, सब वस्तु इसे मिल जाती है इससे प्राप्ति है, सबमें व्याप्त रहता है इससे प्राकाम्य है, यह ईश्वर होजाता है इससे ईशित्व है, सबको वशमें रखता है इससे वशित्व है। ये सब योगियोंके गुण हैं ॥३२॥ इनमें अनेक प्रकारकी इच्छाएं और अनेक प्रकारके काम होते हैं। ये सब आठों ऐश्वर्य्योंके कारण हैं ॥३३॥ मुक्तिका बतानेवाला निर्वाण है, निर्वाण होनेसे फिर उत्पन्न नहीं होता, न बढ़ता और न विनाश होता है ॥३४॥ इसका क्षय नहीं होता, रंग नहीं बदलता, यह काटा नहीं जाता, भिगोया नहीं जाता, जलाया नहीं जाता, सुखाया नहीं जाता॥३५॥ भूतादि वर्गोंसे संग नहीं करता शब्द आदिसे हरण नहीं किया जाता, इस सिद्धको शब्द आदि गुण उत्पन्न नहीं होते, शब्द आदिके भोग करनेवालेसे इसका संग नहीं होता ॥३६॥ जैसे सोनेका टुकड़ा आगमें तपानेसे साफ हो जाता है वैसेही योग भी दाह पानेसे साफ होकर ब्रह्ममें मिल जाता है ॥३७॥ यति (विरागी) योग रूपी अग्निमें तपानेसे कुछ अधिकता नहीं पाता किन्तु उसके सब दोष नष्ट होजाते हैं इससे वह ब्रह्ममें मिलकर एक होजाता है ॥३८॥ जिस तरह आगमें आग डाल

देनेसे कुछ विचित्रता नहीं होती वह दोनों एक होजाती हैं और वह दोनों आगही कही जाती हैं।३९॥ उसी तरह योगी सब दोषोंसे छूटकर ब्रह्ममें एक रूप होजाता है। वह कभी अलग नहीं होता॥४०॥ जिस तरह जलमें जल डाल देनेसे वह दोनों जलही जान पड़ता है, वह डाला हुआ जल अलग नहीं होसकता उसी तरह योगीकी आत्मा परमात्मामें मिलकर परमात्मा बन जाती है॥४१॥

इकतालीसवां अध्याय।

अलर्कने कहा कि हे भगवन्! मैं आपसे योगियोंकी व्यांच सुनना चाहता हूं जिससे ब्रह्मकी ओर चलता हुआ योगी नहीं थकता॥१॥ दत्तात्रेयने कहा—मानसे मनुष्योंको प्रसन्नता होती है, अपमानसे दुःख होता है। परन्तु योगियोंको मान-अपमानसे सुख दुःख नहीं होते तब सिद्धि मिलती है॥२॥ बुद्धिमान पुरुष मान और अपमानको विष और अमृत कहते हैं। अपमानको अमृत और मानको विष समझो॥३॥ आंखसे अच्छी तरह देख कर जमीन पर पैर रखे। कपड़ेसे छानकर पानी पीवे सत्यसे पवित्र करके वचन बोले और बुद्धिसे पवित्र करके चिन्ता करे॥४॥ योगी अतिथि होकर श्राद्ध, यज्ञ, देवयात्राके उत्सवोंमें और महाजनोंके पास कभी सिद्धिकी इच्छासे न जाय। जानेसे योग सिद्ध नहीं होता॥५॥ जब गृहस्थ रसोई कर चुके, आगका धुआं बुझ जाय, आगका अङ्गारा भी बुझ जाय और सब लोग खा पीकर सुचित्त होकर बैठ जायं तब योगी भिक्षा मांगने के लिये तीन घरोंमें जाय॥६॥ जिससे कोई निरादर न करे या उदास न हो इस प्रकार योगी आचरण करे। अपना अच्छा

रास्ता न बिगाड़े ॥७॥ योगी गृहस्थके घर वा किसी त्यागीके घर पर जाकर भिक्षा मांगे। पर गृहस्थके घरकी भिक्षा उत्तम है। योगीको गृहस्थहीके घरकी भीखसे जीवनका निर्वाह करना उचित है ॥८॥। सुशील, श्रद्धा करनेवाले, अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखने वाले, वेद पाठ करनेवाले और उत्तम चरित्रवाले गृहस्थसे भीख लेना योगीके लिये उत्तम है ॥९॥

इन गुणोंसे रहित ब्राह्मण तथा नीच पतित वा नीच जातिके घरसे भीख लेना योगियोंके लिये बड़ी निन्दाकी बात है ॥१०॥ लपसी, (एक प्रकारका हलवा) मट्ठा (विना घीका दही) दूध जौकी रोटी वा चून, फल, मूल (सुथनी आलू आदि) मालकांगुनी खुद्दी (चावलका बहुत छोट छोटा टुकड़ा) पीना (तिलकी खली) और सत्तू भीख मांग कर योगीको खाना उचित है। इन वस्तुओं को खानेसे योगी सिद्धि पाता है। ये आहार बहुतही अच्छे हैं। फिर उस भोजनको विधिसे खावे ॥१२॥ भोजनके पहले थोड़ासा जल पीकर सावधानीसे चुपचाप बैठ कर "प्राणायस्वाहा" ऐसा कह कर पहला ग्रास मुंहमें डाले। "अपानायस्वाहा" ऐसा कह कर दूसरा ग्रास खाय। "समानाय स्वाहा" ऐसा कह कर तीसरा ग्रास खाय। "उदानाय स्वाहा" ऐसा कह कर चौथा ग्रास खाय और "व्यानाय स्वाहा" ऐसा कह कर पांचवां ग्रास खाय ॥१४॥ इसके बाद बचा हुआ पदार्थ भोजन करे। फिर एक बार जल पी कर अच्छी तरह मुंह हाथ धो कर हृदय छूए ॥१५॥ योगी ब्रह्मचारी, और संन्यासीको उचित है कि वह चोरी न करे, ब्रह्मचर्यसे रहे (स्त्रीका संग न करे) और सांसारिक सुख छोड़ दे, लोभ न करे और जीव हिंसा न करे। ये पांचों उत्तम व्रत हैं ॥१६॥ क्रोध न करना, गुरुकी सेवा करना, पवित्र रहना, थोड़ा भोजन करना, और नित्य वेद पढ़ना, ये पांचों नियम योगियोंको करना उचित है ॥१७॥ जिससे अपना कार्य सिद्ध हो वही ज्ञान सीखे बहुत ज्ञान सीखना भी योगका विघ्न करनेवाला है ॥१८॥ जो

सन्तोष छोड़ कर "यह भी जानना चाहिये" "वह भी जानना चाहिये" ऐसा करता रहता है वह हजारों कल्पोंमें भी उत्तम ज्ञान नहीं पाता ॥१९॥ संसारी लोगोंका संग न करे, क्रोधको जीतले थोड़ा भोजन करे, इन्द्रियोंको अपने वशमें रखे, बुद्धिसे सब दरवाजों को बंद करके मनको ध्यानमें लगावे ॥२०॥ जहां कोई न हो ऐसी जगह वा पर्वतकी कन्दरामें वा वनमें बैठ कर सावधानीसे योगी अच्छी तरह ध्यान करे ॥२१॥ जिसके पास वाग्दंड, कर्मदंड और मनोदंड, ये तीन दंड रहते हैं वह महा त्यागी "त्रिदण्डी" कहलाता है ॥२२॥ जो जगत्की भली और बुरी सब वस्तुओंको "आत्ममय" (ईश्वर रूप) अथवा सगुण, वा निर्गुण रूप देखता है उसका कौन शत्रु है और कौन मित्र? ॥२३॥ जिसकी बुद्धि पाप रहित है जो मिट्टीके टुकड़े और सोनेको बराबर समझता है और सम्पूर्ण जीवोंमें ईश्वरको देखता है, वह योगी नाश रहित, नित्य परम धामको अच्छी तरह पहचान कर फिर जन्म नहीं पाता ॥२४॥ वेद पाठ सबसे अच्छा है, वेद पाठसे यज्ञ अच्छा है, यज्ञसे जप अच्छा है, जपसे ज्ञान अच्छा है और ज्ञानसे ध्यान अच्छा है क्योंकि ज्ञान हो जानेसे संसारका संग तथा राग (प्रेम) द्वेष (बैर) छूट जाता है, इनके छूट जानेसे नित्य ब्रह्म मिल जाता है ॥२५॥ महात्मा योगी, चित्त अपने वशमें रखे, सदा ब्रह्मका चिन्तन करे अपने धर्म पर दृढ़ रहे, पवित्र रहे, अकेला रहे, इन्द्रियोंको वशमें करे, तब वह योग पाता है और योग पानेसे मोक्ष पाता है ॥२६॥

बयालीसवां अध्याय ।

फिर दत्तात्रेयजी कहने लगे कि हे अलर्क! जो योगी अच्छी तरह सावधान रह कर इस प्रकार व्यवहार करता है वह हजारों

जन्म पाकर भी संसार बन्धनमें नहीं पड़ता ॥१॥ जो सम्पूर्ण विश्व के रूप धारण करनेवाले हैं, जिनके पैर, सिर और गरदनमें अनेक विश्व (संसार) हैं, जो विश्वके स्वामी हैं और जो संपूर्ण विश्वको उत्पन्न करनेवाले हैं उन परमात्माको प्रगट देख कर, उनको पानेके लिये "ओं" इस पवित्र अक्षरका जप करे उन्हींके रूपका ध्यान करे उन्हींका गुण सुने ॥३॥ अकार उकार और मकार इन तीनों अक्षरोंके मिलनेसे "ओं" यह अक्षर बनता है। उनमें अकार सत्वगुणकी मात्रा है, उकार रजोगुणकी मात्रा है और मकार तमोगुणकी मात्रा है ॥४॥ ओंकारके ऊपर रहनेवाली जो आधी मात्रा है वह निर्गुणकी मात्रा है उसका नाम "गान्धारी" है। वह गांधार स्वरसे गाई जाती है। उसे योगी लोग समझ सकते हैं। वह चींटीके समान धीरे धीरे चलती है, उसे कोई छू नहीं सकता न अच्छीतरह उच्चारण कर सकता है ॥५॥ जिसतरह ओंकारका उच्चारण करनेसे ओंकार सिरके ऊपर चढ़ जाता है उसी तरह ओंकारमें मिला हुआ योगी ऊपर चढ़ कर अक्षर (नाश रहित ब्रह्म)में मिल कर अक्षर (जन्म मरणसे रहित) हो जाता है ॥६॥ यह प्राण-धनुष है आत्मा बाण है और ब्रह्म एक अच्छा निशाना है। जिस तरह बाण छेदकर निशानेमें घुस जाता है उसी तरह सावधान आत्मा ब्रह्ममें घुस जाती है ॥७॥ "ओं" इस अक्षरको तीनों वेद तीनों लोक, तीनों अग्नि (दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य, आहवनीय) और तीनों देव समझो। अकारको विष्णु, उकारको ब्रह्मा और मकारको शिव समझो। इसी तरह अकारको ऋग्वेद, उकारको यजुर्वेद और मकारको सामवेद समझो ॥८॥ सत्य विचार किया जाय तो ओंकारमें साढ़ेतीन मात्रा हैं। जो योगी उसमें मिलता है वही अन्तमें ब्रह्ममें मिलजाता है ॥९॥ अकार को भू लोक जानो, उकारको भुवर्लोक जानो और व्यंजन सहित मकारको स्वर्ग लोक जानो ॥१०॥ प्रथम मात्राको प्रगट समझो द्वितीय मात्राको अप्रगट (गुप्त रूप) समझो, तृतीय मात्राको चैतन्य

शक्ति (ज्ञान रूप) समझो और अर्द्धमात्राको परमब्रह्म समझो ॥११॥ इसी क्रमसे इनको योगभूमि समझो। ओंकारके उच्चारण करनेसे नित्य और अनित्य दोनोंका उच्चारण हो जाता है ॥१२॥ ओंकार की पहली मात्रा ह्रस्व (छोटी), दूसरी मात्रा दीर्घ (बड़ी) और तीसरी मात्रा प्लुत (बहुत बड़ी) है और चौथी मात्राका उच्चारणही नहीं हो सकता ॥१३॥ यह "ओंकार" अक्षर परब्रह्मका स्वरूप है। जो मनुष्य इस अक्षरको जानता है और जप करता है वा ध्यान करता है वह संसार छोड़ कर तीनों प्रकारके बन्धनोंसे छूट कर परमात्मा परब्रह्ममें लीन हो जाता है ॥१५॥ जिस का कर्मबन्धन नहीं छूटा है और मृत्युका समय समीप आगया है वह मृत्युके समय ओंकारका स्मरण करनेसे मोक्ष पाता है ॥१६॥ इस कारण योगीको उचित है कि वह सिद्ध हो वा असिद्ध हो, पर "अरिष्ट" को समझे जिससे मृत्युके समय दुःख न पावे ॥१७॥

तैंतालीसवां अध्याय।

दत्तात्रेय बोले—हे अलर्क! अब मैं उन अरिष्टोंको बताता हूं जिन्हें देखनेसे योगी अपनी मौतकी बात जान जाता है ॥१॥ जो देव मार्ग (रातको आकाशमें धौले रंगकी सड़कसी दीखती है) ध्रुव तारा, शुक्र तारा चन्द्रमाकी परछाहीं और अरुन्धती तारा नहीं देख सकता वह मनुष्य एक वर्षसे अधिक नहीं जीता ॥२॥ जो सूर्यका मण्डल किरणके विना और अग्निको किरणसे घिरी हुई देखता है वह ग्यारह महीनेसे अधिक नहीं जीता ॥३॥ जो अपनी उन्नान्त (कय) में पेशाबमें और विष्ठामें सोना वा चांदी देखता है वह दस महीने जीता है ॥४॥ जो भूत, प्रेत, पिशाच आदि

गंधर्व नगर (खाली मैदानमें एक सुन्दर शहर) और पेड़ोंको सोनेके समान चमकीला देखता है वह नौ महीने जीता है ॥५॥ जो मोटा आदमी अचानक पतला होजाता है और जो पतला आदमी अचानक मोटा होजाता है वह आठ महीने जीता है ॥६॥ जिसकी एड़ीका दाग वा पैरकी उंगलियोंका दाग धूल वा कीचड़में नहीं पड़ता वह सात महीने जीता है ॥७॥ जिसके सिर पर गिद्ध, कबूतर, कागा (वह कौआ जिसका शरीर बहुत काला होता है) कौआ, राक्षस, काली चिड़िया वा कोई और मांस खानेवाली चिड़िया आकर बैठ जाय वह छः महीने जीता है ॥८॥ जिसके सिरमें कौआ आकर अपनी चोंचसे मार जाय वा जिसके सिर पर धूल बरसे वह पांच महीने जीता है। जो अपने शरीरकी परछाहीं नहीं देखता वा उलटी पुलटी देखता है वह चार महीने जीता है ॥९॥ आकाशमें बादल न होने पर भी उस समय जो दक्षिण दिशाकी ओर आकाशमें बिजली देखता है वह तीन महीने जीता है। जो रातको इन्द्रधनुष (आकाशमें कभी कभी बरसातके दिनोंमें धनुष देख पड़ता है जिसमें सात तरहके रंग होते हैं) देखता है वह दो महीने जीता है ॥१०॥ जो मनुष्य घीमें, तेलमें वा आईनेमें अपना शरीर नहीं देख सकता वा अपना सिर नहीं देखता वह एक महीनेसे अधिक नहीं जीता ॥११॥ जिस के शरीरसे चर्बीकी तरह वा मुरदेकी तरह दुर्गन्ध आती है वह आधे महीने जीता है ॥१२॥ स्नान करते करते जिसका पैर और हृदय सूख जाता है वा जल पीते पीते कंठ सूख जाता है वह दस दिन जीता है ॥१३॥ जिसके शरीरके मर्मस्थानों (जिसमें ज्यादा चोट लग जानेसे आदमी मर जाता है) को हवा फैल कर चोट देने लगती है जिसका मन जल पीनेसे वा छूनेसे कुछ भी प्रसन्न नहीं होता उसके सिर पर मौत खड़ी है (अर्थात् वह आदमी तुरत ही मर जाता है) ॥१४॥ जो स्वप्नमें बानर वा भालूकी सवारी पर चढ़कर, गाता हुआ दक्षिणकी ओर जाता है वह तुरतही मर

जाता है ॥१५॥ जिसको स्वप्नमें कोई स्त्री लाल वा काला कपड़ा पहनकर गाती वा हंसती हुई दक्षिणको ओर लेजाती है वह तुरत मर जाता है ॥१६॥ जो स्वप्नमें एक महावली जैन साधुको नंगे वा हंसते वा बोलते देखता है वह तुरतही मर जाता है ॥१७॥ जो आदमी स्वप्नमें देखता है कि "मैं कीचड़में डूब गयाहूं मेरा सिर भी वाहर नहीं है" वह तुरतही मरजाता है ॥१८॥ जो स्वप्नमें वाल, अंगारा, राख, सांप, और सूखी नदी देखता है वह दस वा ग्यारह दिनमें मर जाता है ॥१९॥ जो स्वप्नमें देखता है कि "बड़े डरावने विकट तथा काले आदमी तलवार आदि हथियारसे वा पत्थरसे मुझे मारते है" वह तुरत ही मर जाता है ॥२०। सूर्य्य के उग जानेके वाद जिसके सामने वा वाएं दाहिने सियारी रोती हुई चली जाती है वह तुरत मर जाता है ॥२१॥ भोजन करनेसे भी जिसकी भूख नहीं जाती और दांत आपसमें टकराते हैं वह तुरतही मर जाता है इसमें कुछ संदेह नहीं ॥२२॥ चिराग बुझ जाने पर उसकी दुर्गन्ध जिसको नहीं जान पड़ती जो दिन रात विना कारण डरा करताहै और जिसको अपनी परछाहीं दूसरे की आंखोंमें नहीं देख पड़ती वह तुरतही मर जाता है। २३॥ जो आधी रातको इन्द्र धनुष और दिनको सब तारे देखता है वह तुरतही मर जाता है ॥२४॥ जिसकी नाक टेढ़ी हो जाय कान ऊंचे वा नीचे हो जायं वा वाईं आंखसे पानी गिरने लग जाय उसके प्राण मानो चलेही गये हैं (अर्थात् वह तुरत ही मर जायगा) ऐसा समझो ॥२५॥ जिसका मुंह एकदम लाल हो जाय और जीभ काली हो जाय वह वहुत जल्द मरेगा, ऐसा समझो ॥२६॥ जो स्वप्नमें ऊंट वा गदहेकी सवारी पर चढ़ कर दक्षिण दिशाको जाता है वह तुरत मरता है इसमें संदेह नहीं ।२७॥ जो अपना कान वन्द करने पर अपनी कही हुई वात नहीं सुनता और जिसकी आंखकी चमक नष्ट हो जाती है वह तुरतही मर जाता है ॥२८॥ जो स्वप्नमें देखता है कि मैं एक

गढ़ेमें गिर गया उसका मुंह बन्द हो गया मैं उसीमें बन्द हो गया फिर न निकाला, वह बहुत जल्द मरता है इसमें कुछ भी संदेह नहीं ॥२९॥ जिसकी नजर ऊपर नहीं उठती, जिसकी आंखें लाल हो कर घूमने लगती हैं, मुंह गरम हो जाता है और नाभी ठंढी हो जाती है वह उसी समय मर जाता है ॥३०॥ जो स्वप्नमें आग वा जलमें घुस कर फिर नहीं निकलता वह तुरत ही मरता है ॥३१॥ जिसको भूत वा प्रेत दिन वा रातको मारते पीटते हैं वह सात दिनके भीतर जरूर ही मर जाता है ॥३२। जो आदमी अपने निर्मल स्वेत वस्त्र को काला वा लाल देखता है वह बहुत जल्द मरता है ॥३३॥ जिस का स्वभाव अनायासही बदल जाता है वह भी जल्द मर जाता है ॥३४। जो पुरुष बड़ा सुशील है, यदि वह दुष्ट होकर अपनेसे नम्र रहनेवाले मनुष्योंको और अपने पूज्य बड़ोंकी निन्दा करने लगे, देवताओंकी पूजा करना छोड़ दे, वृद्ध, गुरु तथा ब्राह्मणोंकी निन्दा करने लगे, माता पिताका आदर न करे, दामादका आदर करे, योगी, ज्ञानी, पण्डित और महात्माओंका निरादरकरे तो समझना कि वह बहुत जल्द मरेगा ॥३७॥ योगी यत्नपूर्वक "अरिष्ट" से बचता रहे। सदा इसका ध्यान रखे, ये अरिष्ट एक वर्षके बाद तो अवश्यही फल देते हैं ॥३८॥ योगी इस बातको अच्छी तरह सोच कर उसके भयानक फलोंकी शान्ति करे। मनमें अच्छी तरह विचार कर उसका उपाय करे ॥३९॥ कालको अच्छी तरह पहचान कर जहां किसी तरहका डर न हो ऐसी जगह चला जाय और वहां योगमें लगा रहे जिससे उसका समय व्यर्थ न जाय ॥४०॥ योगी अरिष्टको देख कर मरनेका डर छोड़, कालको आया हुआ समझकर उस दिन सावधानीसे योग करे। प्रातःकाल, मध्याह्न काल सायंकाल और रात्रिके समय योगका अभ्यास करे। योगी योग करके कालको जीत कर सब प्रकारके भयसे छूट जाय। फिर उसी मठमें रहे अथवा जहां अपना चित्त प्रसन्न हो वहां रहे ॥४४॥

तीनों गुणोंको जीत कर परमात्मामें चित्त लगा ईश्वरमय हो जाय। फिर ईश्वरका रूप बन कर सब प्रकारके बाहरी ज्ञानका त्याग करे ॥४५॥ तब जिसे कोई इन्द्रियां नहीं समझ सकतीं, जिसका रूप कोई नहीं देख सकता जिसे बुद्धि नहीं जानती, जिसे कोई कह नहीं सकता उस परम निर्वाण (मोक्ष) स्वरूप ईश्वरको योगी पाजाता है ॥४६॥ हे अलर्क, मैंने सब उपाय संक्षेपमें तुमसे बता दिये जिनसे तुम ब्रह्मको पाजाओगे ॥४७॥ चन्द्रमाकी चन्द्रिकाके संगसे चन्द्रकान्तमणि जल बरसाता है। उसी प्रकार योगीके संग ब्रह्मका रूप प्रगट हो जाता है इस लिये योगीको चन्द्रमाकी उपमा दीजाय तो कोई अनुचित नहीं है ।४८। सूर्यकी किरणोंके संग से सूर्यकान्तमणि आग बरसाता है इस लिये योगीको सूर्यकी उपमा भी दी जासकती है। ४९॥ चींटी, चूहा, नेवला गोह, छिपकली आदि जीव स्वामीके समान घरमें रहतेहैं पर जब घर गिर जाता है तब दूसरी जगह चले जाते हैं ॥५०॥ घरके गिर जाने पर उस घरके मालिकको दुःख होता है, उन जीवोंको कुछ भी दुःख नहीं होता। कारण यह कि जहां वे रहें वहीं उनका घर है उसी तरह योगीको योग सिद्धिके लिये जहां इच्छा जान पड़े वहां रहे ॥५१॥ दीमक बड़ा छोटा जंतु है उसका मुंह भी बहुत छोटा है पर वह जन्तु इकट्ठा करते करते मिट्टीकी ढेरी लगा देता है उसीतरह योगी थोड़ा थोड़ा उपदेश सुनते सुनते बड़ा भारी ज्ञानी बनजाता है।५२॥ पत्ते, फूल और फलोंसे लदे हुए पेड़को पशु, पक्षी और मनुष्य उसके पत्ते, फूल और फल ले ले कर सूना कर देते हैं उसी प्रकार योगीके सब प्रकारके उपदेश उसके सब दोषोंको नष्ट कर देते हैं इससे योगी सिद्धि पाजाता है ॥५३॥ हरिनका सींग बचपनमें तिलके बराबर छोटा रहता है पर उसके शरीरके साथ बढ़ते बढ़ते वह भी बहुत बड़ा हो जाता है उसी तरह धीरे धीरे योगी बड़ा भारी सिद्ध होजाता है ॥५४॥ पनिहारिन जलका भरा घड़ा लेकर बहुत ऊंचे कोठे पर चढ़ जाती है उसी तरह योगी अनेक

प्रकारका संसारी बोझ लेकर उच्च पद पाजाता है ॥५५॥ जिस प्रकार धनी पुरुष अथाह धन भूमिमें गाड़ कर सुखसे जीवन बिताता है उसी प्रकार योगी चिन्ता रहित हो कर सुखसे जीवन बिता देता है ॥५६॥ योगी जहां रहे वहीं उसका घर है, जिससे देह ठहरे वही भोजन है.जिससे अपना कार्य्य सिद्ध हो वही सुख है। इस जगतमें योगीको ममता न करनी चाहिये ॥५७॥ जिस तरह मनुष्य सब इन्द्रियोंको प्रेरणासे सब काम करता है उसी तरह योगी भी बुद्धिकी प्रेरणासे परलोक साधनका सब काम करता है ॥५८॥

पुत्र अपने पितासे कहने लगा—हे पिता! यह बात सुनकर अलर्क बड़ी बिनतीसे प्रणाम करके बड़ी प्रसन्नताके साथ दत्तात्रेयसे बोला ॥५९॥ हे मुने! मेरा भाग्योदय हुआ कि मुझे शत्रुसे हारकर प्राण जानेका डर हुआ जिसको छुड़ानेके लिये मैं आपकी शरणमें आया ॥६०॥ यह भी मेरा भाग्योदयही समझना चाहिये कि काशीका राजा अपनी बड़ी भारी सेना लेकर मुझे जीतनेके लिये आया। मैं उसे नाश करनेकी इच्छासे आपकी शरणमें आ कर आपके संगसे सुखी हुआ ॥६१॥ भाग्यहीसे मेरी सेना मारी गई, भाग्यहीसे मेरे नौकर मारे गये, भाग्यहीसे मेरा खजाना लूट गया, भाग्यहीसे मैं डर गया ॥६२॥ भाग्यहीसे आपके दोनों चरण मुझे याद आगये, भाग्यहीसे आपकी कही हुई उपदेशकी बातें मेरे मनमें बैठ गईं ॥६३॥ भाग्यहीसे आपका संग पाकर ज्ञान हुआ और मेरे भाग्यहीसे आपने मुझ पर दया की ॥६४॥ जब मनुष्यका भाग्योदय होता है तब दुःख भी सुख देनेवाला होजाता है। देखिये यह विपत्ति भी आपके संगसे उपकार करनेवाली हुई ॥६५॥ मेरा भाई सुबाहु और काशिराज मेरे उपकारीही हुए। उन्हीं दोनोंकी कृपासे हे योगीश! मैं आपकी शरणमें आया ॥६६॥ आपकी प्रसन्नता रूपी अग्निसे मेरा अज्ञान तथा पाप रूपी तृण भस्म होगया। अब मैं ऐसा उपाय करूंगा जिससे फिर मुझे ऐसा दुःख न हो ॥६७॥ मैं अब परिवारको छोड़ दूंगा।

यह जगत् दुःख रूपी वृक्षोंका वन है। आप मेरे ज्ञान देनेवाले महात्मा गुरु हैं इस लिये अब आप मुझे आज्ञा दीजिये ॥६८॥ दत्तात्रेयने कहा कि राजेन्द्र! अब तुम जाओ, तुम्हारा कल्याण हो, जिसतरह मैंने तुम्हें शिचादी है उसीके अनुसार तुम ममत्व छोड़ कर अहंकारका त्याग करके मुक्तिके लिये उपाय करो।६९॥ यह बात सुनकर अलर्क दत्तात्रेयको प्रणाम कर वहां चला गया जहां उसका बड़ा भाई सुवाहु और काशीका राजा था।७०॥ अलर्क काशीपति और अपने बड़े भाईके पास पहुंचकर हंसता हुआ बोला ॥७१॥ हे काशिराज! तुम राज्य चाहते हो तो राज्य लेकर भोग करो अथवा तुम्हारी इच्छा हो तो सुवाहुको देदो ॥७२॥ काशिराजने कहा—हे अलर्क! तुमने विना लड़ेही राज्य क्यों छोड़ दिया? यह चत्रियका धर्म नहीं है। तुम तो चत्रियोंका धर्म अच्छी तरह जानते हो ॥७३॥ राजा अपने मन्त्री आदि सब नौकर चाकरोंको अपने वशमें रखकर, मरनेका डर छोड़कर, वैरी को निशाना बनाकर वाण चलावे।७४॥ राजा शत्रुको जीतकर मनमाना सुख भोगकर अपने मोक्षकी चाहसे यज्ञ करे॥७५॥ अलर्कने कहा—हे वीर! मैं भी पहले अपने मनमें ऐसाही समझता था पर अब उलटा समझता हूं इसका कारण तुम्हें बताताहूं सुनो ॥७६॥ जैसा मनुष्यका यह शरीर है वैसाही मन भी है उसी तरह सब जन्तुओंमें सब गुण रहते हैं ।७७॥ किन्तु जब मनुष्यमें ज्ञानकी उत्पत्ति होजाती है तब मित्र कौन है? शत्रु कौन है? मालिक कौन है? और नौकर कौन?॥७८॥ राजन्! तुम्हारे डरसे मैं दुखी होकर दत्तात्रेय मुनिकी शरणमें चला गया और उन्हींकी कृपासे मुझे उत्तम ज्ञान मिल गया ॥७९॥ अब तो सब इन्द्रियोंको जीतकर, सबका संग छोड़कर, ब्रह्ममें मन लगाकर मनको जीतनेहीमें जीत है ॥८०॥ अपनी सिद्धिके लिये दूसरा कोई उपाय करना व्यर्थ है। केवल इन्द्रियोंहीको जीतकर मनुष्य सिद्धि पाता है ॥८१॥ राजन्! मैं तुम्हारा शत्रु नहीं हूं, तुम

मेरे शत्रु नहीं हो और सुबाहुने भी मेरा कुछ नहीं बिगाड़ा है मैंने सब बातें अच्छी तरह देख और सुनलीं, अब तुम दूसरा शत्रु, तलाश कर ढूंढ़लो ॥८२॥ अलर्ककी यह बात सुनकर सुबाहु प्रसन्न हो कर खड़ा होगया और उसने भाईकी अत्यन्त प्रशंसा करके काशि-राजसे इस प्रकार कहा ॥८३॥

चौवालीसवां अध्याय।

सुबाहु बोला—हे काशिराज! जिसके लिये मैं आपकी शरण में गया था वह सब आज मुझे मिल गया। मैं अब जाता हूं। तुम सदा सुखी रहो ॥१॥ काशिराजने पूछा—सुबाहु! तुम किस लिये हमारे पास आये थे और कौन तुम्हारा काम सिद्ध होगया यह समझाकर कहो। मुझे सुननेकी बड़ी इच्छा है ॥२॥ तुमने तो मेरे पास आकर कहा था कि मेरे बाप दादेका बड़ा भारी राज्य अलर्कने लेलिया है आप उसे जीतकर मेरा राज्य मुझे दे दीजिये ॥३॥ तब मैंने तुम्हारे भाईको दबाकर तुम्हारा सब राज्य लेकर तुम्हें सौंप दिया अब तुम अपने कुलकी रीतिसे राज्यका पालन और भोग करो ॥४॥ सुबाहुने कहा—काशिराज! सुनो कि किसलिये मैंने तुम्हें लड़नेको तय्यार किया और स्वयं लड़ने को तय्यार हुआ और हम दोनोंने बड़े बड़े उद्योग किये ॥५॥ यह मेरा भाई अलर्क नीच सुखभोगमें लवलीन था। मेरे बड़े भाई बड़े बुद्धिमान और बड़े ज्ञानी हैं ॥६॥ हे काशिराज! मेरी माताने लड़कपनहीमें दोनो बड़े भाइयोंके मुंहमें दूध डालनेके साथही साथ दोनोंके कानमें ज्ञान भी डाल दिया ॥७॥ जिनको मनुष्यमात्र अच्छा समझते हैं वे पदार्थ जिस प्रकार माताने उन्हें बताये और प्रगट कर दिखला दिये उस प्रकार अलर्कको नहीं बताये ॥८॥ जिस

प्रकार एक साथ रहनेवाले मनुष्योंमें एकके दुखी होनेसे सज्जनोंको दुःख होता है उसी प्रकार अपने छोटे भाईको अवस्था देखकर मुझे दुःख होता था ॥८॥ यह गृहस्थके कार्य्योंके मोहजालमें पड़कर कष्ट पाता था। "यह मेरा भाई है" ऐसा जो विचार है वही मुझे कष्ट देरहा था ॥१०॥ मैंने निश्चय कर लिया था कि इसे कष्ट पानेसे विराग उत्पन्न होगा—इसीसे आपको लड़नेके लिये तय्यार किया ॥११॥ अब इसे कष्टसे ज्ञान उत्पन्न होगया। अब इसको अच्छी शिक्षा होगई। यह काम पूरा होगया। तुम्हारा कल्याण हो। अब मैं जाता हूं ॥१२॥ यह मदालसाके गर्भमें रहकर उसका दूध पीकर दूसरी स्त्रीके पुत्रकी चाल न चले ॥१३॥ यही मेरी इच्छा थी। आपके संगसे यह सब काम पूरा होगया। अब मैं फिर अपनी सिद्धिके लिये जाऊंगा ॥१४॥ जो अपने वन्धु, परिवार तथा मित्रोंको कष्टमें देखकर उनके कष्ट छुड़ानेके लिये उपाय नहीं करते वे चेतन जीवन नहीं हैं मैं उन्हें जड़ समझता हूं ॥१५॥ यदि कोई मनुष्य अपने मित्र, वन्धु और परिवारके समर्थ रहते कष्ट पावे तो उक्त मित्र, वन्धु और परिवारके धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष नष्ट होजाते हैं। उसमें वह दोषी नहीं है ॥१६॥ हे राजा! तुम्हारे ही संगसे मैंने यह बड़ा काम किया है। हे सत्पुरुष! अब मैं जाता हूं, तुम्हारा कल्याण हो और तुम्हें ज्ञान उत्पन्न हो ॥१७॥ काशिराजने कहा—सुवाहु! तुमने तो अलर्कका बड़ा भारी उपकार किया है। पर मेरे उपकारके लिये क्यों नहीं कोई उपाय करते ॥१८॥ सज्जनोंका संग व्यर्थ नहीं जाता, इससे सज्जनों का संग करना उचित है। इस कारण मैंने तुम्हारे संगसे बड़ी उन्नति पाई है ॥१९॥ सुवाहुने कहा—काशिराज! धर्म्म, अर्थ काम और मोक्ष—ये चारों पुरुषार्थ कहलाते हैं, उनमें धर्म्म अर्थ और काम तो नष्ट होजाते हैं पर मोक्ष रह जाता है वह नष्ट नहीं होता है ॥२०॥ मैं तुमसे इनकी सब बातें थोड़ेमें कह देता हूं तुम मन लगाकर सुनो। सुननेके वाद विचारकर अपनी भलाईके

लिये उपाय करना ॥२१॥ तुम अपने मनमें कभी ऐसा मत सोचना कि "मैं हूं" "यह मेरा है" सदा धर्म्मको याद रखो। विना धर्म्मके कोई सहारा देनेवाला नहीं है ॥२२॥ तुम अपने मनमें सदा चिन्ता करो कि 'मैं किसका हूं'। ब्राह्मी मुहूर्त में उठकर अपने भीतर और बाहर अपनी आत्माको देखो ॥२३॥ जो गुप्त है, आदि, मध्य तथा अन्त रहित है, विकारसे शून्य है, ज्ञान रहित है, कहीं गुप्त और कहीं प्रगट है, उस आत्माको विचारो। "मैं कौन हूँ" यह समझो ॥४२॥ इतनाही जाननेसे तुम सारा जगत् जान जाओगे। अनात्माको आत्मा समझना और जो अपना नहीं, उसको अपना जानना इसीको मूर्खता कहतेहैं॥२५॥ मैं सर्वव्यापी हूँ, पर लोक व्यवहारसे एकही किसी स्थानमें रहता हूं। हे राजा! मैंने तुम्हारे पूछनेसे ये बातें कही हैं। अब मैं जाता हूँ॥२६॥ सुबाहु काशिराजसे यह कहकर चला गया और काशिराज भी अलर्कको पूजा और सत्कारकर अपने घर चला गया ॥२७॥ अलर्क भी अपने राज्यपर अपने पुत्रको बिठा संसारी सुख छोड़ कर अपनी सिद्धिके लिये बनमें चला गया ॥२८॥ बहुत दिनोंके बाद सब मायाजालसे छूटकर अतुल योगकी सम्पत्ति पाकर परम मोक्ष पागया ॥२९॥ वह अलर्क संपूर्ण देव, दैत्य और मनुष्योंसे परिपूर्ण जगतमें संपूर्ण प्राणियोंको मायाजालमें फंसा हुआ देखने लगा ॥३०॥ सभीको देखता था कि पुत्र, पौत्र, भतीजे, भांजे आदि अपने पराये आदिके विचारमें लगे हैं, सभी दुखी हैं और सभी अज्ञानसे भरे हैं।३१॥ सबको देखता था कि अज्ञान रूपी अथाह कीचड़में फंसे हैं और मैं उस अज्ञान रूपी कीचड़से निकल गया हूं। तब वह यह गाथा गाने लगा॥३२॥ "अहो कष्टं यदस्माभिः पूर्वं राज्यमनुष्ठितम्। इति पश्चान्मया ज्ञातं योगान्नास्ति परं सुखम्" (अर्थात् मैं पहले राज्यमें लिपटा था यह बड़े दुःखकी बात है अब मैंने यह बात अच्छी तरह जानली है कि योगसे बढ़कर दूसरा कोई सुख नहीं है) ॥३३॥

इतनी कथा कहकर पुत्रने कहा कि हे पिता! तुम अपने मोक्षके लिये उत्तम योग करो, जिससे उस ब्रह्मको पाजाओगे। वहां जाओगे जहां जानेसे फिर नहीं सोचोगे ॥३४॥ उसके बाद मैं भी चला जाऊंगा। मुझे जप वा यज्ञसे कुछ काम नहीं। जो शांतशान्त है उसके सब काम ब्रह्म पानेके लिये हैं ॥३४॥ अब मैं तुमसे आज्ञा पाकर संसारसे अलग हो मोक्ष पानेका यत्न करूंगा जिससे फिर इस संसारमें न आना पड़े ॥३६॥ इतनी बात सुनाकर पक्षियोंने कहा—हे जैमिनि! वह पुत्र इस प्रकार अपने पिताको समझाकर उनसे आज्ञा ले मोक्ष साधनके लिये वनमें चला गया ॥३७॥ उसका बुद्धिमान पिता भी बानप्रस्थ होकर वनमें चला गया ॥३८॥ वनमें जा पुत्रसे ज्ञान पाकर सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुणसे उत्पन्न बन्धनोंसे छूटकर विमल ज्ञान सहित मोक्ष पा गया ॥३९॥ हे जैमिनि! तुमने जो बात पूछी उसका उत्तर हमने देदिया। अब तुम्हें क्या सुननेकी इच्छा है कहो ॥४०॥

पैंतालीसवां अध्याय।

जैमिनि बोले कि हे पक्षिगण! आप लोगोंने कृपा करके प्रवृत्ति और निवृत्ति नामक दो प्रकारके वेदके मार्ग मुझे बताये ॥१॥ आप लोग धन्य हैं कि अपने पिताकी कृपासे ऐसा उत्तम ज्ञान पा गये हैं जिससे पक्षी होकर भी आप लोगोंने मायाजालका निरादर कर दिया है ॥२॥ आप लोगोंको मैं धन्यवाद देता हूं। अपनी सिद्धिके लिये आपलोगोंका मन जैसा मनुष्य शरीरमें था वैसाही अब भी है। विषयसे उत्पन्न होनेवाले मोहसे कुछ भी चलायमान नहीं हुआ ॥३॥ यह मेरे उत्तम भाग्यके लक्षण हैं कि श्रीमान् भगवान्

मार्कण्डेयने मुझे बताया था कि पक्षी तुम्हारे सब सन्देह छुड़ा देंगे ॥४॥ अत्यन्त दुःखदायी संसारमें घूमते हुए तपस्वी मनुष्योंको आप लोगोंके समान महात्माओंका संग मिलता है, पापियोंको नहीं मिल सकता ॥५॥ यदि आप लोगोंके समान ज्ञानी महात्माओंका संग नहीं होता तो मैं इस तरह कभी धन्यभागी न होता ॥६॥ प्रवृत्ति और निवृत्तिके ज्ञान मार्गमें जैसी आप लोगोंकी बुद्धि निर्मल है वैसी किसी दूसरेकी नहीं। मैं यह बात अच्छी तरह जानता हूं ॥७॥ हे पक्षियो! यदि आप लोगोंकी मुझपर कृपा है तो यह भी बातें अच्छी तरह समझा कर कहिये कि यह चर और अचर जगत् कैसे उत्पन्न हुआ और प्रलयके बाद फिर कैसे उत्पन्न होगा ॥८॥ देवता, ऋषि, पितर और भूत आदिसे कैसे वंशोंकी उत्पत्ति हुई? मनु लोग कैसे हुए? उनके वंश कैसे हुए? ॥१०॥ कितनी सृष्टि है, कितने प्रलय हैं, कितने कल्प बनाये गये, कितनी मनुष्योंकी स्थिति हुई, कितने दिनों तक पृथिवी ठहरती है, कितनी बड़ी पृथिवी है, किस तरह समुद्र, गंगा आदि नदी, अनेक वन भूलोकसे लेकर स्वर्गलोक तक, अतलसे लेकर पाताल तक ठहरे हैं? किस तरह सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह नक्षत्र आदि घूमते हैं और संसारके नष्ट हो जाने पर क्या बच जाता है? इन सब बातों को अच्छी तरह आप लोगोंसे मैं सुनना चाहताहूं ॥१४॥ पक्षियोंने कहा कि हे मुनिवर! जो प्रश्न आपने किया है वह बहुत बड़ा है तोभी हम आपसे कहते हैं हे जैमिनि! सुनिये ॥१५॥ जिस तरह पहले मार्कण्डेयने ब्राह्मणके पुत्र, व्रतमें स्नान करनेवाले, सुशील और बुद्धिमान क्रौष्टुकिसे कहा था ॥१६॥ एक दिन महात्मा मार्कण्डेय मुनि ब्राह्मणोंके बीच बैठे थे। उस समय क्रौष्टुकिने यही बात मार्कण्डेयजीसे पूछी थी ॥१७॥ भृगु वंशमें उत्पन्न मार्कण्डेय मुनिने क्रौष्टुकिसे जो बातें कहीं वही बातें हम तुमसे कहते हैं सुनो ॥१८॥ पहले हम जगतके स्वामी ब्रह्मा जो संसारको उत्पन्न करते हैं, विष्णु भगवान् जो संसारका पालन करते हैं,

भयानक रूपवाले रुद्र जो जगतका नाश करते हैं, उनको प्रणाम करतेहैं ॥१९॥ मार्कण्डेयजी कहने लगे कि हे विप्र बालक! पहले ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उत्पन्न होतेही उनके मुंहसे वेद तथा पुराण आदि ग्रन्थ उत्पन्न हुए ॥२०॥ उसके बाद बड़े बड़े ऋषियोंने संहिता बनाई और वेदोंके भी सहस्रों खण्ड कर डाले ॥२१॥ महात्माओंके मुंहसे उन ग्रन्थोंके सुनने और उपदेश पानेसे धर्म ज्ञान होता है, वैराग्य होता है और ऐश्वर्य होता है। बिना सुने अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष नहीं मिल सकते ॥२२॥ ब्रह्माके मनसे उत्पन्न होनेवाले सातों ऋषियोंने ब्रह्मासे वेद पढ़े। फिर उन सातों ऋषियोंके मनसे उत्पन्न होनेवाले आदि ऋषिने उन सातों ऋषियों से पुराण सीखे ॥२३॥ भृगुसे च्यवनने सीखे, च्यवनने ब्राह्मणोंको सिखलाये। ऋषियोंने यह सब बातें दक्ष प्रजापतिको बताईं ॥२४॥ तब दक्षने मुझसे कहीं। वह कलिपापनाशिनी कथा आज मैं तुमसे कहता हूं ॥२५॥ जिस तरह दक्षने उसे मुझसे समझाकर कहा था उसी तरह मैं तुमसे समझा कर कहता हूं तुम सावधान हो कर सुनो ॥२६॥ जगतके पैदा करनेवाले, जन्मसे रहित, नाशरहित चर और अचरकी रक्षा करनेवाले, जगतके पालनेवाले परम पुरुष आदि पुरुष संसारको उत्पन्न, पालन और संहार करनेवाले, जिसकी उपमा नहीं हो सकती, जिसमें सारा संसार रहता है, उन हिरण्य-गर्भ, लोक स्वामी भगवान्‌को प्रणाम करके सब कथा अच्छी तरह तुमसे समझा कर कहता हूं ॥२९॥ "महत्" तत्वसे लेकर "विशेष" (बहुत छोटा जो आंखसे न देख पड़े) तत्व का लक्षण और भेद जो पांचों प्रमाणोंसे जाना जाता है, जो सत्यसे पूर्ण है जिसमें पर पुरुष (परमेश्वर) की शक्ति रहती है. जो नित्य है पर अनित्य सा जान पड़ता है उसे मैं तुम्हें बताता हूं तुम मन लगा कर सुनो ॥३१॥ जो सबका प्रधान कारण है उसे महर्षि लोग "अव्यक्त" कहते हैं। उसे सूक्ष्म, नित्य सत्य, असत्य, ध्रुव नाश रहित, बुढ़ापेसे रहित, तौलसे रहित और सबका आश्रय "प्रकृति"

कहते हैं। वह गन्ध, रूप, रस, शब्द और स्पर्शसे विवर्जित है अलग है, आदि अन्त रहित है, जगतको पैदा करनेवाली है, सत्व गुण, रजोगुण तथा तमोगुणको उत्पन्न करनेवाली है। वह आदि अन्त रहित है। उसे कोई नहीं जान सकता। उस प्रकृतिको कोई कोई ब्रह्म कहते हैं। सबसे पहले ब्रह्म था ॥३४॥ उसने प्रलयके बाद सारे जगतको चारों ओरसे घेर रखा था। उस समय तीनों गुण बराबर रहते हैं और पुरुषमें छिप कर रहते हैं ॥३५॥ जब सृष्टि होने लगती है तब गुणोंसे प्रधान तत्व "महत् तत्व" उत्पन्न हो कर चारों ओर फैला रहता है ॥३६॥ जिस तरह बीज गुठलीके भीतर रहता है उसी तरह अज्ञानसे महत् तत्व घिरा रहता है। उसके बाद सात्विक, राजस और तामस गुण प्रगट हुए। उनसे तीन प्रकारका अहंकार पैदा हुआ। उसके विकारसे तेज हुआ और तामस विकार भूत (जीव) हुआ। जिस तरह अव्यक्तसे "महत् तत्व" घिरा रहता है उसी तरह महत् तत्वसे भूत आदि घिरे रहते हैं। भूत आदि विकृत हो कर "शब्द मात्रा" बन जाते हैं। शब्द मात्रासे आकाश बन जाता है जिसका गुण शब्द है। शब्द मात्रा आकाशको भूतादि घेरे रहते हैं ॥५०॥ उस आकाशसे स्पर्श मात्रा उत्पन्न होती है उससे बलवान् वायु उत्पन्न होती है जिसका गुण स्पर्श है। स्पर्श मात्रा को आकाश घेरे रहता है ॥४१॥ वायु विकारको पाकर रूप मात्रा पैदा करती है उससे ज्योति उत्पन्न होती है जिसका गुण रूप है ॥४२॥ स्पर्श मात्रा वायु रूपमात्रा ज्योतिको घेरे रहती है। ज्योति विकार पाकर रस मात्राको पैदा करती है उससे जल उत्पन्न होता है जिसका गुण रस है। रूप मात्रा रस मात्रा जल को घेरे रहती है ॥४४॥ जल विकार पाकर गन्ध मात्राको पैदा करता है उससे पृथिवी उत्पन्न होती है जिसका गुण गन्ध है ॥४५॥ इन पदार्थों (पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश) में गन्ध रूप आदि "तन्मात्रा" के नामसे पुकारे जाते हैं। जैसे स्पर्शको स्पर्श

तन्मात्रा इत्यादि। कारण यह कि उन दोनोंमें कुछ भेद नहीं है। जैसे गन्ध और पृथिवी, रस और जल, तेज और रूप, स्पर्श और वायु, शब्द और आकाशमें कुछ भेद नहीं है दोनों एकही हैं ॥४६॥ वे सब शान्त हैं न भयानक हैं और विशेषतासे मोह युक्त भी नहीं हैं। भूत तन्मात्रा तमोगुणके पूर्ण अहंकारसे उत्पन्न है ॥४७॥ विकार युक्त अहंकारसे और सत्वगुण युक्त सात्विकसे विकार युक्त सृष्टि उत्पन्न होती है ॥४८॥ पांच ज्ञानेन्द्रिय और पाँच कर्मेन्द्रिय हैं। यह दसों इन्द्रियां तेजके विकारसे उत्पन्न होती हैं। ग्यारहवीं इन्द्री मन है ॥४९॥ कान, चमड़ा, आंख, जीभ और नाक ये पांचों शब्द आदिका ज्ञान करनेकेलिये बनीहैं ॥५०॥ पैर, हाथ, वचन, मल त्यागनेका रास्ता और पेशावका रास्ता, ये पांचों कर्मेन्द्रिय हैं। उन में कान सुननेके लिये, आंख देखनेके लिये, जीभ स्वाद लेनेके लिये नाक सूँघनेके लिये, चमड़ा गरम, ठंढा, कोमल तथा कठिन आदि का ज्ञान करनेके लिये, पैर चलनेके लिये, हाथ काम करनेके लिये वचन बोलनेके लिये, गुदा मल त्यागनेके लिये, मूत्र द्वार पेशाव करने तथा आनन्द करनेके लिये बनाये गये हैं ॥५१॥ शब्द मात्रा आकाश स्पर्श मात्रा वायुमें जा मिला तब त्रिगुण वायु बन गयी और उसका गुण भी तीन प्रकारका हुआ (१ शीतल २ मन्द ३ सुगन्ध) ॥५२॥ आकाश और वायु रूपमें जा मिली तब अग्नि दो प्रकारकी होगई (१ शब्द युक्त २ स्पर्श युक्त) ॥५३॥ शब्द (आकाश) स्पर्श (वायु) और रूप (अग्नि) रसमें जा मिले तब रस बढ़ कर चौगुना हो गया। (वह रस छः प्रकारके हो गये १ खट्टा २ मीठा ३ तीता ४ कड़ुआ ५ कसैला और ६ नमकीन)। शब्द, स्पर्श, रूप और रस गन्धमें जा मिले तब इकट्ठे होकर इस सम्पूर्ण पृथिवीको घेर लिया ॥५५॥ इस कारण पृथिवी पांचों गुणोंसे भरी पूरी बहुत बड़ी दीखने लगी। यह कहीं शांत रूप कहीं घोर रूप, कहीं गुप्त रूप और कहीं प्रगट रूप धारण करती है ॥५६॥ सब आपसमें मिल कर एक दूसरेके सहारे ठहरे हैं।

यह सम्पूर्ण जगत भूमिही पर ठहरा है और आकाशसे घिरा हुआ है ॥५७॥ विशेष एक पदार्थ है जो इन्द्रियोंसे जाना जाता है और वह नित्य है। ये पांचो एक दूसरोंके गुण अपनेमें रखते हैं। पृथिवीमें जल, वायु, अग्नि और आकाशके गुण हैं इसी तरह जल वायु, अग्नि तथा आकाशमें उन चारोंके गुण कुछ जरूर रहते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥५८॥ ये पांचों पांच प्रकारके भिन्न भिन्न गुण अपनेमें रखते हैं पर जब ये पांचों आपसमें मिलते हैं तब एक प्रकारका नयाही रूप बनकर सृष्टिकी रचना करते हैं ये अलग रह कर कुछ नहीं कर सकते ॥५९॥ ये पाचों आपसमें एक दूसरोंका सहारा चाहनेवाले होते हैं और एकमें मिलकर एक रूप बन जाते हैं फिर पहचानमें नहीं आते ॥६०॥ पुरुष (ईश्वर) इन सबमें छिप कर रहता है इसीसे महत् तत्वसे लेकर विशेष तत्व तक आपसमें मिल कर ब्रह्माण्डको पैदा करते हैं ॥६१॥ वह अण्डा पहले बबूले (पानीके बताशे) की तरह छोटा रहता है और धीरे धीरे बढ़ते बढ़ते बहुत बड़ा हो कर पानीमें तैरने लगता है ॥६२॥ उस अण्डेमें एक शरीरवाला पुरुष उत्पन्न होता है जिसे लोग पुरुष ब्रह्म और क्षेत्रज्ञ कहते हैं ॥६३॥ भूतोंका पैदा करनेवाला ब्रह्म सबसे पहले होता है वह चर और अचरसे भरे पूरे सारे जगतको घेरे रहता है ॥६४॥ उसके बाद मेरु, जरायु, पर्वत, समुद्र आदि उत्पन्न हुए ॥६५॥ उसी ब्रह्माण्डमें सारा जगत् देव, दैत्य, मनुष्य सातों द्वीप, सातों पर्वत, सातों समुद्र और चौदहों लोक रहते हैं ॥६६॥ जल वायु, अग्नि, आकाश आदि दस गुण हो कर ब्रह्माण्डको घेर कर फिर एक बन कर महतसे मिल कर वे सब गुप्त रूपसे महत् तत्वको घेर लेते हैं ॥६८॥ इन सातों प्राकृत गुणोंसे ब्रह्माण्ड घिरा रहता है। वह आपसमें एक दूसरेको घेरे रहते हैं। इस तरह आठों प्रकृति ठहरी रहती हैं ॥६९॥ वह प्रधान प्रकृति नित्य है उसमें रहनेवाला ब्रह्म नामक पुरुष भी नित्य है ॥७०॥ देखो! जिस तरह जलमें डूबा हुआ मनुष्य जलसे

बाहर निकलनेके समय जलको ऊपर उछालता हुआ निक-लता है उसी प्रकार वह ब्रह्म भी प्रकृतिको चारोंओर फैलाताहुआ प्रकृतिसे बाहर प्रगट हो जाता है ॥७१॥ निराकार ब्रह्म ही चेत्र कहलाता है। यही साकार रूपसे ब्रह्मा बन कर "क्षेत्रज्ञ" कहलाता है। बुद्धिमानको उचितहै कि वह चेत्र और क्षेत्रज्ञको अच्छी तरह पहचाने ॥७२॥ इस प्रकार यह संसार क्षेत्रज्ञसे प्रगट होता है। पहले यह संसार छिपा रहता है पीछे समय पाकर क्षेत्रज्ञसे प्रगट हो जाता है जैसे मेघके भीतरसे बिजली एकाएक बाहर निकल आती है ॥७३॥

छियालीसवां अध्याय।

क्रौष्टुकिने कहा कि हे भगवन्! आपने ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति मुझसे अच्छी तरह कही और ब्रह्माके उत्पन्न होनेका वर्णन भी अच्छी तरह किया ॥१॥ हे भृगुकुल कमल! अब मैं आपसे यह सुनना चाहता हूं कि जब यह संसार नहीं रहता तब और दूसरी कोई चीज रहती है कि नहीं। जब इस सम्पूर्ण जगतका नाश हो जायगा तब क्या बच जायगा? या सभी नष्ट हो जायंगे? ।२। मार्कण्डेय मुनिने कहा कि हे क्रौष्टुकि! सुनो जब यह सारा संसार प्रकृतिमें जाकर लय होजाता है तब उसे "प्राकृत" कहते हैं ॥३॥ उस समय सब विकारोंके नाश हो जानेके कारण निरा-कार ईश्वर अपनी ठीक अवस्थामें पहुंच जाता है प्रकृति और पुरुष दोनों बराबर हो जाते हैं ॥४॥ तब तमोगुण और सत्त्वगुण दो बराबर होकर आपसमें मिल जाते हैं किसी तरह वह पहचाने नहीं जाते ॥५॥ जब तमोगुण, सत्वगुणमें जाकर मिल

जाता है तब रजोगुण भी उनमें इस प्रकार मिल जाता है जैसे तिलमें तेल और दूध में घी ॥६॥ जब ब्रह्माकी उत्पत्ति होती है उस दिनसे लेकर दीपरार्द्ध(१) तक परमब्रह्मका एक दिन होता है। जब ब्रह्मा नष्ट होजाते हैं तब फिर दीपरार्द्धकी एक रात होती है ॥७॥ वह परमब्रह्म, जगतके उत्पन्न करनेवाले हैं उनकी उत्पत्ति नहीं होती वह अनादि हैं। वही जगतके पालन और संहार करनेवाले हैं। कोई उन्हें देख नहीं सकता। उनका किया हुआ काम भी कोई पहचान नहीं सकता। वह सबसे बड़े हैं ॥८॥ जब प्रातःकाल हुआ तब उस ब्रह्मने जगकर तुरतही प्रकृति और पुरुषमें योगबलसे घुसकर प्रकृति और पुरुषको चंचल कर दिया ॥९॥ जिस तरह यौवनका मद स्त्रियोंको चञ्चल कर देता है, जिस प्रकार वसन्ती वायु स्त्रियोंके चित्तमें काम उत्पन्न कर व्याकुल कर देती है उसी प्रकार परमात्मा योगमूर्ति धारण कर उन दोनोंको एक दम उथल पुथल कर देता है ॥१०॥ जब प्रधान पुरुष क्षोभित होजाता है तब परमब्रह्म अण्डकोषसे उत्पन्न होता है (जैसा कि मैं तुमसे पहलेही कह आया हूं) ॥११॥ वही क्षोभित करनेवाला है फिर वही प्रकृतिके पति पुरुषमें मिलकर क्षोभित होता है। वही घट बढ़कर प्रधान पुरुषमें रहता भी है ॥१२॥ वह उत्पन्न होकर रजोगुण धारण करता है। निर्गुण होकर भी जगतको पैदा करनेके लिये रजोगुणके आधार ब्रह्मा बनकर जगतकी रचना करता है ॥१३॥ ब्रह्माके रूपसे संसार बनानेके बाद वह सत्व-गुणके आधार विष्णु बनकर धर्मपूर्वक जगतका पालन करता है ॥१४॥ उसके तमोगुणका आधार रुद्र बनकर जगतका संहार करता है। संहारके अन्तमें सोजाता है। वह तीनोंकालमें त्रिगुण और निर्गुण दोनों रूपसे रहता है ॥१५॥ जिस तरह खेती करने

---

(१) ब्रह्माके ५० वर्षका नाम परार्द्ध वा पूर्वार्द्ध है। दीपरार्द्ध १०० वर्षका हुआ।

वाला मनुष्य खेत बोता है रखवाली करता है और काटता है उसी तरह वह व्यापक जगदीश ब्रह्मा, विष्णु और शिव बनकर जगतको पैदा करता, पालता और नाश करता है ॥१६॥ ब्रह्मा बनकर पैदा करता है विष्णु बनकर पालता है और रुद्र बनकर नाश करता है ॥१७॥ रजोगुण स्वरूप ब्रह्मा, सत्वगुण स्वरूप विष्णु और तमोगुण स्वरूप रुद्र हैं। येही तीनों गुण हैं और येही तीनों त्रिदेव हैं ॥१८॥ ये तीनों आपसमें एक दूसरेके सहारे रहते हैं एक दूसरेमें मिले रहते हैं। ये एक क्षण भी एकसे दूसरे और दूसरेसे तीसरे अलग नहीं होते ॥१९॥ चार मुख धारण करनेवाले ब्रह्माने सबसे पहले रजोगुण धारणकर जगतको पैदा किया ॥२०॥ वह देवोंमें सबसे प्रथम हैं उनका नाम हिरण्यगर्भ है। वह कमल की फूलमें रहकर सबसे पहले उत्पन्न हुए ॥२१॥ उन महात्मा ब्रह्म देवकी पूरी उमर सौ वर्षकी है। उस वर्षकी गिनती ब्रह्माहीकी गिनतीसे बताता हूं, सुनो ॥२२॥ १५ निमेषोंकी एक "काष्ठा" होती है। ३० काष्ठाओंकी एक 'कला' होती है। ३० कलाओंका एक 'मुहूर्त' होता है ॥२३॥ तीस मुहूर्त्तोंका मनुष्योंकी गिनतीसे एक 'अहोरात्र' (दिनरात) होता है। तीस अहोरात्रके दो 'पक्ष' होते हैं। दो पक्षका एक मास होता है ॥२४॥ छः मासका एक 'अयन' होता है। दो अयनका एक 'वर्ष' होता है। अयन दो है एक दक्षिणायन और दूसरा उत्तरायण। मनुष्योंका एक वर्ष देवताओंका एक दिन रात होता है। उसमें उत्तरायण देवताओं का दिन है और दक्षिणायन देवताओंकी रात ॥२५॥ देवताओंके बारह हजार वर्षोंमें मनुष्योंके चार युग होते हैं। सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापर युग और कलियुग। उनका विभाग बताता हूं सुनो। ॥२६॥ देवताओंके चार हजार वर्षका सत्ययुग होता है। चार सौ वर्षकी उसकी सन्ध्या और चारसौ वर्षका उसका सन्ध्यांश होता है ॥२७॥ देवताओंके तीन हजार वर्षका त्रेतायुग होता है। तीन सौ वर्षकी उसकी संध्या और तीनसौ वर्षका उसका संध्यांश

होता है ॥२८॥ देवताओंके दो हजार वर्षका द्वापरयुग होता है दो सौ वर्षकी उसकी संध्या और दो सौ वर्षका उसका संध्यांश होता है ॥२९॥ देवताओंके एक हजार वर्षका कलियुग होता है। एक सौ वर्षकी उसकी संध्या होती है और एक सौ वर्षका उसका संध्यांश ॥३०॥ यह "द्वादशसाहस्री युग" कहलाता है (अर्थात् बारह हजार वर्षोंमें चार युग बनते हैं)। इसका हजार गुना ब्रह्माका एक दिन होता है ॥३१॥ ब्रह्माके एक दिनमें चौदह 'मनु' होते हैं। उनका विभाग बताता हूं, सुनो ॥३२॥ देवता सातों ऋषि इन्द्र, मनु और मनुके लड़के, मनुके साथ उत्पन्न होते हैं और मनुहीके साथ नष्ट भी होते हैं ॥३३॥ ७२ युगोंका एक 'मन्वन्तर' होता है। उसकी गिनती मनुष्योंके वर्षोंकी गिनती से बताता हूँ, सुनो ॥३४॥ सतसठ नियुत, तीस करोड़, बीस हजार वर्ष उसका प्रमाण निश्चय है ॥३५॥ इसीका नाम मन्वन्तर है। अब तुम्हें देवताओंके वर्षोंसे गिनती बताता हूं, सुनो ॥३६॥ देवताओंके वर्षोंसे आठ सौ हज़ार और बावन हजार (आठ लाख बावन हजार) वर्षोंका एक मन्वन्तर होता है। इसका चौदह गुना समय ब्रह्माका एक दिन है। उसके अन्तमें 'नैमित्तिक प्रलय' होता है ॥३८॥ उस समय भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोकका नाश हो जाता है। महर्लोक ठहरा रहता है ॥३९॥ किन्तु महर्लोकके रहने वाले सब लोग तापके मारे वहां नहीं रहते जनलोकमें चले जाते हैं। जब सब समुद्र एकमें मिल जाते हैं तब रात होजाती है उस समय ब्रह्मा सोजाते हैं ॥४०॥ जितना बड़ा दिन मैंने तुमसे कहा उतनीही बड़ी रात होती है। जब रात बीत जाती है तब फिर ब्रह्मा उठकर जगतकी रचना करने लगते हैं। इसी तरह ब्रह्माका एक वर्ष और इसी प्रमाणसे सौ वर्ष होता है ॥४१॥ ब्रह्माके एकासौ वर्षको 'पर' कहते हैं और पचास वर्षका नाम 'परार्द्ध' है ॥४२॥ इस तरह जब परार्द्ध बीत गया तब 'पाद्म' नामका महाकल्प हुआ ॥४३॥ दूसरे परार्द्धमें पहले 'वाराह' नामका कल्प हुआ ॥४४॥

सैंतालीसवां अध्याय।

फिर क्रौष्टुकिने मार्कण्डेय मुनिसे पूछा कि हे भगवन्! जिस प्रजा पतियोंके पति देवादिदेव भगवान ब्रह्माने पहले पहल जगत को बनाया उसका वर्णन कृपापूर्वक कीजिये ॥१॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा कि ब्रह्मन्! जिस तरह लोकको रचना करनेवाले ब्रह्माने जड़ और चेतनसे भरे पूरे जगतकी रचनाकी उसका सब हाल मैं तुमसे अच्छी तरह बताता हूं सुनो ॥२॥ तब "पद्म" कल्प बीत गया तब भोर होगया। उस समय ब्रह्मा सत्वगुणसे युक्त होकर जाग उठे। देखा तो सारा जगत सूना पड़ा है। कहीं कुछ नहीं देख पड़ता ॥३॥ चारों ओर आश्चर्य भरी दृष्टिसे देखने लगे। उस समय उनको यह गाथा सुन पड़ी जो देवादिदेव, जगतके पालन करनेवाले और अनादि ब्रह्म स्वरूप भगवान नारायणके लिये कही गई है ॥४॥ "आपो नारा वैतनव इत्यपां नाम शुश्रुम। तासु शेते सयस्माच्च तेन नारायणः स्मृतः ॥"। (अर्थात् "नारा" जलको कहते उसमें जो सोवे वह "नारायण" कहलाता है) ॥५॥ ब्रह्मा उठकर सोचने लगे कि पृथिवी क्या हो गई? पीछे उन्होंने अनुमान किया कि इसी जलके भीतर पृथिवी डूब गई है। इस कारण उसे जलसे बाहर निकालनेका उपाय सोचने लगे ॥६॥ जिस तरह नारायण दूसरे कल्पोंमें मत्स्य कूर्म बाराह आदि शरीर धारण करतेहैं उसी तरह इस कल्पमें भी उन शरीरोंको धारण किया ॥७॥ सब स्थानों में रहनेवाले और सबको उत्पन्न करनेवाले वेद यज्ञमय भगवान्, वेद यज्ञमय दिव्य स्वरूप धारण कर जलमें घुस गये ॥८॥ पृथिवीको पातालके बाहर निकाल कर जलके ऊपर छोड़ दिया। पृथिवी जल पर स्थिर हो गई। यह देख जन लोकमें रहनेवाले सिद्ध गण आश्चर्यमें आगये ॥९॥ पृथिवी जलके ऊपर एक बड़ी भारी नावकी

तरह तैरती रही। उसकी देह बहुत बड़ी थी इससे वह डूबती न थी ॥१०॥ इसके बाद ब्रह्माने पृथिवीको बराबर करके उसपर पर्वत बनाये, पहली सृष्टिमें जब प्रलय हुआ तब जगत् जल गया था, उस समय आगकी धधकसे सब पर्वत फटकर पृथिवीपर बिखर गये थे ॥११॥ पर्वत समुद्रमें डूब गये थे फिर हवाकी झोंकसे जहां जलका चारों ओरसे झोंका लगा वहां पृथिवी सिमिट सिमिट कर पहाड़ बन गयी ॥१२॥ पृथिवीका विभाग कर ब्रह्माने सातों द्वीप बनाये फिर भूर्लोक आदि चारों लोकोंको (१ भूर्लोक २ भुवर्लोक ३ स्वर्लोक ४ जनलोक) बनाया ॥१३॥ जिस तरह और कल्पोंमें सृष्टिहोतीहै उसी तरह सृष्टि बनानेका विचारकरनेलगे। इसी बीच में एकाएक चारों घोर अन्धकारही,अन्धकार देख पड़ने लगा ॥१४॥ तम, मोह, महामोह, तामिस्र और अन्ध ये पांचोंप्रकारकी अविद्याएं (माया) ब्रह्माके सामने प्रगट हुईं ॥१५। अब पांच प्रकारकी सृष्टि हुई। फिर ब्रह्मा चिन्ता करने लगे। उन्हें कुछ ज्ञान भी हो आया। फिर ब्रह्माको घोर अन्धकारसे भरा हुआ "नगात्मक" (स्थिर पर्वताकार) रूप देख पड़ा ॥१६॥ इस सृष्टिमें पहाड़ प्रधान समझे जाते हैं। उसे देख कर ब्रह्मा दूसरी चीज बनानेका विचार करने लगे ॥१७॥ वह सोच ही रहे थे कि एकाएक "तिर्यक योनियों" (पशु पक्षियों) की सृष्टि हुई। उन का स्वभाव कुछ टेढ़ा मेढ़ा होता है इस लिये पशु पक्षी "तिर्यक योनि" कहलाते हैं। वे तम: प्रधान हैं (अज्ञानसे भरेहैं) और बुद्धि विहीन हैं, उलटे रास्ते चलनेवाले हैं अज्ञानी हो कर भी अपनेको ज्ञानी समझते हैं ॥१८॥

वे अहंकारी हैं, अभिमानी हैं, उनके अट्ठाईस भेद हैं। उनके हृदय में कुछ कुछ ज्ञान तो अवश्यही रहता है पर बाहरसे एक दम अज्ञानीहीका काम करते हैं। उनके चारों ओर अन्धकारही है ॥२०॥ ब्रह्माने सोचा कि इनसे तो मेरी सृष्टि नहीं चल सकती। उसी समय उनके चित्तमें सात्त्विक भाव उत्पन्न हुआ। उसकी

धारा ऊपरको उठी। उससे सात्त्विक रचना हुई ॥२१॥ उसमें भीतर और बाहर प्रकाशही प्रकाश था। वह सुख और प्रेमसे भरा था। उसमें बाहर या भीतर कहीं परदा न था सब एक दम खुला था। इसकी आत्मा सदा प्रसन्न रहती थी। वही तीसरी सृष्टि देवताओंकी हुई। उन देवताओंको देख कर ब्रह्मा बहुत प्रसन्न हुए ॥२३॥ फिर ब्रह्मा एक और सृष्टि करनेका विचार करने लगे जिनसे यह संसार अच्छी तरह चले। उनका विचार सत्य था इस लिये कभी व्यर्थ नहीं होता था। उस समय उनके मनमें एक नवीनही भाव उत्पन्न हुआ। उससे जो सृष्टि हुई उसमें सब बातें नई थीं, उसे नई सृष्टि कहते हैं। उसमें प्रकाश बहुत था, थोड़ा सा तमोगुण था और उससे कुछ अधिक रजोगुण भी था ॥२६॥ इस कारण उस मनुष्य-सृष्टिमें दुःख बहुत हुआ और उसके भीतर बाहर वारवार प्रकाश और अन्धकार उत्पन्न हुआ। मनुष्य ब्रह्मा की सृष्टिमें सबसे प्रधान साधक हुए।२७॥ इस प्रकार चार सृष्टियों के होनेके बाद पांचवीं सृष्टि ग्रहोंकी हुई। उसमें चार रीतियां हुई —१ विपर्य्यय, २ सिद्धि, ३ शान्ति और ४ तुष्टि। वे ग्रह भूत भविष्य और वर्तमानकी सब बात जानते हैं। फिर छठी सृष्टि भूतों की हुई ॥३०॥ ब्रह्माका प्रथम जगत् महत्सर्ग, दूसरा भूतसर्ग और तीसरा इन्द्रियोंके विकारोंसे युक्त वैकारिक सर्ग हुआ। यह स्वाभाविक सर्ग ब्रह्माने सोच विचारकर बनाया है ॥३२॥ चौथा मुख्य सर्ग स्थावर (पर्वत और वृक्षादि) है। पांचवां तिर्यक्सर्ग है। उसे तिर्यग्योनि भी कहते हैं ॥३३॥ छठा देव सर्ग है जो ऊपरकी धारासे बना है। सातवां मानुषसर्ग है जो नई धारासे बना है ॥३४॥ आठवां अनुग्रह सर्ग है जो सत्वगुण और तमोगुणसे बना है। इनमें पांच वैकृत सर्ग और तीन प्राकृत सर्ग हैं ॥३५॥ एक कौमार सर्ग , जो प्राकृत और वैकृत दोनों है। वह नवां सर्ग है। ये सब मिलाकर नव सर्ग कहलाते हैं। ये प्रजापतिकी सृष्टियां हैं ॥३६॥

अड़तालीसवां अध्याय।

क्रौष्टुकिने कहा कि हे भगवन्! आपने मुझसे सृष्टिकी उत्पत्ति कही अब देवताओंकी उत्पत्ति विस्तारसे कहिये ॥१॥ मार्कण्डेय मुनि बोले कि हे राजन्! जिनका पूर्व जन्मके पाप पुण्यके प्रभावसे मोक्ष नहीं हुआ था किन्तु प्रलयके समय संहार हो गया था उन्हीं देवयोनिसे लेकर स्थावर तक चार प्रकारकी प्रजा (अण्डज, पिण्डज, ऊष्मज, स्थावर) की उत्पत्ति, जब ब्रह्मा सृष्टिकरनेलगे तब, उनके मनसे हुई ॥३॥ उस समय देव, असुर, पितर और मनुष्य इन चारोंको उत्पन्न करनेकी इच्छासे इन चारोंसे अपनी आत्माको ब्रह्माने मिलाया ॥४॥ जब ब्रह्माने अपनी आत्माका योग किया तब तमोगुणकी मात्रा बढ़ गई उस समय ब्रह्माकी जंघासे असुर उत्पन्न हुए ॥५॥ ब्रह्माने उस शरीरको छोड़ दिया। वह शरीर तमोगुणसे भरा था, वही बिखर कर रात बन गया ॥६॥ फिर ब्रह्माने दूसरा शरीर धारण किया। बड़ी प्रसन्नतासे उन्होंने फिर सृष्टि बनानेकी इच्छा की। उस समय उनके शरीरमें सत्त्वगुणका प्रभाव बढ़ा तब ब्रह्माके मुखसे देवताओं की उत्पत्ति हुई ॥७॥ ब्रह्माने उस शरीरको भी छोड़ दिया। वही शरीर बिखर कर दिन बन गया। दिन सत्वगुणके प्रभावसे परिपूर्ण रहता है ॥८॥ फिर ब्रह्माने सत्त्वगुणसे भरा पूरा दूसरा शरीर धारण किया। वे अपनेको जगतका पिता समझने लगे, उस समय सत्त्वगुणके प्रभावसे ब्रह्माके शरीरसे पितरोंकी उत्पत्ति हुई ॥९॥ पितरों को उत्पन्न करके उन्होंने उस शरीरको भी छोड़दिया। उस शरीरके बिखर जानेसे प्रातः और सायंसंध्या हुई ॥१०॥ फिर ब्रह्माने रजोगुणसे भरा पूरा एक दूसरा शरीर धारण किया। उस समय रजोगुणका प्रभाव बहुत बढ़ गया, तब मनुष्योंकी उत्पत्ति हुई ॥११॥ मनुष्योंको

पैदा करनेके बाद ब्रह्माने उस शरीरको भी छोड़ दिया। वही शरीर फैल कर प्रकाश हुआ जो प्रतिदिन रातके अन्त और दिनके आदिमें होता है॥१२॥ हे द्विजश्रेष्ठ! दिन, रात, सांझ, सवेरा और प्रकाश ये सब देवादिदेव भगवान् ब्रह्माके शरीर हैं॥१३॥ ज्योत्स्ना (प्रकाश) संध्या और दिन ये तीनों सत्वगुणसे उत्पन्न हैं और रात तमोगुणसे उत्पन्न है। इससे वह "त्रियामिका" कहलाती है॥१४॥ देवता दिनमें, असुर रातमें मनुष्य प्रकाशके समय (प्रातः काल) और पितर संध्याको बली होते हैं इन समयोंमें इनका बल बहुत बढ़ जाता है। कोई शत्रु इन्हें इन समयोंमें नहीं दबा सकता। अपने इन समयोंको छोड़ कर दूसरे समयमें ये निर्बल रहते हैं॥१५॥ ज्योत्स्ना, रात, दिन और संध्या, ये चारों त्रिगुण धारण करनेवाले ब्रह्माके शरीर हैं॥१६॥ इन चारों को बना कर प्रजापति ब्रह्माने रजोगुण और तमोगुणसे भरा हुआ एक और शरीर धारण किया। वह रातको भूखे प्यासे रहने लगे॥१८॥ अज भगवान्ने उस अन्धकारमें राक्षसोंको पैदा किया जो भूखसे व्याकुल हो रहे थे। उनके रूप भयानक थे मुंह पर बड़ी बड़ी दाढ़ी और मूँछें थीं। उनमें जो खानेके लिये दौड़े वे "यक्ष" कहलाने लगे। जो उनमें दूसरे थे वे "हम इनलोगों से तुम्हारी रक्षा करते हैं" ऐसा कह कर चिल्लाने लगे वे राक्षस कहलाये॥२०॥ उन्हें देख कर डरसे ब्रह्माके सब सिरके बाल गिर गये। फिर वह नहीं जम सके इससे ब्रह्माका सिर गंजा हो गया। वे बाल भूमिमें गिरकर सर्पण करने लगे (चलने वा रेंगने लगे) इस से वे "सर्प" कहलाये और हीन (अलग) हो गये इस कारण "अहि" कहलाये॥२१॥ सर्प देख कर ब्रह्माको क्रोध हुआ तब उन्होंने बड़े क्रोधवाले, काले रूपवाले और मांस खानेवाले "भूतों" को बनाया॥२२॥ ब्रह्माने उस समय गो (सरस्वती) का ध्यान किया इससे "गन्धर्व" उत्पन्न हुए। वे सदा वचन बोल रहे थे इससे "गन्धर्व" कहलाये॥२३॥ इन आठ देव योनियोंको पैदा

करनेके बाद ब्रह्माने पशु और पक्षियोंको पैदा किया। मुखसे अज (बकरे), छातीसे चिड़िया, पेटसे गाय, पैरोंसे घोड़े, हाथी गधे, खरगोश, हरिन, ऊंट, खच्चर और अनेक प्रकारके पशु पैदा किये ॥२६॥ फूल और फलोंसे भरे पूरे पेड़ और औषधियों को अपनी देहके रोओंसे पैदा किया ॥२७॥ ब्रह्माने इस तरह पशु और पेड़ोंको पैदा करके प्रथम कल्पमें त्रेता युगके आदिमें यज्ञ किया ॥२८॥ गाय, बकरी, मेढ़े, भैंस, घोड़े, खच्चर और गदहेको ग्राम्य (गांवमें रहनेवाला) पशु बनाया। दो खुरवाले पशु (हरिन नीलगाय आदि) हस्ती, बाघ, बानर और सब पक्षियोंको आरण्य (जंगली) बनाया। मछली, ग्राह और मगरमच्छ आदिको औदक (जलमें रहनेवाला) बनाया। सर्प और गोह आदि जंतुओं को "सरीसृप" (बिलमें रहनेवाला और रेंगकर चलने वाला) बनाया ॥३०॥ फिर अपने प्रथम मुखसे गायत्री त्र्यृच, (त्रिच) त्रिवृत्, साम, रथन्तर और अग्निष्टोम यज्ञको पैदा किया ।३१। दक्षिण मुखसे यजुर्वेद, त्रैष्टुभ छन्द, पञ्चद स्तोम और बृहत्साम को पैदा किया ॥३२। पश्चिम मुखसे, साम, जगती छन्द पञ्चदश-स्तोम, वैरूप और अतिरात्रको पैदा किया ॥३३॥ इक्कीस अथर्वण आप्त, अर्यमण, अनुष्टुभ और वैराजको उत्तर मुखसे पैदाकिया॥३४॥ ब्रह्मदेवने कल्पके आदिमें बिजली, वज्र, मेघ, इन्द्र धनुष, और पक्षियोंको बनाया ॥३५॥ ब्रह्मा जीके शरीरसे अनेक प्रकारके जीव उत्पन्न हुए। ब्रह्माने पहले देव, असुर, पितर और मनुष्यों को बनाया उसके बाद स्थावर (पेड़, पहाड़, आदि एक जगह पर सदा ठहरनेवाले पदार्थ) और चर (पशु पक्षी आदि) को बनाया। फिर यक्ष, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा, नर, किन्नर, राक्षस, पक्षी, पशु, मृग सर्प, नाश न होनेवाला पदार्थ, नाश होनेवाला पदार्थ, स्थिर रहने वाला पदार्थ और चलनेवाला पदार्थ, जिनके जैसे कर्म और स्वभाव पहली सृष्टिमें थे वैसा ही कर्म और स्वभाव जब जब सृष्टि होती है तब तब होते हैं और हुए ॥३९॥ मारना और न मारना

क्रोध और दया कोमलता और क्रूरता, धर्म और पाप, सच और झूठ जिनका पहले जन्ममें जैसा रहता है वैसाही दूसरे जन्ममें भी होता है वही उन्हें पसन्द भी आता है। कारण यह है कि वही उनके संस्कारमें कई जन्मोंसे घुसा हुआ है॥४०॥ ब्रह्मा होने तो अनेक प्रकारके जीव, शरीर इन्द्रिय, कार्य और स्वभाव बनाये॥४१॥ पहलेही समयमें ब्रह्माने देवता असुर, मनुष्य, ऋषि और गन्धर्व आदि सबके नाम, धाम, काम, रूप और सब बातोंको वेदोंसे विचार कर बनाया। जब रातके अन्तमें सवेरा होता है तब फिर उसी प्रकार सब चीजें बना देते हैं॥४३॥ जिस प्रकार प्रथम कल्पमें चार युग छ ऋतु, और बारह महीने तथा पच आदि होते हैं उसी प्रकार दूसरे कल्पमें भी सभी बातें होती हैं। इसी प्रकार अनादि देव ब्रह्माजीकी सृष्टि सदा होती रहती है॥४५॥

उनचासवां अध्याय।



क्रौष्टुकिने कहा—हे भगवन्! आपने जो मनुष्योंकी उत्पत्ति कही है वह विस्तारसे कहिये। किस प्रकार ब्रह्माने यह सब काम किये॥१॥ किस प्रकार सब जातियोंको पैदा किया। किस प्रकार ब्राह्मणोंको बनाया। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के धर्म और कर्म क्या हैं॥२॥ मार्कण्डेय मुनि बोले—जब ब्रह्मा सृष्टि करने लगे तब उन्होंने सत्वगुण धारण किया। उस समय उनके मुंहसे हजारों जोड़े मनुष्य (स्त्री और पुरुष) उत्पन्न हुए॥३॥ वे सभी सत्वगुणसे भरे पूरे थे। उनका स्वभाव सात्विक था। फिर ब्रह्मा की छातीसे रजोगुण युक्त हजारों जोड़े मनुष्य उत्पन्न हुए। वे बड़े क्रोधी हुए। किसीकी कोई बात नहीं सह सकते थे। इनका

स्वभाव राजस था। फिर ब्रह्माके दोनों जंघोंसे हजारों जोड़े मनुष्य उत्पन्न हुए। वे रजोगुण और तमोगुणसे भरे थे और बड़े लोभी थे। उन्हें सब पदार्थोंको बढ़ानेहीकी इच्छा रहती थी। इसके बाद ब्रह्माजीके दोनों पैरोंसे हजारों जोड़े मनुष्य उत्पन्न हुए। उनका स्वभाव तमोगुणसे भरा था। वे धन और शोभासे विहीन हुए। उन्हें बुद्धि बहुत कम थी। वे जोड़े आपसमें एक संगमें रह कर सम्भोग करने लगे। परस्परके प्रेमसे अपने अपने वर्णमें (मुखसे होनेवाले पुरुष मुखसे उत्पन्न होनेवाली स्त्रीके संग) सम्भोग करनेसे सुखी होते थे। उसी दिनसे इस कल्पमें (श्वेत-वाराह कल्पमें) मैथुनसे सृष्टि होने लगी ॥८॥ जब स्त्रियोंको महीने महीने ऋतुधर्म नहीं होता था तब सम्भोग करने पर भी सृष्टि नहीं होती थी। जब ऋतुधर्म होता था तब सम्भोग करनेसे बालक तथा बालिकाएं उत्पन्न होती थीं ॥९॥

पहले कल्पोंमें केवल मनसे ध्यान करनेहीसे लड़के और लड़-कियां होती थीं। उनके स्वभाव भी बहुत अच्छे होते थे किसीके चित्तमें पाप नहीं होता था। इस कारण पहले ब्रह्माकी मानसिक सृष्टि होती थी। उन्हींसे अनेक वंश चले जिनसे यह सारा जगत भर गया है ॥१२॥ वे सात्विक स्वभाववाले मनुष्य नदी, नद और सरोवरके तीर और पहाड़ोंकी चोटियों पर रहकर तप करते थे उन्हें गरमी और सर्दी अधिक नहीं जान पड़ती थी ॥१३॥ उन्हें संसारके सब सुखोंसे सदा तृप्ति रहती थी। किसी बातकी अधिक चाह नहीं थी। उन्हें कोई चोट नहीं पहुंचा सकता था। किसीसे लड़ाई झगड़ा नहीं होता था। अभिमान भी उनमें कुछ नहीं होता था ॥१४॥ वे मकान बनाकर नहीं रहते थे सदा पर्वत और समुद्रोंके तीर पर रहा करते थे। वे किसी बातकी इच्छा नहीं रखते थे इस कारण सदा प्रसन्न मनसे देश देश घूमा करते थे ॥१५॥ पिशाच, उरग, राक्षस, अभिमानी जन, पशु, पक्षी, ग्राह, मछली और सर्पकी उत्पत्ति अधर्मसे है। हरसाल, हर ऋतुओंमें मूल

फूल, फल अच्छी तरह होते थे। सदा सुखही सुख रहता था। ज्यादा धूप और सर्दी नहीं पड़ती थी। कुछ समय बीत जाने पर अनायास उन्हें सिद्धि मिल गई ॥१८॥ पहले उन लोगोंको सदा भूख प्यास लगीही रहती थी फिर कुछ दिनोंके बाद अनायासही उन्हें तृप्ति होगई, भूख और प्यास मिट गई ॥१९॥ इच्छा करनेही से उन्हें सब बातें मिलती थीं। पर इच्छा करनेमें उन्हें परिश्रम पड़ता था, इस कारण वह जल पीकर अपनी सब इच्छाएं पूरी कर लेते थे। इसीसे उनके शरीरमें रस भी उत्पन्न होता था और बल भी ॥२०॥ वे सब कामोंसे भरे, पूरे रहते थे। शरीरको संवारते न थे तो भी उनके यौवन नष्ट नहीं होते थे। सुन्दरता नहीं बिगड़ती थी ॥२१॥ उन्हें इच्छाके बिना भी सन्तति होती थी। जन्म और रूप सबका समान होता था। ठीक समय पर सबकी मृत्यु होती थी ॥२२॥ उन्हें किसी बातकी चाह न थी किसीसे बैर न था। सब आपसमें प्रेम रखते थे। सबकी सुन्दरता बराबर होती थी। उमर बराबर होती थी। कोई ऊंचा वा नीचा नहीं था सब बराबरही थे ॥२३॥ सब मनुष्य उस समय चार हज़ार वर्ष जीते थे। उन्हें किसी तरहका रोग वा विपत्ति नहीं होती थी ॥२४॥ वह समय समय पर नष्ट होते थे। इस कारण कुछ दिनोंके बाद समयके पूरा होनेसे सब नष्ट होगये ॥२५॥ फिर धीरे धीरे सब भूमिकी सिद्धि नष्ट होगई। सबके नष्ट होजानेके बाद आकाशसे अगणित मनुष्य गिरे। वह प्रायः कल्पवृक्षसे उत्पन्न हुए थे। वे गृहस्थ हुए। सब प्रकारके भोगकी इच्छा रखते थे और सुख बहुत चाहते थे ॥२७॥ उसी समयसे उन लोगोंमें त्रेतायुगका प्रभाव हुआ। त्रेतायुगके आरम्भ होतेही उन सबमें प्रेमकी उत्पत्ति हुई ॥२८॥ महीने महीने ऋतुधर्म होनेसे लड़कोंकी उत्पत्ति होने लगी। स्त्रियोंके स्तनसे दूध नहीं होता था इस ॥२९॥ वे बालक वृक्षोंकी डाल पकड़कर पीते थे। उन्हीं वृक्षोंमें वस्त्र उत्पन्न होते थे। उनके फलोंसे आभरण (गहने) बनते थे ॥३०॥

उन्हीं वृक्षोंमें नाना प्रकारके रस, सुगन्ध और रंग पैदा होते थे। उनके हरेक पत्तेमें बिना मक्खीके सहारे मधु पैदा होता था ॥२१॥ त्रेतायुगके आदिमें उन्हींवृक्षोंसे सबके सब कामचलतेथे। कुछदिनोंके बाद उन मनुष्योंके मनमें लोभ पैदा हुआ ॥२२॥ सबके चित्तमें अहं-कार पैदा हुआकि यह वृक्ष हमारा है। इस कारण उन पेड़ोंके लिये आपसमें लड़ाई होने लगी। इस पापसे वे भी दुखी हुए उनके पेड़ भी नष्ट होगये ॥२३॥ आपसमें लड़ाई होनेके कारण परिश्रम पड़ने लगा। परिश्रमसे जाड़ा, गरमी, भूख और प्यास लगने लगी। लड़ाई करनेके लिये रेतोंमें, ऊंचे टीलों पर, पर्वतों पर और पहाड़ की कन्दराओंमें किले बनाने लगे। बस्ती बसाने लगे। किला बनाकर उसमें रहने लगे। किलेके चारों ओर वृक्ष लगा और नदी खुदवाकर उसकी रक्षा करने लगे ॥२५॥ उंगलियोंसे माप माप कर किले बनवाये। पहले कोई माप नहीं था। उन्हीं लोगोंने मापना प्रारम्भ किया ॥२६॥ अत्यन्त छोटे प्रमाणको 'परमाणु' कहने लगे। पृथिवीकी धूलको 'त्रसरेणु', उससे बड़ेको 'वालाग्र', उससे बड़ेको 'लिक्षा', उससे बड़ेको 'यूका' और उससे बड़ेको 'यवोदर' कहने लगे ॥२७॥ ग्यारह 'यवोदर' को 'अंगुल', छः अंगुलको 'पद' और दो पदको 'वितस्ति' कहने लगे ॥२८॥ दो वितस्तिको 'हस्त' चार हस्तको 'धनु' 'दण्ड' 'नाड़िका' और 'युग' कहने लगे ॥२९॥ दो हजार धनुषको 'गव्यूति', और चार गव्यूतिको 'योजन' कहने लगे ॥४०॥ चार प्रकारके दुर्ग बनवाये। तीन स्वाभाविक दुर्ग और एक कृत्रिम दुर्ग। (वनमें, पहाड़पर और किसी नदीके बीचमें जो दुर्ग बनें वे स्वाभाविक कहलातेहैं। कृत्रिमदुर्ग अपनीबुद्धिसेबनाया जाता है) ॥४१। पुर, खेटक, द्रोणीमुख, शाखानगर, कर्वट, ग्राम संघोष, आवसथ, ऊंचे मकान, ऊंची दीवार और खाई कोअपनी रक्षाके लिये बनाया ॥४३॥ एक कोस लम्बा और आधा कोस चौड़ा जिसका फैलाव हो, पूर्वकी ओर पानी बहनेका नाला हो और जिसके जानेवाले रास्ते पर बांस लगे हों उसे पुर कहते हैं ॥४४॥

पुरके आधे प्रमाणवाली बस्तीका नाम खेट है। पुरकी चौथाई प्रमाणवाली वस्तीका नाम कर्वट है। कर्वटसे भी छोटा द्रोणीमुख होता है (अर्थात् पुरके आठवें हिस्से लम्बाई चौड़ाईवाली वस्तीका नाम द्रोणीमुख है)।४५। जिसमें खाई न हो पर अच्छे अच्छे मकान हों उसे वर्म कहते है। शाखानगर उसे कहते हैं जिसमें दीवान, राजाके बड़े बड़े नौकर और बहुत शूद्र रहते हों। जहां खेती करनेवाले धनी हों और जहांकी जमीन खेती करनेके लायक हो उसका नाम ग्राम है ॥४७॥ दूसरे दूसरे नगर वा ग्रामोंसे आकर जहां किसी अपने या पराये कामके लिये लोग बसें उसे वसति कहते हैं ॥४८॥ जहां दुष्ट बहुत रहते हों, खेत न हों, पराई जमीन की चीज खानेवाले आदमी रहते हों, जहांके आदमी बली, साफ सुथरे और राजाके प्यारे हों वह ग्राम अक्रिमी कहलाता है ॥४९॥ जहां बाजार न हो, चीज वस्तु गाड़ी पर रखी रहें, अहीर बहुत हों गायोंका झुण्ड रहे और जो जहां चाहे वहीं रहे उसे घोष कहते हैं ॥५०॥ उन्होंने इस प्रकार नगर आदि बनाकर अपने रहनेके लिये मकान बनवाये। तब युद्धका उपाय करने लगे ॥५१॥ जिस तरहके पेड़ोंके नीचे वे रहते थे उसी तरहके अपने मकान बनवाये। जिसतरह पेड़ वा डालियां ऊंचीनीची थीं उसी तरहके मकान बनवा कर रहने लगे ॥५३॥ जो कल्पवृक्षकी डालियां जिस तरहकी थीं उसी तरहके मकान अपने विचारसे सब लोगोंने बनवाये। उन्हीं पेड़ोंसे वे मकान तय्यार हुए ॥५४॥ जब उन कल्पवृक्षोंके सब मधु नष्ट होगये तब लोग युद्ध करनेको तय्यार हुए और अनेक प्रकारके उपाय सोचने लगे ॥५५॥ सब लोग विषादमें पड़ गये भूख और प्याससे घबराने लगे तब उनको त्रेतायुगके आदिमें एक सिद्धि मिल गई ॥५६॥ सब सिद्धिहीकी ओर झुके. बिना किसीसे कहे सुनेही वर्षा होने लगी। उसका जो जल नीची जमीनोंमें जा जमा उससे अनेक नद, नदी, खाई और सोते बन गये। जो थोड़ा जल पृथिवी तलमें रहनेसे दोषयुक्त रह गया था वही जल वर्षा

होलेने बहुत बड़कार दोषरहित (उत्तम) होगया और वह जल ग्राम, नगर और वनमें फैल गया ॥५८॥ सब ऋतुओंके फूल और और फल वृक्षोंमें लग गये। त्रेतामें पहले पहल इन्हीं औषधियों की उत्पत्ति हुई ॥६०॥ त्रेतायुगमें उसी औषधिसे अपना निर्वाह करने लगे। प्रजामें उसी दिनसे राग और लोभ पैदा हुए ॥६१॥ प्रजामें जब राग और लोभ पैदा होगये तो वह पेड़, फूल, फल गुच्छे और औषधियां लेलेकर इस लिये अपने अपने घरमें रखने लगी कि मेराही बल और सम्पत्ति बढ़े ॥६२॥ इसी दोषसे वह औषधियां नष्ट होगईं। कारण यह कि सब लोग चुरा चुरा कर अपने घरमें रखने लगे। पृथिवी भी एकाएक सब औषधियोंको निगल गई ॥६३॥ जब वह सब औषधियां नष्ट होगईं तब सारी प्रजा घबरा गई और भूख प्याससे दुखी होकर ब्रह्माजीकी शरणमें जा पहुंची ॥६४॥ भगवान् ब्रह्मदेव भी समझ गये कि इस समय मेरी प्रजा भूखसे घबरा गई है। इस कारण सुमेरुको बछड़ा बनाकर पृथिवी दूहने लगे ॥६५॥ जब पृथिवी दूही गई तब अनेक प्रकारके बीज तथा अन्न पैदा करनेवाली घासें उससे पैदा हुईं जो गांव और वनमें उगती हैं। ६६॥ जो फलके पक जाने पर सूख जाती हैं वे औषधि कहलाती हैं। वे १७ प्रकारकी होती हैं। धान, जव, गेहूं, अणु, तिल, मालकांगुनि, उदार, कोरदूष, चीन माष, मूंग, मसूर, निष्पाव, कुलत्थ, आढ़क और चणक—ये सब गांवमें पैदा होनेवाली औषधियां हैं ॥६८॥ धान, जव, गेहूं, अणु तिल, मालकांगुनी, कुलथी, सावां, नीवार, यत्तिल, गवेधुक, कुरुविन्द, मर्कटक, वेणुयव—ये औषधियां गांव और वनमें भी पैदा होती हैं और यज्ञमें भी काम आती हैं ॥७२॥ जब ब्रह्माने औषधियोंको दूहा उस समय वे जमती न थीं इससे उनके जमनेका उपाय किया ॥७३॥ स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माने हस्तसिद्धिको बनाया अर्थात् ये बोने सींचने तथा खोदनेसे बढ़ें और फलें, उसी दिनसे सब औषधियां उगने, फूलने और फलने लगीं ॥७४॥ उसके बाद

ब्रह्माजीने उनके बोने सींचने और काटनेकी रीति तथा उगने फूलने और फलनेका समय बनाया ॥७५॥ फिर चारों वर्ण और चारों आश्रमके धर्म स्थिर किये। लोक और धर्म पालनेवाले मनुष्योंको कार्य्य दिया ॥७६॥ क्रियावान् ब्राह्मणोंको 'प्राजापत्य' नामक स्थान दिया। लड़ाईमें न भागनेवाले क्षत्रियोंके लिये 'ऐन्द्र' नामक स्थान बनाया। धर्मपूर्वक क्रय, विक्रय, गोपालन तथा खेत का व्यवहार करनेवाले वैश्योंके लिये 'मारुत' नामक स्थान बनाया। तीनों वर्णोंकी सेवा करनेवाले शूद्रोंके लिये 'गान्धर्व' नामक स्थान बनाया ।७८। अपने ब्रह्मचर्य्यको अच्छी तरह पालने वाले अट्ठासी हजार ऋषियोंके लिये जो स्थान बनाये गये हैं वेही स्थान गुरुकी सेवा करनेवाले मनुष्योंके लिये ठहराये ॥७९॥ जो स्थान सप्तर्षियोंके लिये बनाया गया है वही स्थान वनमें रहनेवाले तपस्वियोंके लिये ठहराया। गृहस्थोंके लिये प्राजापत्य, संन्यासियों के लिये ब्राह्म और योगियोंके लिये 'अमृत' नामक स्थान ठहराया ॥८०॥

पचासवां अध्याय।

फिर मार्कण्डेय मुनि कहने लगे कि हे ब्रह्मन्! इस प्रकार फिर जब ब्रह्माजी सृष्टि बनानेकी इच्छा करने लगे, तब उनके शरीरसे उत्पन्न कार्य और कारणोंके साथ मानसी प्रजा हुई ॥१॥ उनकी देहसे क्षेत्रज्ञ उत्पन्न हुए जिनके नाम मैं पहले बता आया हूं ॥२॥ देवतासे लेकर स्थावर तक त्रिगुणके प्रभावसे युक्त हैं इस प्रकार स्थावर और जंगम जीवोंकी उत्पत्ति हुई ॥३॥ जब वह [illegible]ा नहीं बढ़ी तब बुद्धिमान ब्रह्माने अपने समान पुत्रोंको मनसे [illegible]त्पन्न किया ॥४॥ भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अंगिरा, मरीच

दक्ष ग्लानि और वशिष्ट ये ब्रह्माके मनसे उत्पन्न हुए पुत्र हैं ॥५॥ ये नौ पुत्र बहुत पुराने हैं। इसके बाद अपने क्रोधसे क्रोध युक्त "रुद्र" को पैदा किया ॥६॥ जिस तरह प्रथम कल्पमें पूर्व ऋषियों के संकल्प और धर्म थे उसी तरह इन लोगोंमें हुए। ब्रह्माने पहले जिन सनक, सनन्दन आदि ऋषियोंको उत्पन्न किया वे सृष्टि का कोई काम नहीं करते थे कारण यह कि वे संसारसे विमुख थे तप करनेमें तत्पर थे संसारकी वातें नहीं जानते थे संसारमें उनका प्रेम नहीं था और वे अभिमानी नहीं थे ॥८॥ महात्मा ब्रह्मदेवने जब देखा कि ये मेरे पुत्र लोककी रचना करने और बढ़ानेमें एक दम चित्त नहीं लगाते तब उन्होंने बड़ा क्रोध किया। उस समय उनके शरीरसे महा क्रोधी सूर्यके समान तेजस्वी, बड़े भारी शरीर का एक पुत्र उत्पन्न हुआ। जिसका आधा शरीर, पुरुषका और आधा शरीर स्त्रीका था। उसपुत्रसे "अपनेको अलग अलग कर दो रूप बन जाओ" ऐसा कह कर ब्रह्मदेव अन्तर्धान हो गये ॥१०॥ पिताकी यह बात सुन कर वह अलग अलग हो कर स्त्री और पुरुष बन गये! फिर पुरुष शरीरको ग्यारह बना डाला ॥११॥ फिर ब्रह्माने सुरूप, कुरूप, शान्त, क्रोध, काले, गोरे आदि अनेक प्रकारके पुरुषों और स्त्रियोंको बनाया ॥१२॥ फिर ब्रह्माजीने अपने समान पुत्र स्वायम्भुवमनुको पैदा करनेके बाद तपसे पाप रहित नारी शतरूपाको पैदा किया। स्वायम्भुवमनुने उस स्त्री (शतरूपा) के साथ विवाह किया। उस मनुकी शतरूपाके गर्भसे अपने नामसे परम प्रसिद्ध प्रियव्रत और उत्तानपाद नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥१५॥ ऋद्धि और प्रसूति नामकी दो लड़कियां हुईं। पिताने दक्षके साथ प्रसूतिका और रुचिके साथ ऋद्धि का व्याह किया ॥१६॥ प्रजापति दक्षने अपनी पत्नीके गर्भसे "दक्षिणा" नामकी पुत्री और "यज्ञ" नामक पुत्र पैदा किया। दोनोंने दाम्पत्य भाव धारण किया ॥१७॥

दक्षिणाके गर्भसे यज्ञके बारह पुत्र हुए। वे

स्वायम्भुव मन्वन्तरमें "यामा" नामक देव कहलाये ॥१८॥ और बड़े तेजस्वी हुए। प्रसूतिके गर्भसे दक्षके चौबीस लड़कियां उत्पन्न हुईं॥ १९॥ उनके नाम बताता हूं, सुनो। श्रद्धा, लक्ष्मी धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि कीर्ति और वयोदशी। धर्मने उन लड़कियोंके साथ व्याह करके उन्हें अपनी धर्मपत्नी बनाया ॥२१॥ उन लड़कियोंकी बड़ी बहनें ग्यारह थीं वे भी बड़ी सुन्दरी थीं। अब उनके नाम बताता हूं सुनो—ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्नति, अनुसूया ऊर्जा, स्वाहा और स्वधा। उनमें ख्यातिका भृगुसे, सतीका शिवसे सम्भूतिका मरीचिसे, स्मृतिका अङ्गिरासे, प्रीतिका पुलस्त्यसे क्षमाका पुलहसे, सन्नतिका क्रतुसे, अनुसूयाका वशिष्ठसे, ऊर्जाका अत्रिसे, स्वाहाका वन्हिसे और स्वधाका पितरसे व्याह हुआ ॥२४॥ धर्मको श्रद्धाके गर्भसे काम, श्रीसे दर्प, धृतिसे नियम, तुष्टिसे सन्तोष, पुष्टिसे लोभ, मेधासे श्रुत, क्रियासे दण्ड, नय तथा विनय, बुद्धिसे बोध, लज्जासे विनय, वपुसे व्यवसाय, शान्तिसे क्षेम, सिद्धिसे सुख और कीर्त्तिसे यश नामक पुत्र पैदा हुए। धर्मके पुत्र कामको अतिमुद और हर्ष नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥२८॥ अधर्मकी स्त्री हिंसा थी। उसके गर्भसे अनृत नामक पुत्र हुआ और निर्ऋति नामकी पुत्री हुई। निर्ऋतिके गर्भसे नरक और भय नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। नरकका विवाह मायाके साथ और भयका विवाह वेदनाके साथ हुआ। मायाके गर्भसे मृत्यु और वेदनाके गर्भसे दुःख नामक पुत्र हुआ। दुःखको व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा और क्रोध नामक पुत्र हुए। ये दुःख पुत्र बड़े पापी हैं, इनका व्याह नहीं हुआ इस कारण इनको लड़के भी नहीं हुए। ये सभी ब्रह्मचर्य्यपूर्वक रहते हैं ॥३२॥ मृत्युकी स्त्री निर्ऋति और अलक्ष्मी थीं। अलक्ष्मीके गर्भसे मृत्युके चौदह लड़के हुए। ३३॥ ये अलक्ष्मी के पुत्र मृत्युके आज्ञाकारी हुए। विनाशके समय ये मनुष्योंके पास जाते हैं। अब इन्हें बताता हूं, सुनो ।३४॥ दसों इन्द्रियां तथा

मनमें बैठकर स्त्री और पुरुषको अपने अपने कामोंमें लगा देते हैं ॥३५॥ ये इन्द्रियोंमें प्रवेश करके मनुष्योंको राग, क्रोध आदि विकारोंसे भर देते हैं जिनसे अधर्मके साथ हानि भी मनुष्योंकी अवश्य होती है ॥३६। उनमें एक पुत्र अहंकारमें और दूसरा बुद्धिमें बैठ जाता है जिससे मनुष्य स्त्रियोंका धर्म भ्रष्ट करनेके लिये तय्यार होकर अनेक उपाय करने लगते हैं। ३७॥ और एक दुस्सह नामक अलक्ष्मीका पुत्र है जो मनुष्यके घरमें घुसकर नाश कर देता है। वह सदा भूखके मारे घबराया रहता है। उसका मुंह नीचा है। वह सदा नङ्गा रहता है। उसकी देहमें चीथड़े लटके रहते हैं। उसकी बोली ठीक कव्वे कीसी है। ब्रह्माने उसे इसी लिये बनाया है कि वह सबको खाजाय। एक समय वह अपने कराल दांतोंको कटकटाते, मुंह बाये और भयानक रूप धारण किये मनुष्योंको खानेके लिये दौड़ा। उस समय लोकोंके पितामह, शुद्धस्वरूप जगतको पैदा करनेवाले, नाशरहित और सारे जगतको अपने हृदयमें धारण करनेवाले ब्रह्माने उससे कहा—हे वीर! इस जगत को मत खाओ, क्रोध मत करो, अपना चित्त शान्त करो, रजोगुण की कला दूर करो और तमोगुणकी वृत्ति मारना, काटना आदि बुरे कर्मोंको छोड़ दो ॥४१॥

दुस्सहने कहा कि हे जगन्नाथ! मैं भूखके मारे मरा जाता हूं और प्यासके मारे कमजोर होरहा हूं। हे नाथ! किस तरह मेरी भूख जाय, किस तरह मैं बली होऊं, किसके पास रहूं और कहां ठहरूं? ॥४२॥ ब्रह्माने कहा कि हे बेटा! तू मनुष्योंके घरमें रहा कर, वही तेरा मकान है पापी मनुष्य ही तेरे दल हैं, नित्य क्रिया (संध्या, तर्पण, वेदपाठ आदि) की हानि करनेहीसे तेरी शक्ति बढ़ेगी। व्यर्थका झगड़ा ही तेरा कपड़ा है, और तेरे खाने की चीजें बताता हूं, सुन। कटा हुआ मांस, खून, जिसमें कीड़े पड़ गये हों, जिसे कुत्तेने देख वा सूंघ लिया हो, फूटे बर्तन में रखी हुई चीज, मुंहकी हवासे ठंढीकी हुई चीज, जूठा पदार्थ

कच्चा पदार्थ, अशुद्ध स्थान पर रखी हुई चीज, फटी हुई चीज, संस्कारहीन अन्न, फटे आसन पर बैठ कर खाई हुई चीज, दरिद्र से छीनी हुई वस्तु, कोनेमें बैठ कर खाई हुई चीज, संध्या समय खाई हुई चीज, नाचकर वा बाजा बजा कर, खाई हुई चीज, ऋतुमती स्त्रीकी छूई वा देखी हुई चीज और अशुद्ध अन्न वा पीनेकी चीजें तेरे खानेके लिये और पीनेके लिये हैं। यह सब तेरे बलके बढ़नेके लिये देता हूं, और भी तेरे खाने पीनेकी चीजें बताता हूं, सुन ॥४७॥ बिना श्रद्धाके होम किया हुआ हविष्य बिन जाने वा निरादरसे दिया हुआ पदार्थ, बिना जलके रखा हुआ अन्न, वैश्वदेव बना हुआ अन्न, जो फेंक देनेके लिये बाहर निकाला गया हो या बहुत कष्टसे दियाहुआ अन्न, दुष्ट, क्रोधी और रोगीका दिया हुआ अन्न, दुबारा पकाया हुआ अन्न, और देव ऋषि पितरको छोड़ कर मनुष्योंके भोजनके लिये बनाया हुआ अन्न तेरे भोजनके लिये है। जो पुंश्चली स्त्री है उससे तेरी प्रसन्नता होगी। जो बिना व्याही हुई कन्या खेत वन पकड़कर द्रव्य कमाती है उससे भी तू बहुत प्रसन्न रहेगा। जो नीच शास्त्रमें लिखी हुई क्रियाएं हैं उनसे भी तेरा बल बढ़ेगा। जो विद्या गुरुसे कपटकर के सीखी गई है उससे भी तुझको आनन्द होगा ॥५२॥ अब तेरे लिये समय देता हूं सुन। गर्भिणी स्त्रीके साथ भोग करनेका समय, नित्यकर्मोंसे विहीन संध्या और नीच शास्त्रोंकी बातें करनेका समय तेरा बल बढ़ावेगा और तू इन्हीं समयोंमें मनुष्योंको दबावेगा ॥५४॥ जिस घरमें पंक्ति भेद (एकही जगह बिठला कर दस आदमीको दस प्रकारका अन्न खिलाना वा दस प्रकारका सत्कार करना) अशुद्ध पदार्थका भोजन तथा नित्य कलह होता है उसी घर में तू रहेगा ॥५५॥ जिस संध्याके समय गाय घोड़े वा हाथीको बांध कर भरपूर अन्न नहीं दिया जाता उस संध्यामें तुम्हारे मनुष्योंको डर होगा उस समय तू उन्हें सतावेगा ॥५६॥ नक्षत्र और ग्रह पीड़ाको जो शमन नहीं करते तथा तीनों प्रकारके उत्पातों

(आधिदैविक, आधिभौतिक, आधिदैहिक) को देखकर उनको शांत करनेका उपाय नहीं करते उन मनुष्योंको तू दुःख पहुंचावेगा ॥५७॥ व्यर्थ अथवा उत्साह रहित व्रत करनेवाले कृषा तथा पराई स्त्रीसे प्रेम करनेवाले और दिखानेके लिये पूजा पाठ करनेवाले मनुष्य तुझसे बात चीत करनेके लायक हैं ॥५८॥ ब्रह्मचर्य न धारण कर वेद पाठ करनेवाले मनुष्यके पाठका, मूर्खके किये हुए यज्ञका, तपोवनमें रहकर ग्रामको अन्न भोजन करनेका, अपनी इन्द्रियोंको वशमें न रखनेवाले मनुष्योंके पुण्य कर्मका और अपने कर्म छोड़नेवाले ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्रके परलोक साधन करनेवाले धर्मोंका जो फल होता है वह सब फल तेराही होगा। और भी तेरे बल बढ़ानेवाले पदार्थोंके नाम बताता हूं सुन ।६१॥ वैश्वदेव बलिके अन्तमें तेरा नाम कहकर जो पूजा दीजाती है वह भी तेरीही है ॥६२॥ हे यक्ष! जो मनुष्य पवित्रतासे अन्न बना कर भोजन करते हैं जिनका मन और तन दोनों पवित्र हैं जो स्त्रीको वशमें रखते हैं और जो दूसरी स्त्रीसे सम्भोग नहीं करते वा दूसरेकी चीज लेनेकी इच्छा नहीं रखते उनके घरमें तू मत जाना ॥६३॥ जिनके घरमें हव्य काव्यसे देवता पितर तथा अतिथियोंकी पूजा सदा होती रहती है उनके घरमें मत जाना ॥६४॥ जिस घरमें लड़के बूढ़े स्त्री पुरुष तथा परिवारके लोगोंमें परस्पर प्रेम हो उस घरमें मत जाना ॥६५॥ जिस घरकी स्त्रियां अपने पतिमें प्रेम रखती हैं बहुत लजाती हैं और घरके बाहर जानेकी इच्छा नहीं करतीं उस घरमें मत जाना ॥६६॥ हे यक्ष! जिस घरमें देखना कि शयन तथा भोजन उमर और बड़े छोटेके विचारसे ठीक ठीक है उस घरमें तू मत जाना ॥६७॥ जिस घरके मनुष्य बड़े दयालु हैं अच्छे कामोंमें लगे रहते हैं और साधारण भावसे रह कर किसी प्रकारका घमण्ड नहीं करते उस घरमें मत जाना ॥६८॥ जिस घरके मनुष्य गुरु वृद्ध और ब्राह्मणोंके सामने आसन पर नहीं बैठते बल्कि खड़े रह कर आदर करते हैं

उस घरमें मत जाना ॥६९॥ जिस घरका द्वार पेड़ वा लताओंसे घिरा वा ढका नहीं है और जिस घरके सब लोग कोमल वचन बोलते हैं उस घरमें मत जाना। वहां जानेसे तेरी भलाई नहीं होगी ॥७०॥ जिस घरके मनुष्य देवता पितर मनुष्य और अतिथि लोगोंसे बचा हुआ अन्न भोजन करते हैं उस घरमें मत जाना ॥७१॥ सत्य बोलनेवाले क्षमा करनेवाले किसी जीवको न मारनेवाले किसी को दुःख न देनेवाले और किसीसे डाह न करनेवाले मनुष्योंके पास मत जाना ॥७२॥ जो स्त्री भक्ति तथा प्रेमसे पतिकी सदा सेवा करती है पुंश्चली स्त्रियोंसे अलग रहती है और परिवार तथा पति को भोजन कराकर उनसे बचा हुआ अन्न खाकर अपना शरीर पालती है उस स्त्रीसे सदा अलग रहना ॥७३॥ जो ब्राह्मण यज्ञ करने वेद पाठ करने और दान करनेमें दिन भर लगा रहता है और यज्ञ कराकर, वेद पढ़ा कर तथा पवित्र दान ले कर अपनी जीविका करता है उस ब्राह्मणके पास मत जाना ॥७४॥ जो क्षत्रिय दान वेदपाठ और यज्ञमें सदा लगा रहता है और उचित मालगुजारी तथा शस्त्रधारणसे वेतन पाकर उससे अपनी जीविका करता है उस क्षत्रियके पास मत जाना ॥७५॥ जो वैश्य दान वेद-पाठ तथा यज्ञ करनेमें सदा लगा रहता है और पशुपालन, वाणिज्य तथा खेतीसे अपनी जीविका करता है उस धर्मात्मा वैश्यके पास मत जाना ॥७६॥ जो शूद्र दान यज्ञ तथा ब्राह्मणोंकी सेवामें सदा लगा रहता है और ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्योंकी सेवासे अपनी जीविका करता है उस शूद्रके पास मत जाना ॥७७॥ जिस घरमें सब काम वेद और धर्मशास्त्रमें लिखे हुए वचनोंके अनुसार होते हैं स्त्रियां अपने अपने पतिकी सेवा सच्ची भक्तिसे करती हैं पुत्र अपने गुरु पिता तथा देवताओंकी विधि पूर्वक पूजा करते हैं और परिवारके सब लोग प्रसन्न रहते हैं उस घरमें मत जाना। वहां दरिद्रता किसी प्रकार नहीं होसकती ॥७८॥ जिस समय सूर्य वा चन्द्रमा अस्त होते हैं उस संध्या (प्रातःकाल सायंकाल) में जो घर पवित्र

जलसे सींचा जाता है वा लीपा जाताहै और पुष्प धूप आदिसे पूजाकी जाती है उस घरको तू देख भी नहीं सकता तेरा जाना तो बहुत दूर है ॥८०॥ जिस घरका बिछौना सूर्यने न देखा (अर्थात् जिस घरके लोग सूर्य उदय होनेके पहलेही सो कर उठ जाते हैं) जिस घरके मनुष्य नित्य स्नान तथा होम करते हैं और जिस घरमें सूर्यके रहते रहते दीप जलाया जाता है वह लक्ष्मीका घर है तू वहां मत जाना ॥८१॥ जिस घरमें सांढ़, चन्दन, वीणा, आईना, मधु, घी और ब्राह्मणोंके हाथमें संध्या तथा तर्पण करनेके लिये तांबेके बर्तन रहते हैं उस घरमें तू नहीं रह सकता ॥८२॥

जिस घरमें कांटेदार पेड़ हों, धान आदि धन्नोंकी बेल वा पौधे हों, खराब चालचलनवाली स्त्री हो और दीमकोंके रहनेकी जगह हो वह घर तेरा है ॥८३॥ जिस घरमें पांच पुरुष, तीन स्त्रियां तीन गायें हैं और अन्धेरा होनेके बाद आग जलाई जाती है वह घर तेरा है ॥८४॥ जिस घरमें एक बकरा, दो गधे, तीन गाय, पांच भैंस, छः घोड़े और सात हाथी हों उस घरका तू नाश कर दे ॥८५॥ जिस घरमें कुदाल, टांगी, पीढ़ा और बटुआ, कड़ाही आदि बर्तन जहां तहां इधर उधर पड़े हों वह घर तेरा है ॥८६॥ मूसल, उखल स्त्रियोंकेबिछौने, गूलरका पेड़, विष्ठा और कर्तव्यगोपन ये तुम्हारे लिये उपयुक्त हैं॥८७॥

जहां कच्चा वा पक्का अन्न और मांस खाये जाते हैं वहां तू आनन्द मे रह ॥८८॥ जिस घरमें बटुएके ढकनेमें आग रखी हो और जहां कलछीसे निकालकर आग दी जाती हो वहां सब प्रकारके अमङ्गल होते हैं ॥८९॥ जिस घरमें मनुष्यकी हड्डी पड़ी रहती है वहां भूतोंका निवास होता है। तू रहता है और दूसरे राक्षस भी आकर रहते हैं ॥९०॥ जो मनुष्य अपने सपिण्ड परिवारके मृत मनुष्योंको बिना पिण्ड और जल दिये भोजन करते हैं उनके पास तू जा ॥९१॥ जिस घरमें पद्म महापद्म, ऋद्धि, सिद्धि बैल और ऐरावत हाथीका चित्र खिचा हो उस घरको तू छोड़ दे ॥९२॥

जिस घरमें देवताओंकी मूर्ति पार्षदों सहित पूजी जाती हो, बिना युद्धके भी शस्त्र इधर उधर सावधानीसे सजाये गये हों, उस घरको तू छोड़ दे ॥८३॥ जहां नगरनिवासी जन पुराने सन उत्सवोंको अच्छी तरह मनाते हों वहां तू मत जा ॥८४॥ जहां सूपसे हवा की जाती हो, मट्टीके घड़के जलसे स्नान किया जाता हो, फैलाये हुए कपड़ेसे जल टपकता हो और नखोंसे पानी छिड़का जाता हो वहां तू अच्छी तरह रहना ॥८५॥ जो देशाचार, शास्त्राचार, जाति-धर्म्म, जप, होम, मङ्गल, देवताओंकी पूजा, अच्छी तरह पवित्रता और प्रेमसे अपने घर आये जनोंसे प्रीतिपूर्वक बातें करते हैं उनसे तू अलगही रह ॥८६॥ ब्रह्माजी दुस्सहको ये सब बातें समझाकर वहीं अन्तर्धान होगये। दुस्सह भी कमलोद्भव ब्रह्माकी आज्ञा मानकर सब काम करने लगा ॥८७॥

इक्कावनवां अध्याय।

फिर मार्कण्डेय मुनि कहने लगे कि हे ब्रह्मन्! दुस्सहकी स्त्री का नाम निर्माष्टि था। वह कलिकी स्त्रीके गर्भसे चाण्डालके देखनेसे उत्पन्न हुई थी ॥१॥ दुस्सहको निर्माष्टिके गर्भसे सारे जगत में फैलकर रहनेवाले और डरावनी सूरतवाले ८ लड़के और ८ लड़कियां हुईं ॥२॥ दन्ताकृष्टि, उक्ति, परिवर्त, अङ्गधुक्, शकुनि गण्डप्रान्तरति, गर्भहा और शस्यहा ये आठ लड़के हैं। अब आठों लड़कियोंके नाम बताता हूं, सुनो ॥४॥ नियोजिका, विरोधिनी स्वयंहारकरी, भ्रामणी, ऋतुहारिका, स्मृतिहरा, बीजहरा और विद्वेषिणी—ये लड़कियां संपूर्ण लोकको डरानेवाली हैं ॥६॥ अब इन कुमार तथा कुमारियोंके कर्म और दोषोंको शान्त करनेके उपाय बताता हूं, सुनो ॥७॥ दन्ताकृष्टि पैदा हुए छोटे बालकोंके

दांतोंमें रहता है, जब यह दुस्सहको बुलाना चाहता है तब दांतोंमें सिहराहट पैदा करता है ॥८॥ उसकी शान्ति इस तरह की जाती है कि जब लड़का सो जाय तब उसके बिछौने पर पीली सरसों छीटना चाहिये ॥९॥ अच्छी अच्छी औषधियोंसे स्नान कराना चाहिये। पवित्र पुस्तकोंका पाठ सुनाना चाहिये ।१०॥ उक्ति नामका दूसरा लड़का तथास्तु तथास्तु कहता हुआ घूमा करता है। जिस मनुष्यके मुंहसे अच्छी बात निकलती है उसके तथास्तु कहनेसे अच्छाही होता है और जिसके मुंहसे बुरी निकलती है उसीके तथास्तु कहनेसे बुरा होता है ॥११॥ इस कारण बुद्धिमान मनुष्य को उचित है कि वह सदा मङ्गलहीकी बात अपने मुंहसे निकाले। यदि मुंहसे अशुभ वचन निकल जाय तो उसकी शान्तिके लिये जनार्दन भगवान तथा चराचरके पूज्य ब्रह्मदेव अथवा अपने कुल-देवताका नाम लेना चाहिये ॥१२॥ परिवर्तन नामक तीसरा लड़का दूसरेके गर्भमें दूसरेका गर्भ हेरफेर करदेताहै और कोई कुछ कहना चाहे तो उसके मुंहसे उलटीही बात कहला देता है। वह इन्हीं कामोंमें प्रसन्न रहता है। उसके शान्त करनेका उपाय यह है कि पीली सरसों उसपर छींटे और "रक्षोघ्न" मन्त्र जपकर उसकी रक्षा करे ॥१४॥ चौथा लड़का अङ्गधुक् हवाके समान है वह मनुष्योंके शरीरमें घुमकर फड़काकर मनुष्योंके शुभ और अशुभोंको बतलाता है ॥१५॥ पांचवां लड़का शकुनि है वह कौए आदि पक्षियों तथा कुत्ते और गीदड़ आदि पशुओंमें घुसकर मनुष्योंका शुभ तथा अशुभ बताता है ॥१६॥ अंग फड़के तो उसे कुशसे मारकर शान्त करे और जिस कार्य्यके आदिमें कोई पशु वा पक्षी अशुभ जनावे तो शुभकार्य्य में जल्दी करना और अशुभ कार्यको छोड़देना चाहिये ॥१७॥ छठा लड़का गण्डप्रान्तरति है वह थोड़ी देर मुंहमें रहकर सब कामोंको खाजाता है और भलेको भी बुरा बताता है ॥१८॥ उसकी शान्ति यह है कि कोई कार्य करे तो ब्राह्मणकी आज्ञा लेकर, देवताका स्तोत्र पढ़कर, पवित्र जड़ी बूटी पहनकर, गोमूत्र तथा सरसों

लगाकर स्नान करके उस समयके नक्षत्र और ग्रहोंको शान्तकर धर्म्मसम्बन्धी पुस्तकोंका पाठ वा श्रवण कर, शास्त्रोंका दर्शन और अपने जन्मको तुच्छ समझकर उसकी शान्ति करे॥२०॥ सातवां लड़का गर्भहा है वह स्त्रियोंके पेटमें घुसकर गर्भका नाश कर देता है। उसकी शान्ति करनेका उपाय यह है कि बड़ी पवित्रताके साथ रहे। प्रसिद्ध रक्षाबन्ध लिखकर धारण करे, पवित्र माला पहने और पवित्र घरमें सावधान होकर रहे॥२२॥ आठवां लड़का धान्यहा है वह खेतको सब सम्पत्तिका नाश करता है उससे रक्षा पानेका यह उपाय है कि पुराना जूता पहने, अपसव्य होकर चले वा चाण्डालको बुलाकर उस जगह बिठा देवे। घरके बाहर बलि-दान करे और सोसाख्य नामक मन्त्रका पाठ करे॥२४॥

पहली लड़की नियोजिका है वह पराई स्त्री तथा पराया धन चुरानेके लिये मनुष्योंको उत्साहित करती है। उसकी शान्तिका उपाय यह है कि पवित्र स्तोत्र पाठ करे, क्रोध और लोभ न करे मनमें सोचे कि वह मुझे व्यर्थही इन नीच कर्मोंमें फंसाती है। चित्त यदि पराई स्त्री वा पराये धनमें झुके और दूसरे लोग निन्दा करें वा समझावें तो मान जाय और विचार करे कि नियोजिका मुझे इस काममें लगाती है। फिर दृढ़ करले कि मैं इस काममें कभी न फसूंगा॥२८॥ दूसरी लड़की विरोधिनी है वह स्त्री पुरुष, पिता पुत्र, भाई भाई तथा और कुटुंबकी आपसमें होनेवाले प्रेमको नष्ट करा देती है। उसकी शान्ति बलिदान करनेसे, कठोर वचन सहनेसे और शास्त्रमें लिखे हुए आचारोंके साथ रहनेसे होती है॥४०॥ तीसरी लड़की स्वयंहारिका है वह खलिहान वा घरसे अन्न, गायसे दूध और घी और खजानेसे धन चुरा लेती है और छिपी रहती है इस कारण कोई उसे देख नहीं सकता। वह रसोईघरसे अधपका अन्न चुरा लेती है। जब कोई भोजन करता है तो उसके साथ बैठकर भोजन करती है। रसोईमें रखे हुए अच्छे अन्न चुरा लेती है: कार्य्यालय तथा खजानोंमें

र। क्षुधा धन चुरा लेती है। गाय तथा स्त्रियोंके स्तनोंसे दूध चुरा लेती है। दहीसे घी, तिलसे तेल और कपाससे सूत चुरा लेती है। वह दिन रात चुराया करती है इसलिये उसका स्वयं-हारिका नाम सत्यही है। उससे रक्षा पानेके लिये एक जोड़ा मोर अपने घरमें पालना चाहिये। लकड़ी वा मट्टीकी स्त्री बनाकर घरमें खड़ी करदे। अपने घरमें रखे हुए धनकी अच्छी तरह रक्षा करे। हवन करे, देवताओंको धूप तथा दीप देवे। दूध वा घीसे भरे हुए बर्तनोंकी रक्षा अभिमन्त्रित भस्म छीटकर करे।३८॥ चौथी लड़की भ्रामणी है। वह एक स्थानमें स्थिर होकर बैठे हुए मनुष्योंके चित्तमें घबराहट पैदा कर इधर उधर व्यर्थही घुमाया करती है। उससे रक्षा पानेका उपाय यह है कि उस घबराये हुए मनुष्यके बिछौने तथा चारपाई पर पीली सरसों छीटे और वह मनुष्य अपने चित्तमें यह सोचे कि यह पापिनी भ्रामणी मेरे चित्तमें उद्वेग पैदा करती है और पृथिवीसूक्तका पाठ करे॥४१॥ पांचवीं लड़की ऋतुहारिका है वह स्त्रियोंके ऋतुको चुरा लेती है। ठीक समय पर वा अच्छी तरह ऋतु नहीं होने देती। उससे रक्षा पानेके लिये तीर्थों, देवमन्दिरों, महात्माओंके मठों, पर्वतोंकी चोटियों, नदियोंके सङ्गम और पवित्र देवकुण्डोंमें स्नान करे। मन्त्र जाननेवाला तान्त्रिक और अच्छी चिकित्सा जाननेवाला वैद्य समय समय (पूर्णिमा अष्टमी आदि तिथि तथा दोनों सन्ध्या) पर अच्छे प्रयोग तथा औषधसे उसकी रक्षा करे॥४४॥ छठी लड़की स्मृति-हारिका है वह स्त्रियोंके चित्तको बिगाड़ देती है जिससे उसे कोई बात याद नहीं आती। उससे रक्षा पानेके लिये खूब एकान्त और पवित्र स्थानमें रहे॥४५॥ सातवीं बीजहारिका है वह स्त्रियोंके रज वीर्यको हरण कर लेती है जिससे उसे कोई सन्तान पैदा नहीं होती। उससे रक्षा पानेके लिये स्नान और पवित्र भोजन करे॥४६॥ आठवीं लड़की द्वेषिणी है उससे सारा संसार डरता है वह स्त्री पुरुषके परस्पर प्रेमको नष्ट कर देती है जिससे आपसमें

बड़ी लड़ाई हुआ करती है। उससे रक्षा पानेके लिये मधु, दूब घी और तिलसे होम करे और सिलविन्दा नामक यज्ञ करे ॥४८॥ इन लड़के तथा लड़कियोंके सन्तानें हैं वे गिनतीमें अड़तीस हैं। अब उनके नाम बताता हूं, सुनो ॥४९॥

दुःसहकी लड़की कलहा है। वह जिसके घरमें घुस जाती है वह मनुष्य कठोर झूठ तथा अभिमानका वचन बोलने लगता है उससे सबसे झगड़ा हुआ करता है। उसकी शांतिका यह उपाय है कि गृहस्थ स्वस्थ होकर उसीकी चिन्ता करे कि पापिनी कलहा मेरे मनमें बस कर व्यर्थही सबसे कलह करा रही है। यह मेरा तथा मेरे कुटुम्बका नाश कर देगी। शांति करनेका दूसरा उपाय यह है कि हरी हरी दूब, मधु, घी और दूधका बलिदान तथा होम करे। अग्निको हविष्य देकर प्रसन्न करे और इन मन्त्रोंका पाठ करे। हे मातृकाओंके संगवाले भूत गण! बालकोंके रोगोंकी शांतिके लिये प्रसन्न रहो। विद्या तप संयम यम खेती और वाणिज्यके विघ्नोंको दूर भगाओ ॥५४॥ कुष्माण्ड यातुधान तथा और जितने गण हैं वे सब विधि पूर्वक पूजा पाकर प्रसन्न हों। शिवजीकी आज्ञापाकर उनकी प्रसन्नतासे सब मनुष्योंके सब कष्ट दूर करें ॥५६॥ वे सब प्रसन्न होकर बड़े बड़े पापोंसे उत्पन्न दुःख कष्ट रोग तथा विघ्नोंको दूर करें। उन्हींकी प्रसन्नतासे सब विघ्न नष्ट हों। विवाहमें सब प्रकारके वृद्धिके कामोंमें पवित्र कार्योंमें गुरु तथा देवताओंकी पूजामें जपोंमें यज्ञमें यात्राओंमें शरीरकी आरोग्यतामें सुख देनेवाले पदार्थोंमें धनमें और बालक बूढ़े तथा रोगियोंके शरीरोंमें वह सब प्रसन्न हो कर शांति करें और सब प्रकारके विघ्नों को दूर करें ॥६०॥ सूर्य चन्द्रमा समुद्र वायु वरुण अग्नि ये सब मेरी रक्षा करें। उन्होंका लड़का कालजिह्व हुआ वह तालके समान है और तालकी पर रहता है वह जिसकी माताके स्तनमें जाकर रहता है उसे बहुत कष्ट देता है। परिवर्तके विरूप और विकृत नामक दो लड़के हैं ये पेड़ोंकी चोटी पर गर्द के

किनारे कोठेके ऊपर और समुद्रके तीर पर रहते हैं। यदि गर्भिणी इनके पास जाय तो गर्भ नष्ट कर देते हैं इस कारण उचित है कि गर्भिणी स्त्री पेड़ पहाड़ ऊंचे कोठे समुद्र वा खाईके पास न जाय और न उनको लांघे। अग्रधुवाका लड़का पिशुन है वह मनुष्योंको हड्डी मेद मज्जा तथा खूनमें घुस कर बल नष्ट कर देता है। शकुनिके पांच लड़के हुए। श्येन, काक, कपोत, गृध्र और उलूक। उन सबको देवताओंने लेलिया। मृत्युने श्येन (बाज) को कालने काकको निर्ऋतिने उलूक (घुग्घू) को व्याधिने गृध्र को और यमने कपोत (कबूतर) को अपने पास रखा ॥६८॥ इन लोगोंके पाप करनेके लिये ये पक्षी मनुष्योंके पास भेजे जाते हैं। इस कारण ये पक्षी जिसके सिर पर बैठते हैं उसकी बड़ी हानि होती है। बुद्धिमान पुरुष इनसे अपनी रक्षा करनेके लिये अच्छी तरह शांति करे ॥६९॥ जिस घरमें ये पक्षी अण्डे दें वा बच्चे पैदा करें वा घोंसले बनावें वह घर छोड़ दे। और जिस मनुष्यके सिर पर ये पक्षी बैठें उसका नाश समझना। उसको अपने प्राण बिना शान्ति किये न जाने दे ॥७०॥ बाज कबूतर गीध कौआ और घुग्घु जिस घरमें घुस जाते हैं उस घरमें रहनेवाले मनुष्य मर जाते हैं ॥७१॥ ऐसे घरको शीघ्रही छोड़ दे और अच्छी तरह शान्ति करे। स्वप्नमें भी कबूतरका देखना अच्छा नहीं है ॥७२॥ गण्डप्रान्तरतिके छः लड़के हैं वे स्त्रियोंकी ऋतुमें रहते हैं। अब उनके रहनेका समय बताता हूं। सुनो ॥७३॥ वे लड़के रजस्वला स्त्रीके पहले चार दिनोंमें, ग्यारहवें दिन, तेरहवें दिन ऋतुधर्मके बाद गमन योग्य दिनोंको छोड़ कर और दूसरे दिन, श्राद्धके दिन और पर्वके दिनोंमें स्त्रीकेऋतुमें रहते हैं इसकारण उचित है कि बुद्धिमान पुरुष इन बताये हुए दिनोंमें स्त्रीके साथ सम्भोग न करे ॥७५॥ गर्भहाका पुत्र निघ्न है और उसकी लड़की मोहनी है। वह लड़का गर्भमें घुसकर गर्भ खाजाता है और वह लड़की गर्भको उलट पुलट देती है। ऐसा करनेसे गर्भमें लड़केके बदले

सांप, मेढक, कछुआ, नेवला वा बिछा पैदा होती है ॥७७॥ जो गर्भिणी स्त्री छः महीनेके भीतर मांस खाती है, पवित्रतासे नहीं रहती, रातको पेड़के नीचे वा चौराहे पर जाती है, मृतकके बिछौने पर, जमीन पर; नंगी होकर वा बिना चादर ओढ़े सो जाती है अथवा आधीरातको रोती है उस गर्भिणी स्त्रीके ऋतु या शरीरमें ये घुस जाते हैं ॥७८॥ सस्यहाका लड़का क्षुद्रक है वह अपना दाव पाकर खेतमें लगेहुए अन्नको नष्ट करदेता है। जो मनुष्य अशुभ दिनमें बिना कुछ अन्न जल खायेपिये खेतमें बीज बोता है उस मनुष्यके खेतमें वा शरीरमें वह घुस जाता है। इस कारण उचित है कि समझदार आदमी शुभदिनमें अपने मित्र तथा परिवारके साथ प्रसन्न होकर सूर्यदेवको प्रणाम करके खेतमें बीज बोये ॥८२॥ मैंने जो दुस्सहकी लड़की नियोजिकाका नाम बताया था उसको प्रचोदिका नामकी चार लड़कियां हुईं ॥८३॥ वे मत्त उन्मत्त प्रमत्त पुरुष तथा युवा स्त्रीके शरीरमें घुसकर उनकी बुद्धि बिगाड़कर नाश करती हैं जिससे वे मनुष्य वा वे स्त्रियां अधर्मको धर्म अकामको काम,अनर्थको अर्थ और अमोक्षको मोक्ष समझने लगती हैं ॥८५॥ उनसे रक्षा पाने का उपाय केवल पवित्रता है पवित्रता न रहनेसे मनुष्य तथा स्त्रियों का स्वभाव नीच होजाता है। बल घटजाता है जिससे सब पुरुषार्थ नष्ट होजाते हैं ॥८६॥ संध्या समय, गूलरके पेड़में, जिस घरमें उचित समय पर धाता और विधाताकी पूजा नहीं होती उस घरमें खाने पीनेके बाद मुंहमें लगे हुए जल और अनेक अपवित्रता के समय स्त्री वा पुरुषके शरीरमें घुस जाती हैं ॥८८॥ विरोधिनीके तीन लड़के हैं, चोदक, ग्राहक और तमःप्रच्छादक। अब इनका स्वरूप बतलाता हूं, सुनो ॥८९॥ जिस घरमें जलते हुए दीपसे तेल टपकता हो मूसल, ऊखल, खड़ाऊं, बिछौने, घी, सूप और कुदालमें पैर लगाया जाता हो वा वे वस्तुएं लांघी जाती हों, लीपी हुई जमीनमें बिना पूजा किये बैठा जाता हो और चालनीसे आग निकालकर किसीको दी जाती हो उस घरमें विरोधिनीके

चारों लड़के खूब उछल कूद करते हैं ॥८२। चोदक नामक विरोधिनीका लड़का पुरुष वा स्त्रीकी जीभ पर बैठकर झूठी बात कहलाता है, कठोर वचन मुंहसे निकलवा कर लड़ाई लगाता है और निन्दा कराकर वैर पैदा कराता है ॥८३॥ विद्वेषिणी नामकी जो कन्या है उसकी भी भौहें बड़ी टेढ़ी हैं। उसके दो लड़के हैं जो मनुष्योंका अपकार प्रकाशित करते हैं, जो मनुष्य बीजरहित हैं और जो स्त्री अपवित्र रहती है; जो दूसरेकी निन्दा करते हैं चंचल स्वभाववाले हैं और जो नीच जातिके हाथका जल पीते हैं तथा सबसे विना कारण भी द्वेष करते हैं उनमें वे दोनो घुसकर माता पिता, भाई बन्धु, तथा परिवारके लोगोंसे लड़ाई झगड़े कराकर नाश कर देते हैं और उनके धर्म्म कर्म्मको नष्ट भ्रष्ट कर देते हैं। एक तो उनका दोष प्रकटकर दुनियामें उनकी हंसी कराता है और दूसरा उनका गुण अत्यन्त प्रकटकर दूसरोंसे डाह पैदा कराता है। ये सब दुस्सहकी सन्तान हैं सब जातिके यक्ष हैं और पापी हैं। ये सारे संसारमें फैलकर रहते हैं ॥१२१॥

बावनवां अध्याय।

मार्कण्डेय मुनि कहने लगे कि हे क्रौष्टुकि! अनादि देव ब्रह्मा की यह तामसी सृष्टि है। अब रुद्रकी सृष्टिका वर्णन करता हूं सुनो ॥१॥ ब्रह्मदेवके आठ पुत्र स्त्री तथा पुत्रियोंकी बात बताता हूं। कल्पके आदिमें अपने बराबर सबको पैदा करनेकी इच्छा की ॥२॥ ब्रह्मदेव ध्यान करने लगे उस समय उनकी गोदमें एक कुमार पैदा हुआ वह कुछ काला और कुछ नीला था। वह धीरे

धीरे मीठे स्वरमें रोने लगा और दौड़ना चाहा। उस समय ब्रह्मा जीने पूछा कि तू क्यों रोता है? कुमारने जगत्पति ब्रह्मासे कहा कि आप मेरा नाम रखिये ॥४॥ ब्रह्माने कहा कि देव! तुम्हारा नाम रुद्र है यह बात सुन कर फिर रुद्र सात बार रोये ॥५॥ फिर ब्रह्माने उनके और सात नाम रखे। उनके स्थान तथा पुत्र और पत्नियोंके नाम बताये ॥६॥ भव शर्व ईशान पशुपति भीम उग्र और महादेव ये सात नाम उनके रखे। और उनके स्थान बनाये। सूर्य जल, पृथिवी, अग्नि, वायु, आकाश, यज्ञ करनेवाला ब्राह्मण और चन्द्रमा। ये आठों उनके शरीर हैं। सुवर्चला, उमा, विकेशी, स्वधा, स्वाहा, दिशा दीक्षा, और रोहिणी ये आठों उनकी स्त्रियां हैं। शनैश्चर, शुक्र, लोहितांग, मनोजव, स्कन्द, सर्ग, सन्तान और बुध ये आठों क्रमसे सूर्य आदिके पुत्र हैं ॥११॥ इस प्रकारके रुद्रदेवने सतीके साथ व्याह किया। सतीने दक्ष पर क्रोध करके अपना शरीर छोड़ा ॥१२॥ वेही सती मेनाके गर्भसे उत्पन्न होकर हिमवानकी पुत्री कहलाईं। उनके भाई मैनाक समुद्रके परम मित्र हुए। शिवजीने फिर हिमवानकी पुत्री (पार्वती) से व्याह किया ॥१३॥ ख्यातिके गर्भसे भृगुके धाता और विधाता दो लड़के हुए और श्री नामकी एक लड़की हुई जो देव देव नारायणभगवानकी स्त्री है ॥१४॥ महात्मामेरुके दो लड़कियां हुईं आयति और नियति। आयतिसे धाताका और नियतिसे विधाताका व्याह हुआ। आयतिके पुत्र प्राण और नियतिके पुत्र मेरे पिता हुए। मैं उनकी धर्मपत्नी मनस्विनीके गर्भसे उत्पन्न हुआ। मेरा लड़का वेदशिरा हुआ। मेरी स्त्रीका नाम धूम्रवती है। प्राणके पुत्र द्युतिमान् हुए। उनके पुत्र अजरा हुए। फिर उनके पुत्र पौत्र हजारों हुए। मरीचिकी पत्नी सम्भूतिके गर्भसे पौर्णमास उत्पन्न हुआ। पौर्णमासके विरजा और पर्वत दो पुत्र उत्पन्न हुए। विरजा और पर्वतके पुत्रोंकी बात वंश वर्णनमें कहूंगा ॥१८॥ आंगिरसकी पत्नी स्मृतिके गर्भसे लड़कियां हुईं। उनके नाम ये हैं। सिनीवाली, कुहू, राका,

भानुमती और सनुक्ष्य ॥२०॥ अत्रिके पुत्र सोम, दुर्वासा और योगिवर दत्तात्रेय हुए ॥२१॥ पुलस्त्यकी पत्नी प्रीतिके गर्भसे दत्तोलि हुआ। वह स्वायंभुव मन्वन्तरमें अगस्त्य कहलाता था ॥२२॥ पुलहकी स्त्री क्षमाके गर्भसे कर्दम, अर्वरीवान और सहिष्णु ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए ॥२३॥ क्रतुकी स्त्री सन्नतिने अनेक लड़के पैदा किये। वे बड़े ब्रह्मचारी लड़के साठ हजार ऋषि कहलाये ॥२४॥ ऊर्जाके गर्भसे वशिष्ठके सात लड़के हुए। रज गात्र, ऊर्ध्ववाहु, सवन, अनघ, सुतप और शुक्र। ये सप्तर्षि कहलाये। ब्रह्माके बड़े लड़के अभिमानी अग्नि थे उनके स्वाहाके गर्भसे तीन लड़के हुए जो जलको सुखा देते हैं। उनके नाम ये हैं-- पावक पवमान और शुचि ॥२७॥ उनके लड़के पैंतालीस और कहे हुए तीनों पुत्र तथा उनके पिता ये उनचास बड़े धनी हैं। मैंने जो तुमसे कहा था कि ब्रह्माने पितरोंको पैदा किया उनके नाम ये हैं अग्निष्वाता, बर्हिषद, अनग्नि और साग्नि। इनसे स्वधाके दो लड़कियां उत्पन्न हुईं मैना और वैधारिणी ॥३०॥ ये दोनों ब्रह्मज्ञानसे भरी थीं योगिनी थीं और उत्तम ज्ञानोंसे धनी तथा सब गुणोंसे पूरी थीं ॥३१॥ मैंने दक्ष कन्याओंकी सन्तानोंका वर्णन किया। जो श्रद्धा युक्त होकर यह कथा सुनते हैं उनके सन्तान अवश्य उत्पन्न होती है ॥३२॥

तिरपनवां अध्याय।

क्रौष्टुकिने पूछा कि हे भगवन्! आपने जो स्वायम्भुव नामका मन्वन्तर कहा उसे मैं अच्छी तरह सुनना चाहता हूं। आप

कृपाकरके कहिये ॥१॥ मन्वन्तरका प्रमाण उस समयके देवता देवर्षि देवेन्द्र और राजाओंके नाम बताइये ॥२॥ मार्कण्डेय मुनि बोले कि हे वत्स! मन्वन्तरका प्रमाण एकहत्तर है। मनुष्यके प्रमाण से मन्वन्तरका प्रमाण बताता हूं सुनो। ६७ नियुत ३० करोड़ २० हजार वर्ष मन्वन्तरका समय है ॥४॥ और देवताओंके प्रमाण से ६० हजार वर्ष मन्वन्तरका प्रमाण है ॥५॥ स्वायम्भुव, स्वारोचिष औत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष क्रमसे ये छः मनु बीत चुके। इस समय वैवस्वत मनु हैं। पांच सावर्णि और रौच्य ये सात मनु अब आने वाले हैं ॥७॥ इनका विस्तारके साथ मनुओंकी कथामें वर्णन करूंगा। अब देवता, ऋषि, यक्ष, इन्द्र और पितरकी उत्पत्ति और सन्तानोंका वर्णन करता हूं और जो इनके स्थान हैं तथा पुत्र हुए हैं उनकी बातें भी तुमको समझाता हूं सुनो। स्वायम्भुव मनुके दस लड़के अपने पिताके समान उत्पन्न हुए। जिन लोगोंने सारी पृथिवी, सातों द्वीप, सातों पर्वत और सातों समुद्रों पर प्रतिवर्ष अपना अधिकार रखा था स्वायम्भुवमन्वन्तरमें पहले आदि त्रेता युगमें स्वायम्भुवके पौत्र और प्रियव्रतके पुत्र अनेक हुए। प्रियव्रत के प्रजावर्ताके गर्भसे लड़की हुई ॥१२॥ कर्दमके दो लड़कियां और दस पुत्र हुए। वे दसों लड़के बड़े वीर तथा प्रजापतिके समान तेजस्वी थे ॥१३॥ अग्नीध्र, मेधातिथि, वपुष्मान्, ज्योतिष्मान् द्युतिमान्, भव्य और सवन ये सात लड़के प्रियव्रतके हुए। प्रियव्रतने इन सातों लड़कोंको सातों द्वीपोंका राजा धर्म पूर्वक बनाया। अग्नीध्रको जम्बूद्वीपका राजा बनाया। प्लक्षद्वीपका राजा मेधातिथि बना। शाल्मलद्वीपके राजा वपुष्मान् कुशद्वीपके राजा ज्योतिष्मान् क्रौञ्चद्वीपके राजा द्युतिमान् शाकद्वीपके राजा भव्य और पुष्करद्वीपके राजा सवन बनाये गये ॥१८॥ पुष्कराधिपति सवनके दो पुत्र हुए महावीत और धातकि। पिताने पुष्करके दो भाग करके दोनोंको राजा बना दिया ॥१९॥ भव्यके सात लड़के हुए। अब उनके नाम बताता हूं, सुनो। जलद, कुमार,

सुकुमार, मणीवक, कुसुमोत्तर, मोदाकी और महाद्रुम। भव्यने शाकद्वीपके सात टुकड़े कर इन सातों लड़कोंको उनमें राजा बना कर उन्हींके नामसे उन सातोंका नाम रक्खा ॥२५॥ द्युतिमानके भी सातही लड़के हुए। कुशल, मनुग, उष्ण, प्राकारक, अन्धकारक, मुनि और दुन्दुभी। द्युतिमानने क्रौंचद्वीपके सात टुकड़े करके उन्हीं उनके राजा बना कर उन्हींके नामसे उन देशोंको प्रसिद्ध किया ॥२६॥ ज्योतिष्मानके सात लड़के हुए। पिताने कुशद्वीपके सात टुकड़े कर उन्हें राजा बना कर उन्हींके नामसे सातों द्वीपोंको प्रसिद्ध किया उन सातों लड़कोंके नाम ये हैं—उद्भिद, वेणुमान, स्वैरथ, लम्बन, धृतिमान, प्रभाकर और कापिल ॥२६॥ वपुष्मानके सातों लड़के शाल्मल द्वीपके सातों टुकड़ोंके एक एक अलग अलग राजा हुए और वे टुकड़े उन्हींके नामोंसे प्रसिद्ध हुए। वपुष्मान पुत्रोंके नाम ये हैं श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस और केतुमान ॥२७॥ प्लक्षद्वीपके राजा मेधातिथिके शान्तभय, शिशिर, सुखोदय, आनन्द, शिव, क्षेमक और ध्रुव ये सात लड़के उत्पन्न हुए। यही प्लक्षद्वीपके सातों टुकड़ोंके राजा बने और इन्हींके नामसे वे टुकड़े जगतमें जाहिर हुए ॥२८॥ प्लक्षद्वीप शाल्मलद्वीप क्रौंचद्वीप कुशद्वीप और शाकद्वीप इन पांचों द्वीपोंमें वर्ण और आश्रम धर्म नित्य तथा स्वाभाविक हैं। इन द्वीपोंमें हिंसा नहीं है। सब साधारण रीतिसे रहते हैं ॥३१॥ पिताने पहले अग्नीध्रको जम्बूद्वीपका राजा बनाया। अग्नीध्रके नव लड़के हुए जो प्रजापतिके समान थे ॥३२॥ बड़े बेटेका नाम नाभि उससे छोटेका नाम किम्पुरुष तीसरेका नाम हरिवर्ष चौथेका नाम इलावृत पांचवेंका नाम रम्य छठेंका नाम हिरण्य सातवेंका नाम कुरु आठवेंका नाम भद्राश्व और नवेंका नाम केतुमाल। इन्हींके नामसे जम्बूद्वीपके सातों टुकड़े प्रसिद्ध हुए। किम्पुरुष नामक खण्डके केवल हिमालय को छोड़ कर और स्थानके रहनेवाले मनुष्योंकी सिद्धि स्वाभाविक है। वे सदा सुखी ही रहते हैं। उनकी कोई बात उलटी

पुलटी नहीं है सब ठीक ही हैं। वहां बुढ़ापा और मौतका डर नहीं है ॥३६॥ धर्म अधर्म उत्तम अधम और मध्यमका वहां कुछ भेद नहीं है। वहा चारों युग छओं ऋतु और बारह महीनों का कुछ भेद वा प्रभाव नहीं होता वहां सदा एकसा काल रहता है ॥३७॥ अग्नीध्रके पुत्र नाभिके ऋषभ नामक लड़के हुए। ऋषभके पुत्र भरत हुए जो हजारों लड़कोंसे अधिक वीर थे ॥३८॥ ऋषभदेवने अपने पुत्र भरतको राज्य देकर वनमें जाकर महा संन्यास ले लिया। और पुलह ऋषिके आश्रममें जाकर तप करने लगे ॥३९॥ हिमालयको दक्षिण दिशाका सम्पूर्ण देश पिताने भरतको देदिया। इस कारण उस सम्पूर्ण देशका नाम भारतवर्ष हुआ ॥४०॥ भरतका पुत्र सुमति हुआ जो बड़ा धार्मिक था। भरत भी अपना राज्य उसे देकर वनमें तप करनेके लिये चले गये ॥४१॥ इस प्रकार स्वायंभुव मन्वन्तरमें सातों द्वीप से युक्त वसुंधराका राज्य इन्हींके पुत्र पौत्रोंने किया ॥४२॥ हे द्विजोत्तम! स्वायंभुव मन्वन्तरकी सब बातें मैंने तुमसे कहीं। अब तुम्हें क्या सुनाऊं? कहो ॥४३॥

चौवनवां अध्याय।

क्रौष्टुकि फिर पूछने लगे कि हे मुनि! कितने द्वीप हैं कितने समुद्र हैं कितने पर्वत हैं कितने देश हैं और कितनी नदियां हैं ॥१॥ महाभूतोंका प्रमाण लोकालोक (सातों द्वीप युक्त पृथिवीको दीवार की तरह चारोंओर घेरकर खड़ा रहनेवाला एक पर्वत) की लम्बाई [illegible] सूर्य और चन्द्रमाकी गति की सब बातें समझा कर मुझसे कहिये ॥२॥ मार्कण्डेय मुनिने जवाब दिया कि हे द्विजवर!

यह सारी पृथिवी पचासकरोड़ कोसमें फैल कर रही है। इसके सब स्थानोंका हाल तुम्हें बताता हूं, सुनो ॥४॥ मैंने जो तुमसे जम्बूद्वीपसे लेकर पुष्करद्वीप तकका हाल कहा था उसका विस्तार के साथ सब हाल कहता हूं। सुनो ॥५॥ जम्बूद्वीपका दुगना प्लक्षद्वीप है। प्लक्षद्वीपका दुगना शाल्मल है इसी प्रकार शाल्मलसे बड़ा कुश, कुशसे बड़ा शाक और शाकद्वीपसे दुगना पुष्करद्वीप है ॥६॥ लवण, ईख, सुरा, घृत, दधि, दूध और जलके समुद्र हैं। ये सातों समुद्र क्रमसे एकसे दूसरे दुगने हैं। और जम्बूद्वीपसे लेकर पुष्करद्वीप तक क्रमसे एक एक द्वीपको एक एक समुद्र घेरे रहते हैं ॥७॥ एक लाख योजनकी लम्बाई चौड़ाई में जम्बूद्वीप है। उसमें हिमवान, हेमकूट, निषध, मेरु, नील, श्वेत और शृङ्गी ये सात पर्वत हैं। इन्हें सब लोग वर्ष पर्वत कहते हैं ॥८॥ उनमें बीचवाले दो पहाड़ लाख लाख योजनकी लम्बाई चौड़ाईमें फैले हुए हैं। उनके दक्षिण दिशामें रहनेवाले दो पहाड़ और उनके उत्तर दिशामें रहनेवाले दो पहाड़ क्रमसे उनसे आपसमें दस दस हजार योजन छोटे हैं। सब पहाड़ दो हजार योजन ऊंचे हैं। ये छः पहाड़ समुद्र तक फैले हुए हैं। पृथिवीके बीच का हिस्सा ऊंचा है। और दक्षिण तथा उत्तरका हिस्सा गहरा है ॥१२॥ दक्षिण दिशाकी ओर तीन उत्तर दिशाकी ओर तीन और बीचमें आधे चन्द्रमाके समान इलाहृत नामक वर्ष (मझा देश) है ॥१४॥ उसके पूर्व दिशामें भद्राश्व और उत्तर दिशामें केतुमाल नामक वर्ष हैं। इलाहृतके बीचमें मेरु नामक सुवर्णका पर्वत है उसकी ऊंचाई चौरासी हजार योजन है। उसका मूल सोलह हजार योजन तक नीचेको गया है। उसकी चौड़ाई सोलह हजार योजन है ॥१५॥ वह अण्डकटाहके बीचमें है। उसकी बत्तीस चोटियां हैं उसकी पूर्व दिशा में सुफेद दक्षिण दिशा में पीत (पीला) पश्चिम दिशामें काला और उत्तर दिशामें लाल रङ्ग है ॥१६॥ उसके चारों ओर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र

रहते हैं। उसको आठों दिशाओंमें इन्द्र आदि लोकपाल रहते हैं। उसके बीचमें ब्रह्माकी सभा है। वह सभा चौदह योजन ऊंची है। उसका मूल अयुत योजन नीचेको गया है। उसके नीचे विष्कम्भ नामक पर्वत है। सुमेरुकी पूर्व दिशामें मन्दर पर्वत दक्षिण दिशामें गन्धमादन पर्वत पश्चिम दिशामें विपुल और उत्तर दिशामें सुपार्श्व पर्वत है। वे पर्वत केतुपादपोंसे (बहुत ऊंचे वृक्षोंसे) शोभित हैं। मन्दर पर्वतमें कदम्ब केतु (पताका) है। गन्धमादन में जम्बू (जामन) केतु है। विपुल पर्वतमें अश्वत्थ (पीपल) केतु है और सुपार्श्व पर्वतमें वटकावृक्ष केतु है। ये वृक्ष ग्यारह सौ योजनोंमें फैले हुए हैं ॥२१॥ पूर्व दिशामें जठर और देवकूट नामक पर्वत हैं। ये दोनों नील देशसे लेकर निषध देश तक आपसमें मिले हुए फैले हैं ॥२२॥ मेरुके पच्छिम बगलमें निषध और पारिपात्र फैले हैं। दक्षिण बगलमें कैलास और हिमवान् नामक दो महान पर्वत हैं। ये पूर्व तथा पश्चिम समुद्र तक फैले हुए हैं ॥२४॥ मेरुके उत्तरबगलमें शृङ्गवान् और जारुधि नामक दो पर्वत हैं। जिस तरह दक्षिण दिशावाले पर्वत पूर्व पश्चिम समुद्र तक फैले हुए हैं उसी तरह उत्तर दिशावाले पर्वत भी पूर्व पश्चिम समुद्र तक फैले हुए हैं ॥२५॥ ये आठों पहाड़ मर्यादा पर्वत कहलाते हैं। हिमवान् हिमकूट आदि पर्वत नव हजार योजनोंमें फैले हुए हैं। इलावृतमें रहनेवाला मेरु भी चौड़ाईमें बहुत बड़ा है ॥२७॥ गन्धमादन पर्वतमें उस पर्वतकी चोटी पर जो जामनके फल गिरते हैं वे हाथीके बराबर बड़े हैं ॥२८॥ उस फलके रससे जम्बू नामक एक नदी बन गई है। जम्बू नदी में होने वाला सुवर्ण जाम्बूनद कहलाता है ॥२९॥ वह जम्बू नदी मेरुकी परिक्रमा करके फिर उसी जामनके पेड़की जड़में आकर घुस जाती है। उस नदीका जल सब लोग पीते है ॥३०॥ भद्राश्वमें अश्वशिरा नामक विष्णु, भारतमें कूर्म नामक विष्णु, केतुमालमें वराह नामक विष्णु और उत्तरमें मत्स्य नामक

पचपनवां अध्याय।

फिर मार्कण्डेयमुनि कहने लगे कि हे विप्रवर ! मन्दर आदि चारों पर्वतोंमें जो चार वन और चार तालाब हैं उनके नाम सुनो ॥१॥ पूरबके पहाड़में चैत्ररथ दक्खिन पहाड़में नन्दन पश्चिम के पहाड़में वैभ्राज और उत्तरके पहाड़में सावित्र नामक वन है ॥२॥ पूरबके पहाड़में अरुणोद दक्खिनके पहाड़में मानस पश्चिमके पहाड़में शीतोद और उत्तरके पहाड़में महाभद्र नामक सर (तालाब) है ॥३॥ मेरुकी पूर्व दिशामें शीतार्त्त, चक्रमुंज, कुमार, सुकंकवान्, मणिशैल, वृषवान, महानील, भयाचल, सबिन्दु, मन्दर, वेणु, तामस निषध और देवशैल नामक बड़े बड़े पहाड़ हैं॥४॥ मेरुकी दक्षिणदिशामें त्रिकूट शिखराद्रि कलिंग, पतङ्गक, रुचक, सानुमान् ताम्रक, विशाखवान्, श्वेतोदर, समूल, वसुधार, रत्नवान्, एकशृङ्ग, महाशैल, राजशैल, पिपाठक, पञ्चशैल, कैलास, हिमवान, अचलोत्तम, नामक बड़े बड़े पहाड़ हैं ॥५॥ मेरुकी पश्चिम दिशामें सुरक्ष शिशिराक्ष, वैदूर्य, पिङ्गल, पिञ्जर, महाभद्र, सुरस कपिल, मधु, अञ्जन, कुक्कुट, कृष्ण, पाण्डुर सहस्रशिखर, पारियात्र और शृङ्गवान् नामक बड़े बड़े पहाड़ हैं। मेरुकी उत्तर दिशामें शंखकूट, वृषभ, हंसनाभ, कपिलेन्द्र, सानुमान, नील, स्वर्णशृङ्गी, शातशृङ्गी, पुष्पक, मेघपर्वत, विरजाक्ष, वराहाद्रि, मयूर और जारुधि नामक बड़े बड़े पहाड़ हैं। इन पहाड़ोंकी कन्दराएं बड़ी सुन्दर हैं। वे सुहावने वन तथा निर्मल जलसे भरे सरोवरोंसे सुहावनी लगती हैं। वहां धर्मात्मा मनुष्योंका जन्म होता है। वे पृथिवी पर एक दूसरे

ही स्वर्ग हैं। इनमें स्वर्गके गुणोंसे अधिक गुण है। वहां पुण्य पाप नहीं लगते न उनके फलही भोगने पड़ते हैं ॥१६॥ वहां पुण्यही भोगनेके लिये लोग जन्मते हैं। इन पर्वतोंमें देवताओंके बराबरही सुख मिलते हैं ॥१७॥ विद्याधर, यक्ष, किन्नर उरग, राक्षस, देवता, और गन्धर्वोंके रहनेके योग्य अनेक सुन्दर सुन्दर स्थान हैं ॥१८॥ उन पर्वतोंमें देवताओंके अनेक सुन्दर फूलोंके बागीचे हैं। अनेक सुन्दर सरोवर हैं। सब ऋतुओंमें सुख देनेवाली हवा बहती रहती है। वहांमनुष्यका मन कभी उदास नहीं होता। मैंने तुमसे पृथिवीके कमलका वर्णन किया। कमलमें भद्राश्व भारत आदि चारों वर्ष (महादेश) ही चार पत्ते हैं। मैंने जो तुमसे भारतवर्षका नाम लिया है वह कर्मभूमि है। दूसरे वर्षमें पाप पुण्यका फल नहीं होता यह सब वर्षोंमें प्रधान है भारतवर्षमें सब प्रकारकी वस्तुएं हैं ॥२२॥ मनुष्य अपनेही कर्मोंसे स्वर्ग अपवर्ग (मोक्ष) मर्त्यलोक नरक और पशु पक्षियोंका जन्म तथा अन्य सुख दुःख भारतवर्षमें पाता है ॥२३॥

छप्पनवां अध्याय ।

मार्कण्डेय मुनि बोले कि ब्रह्मन्! नारायणके जो चरण कमल जगतके पैदा करनेवाले ब्रह्माके स्थिर आधार हैं उन्हीं चरणोंमे त्रिपथगामिनी गङ्गा देवी निकलीं ॥१॥ वहांसे निकल कर अमृत की आधार और जलकी राशि श्रीचन्द्रदेवमें प्रवेश कर उनकी किरणोंसे मिली हुई सूर्यके किरणोंके सग मेरुके शिखरपर गिरकर चार टुकड़े हो गईं। मेरुके शिखरोंमे गिर कर फैल गईं। वहां से फैल कर मन्दराचल आदि पहाड़ों पर निरवलंब होकर गिरीं। उन पर्वतों पर गिरनेसे चार टुकड़े हो कर

अगणित चट्टानें तोड़ती फोड़ती पृथ्वीको ओर निकली। इस धारा का नाम शीता पड़ा वह चैत्ररथ नामक वनको तर करती हुई वरुणोद नामक सरोवरमें पहुंची। बाद [illegible] नामक पहाड़में पहुंच कर फिर दूसरे पहाड़ोंमें पहुंची। [illegible] फिर पृथिवीमें उतर कर भद्राश्वमें जाकर उसके बाद समुद्रमें गई। बाद दक्खिनकी ओर घूम कर अलकनन्दमें जाकर गन्धमादनमें पहुंची। फिर मेरु पर रहनेवाले तथा देवताओंको अत्यन्त सुख देनेवाले नन्दनवनमें पहुंची। बाद बड़े वेगसे मानसरोवरमें गई। फिर शैलराज में जाकर उसके बाद रम्य नामक पर्वतमें गई। उसके बाद दक्खिन दिशाके सबपहाड़ोंमें घूमती फिरती हिमवान् नामक महा पर्वतमें चली गई। वहां शिवजीने उसे अपने सिर पर रख लिया। फिर न छोड़ा ॥१०॥ भगीरथ राजाने गङ्गाकी उस धाराको पानेके लिये बड़ी कठिन तपस्याकी। अनेक प्रकारके उपवासादि व्रत तथा प्रार्थना करके शिवजीको प्रसन्न किया। शिवजीने प्रसन्न हो कर गङ्गाकी उस धाराको सात टुकड़े करके अपनी जटासे निकाल कर छोड़ा। वह धारा दक्षिण समुद्रमें पहुंची। ॥११॥ तीन धाराएं पूरबकी ओर जाकर महानदियोंमें जामिलीं। एक धारा भगीरथ राजाके रथके पीछे पीछे दक्षिण दिशामें जा पहुंची ॥१२॥ पश्चिमके पहाड़ोंमें जो धारा गई उसका नाम स्वरक्षु है। वह वैभ्राज नामक पहाड़में पहुंची ॥१३॥ इसके बाद वह शीतोद नामक सरोवरमें गई। फिर त्रिशिख नाम पहाड़में चली गई ॥१४॥ इस क्रमसे पहाड़ोंकी चोटियों पर घूमती फिरती केतुमालमें जा कर फिर लवण समुद्रमें जा मिली ॥१५॥ वहांसे निकल कर सुपार्श्व और फिर मेरु पादमें चली गई। वहां उसका नाम सोमा पड़ा वह सूर्य वनको पवित्र करती हुई महाभद्र नामक सरोवरमें पहुंची। इसके बाद वह महानदी शंखकूटमें जाकर वृषभ आदि पहाड़ोंको भिगोती हुई और कुरु देशको डुबोती हुई महासमुद्रमें जा गिरी ॥१८॥ हे द्विजवर! इस प्रकार मैंने गङ्गाकी कथा

तुमसे कहो। जम्बूद्वीपके प्रकरणमें वर्षोंका वर्णन किया ॥१८। उन किम्पुरुष आदि वर्षोंमें सब प्रजागण सुखी निर्भय और ऊंचाई निचाईके भेदसे विहीन रहते हैं ॥२०॥ नवों द्वीपोंमें सात सात कुलाचल हैं और पर्वतोंसे निकली हुई नदियां भी हैं ॥२१॥ किम्पुरुष आदि जो आठ द्वीप हैं उनमें नदियोंहीके जलसे सब काम होते हैं। मेघका जल केवल भारतवर्षहीमें होता है ॥२२॥ इन आठों वर्षोंमें मनुष्योंकी ये सिद्धियां हैं। वार्क्षी स्वाभाविकी श्यास तोयोत्था मानसी और कर्मजा ॥२३॥ कामके पूर्ण करनेवाले वृक्षोंसे जो सिद्धि होती है उसे वार्क्षी कहते हैं। स्वाभावसे होने वाली जो सिद्धि है उसे स्वाभाविकी कहते हैं। देशसे उत्पन्न होने वाली जो सिद्धि है वह देश्या कहलाती है।२४॥ जलकी लघुता से जो सिद्धि होती है उसे तोयोत्था कहते हैं। ध्यानसे होनेवाली सिद्धिको मानसी कहते हैं। और उपासना आदिसे जो सिद्धि होती है वह कर्मजा कहलाती है ॥२५॥ इन वर्षोंमें युगोंकी अवस्था आधि व्याधि पाप और पुण्यका फल नहीं होता।२६॥

(पूर्वार्द्ध समाप्त।)



भारतमित्र।

भारतमित्र हिन्दीभाषाका एक बहुत पुराना बड़ा और सस्ता साप्ताहिक पत्र है। ३१ सालसे कलकत्तेसे निकलता है। समय समय पर इसमें अच्छे अच्छे चित्र छपते हैं। राजनीति सम्बन्धी लेखोंकी इसमें प्रधानता रहती है पर मौके मौके पर धर्म्म, समाज और साहित्य सम्बन्धी लेख भी इसमें खूब निकलते हैं। जो लोग अंगरेजी नहीं जानते या कम जानते हैं वह यदि इस पत्रको बराबर पढ़ें जायं तो किसी आवश्यक सामयिक घटनाके जाननेके लिये उनको और कोई अखबार पढ़नेकी जरूरत न रहेगी। जो अंगरेजी पढ़े हैं वह स्वयं जान सकते हैं कि क्योंकर सब अंगरेजी कागजोंको मथकर उनका निचोड़ इस पत्रमें भर दिया जाता है। इतने पर मूल्य केवल २) वार्षिक डाकमहसूल सहित है। नमूना मंगाकर देखनेसे ऊपर लिखी बातोंकी जांच की सकती है।

मनेजर भारतमित्र

९७ मुक्ताराम बाबूस्ट्रीट कलकत्ता।